भूमिका

—❀—

यह ग्रंथ स्वर्गीय हरिनारायण आपटे के "चंद्रगुप्त" नामक ऐतिहासिक उपन्यास का अनुवाद है। ऐतिहासिक उपन्यास का आधार इतिहास की सत्य घटनाएं होती हैं। तदनुसार इस उपन्यास के रूप में दो ढाई हज़ार वर्ष पहले के भारतीय इतिहास पर प्रकाश डाला गया है।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त के ऐतिहासिक आख्यान को लेकर हिन्दी में दो एक नाटक लिखे गये हैं; परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि, उनके लेखकों ने "मुद्राराक्षस" के आधार पर ही अपने कथानकों की रचना की है; अतएव ऐतिहासिक तथ्य का समावेश उनमें नाममात्र का ही हुआ है। परंतु आपटे महाशय ने इस उपन्यास की सामग्री कहां २ से ली है, इसके विषय में आपने अपने मूल ग्रंथ में इस प्रकार लिखा है:—

"कुछ पुराणों में चन्द्रगुप्त और उनके पहले के नन्दराजाओं तथा उनके वंश का वृत्तान्त आया है। साम्राट चन्द्रगुप्त चूँकि बादशाह सिकन्दर के समकालीन थे, अतएव एक दो ग्रीक ग्रंथकारों के ग्रंथों में भी पाटलिपुत्र और चंद्रगुप्त के राज्य का वर्णन आया है। सम्राट चंद्रगुप्त बुद्धधर्माभिमानी चक्रवर्ती सम्राट अशोक उपनाम प्रियदर्शी के दादा थे; अतएव बौद्धग्रंथों में भी उनकी कथा आई है। मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य और चंद्रगुप्त की चातुर्यपूर्ण कार्रवाइयां दिखलाई गई हैं। इन सब ग्रंथों का वृत्तान्त लेकर—और उसमें उपन्यास के योग्य परिवर्तन करके—इस उपन्यास की रचना की गई है।"

इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि, आपटे महाशय ने केवल मुद्राराक्षस का ही आधार लेकर अपने उपन्यास की रचना नहीं की है; किन्तु पौराणिक ग्रंथों, ग्रीक ग्रंथों और बौद्ध ग्रंथों से भी ऐतिहासिक आधार लिया है। अतएव यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि, इस उपन्यास के पढ़ने से पाठकों को उस समय के इतिहास की भी बहुत सी नवीन नवीन बातें मालूम होंगी।

इसमें सन्देह नहीं कि, ऐतिहासिक उपन्यास का लक्ष्य केवल इतिहास की ही सत्य सत्य घटनाओं का वर्णन करना नहीं है; बल्कि इतिहास की सत्य घटनाओं को मनोरंजक स्वरूप देकर अपने पाठकों के सामने उनको उपस्थित करना ऐतिहासिक उपन्यास का उद्देश्य है। इसी उद्देश्य के अनुसार आपटे महाशय ने इस उपन्यास में ढाई हज़ार वर्ष पहले की ऐतिहासिक घटनाओं को अपने पाठकों के सामने उपस्थित किया है।

इस उपन्यास के मुख्य पात्र चाणक्य गुरू हैं। कुटिलनीति में इनकी पटुता संसार प्रसिद्ध है। यहाँ तक कि, इसी से इनका दूसरा नाम कौटिल्य कहा जाता है। इनकी राजनीति में कोई बात उचित अथवा अनुचित नहीं है। चाहे कोई उचित साधन हो, चाहे अनुचित साधन हो, अपने इष्ट साध्य को सिद्ध करना ही इनका लक्ष्य है। ये साधनों के क़ायल नहीं हैं—साध्य के क़ायल हैं। अपनी इसी नीति के अनुसार इन्होंने मगधाधिपति के समान प्रतापी नन्दराजा का विध्वंश किया; और अपने शिष्य चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर स्थापित किया। अपने संघातक और विघातक कार्य के करने में इन्होंने जो कूटनीतिज्ञता दिखलाई है, अपने प्रतिपक्षियों की चालों को जिस चातुर्य के साथ चाणक्य ने मात किया है, उसको पढ़कर दांतों तले उँगली

दबानी पड़ती है। चाणक्यमुनि अपनी प्रतिज्ञा के बड़े पक्के थे, जो कुछ सोचते थे, उसको पूरा करके ही दिखला देते थे।

राजा धनानन्द, जिसने चाणक्यमुनि का अपमान किया था, कोई प्रभावशाली राजा नहीं था। वह अत्यन्त दुर्बल हृदय का था; और इस कारण उसके दरबारी लोग जैसा कुछ उसे सुझा देते, उसी के अनुसार वह कार्य करता था। फलतः अपनी इसी दुर्बलता के कारण वह चाणक्यमुनि का कोपभाजन बना; और अपने जीवन से हाथ धो बैठा।

इस उपन्यास के एक और प्रभावशाली व्यक्ति विप्रवर अमात्य राक्षस हैं। ये जैसे स्वामिभक्त थे; वैसे ही धीर वीर गम्भीर और कार्यपटु भी थे। ये मगध साम्राज्य के आधार थे। साम्राज्य के सूत्र उस समय यदि इनके हाथ में न होते, तो यूनानियों ने मगध राज्य पर भी अपना प्रभाव अवश्य ही जमा लिया होता। चाणक्यमुनि ने नन्दों का नाश करने में अमात्य राक्षस की चालों को खूब ही चातुर्य के साथ मात किया था; परन्तु नन्दों का नाश करके जब उन्होंने चन्द्रगुप्त को सिंहासनाधिष्ठित कर लिया, तब अमात्य राक्षस को भी अपने पक्ष में करना उनके लिए आवश्यक हुआ; क्योंकि अमात्य के प्रभाव का लोहा चाणक्य भी मानते थे। उनको वश में किये बिना चन्द्रगुप्त के राज्य का स्थायित्व नहीं हो सकता था। चाणक्य गुरू ने सोच लिया था कि, अमात्य राक्षस के समान परम स्वाभिभक्त सचिव जब एक बार चन्द्रगुप्त का साचिव्य स्वीकार कर लेगा—जब एक बार वह चन्द्रगुप्त को अपना स्वामी मान लेगा—तब फिर प्राणपण से उसकी सेवा करेगा; और अपनी सारी शक्तियां चन्द्रगुप्त के राज्य को स्थायी बनाने में ही खर्च करेगा। ऐसा ही हुआ भी। चाणक्य मुनि ने अपने चातुर्य से अमात्य को वश में कर लिया; और उनको चन्द्रगुप्त की सेवा में प्रवृत किया।

मुरादेवी का चरित्र भी इस उपन्यास में ख़ूब ही चातुर्य के साथ चित्रित किया गया है। स्त्रियां कैसी मायाविनी होती हैं, और अपने उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए वे कैसे कैसे चरित्र रचती हैं, इसका अपूर्व चित्र इस उपन्यास में पाठकों को मिलेगा। साथ ही उनकी स्वाभाविक पतिभक्ति और मनो-दौर्बल्य का भी थोड़ा सा उदाहरण मुरादेवी के चरित्र में दिख जायगा।

यही मुख्य मुख्य पात्र इस उपन्यास के हैं। इनके सिवाय सेनापति भागुरायण, सिद्धार्थक, श्रेष्ठी, चन्दनदास, वृन्दमाला, सुमतिका, इत्यादि और भी कई स्त्री-पुरुषों के विलक्षण स्वभावों का चित्र बड़े कौशल के साथ चित्रित किया गया है। यूनानियों के उस समय के अत्याचार, पाटलिपुत्र की नगर रचना, उसकी वैभवशालिता, इत्यादि का सच्चा ऐतिहासिक वर्णन भी इस उपन्यास में स्थान २ पर इतने कौशल के साथ दिया गया है कि, जिससे उपन्यास की रमणीयता और भी अधिक बढ़ गई है। निदान आपटे महाशय ने इस उपन्यास को ऐसे मनोरं-जक ढँग से और चातुर्य के साथ लिखा है कि, इसको पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है कि, हम कोई सच्चा इतिहास पढ़ रहे हैं; परंतु इतिहास के पढ़ने में कहीं २ जो बुद्धि को परिश्रम देना पड़ता है, वह इसमें नहीं देना पड़ेगा। बल्कि इसके विरुद्ध, अत्यन्त मनोरंजकता के साथ ऐतिहासिक तथ्यों को हृदयाङ्कित करना ही इस उपन्यास की विशेषता है।

आशा है, कि हिन्दी प्रेमियों को हमारा यह प्रयत्न अवश्य रुचिकर होगा।

दारागंज प्रयाग
ज्येष्ठ शुक्ला २ सं० १९८१ वि०

लक्ष्मीधर वाजपेयी

चाणक्य और चन्द्रगुप्त

उपोद्घात-पूर्वार्ध

वत्सलाभ।

हिमालय पर्वत संसार के सब पर्वतों का राजा माना जाता है; और उसके शिखरों की उच्चता, बनस्पतियों की विपुलता, सुन्दर वन-शोभा, महानद और महा नदियों का उद्गम, विस्तृत गुफा-कन्दराएँ, हिंस्र श्वापदों का निवास और गगनचुम्बी वृक्षों की विपुलता, इत्यादि बातों को देखते हुए इस गिरिश्रेष्ठ को पर्वतराज की पदवी शोभा भी देती है। इसके वन-उपवन अत्यन्त गहन और बहुत ही भयंकर हैं। सदैव शीत रहने के कारण वहाँ के हिंस्र पशु तथा अन्य जानवर सभी स्वाभाविक ही ऊर्णवस्त्रों से आच्छादित रहते हैं; और जो मानवी प्राणी इस पर निवास करते हैं, वे भी अपने शरीर की रक्षा के लिए उन्हीं पशुओं को मार कर उनके नैसर्गिक वस्त्रों का ही अपने शीत-निवारणार्थ उपयोग करते हैं।

चाहे कोई अत्यन्त भयंकर पर्वत हो; और चाहे बिलकुल सपाट बालुकारण्य हो; मनुष्य प्राणी ने सभी जगह अपने निवास के लिए सुविधा अवश्य कर ली है। इस प्राणी ने जहाँ कहीं अपने जीवन को धारण करने की सुविधा देखी है, वहीं जाकर इसने वृक्ष और झाड़ियों को तथा अन्य प्राणियों को काट-छांट कर अपने रहने का सुभीता अवश्य ही कर लिया है। इसी न्याय के अनुसार इस पर्वतराज के अनेक भागों पर भी, जहां जहां अपने रहने को सुभीता देखा है, अनेक जंगली जातियों ने अपना निवासस्थल बनाया है। ऐसी एक भी जगह न मिलेगी कि, जहां मनुष्य के रहने की सम्भावना हो; और वह वहां न पहुँचा हो। ऐसी ही जगहों में से काश्मीर के पर्वतों की सब तराइयों में, और विशेषतः उसके पूर्वीय पर्वत-विभागों में, पहले—अत्यन्त प्राचीन काल में—धनगरों और ग्वालों का व्यवसाय करनेवाले बहुत से लोग रहते थे। इनका यह काम था कि, अपनी भेड़ें, और अन्य पशुओं के झुंड, अपने रहने की घाटियों से ऊपर की ओर पर्वत पर रोज़ चराने के लिए ले जाते, वहां जाकर अपने पशुओं को स्वच्छन्द घूमने देते; और आप स्वयं अपना वेणुवाद्य निकाल कर आनन्द से बजाते रहते, अथवा वनपुष्पों को तोड़ तोड़ कर उनके हार गूंथा करते; और उन्हीं से अपना, अपने माता-पिता अथवा अपने युवक सखा और सखियों के कंठ को सुशोभित करते रहते थे। दोपहर होने पर जब भोजन का समय आता, अपनी अपनी सिकहरी खोलते और सब मित्र-मंडली एक साथ बैठ कर आनन्दपूर्वक भोजन करते थे। बस, यही उनका नित्य नियम था।

मगध देश और गंगा के कछार की सीमा से कुछ उत्तर ओर की तराई में रहने वाले कुछ ग्वाले लोग एक दिन, उपर्युक्त रीति से ही, पर्वतों पर अपने पशुओं को चराने के लिए गये थे। ग्रीष्म

ऋतु के दिन थे। इन दिनों सूर्य भगवान् भी कुछ अधिक समय तक अपने प्रकाश का लाभ संसार को दिया करते हैं। उसमें भी पर्वत-शिखरों पर तो, धरातल की अपेक्षा और भी अधिक काल तक सूर्य भगवान् की किरणें सायंकाल को अपनी निराली छटा दिखलाया करती हैं; और अपने भिन्न भिन्न रंगों से भिन्न भिन्न स्थानों में आकाश को रंजित किया करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हिमालय पर्वत के समान स्थान में यद्यपि उस ऋतु में भी शीत की कुछ कमी नहीं रहती; परन्तु हाँ, इस ऋतु में वह शीत प्राणियों को कुछ विशेष कष्टदायक नहीं जान पड़ता। इसके विरुद्ध, वहां के लोगों को, उससे कुछ न कुछ सुख ही मालूम होता है। बस, इसी प्रकार की ऋतु उस समय व्याप्त हो रही थी, जब कि उपर्युक्त प्रान्त के उत्तर भाग में, सायंकाल के समय, एक दिन हिमालय के जंगलों से भेड़ें तथा अन्य पशु और उनके पालक नीचे उतर कर अपने घरों की ओर आ रहे थे। पशुओं के सब झुंड नीचे उतर आये; और अपने अपने घरों की ओर गये। एक झुंड अपने एक घर की ओर गया। इस घर के पास एक वृद्ध ग्वाल खड़ा था। वह बड़े प्रेम से अपने गिरोह का स्वागत करने के लिए आगे आया। सब पशु उसके समीप से होकर निकल गये; और उसको देख कर अत्यन्त प्रसन्न से दिखाई देये। ग्वाल भी उनकी ओर बड़े प्रेम से देख देख कर प्रफुल्लित हो रहा था। थोड़ी ही देर में सब पशु उसकी दृष्टि के सामने से निकल गये। इसके बाद, जिस बाड़े में वे बांधे जाते थे, वहां वे बांध दिये गये—"बांध दिये गये" की अपेक्षा यदि कहा जाय कि, वे घेर दिये गये, तो विशेष उपयुक्त होगा। सब ग्वालों के, तथा अन्य लोगों के भी, पशु जब अपनी अपनी जगह पर बांध दिये गये, तब वह हमारा वृद्ध ग्वाल भीतर जाने लगा; परन्तु इतने में एक दूसरा, उसी की अवस्था का वृद्ध ग्वाला

उसके पास आ उपस्थित हुआ; और वे दोनों आपस में कुछ वार्तालाप करने लगे। इतने में एक तीसरा वैसा ही वृद्ध महाशय आ गया। चौथा भी आ गया। इस प्रकार धीरे धीरे कोई आठ दस बुड्ढे वहां जमा हो गये। अब सूर्यास्त हो चुका था; और हिमालय के शीत का प्रभाव बड़ी तेज़ी के साथ सब लोगों पर पड़ रहा था। पूर्णमासी की रात थी, इस कारण सुन्दर चांदनी छिटकने लगी थी। वहां उस समय सब बुड्ढे ही बुड्ढे एकत्रित हुए थे, इसलिए शीत-निवारण के लिए आग जलाई गई, और उसी के आसपास बैठ कर सब तापने लगे। कई बुड्ढे लोग जब एक जगह जमा हो जाते हैं, तब स्वाभाविक ही वे अपनी युवावस्था की अनेक बातें निकाल कर उन्हीं पर परस्पर चर्चा किया करते हैं; पर आज वैसी कोई बातें नहीं निकलीं। किन्तु आज एक वृद्ध ने उनसे इस बात का ज़िक्र किया कि, मौर्यों का राजा गृहपति, जो कि यवनों के अत्याचार से त्रस्त होकर उनसे युद्ध कर रहा था, रणभूमि में पतन हो गया; और उसकी पत्नी मगध देश की ओर भाग गई है, जिसको हमने स्वयं जाते हुए देखा है। यह समाचार सुन कर सब को बड़ा दुःख हुआ; और फिर यवनों की ही बातें निकल पड़ीं। एक ने कहा कि, यवनों ने पंचजनों पर हमला करके वहां बड़ा उपद्रव मचा रखा है। राजा पोरस (पर्वतेश ?) का पूर्ण पराभव करके उसके राज्य को पादाक्रान्त करने और गंगा तट तक के सारे प्रदेश को जीत लेने के लिए वे बहुत भारी प्रयत्न कर रहे हैं। इन सब समाचारों को सुन कर उस ग्वाल का मन, कि जिसके द्वार पर वे सब लोग जमा थे, अत्यन्त उद्विग्न और परितप्त हुआ और वह वृद्ध ग्वाल एकदम उन सब को सम्बोधन करके बोला:- "भाई, जो समय व्यतीत हो गया, बहुत अच्छा था। अब तो दिन दिन बुरा समय आ रहा है; और हम लोगों को जीवित

रहने में कोई आनन्द नहीं है। इससे पहले यदि किसी ने यह भविष्यद्वाणी की होती कि, हमारा यह देश यवनों के पंजे में चला जायगा, तो मैंने उसे खड़ा ही चिरवा डाला होता; पर हा! कितने शोक की बात है कि, आज प्रत्यक्ष, हमारी आँखों के देखते, वही मौका हम पर आ गया है; और हम केवल मात्र उसकी चर्चा करते हुए यहां बैठे हुए हैं। पर्वतेश के इतने भारी राज्य की ऐसी दुर्दशा हो; और हमारी आँखों के देखते! इस से तो हम लोगों का मर जाना ही क्या बुरा है!"

जिस समय वृद्ध यह कह रहा था, उसका सारा शरीर थर थर काँप रहा था। प्रत्येक शब्द उसके हृदय को निचोड़ते हुए अथवा उसको भेदते हुए बाहर निकल रहा था।

उसके उपर्युक्त कथन का अन्य लोगों पर भी कुछ प्रभाव पड़ा। वास्तव मे वे सब ग्वाले का ही पेशा करने वाले मनुष्य थे। उन बेचारों को शायद ही कभी मालूम होता हो कि, कौन राजा कहां आया; और कौन कहां गया; और हिमालय के बिलकुल पूर्वभाग में यदि वे होते, तब तो उन्हें यह बात कभी नहीं मालूम हो सकती थी कि, उधर पश्चिम की ओर कौन सी घटनाएँ हो रही हैं; परन्तु वास्तव में वे उत्तर ओर के उस पहाड़ी प्रदेश में रहते थे कि जो सिकन्दर के जीते हुए पंजाब और मगध देश की पश्चिमी सीमा के मध्य में था; और इसी कारण उन गरीबों को महत्वाकांक्षी यवनों से बहुत कष्ट पहुँचने लगा था। सिकन्दर बादशाह भारत में आकर सिर्फ बीस महीने रहा, इसके बाद वह सरहद के बाहर चला गया; परन्तु इसी बीच में उसने पंजाब के राजा को पूर्ण पराजित किया; और इस कारण उसकी भूतृष्णा यहां तक बढ़ी कि, उसने गंगा पार करके मगध-देश को जीतने की भी महत्वाकांक्षा प्रकट की। बस, एक

उसकी इसी महत्वाकांक्षा के कारण उपर्युक्त मध्य प्रान्त के लोगों को उसके आक्रमणों से बहुत कष्ट हुआ करता था। उसके यवन सैनिक उधर के प्रदेशों पर आक्रमण करके पशुओं को लूट ले जाते; और कभी कभी स्त्रियों को भी भगा ले जाते थे। जो लोग बिलकुल पहाड़ की तराई में ही रहते थे, उन बेचारों को तो यवनों की इन अत्याचारपूर्ण चढ़ाइयों से इतना कष्ट होने लगा कि, उनको अपने अपने कुटुम्ब और पशुसमूह को हिमालय के भीतरी भाग में उठाले जाना पड़ा; और बड़े बड़े घने जंगलों में रहना ही उन्हें विशेष उचित जान पड़ा। इसमें सन्देह नहीं कि हिमालय के उन जंगलों में कभी कभी हिंस्र पशु उनके जानवरों को उठा ले जाते थे; परन्तु दुष्ट यवनों के कष्ट से उनको उन हिंस्र पशुओं का कष्ट कम ही प्रतीत होता था। वास्तव में उन गरीबों को यवनों से इतना कष्ट पहुँचता था कि, यवनों की चर्चा चलते ही उनके परिताप की सीमा नहीं रहती थी; और इसी कारण आज उन वृद्ध ग्वालों में जब उपर्युक्त चर्चा निकली, तब स्वाभाविक ही सब को अत्यन्त दुःख और सन्ताप हुआ। बातों बातों में उनमें से प्रत्येक वृद्ध ग्वाल ने उन यवनों अर्थात् यूनानियों के अत्याचार की, अपने अपने अनुभव की, अनेक बातें बतलाईं। उस समय यूनानियों में गवालम्भ-वृषभयज्ञ—अर्थात् बैल का बलिदान करने की बहुत चाल थी; अतएव भारतवर्ष में जब यत्र तत्र उनको विजय प्राप्त हुआ, तब उन्होंने उसके उपलक्ष में आनन्दोत्सव करने के लिए उन गरीब ग्वालों के अनेक अच्छे अच्छे मोटे ताज़े बैलों को पकड़ कर कई बार बड़े बड़े यज्ञ किये। इसी प्रकार के अनेक अत्याचारों के कारण वे ग्वाल यूनानी यवनों से बहुत ही तंग आ गये थे। बेचारे बारम्बार ईश्वर से यही प्रार्थना करते रहते कि इन दुष्टों का शासन करने वाला कोई वीर न जाने कब उत्पन्न हो;

परन्तु अभी तक उनको ऐसा कोई भी लक्षण दिखाई नहीं दिया था कि, उनकी उक्त प्रार्थना ईश्वर कब सुनेगा; और कब नहीं सुनेगा।

जो हो। वे सब वृद्ध ग्वाल उपर्युक्त रीति से अपना दुखड़ा रो रहे थे, इतने में हमारे उस मुखिया वृद्ध ग्वाल की एक कन्या दौड़ती हुई वहां आई; और अपने पिता से बोली, "दादा, हमारी उस कपिला का नवीन बछड़ा आज नहीं दिखाई देता। आज पहले ही पहल वह अपनी माता के पीछे पीछे चरने को चला गया था; और अब दूध दुहने के समय जब उसको देखा, तो उसका कहीं पता नहीं लगता। दादा, वह हमारा बछड़ा बहुत ही सुन्दर और सुलक्षण था!"

अन्तिम शब्द कन्या ने बहुत ही गद्गद् स्वर से उच्चारण किये; और उसकी आंखो में आंसू भी दिखाई दिये। उसका पशुसमूह कुछ छोटा नहीं था, बहुत बड़ा था। परन्तु उनमें से यदि एक भी बछड़ा अथवा भेड़ यदि कभी ग़ायब हो जाती, तो वे बड़े दुखी होते थे। उसमें भी आज जिस विशिष्ट गौ का बछड़ा ग़ायब हो गया था, उस गौ पर तो उन सब को बहुत ही प्रेम था। उस समय पशुओं के बड़े बड़े समूह ही बड़ी भारी सम्पत्ति समझी जाती थी; और उसमे भी पशुसामुद्रिक के अनुसार यदि किसी के यहां कोई सर्व-सुलक्षण-सम्पन्न बछड़ा अथवा कोई गौ होती थी, तो वह बड़ा भाग्यशाली समझा जाता था। उस ग्वाल का जो बछड़ा आज खो गया था, वह भी एक ऐसा ही सुलक्षण बछड़ा था, और इसी लिए उस अमंगल समाचार को अपनी कन्या के मुख से सुनते ही वह ग्वाल अत्यन्त चिन्तित होकर अपने साथियों के बीच से उठा। उस समय उन लोगों में यही चर्चा चल रही थी कि, यूनानी यवन लोग उन गरीबों के

गौ, बछड़े किस तरह चुरा ले जाते हैं; और ऐसे ही समय में उस ग्वाल को अपने उस बछड़े के गायब होने का समाचार मिला; इस लिए इस बात को उसने अपना बड़ा भारी दुर्भाग्य समझा। उसके चित्त में यही आया कि, आज जब हमारे यहां के पशु जंगल में चरने गये होंगे, तब उक्त बछड़ा कहीं पीछे रह गया होगा; और अवश्य ही उसको यवनों ने हरण कर लिया होगा। इसलिए तुरन्त ही उसने अपने उस बछड़े के विषय में पूँछ-ताँछ शुरू की। उसने पूँछा कि, आज हमारे पशु कहां तक चरने गये थे, चरवाहों की नजर कहां तक उस बछड़े पर रही; और अन्य लोगों ने उसको कहां कहां तक देखा, फिर अन्त में किसने कहां देखा,—इत्यादि प्रकार से जब उसने बहुत कुछ जांच की, तब उसे मालूम हुआ कि, आज जिस पर्वत के मैदान में जानवर चरने को गये थे, वहां तक तो वह बछड़ा अवश्य था, पर शाम को जानवरों के लौटते समय फिर उसे किसी ने नहीं देखा। ऐसी दशा में सब ने यही अनुमान किया कि, बछड़ा ऊपर ही कहीं रह गया, अथवा किसी हिंस्र पशु ने उसे कहीं पकड़ लिया हो। पर उस बुड्ढे ग्वाल को ऐसे ऐसे अनुमानों से ही सन्तोष नहीं हो सकता था, बछड़े का पता लगाये बिना उसको चैन कहां? अतएव तुरन्त ही उसने यह प्रतिज्ञा की कि, आज जब तक मैं उस बछड़े को ढूँढ़ नहीं लूँगा, तब तक अन्न ग्रहण नहीं करूँगा। इसके बाद तुरन्त ही उसने पर्वत पर जाने के लिए कमर कसी। अपना तीर कमान उस ने साथ में लिया; और अन्य लोगों से कहा कि, भाई जिसको हमारे साथ चलना हो, चलो। इतना कह कर वह पर्वत के ऊपर चढ़ने लगा।

ऊपर हमने बतलाया है कि, वह पूर्णमासी की चाँदनी रात थी। ग्रीष्म ऋतु होने के कारण आकाश बिलकुल स्वच्छ था। चन्द्र से द्रवित होने वाले तेजोरस से मानो सारा आकाश व्याप्त

हो रहा था। दूर दूर पर के, हिमालय के अत्युच्च शिखर, जोकि पहले ही से हिमाच्छादित थे, उन पर उस पौर्णिमा के चन्द्र की उज्ज्वल कांति पड़ रही थी, अतएव ऐसा भास हो रहा था कि, मानो वह कांति आकाश-गंगा के प्रवाह से हहर हहर बहती हुई भूलोक में आकर सर्वत्र फैल जाना चाहती है! पर्वतराज हिमाचल के अरण्य सदैव ही हिंस्र तथा अन्य पशुपक्षियों से भरे रहते हैं; परन्तु उस रात को वहां के सब स्थान उस चन्द्र-कांति से व्याप्त हो रहे थे, अतएव सारे प्राणिमात्र मानो, उसी के कारण, मोहित होकर बिलकुल स्तब्ध से हो रहे थे।

वन की शोभा बहुत ही दिव्य थी; पर उस ग्वाल को इससे क्या मतलब? उसका मन तो एक मात्र अपने उस सुलक्षण गोवत्स में ही लग रहा था—जैसे किसी साधु का चित्त सिर्फ एक परब्रह्म में ही लग जावे! उसको और कुछ भी सुझाई नहीं दे रहा था। उसके नेत्र उस समय सिर्फ उसी एक बात के लिए थे कि, वह वत्स उसे कहां दिखाई देवे; और इसी प्रकार उसके कान मानो इसी एक बात के लिए थे कि, कहीं उस वत्स का आर्त स्वर तो नहीं सुनाई दे रहा है—कहीं वह अपनी माता की याद कर करके रांभ तो नहीं रहा है! उसके साथ जो लोग आये थे, उनमें कुछ नवयुवक भी थे। परन्तु वह बुड्ढा अपने उस वत्स-शोधन के लिए इतना आतुर हो रहा था कि, उसके पैरों की तीव्रगति उन नवयुवकों की गति को लज्जित कर रही थी! उसके पैरों में आज न जाने कहां की शक्ति संचार कर गई थी! पर्वत के ऊपर पहुँचते ही उसने भिन्न भिन्न मनुष्यों को भिन्न भिन्न मार्गों से भेज कर जङ्गल में बछड़े का पता लगाने के लिए कहा; और आप स्वयं भी एक मार्ग से चला। उस मार्ग में उसे जितनी झाड़ियां मिलीं, अथवा जिन जिन छोटी-मोटी कन्दराओं को उसने देखा, सब के पास जा जा कर उसने बछड़े

का बहुत पता लगाया; पर कोई लाभ न हुआ। बछड़े का कहीं पता न लगा। अन्त में निराश होकर उसने एक ऐसा विकट मार्ग नीचे उतरने के लिए पकड़ा कि, जिससे मनुष्य के आने जाने की सम्भावना बहुत कम थी। उसने सोचा था कि शायद बछड़ा इसी तरफ कहीं भटक गया हो। रात को उस पर्वत-मार्ग से उतरना बहुत ही कठिन था; पर उस वृद्ध ग्वाल ने उस कठिनाई का कुछ भी ख़याल न किया; और उसी रास्ते से चलने लगा। निस्सन्देह वह ग्वाला इस प्रकार के मार्गों से बहुत बार आया गया होगा, पर आज का मार्ग ऐसा कुछ विकट था कि, उससे उतरने में उसको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परन्तु फिर भी धीरे धीरे उस मार्ग का तीन-चौथाई भाग उसने तै कर लिया। अब उसे एक-चौथाई मार्ग और नीचे उतरने को रह गया। परन्तु इसी जगह से मगध देश की ओर को एक उसी प्रकार के विकट मार्ग की शाख फूटी थी। ग्वाला उसी जगह खड़ा हो गया; और सोचने लगा कि, अब मैं सीधे अपने घर के ही मार्ग पर जाऊँ, अथवा इस मगध देश वाले मार्ग पर भी थोड़ी दूर जाकर और भी बछड़े का पता लगाऊँ—शायद इसी ओर कहीं उसका पता लगे! वह बड़ी देर तक सोचता रहा। कोई भी विचार उसका स्थिर नही होता था—कभी सोचता कि जाऊँ और कभी सोचता कि न जाऊँ—दोनों ओर उसका मन बराबर तुल रहा था! परन्तु अन्त में उसका यही निश्चय हुआ कि, अब अपने घर की ही ओर जाऊँ; और अब वह उसी ओर को क़दम बढ़ाने वाला भी था कि, इतने में पास ही कहीं से उसे ऐसा भास हुआ कि, जैसे किसी हाल के उत्पन्न हुए बच्चे के रोने की सी आवाज़ आ रही हो। परन्तु ऐसे विलक्षण स्थान में, इतनी रात के समय, एक दुधमुँह बच्चे की आवाज़ कहां से आई? शायद कोई विचित्र श्वापद ही

वाला हूँ; परन्तु मैं बड़े प्रेम से इसका लालन-पालन करूँगा।'

ईश्वर का चमत्कार है। उस वृद्ध ने ज्योंही बालक को अपनी छाती से लगाया, त्योंही वह दीन बालक बिलकुल चुप हो गया; और उस बुड्ढे के शरीर में और भी ज़ोर से चिपटने लगा। वृद्ध ने सोचा कि, देखो उस परमात्मा की महिमा कितनी अपार है कि, मुझे अपने गोवत्स की खोज करने के निमित्त से वह इतनी रात को यहां ले आया; और यह बालक मेरे सिपुर्द किया। इसमें अवश्य ही उस लीलामय परमेश्वर का कोई न कोई गुप्त उद्देश्य है। इस प्रकार मन ही मन सोचता हुआ वह अपनी घाटी की ओर चला। अपने घर के पास आते ही उसे अपने गोवत्स के मिल जाने का भी आनन्ददायक समाचार प्राप्त हुआ। अब क्या कहना है! उस ग्वाले के हर्ष का पारावार न रहा। अत्यन्त आनन्द में आकर वह सब से यही कहने लगा कि, "भगवान् कैलासनाथ मुझे यह बालक देना चाहते थे, मेरे हाथ से इसके प्राण बचने थे और इसी हेतु से उन्होंने मेरे बछड़े को भटका दिया।" यह कह कर उसने सब को वह बालक दिखलाया। उस बालक को देख कर प्रत्येक को यही बिश्वास हुआ कि यह बालक किसी न किसी बड़े आदमी का होना चाहिए। परन्तु उस बालक के शरीर पर एक रत्नखचित रक्षाबन्धन के अतिरिक्त और कोई भी निशानी नहीं थी।

उपोद्घात—उत्तरार्ध

दरिद्री ब्राह्मण ।

उपोद्घात के पूर्वार्ध में जिस घटना का उल्लेख किया गया, उसके पन्द्रह सोलह वर्ष के बाद का ज़िक्र है। अब यवनों ने पंजाब में पूर्णतया अपना अधिकार जमा लिया था। सिकन्दर बादशाह ने वहाँ के बहुत से प्रान्त को अपने कब्जे में कर लिया था; और उसके बन्दोबस्त के लिए अपने कुछ रिश्तेदारों को रख कर आप स्वयं अपने देश को लौट गया था। पर्वतेश नामक एक प्रबल राजा को पराजित करके सिकन्दर ने उसको अपना माण्डलिक बनाया था; और उसका राज्य फिर उसी के सिपुर्द कर दिया था। उक्त राजा इतने ही से बड़ा आनन्द मान कर अपने को यवनों का मांडलिक कहलाने मे सौभाग्य समझने लगा। सच ही है, जो मनुष्य एक बार अपनी स्वतंत्रता को गवाँ कर परतंत्रता को स्वीकार करते हैं, वे फिर आगे चल कर उस परतंत्रता का ही अभिमान रखने लगते हैं। और फिर वे इस बात की प्रतीक्षा करने लगते हैं कि, हमारे ही समान अन्य लोग भी कब होंगे। बस, प र्वतेश्वर की भी यही अवस्था हुई। वह अपने को ग्रीक यवनों का मांडलिक कहलाने लगा; और आगे फिर इस बात का भी प्रयत्न करने लगा कि, अन्य आर्य्य राज्यों को पादाक्रान्त करके उनको भी एक प्रकार से यवनों के

शासन में ले लिया जाय। अपनी सेना में उसने बहुत से यूनानी सिपाहियों को भरती किया; और इस कारण आर्य होकर भी म्लेच्छाधिपति कहलाने लगा। सिकन्दर अपने पीछे भारतवर्ष में अपने कई अधिकारी रख गया था; और उन अधिकारियों को उसने पर्वतेश्वर के ही मातहत रखा था। पर्वतेश्वर को यही महत्व उसने दिया था, और पर्वतेश्वर भी इस महत्व के ही कारण फूला नहीं समाता था। गुलामी के इतने ही बड़े महत्व को उसने बहुत कुछ समझ रखा था। अस्तु, इस प्रकार जब जगह जगह यवनों का शासन प्रारम्भ हो गया, तब उसके साथ साथ यवनविद्या का भी जहां तहां प्रचार होने लगा। इससे संस्कृत विद्या का आदर कम होने लगा। यहां के संस्कृत पंडितों को यह बात अभीष्ट नहीं थी, अतएव वे भी यवनों से द्वेष रखने लगे। इसके सिवाय, सिकन्दर बादशाह तथा उसके अन्य सरदारों ने यहां आकर कई आर्य स्त्रियों से विवाह किये। अवश्य ही ये विवाह उन लोगों ने अत्याचार के साथ किये। इससे पंजाब में यद्यपि अनेक आर्यों से ग्रीक यवनों का सम्बन्ध स्थापित हो गया; परन्तु सर्वसाधारण लोगों को यह बात पसन्द नहीं आई। यहां तक कि अनेक लोग पंजाब को छोड़ कर गङ्गा प्रान्त में अथवा मगध देश में आ आ कर भी बसने लगे थे।

मगध देश में उस समय नन्द राजा राज्य करते थे। यह देश उस समय वैभव के परम उच्च शिखर पर आरूढ़ हो रहा था। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र (आजकल जिसको पटना कहते हैं, उसी शहर के पास उस समय पर प्राचीन शहर था।) उस समय समस्त उत्तर भारत में आर्य विद्या, आर्य बुद्धि और आर्य बल का एक बड़ा भारी केन्द्र था। परन्तु अभी हमें मगध देश को जाने में कुछ देर है। वहां जब पहुँचेंगे, तब पाटलिपुत्र का वैभव सहज ही में हमें देखने को मिलेगा।

उनके यहां इतना एकत्रित था कि उनको उस कुटी में उसे रखने के लिए पूरा पूरा स्थान नहीं था; परन्तु फिर भी उन्होंने बड़ी कठिनाई से उन पोथों को किसी न किसी तरह रखा था। आर्य विष्णु शर्मा के पिता भी उन्हीं की तरह अत्यन्त विद्वान् परन्तु ऐसे ही दरिद्री थे। उनका परलोकवास हुए अभी लग-भग सात आठ वर्ष हुए थे। उनके शोक से अत्यन्त व्याकुल हो कर विष्णु शर्मा की माता बीमार हो गई थीं; और अब तक बिछौने पर पड़ी हुई थीं। आशा नहीं थी कि, अब वे फिर उठ कर कुछ गृहकार्य कर सकेंगी। माता की सारी सेवा-शुश्रूषा उस मातृभक्त पुत्र को ही करनी पड़ती थी। मातृभक्त विष्णु शर्मा भी अणु मात्र भी आलस न करते हुए उनकी सेवा शुश्रूषा अत्यन्त हृदयपूर्वक करते थे। इधर कुछ दिनों से माता की तबीयत बहुत ही खराब हो रही थी, अतएव आर्य विष्णु शर्मा को अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता था; परन्तु इस विषय में उन्होंने उद्-विग्नता कभी भी प्रकट नहीं की। माता भी उनको क्षण क्षण पर आशीर्वाद देती रहती; और इसी में उनको सन्तोष था। इसी को वे अपने कष्टों का अत्यन्त बड़ा फल समझते थे; और अपने दिन व्यतीत करते थे; परन्तु उस समय उन्हें अपने दिन बिताने में क्या क्या कष्ट उठाने पड़ते थे—उनका निर्वाह कैसे होता था, इसकी कल्पना ऐसे ही मनुष्य को हो सकती है कि, जिन्होंने वैसी ही दरिद्रता में अपने दिन बिताए हों—उनके जीवन में चार दिन भी ऐसे व्यतीत हुए हों कि, जब उसके पास एक कौड़ी का भी ठिकाना न रहा हो! इस संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है कि, जिनको समय पर अन्न-वस्त्र मिलता रहता है—किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है—फिर भी बातें निकालने पर सदा दरसाते रहते है कि, "भाई, हम बड़े गरीब हैं, आज़कल खाने-पीने को भी दिक़त है"—इस प्रकार अपनी गरीबी को प्रकट करते

हुए वे यह भी दरसाते हैं कि, हम रात दिन परोपकार और स्वदेशसेवा में लगे रहते हैं, इसी कारण हमारी यह अवस्था हो रही है। जो हो, ऐसे ढोंगी गरीबों को हमारे इस दरिद्री ब्राह्मण की दरिद्रता की कल्पना नहीं हो सकती। ब्राह्मण विष्णु शर्मा की बुद्धि बहुत ही तेजस्वी और अध्ययन-चातुर्य बहुत विस्तृत था, अतएव कुछ विद्यार्थी उनके पास आकर पढ़ते रहते थे; परन्तु जब से यवनों का शासन शुरू हुआ, तब से एक तो विद्या के लिए उत्साह न मिलने लगा; और दूसरे हमारे ब्राह्मण देवता की माता जी बीमार हो गईं, इसलिए उनको पढ़ाने के लिए अवकाश ही न मिलने लगा; क्योंकि उनका सारा समय माता जी की सेवा-शुश्रूषा में ही जाने लगा। जो भी कुछ कारण हो; किन्तु ब्राह्मण बिलकुल दरिद्री—सोलहो आना दरिद्री—था। शाम को इतना ही अन्न उसकी कुटी में रहता था कि, जो सुबह के लिए काम दे सकता था। और शाम की चिन्ता फिर ईश्वर के अधीन! इसी प्रकार उसके दिन बीत रहे थे। कुछ दिन यही क्रम चलने के बाद एक दिन उनकी वृद्ध जननी की प्रकृति अत्यन्त ही अस्वस्थ हुई। बुढ़ापे का समय था, फिर उसमें भी आज कई वर्षों की बीमारी से वे बिलकुल अस्थि-पंजरावशेष रह गई थीं। इतने में अचानक आज श्वास का ज़ोर हो आया; और ऊर्ध्व श्वास चलने लगा। पुत्र ने बहुत कुछ उपचार किये; पर किसी ने काम न दिया। उस दिन रात को चार बजे के लगभग माता ने अपने पुत्र को यह आशीर्वाद दिया कि "तेरा भाग्योदय शीघ्र ही होगा, तूने मेरी बड़ी सेवा की है; यह व्यर्थ नहीं जायगी।" बस, इतना कह कर उसने अपना देह त्याग किया।

उस मातृ-वियोग से पुत्र विष्णु शर्मा को कितना दुःख हुआ, सो बतलाने की आवश्यकता नहीं। अनेक प्रकार से उन्होंने

शोक किया, परन्तु उनका समाधान करने के लिए उस समय वहां कोई नहीं था। आप ही आप शान्ति धारण करनी पड़ी और अपनी वृद्ध जननी की उत्तर क्रिया इत्यादि भी उन्होंने की। उस निष्कांचन ब्राह्मण ने वह सब किस प्रकार से किया होगा, उस समय उसकी क्या दशा हुई होगी, सो उसकी वही जाने! हमारी कल्पना यहां कुछ काम नहीं दे सकती। अपनी माता की उत्तर क्रिया जब वह कर चुका, तब कोई कारण उसके सामने ऐसा नहीं रह गया कि, जिससे वह तेजस्वी ब्राह्मण अब तक्षशिला में ही पड़ा रहता। अतएव उसने सोचा कि, अब इस यवन राज्य से अन्यत्र कहीं चल कर देखना चाहिए, जहां किसी आर्य राजा का राज्य हो, हमारी विद्वत्ता की कुछ कदर हो, ऐसे किसी राजदरबार में चल कर अपनी धनुर्विद्या-पारंगतता और नीतिशास्त्र-कुशलता दिखलानी चाहिए; और यदि हो सके, तो ऐसे ही किसी राजा के द्वारा इन यवन राजाओं, और उनके महत्व में आकर अपनी स्वतंत्रता को खो बैठने वाले इन मिथ्याभिमानी आर्य राजाओं को भी, नीचा दिखलाना चाहिए। अब उस तेजस्वी ब्राह्मण के मन में यह महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई कि, जिस प्रकार हो सके, इन दुष्ट राजाओं को पूर्ण पराजित करा कर फिर सम्पूर्ण देश को पूर्ववत् आर्यमय करा देना चाहिए। सत्य ही है, जो मनस्वी पुरुष होते हैं, उनके लिए कोई भी अपना देश नहीं। जिस देश में वे जा पहुँचें, वही उनका स्वदेश! आर्य विष्णु शर्मा का जहां जन्म हुआ था, जहां उनका बालपन और कुछ युवावस्था भी बीती थी, वह उनका स्वदेश था सही; पर अब वहां अनार्यों का ही प्राबल्य हो रहा था, जहां देखो वहीं अनार्य आचार विचारों का प्रचार हो रहा था। ऐसी दशा में उस देश में केवल इसी भाव से पड़े रहना, कि यहां हमारा जन्म हुआ है, उनके समान तेजस्वी पुरुष के

लिए कब सम्भव था ? और यदि वे वहां पड़े भी रहते, तो उनको पूछता कौन ? अपने जन्म को भले ही बरबाद करते । और इसी लिए उन्होंने सोचा कि, अब यहां पड़ा रहना अच्छा नहीं, चलो, और कहीं चल कर, यदि हो सके, तो अपने देश के उद्धार के लिए कुछ प्रयत्न किया जाय, और ऐसा ही करना हमारे लिए सर्वथा श्रेयस्कर होगा। जब भिक्षा माँग कर ही किसी तरह पेट भरना है, तब परदेश में जाकर ही क्यों न भरें ? शायद वहां हमारी विद्वत्ता की कदर करने वाला ही कोई मिल जाय । बस, यही सब सोच कर आर्य विष्णु शर्मा ने अपनी उस दरिद्री पर्ण-कुटिका से बिदा ली । उस पर्णकुटिका से बिदा प्राप्त करना उनके लिए बिलकुल ही कठिन नहीं था । परन्तु हां, एक कठि-नाई थी । उन भूर्जपत्रों पर लिखी हुई और ताड़पत्रों पर खोदी हुई उन पोथियों को क्या किया जाय ? इनको हम यहीं रहने दें, यह हो नहीं सकता; और यदि साथ ले चलें, तो कैसे ले चालें ? उनकी वृद्ध माता जब जीवित थी, तब यदि उनसे कोई कहता कि, तुम इनको यहीं छोड़ कर चले जाओ, तो उस समय उनको जैसा दुःख हुआ होता, वैसा ही दुःख उनको इस समय हुआ कि, जब उन पर अपनी उन पोथियों को छोड़ कर जाने की नौबत आती हुई दिखाई दी । परन्तु केवल दुःख होने से क्या लाभ ? पोथियों को क्या किया जावे ? कोई युक्ति निकलनी चाहिए । विष्णु शर्मा इसी विवंचना में पड़ गये । भयंकर अकाल आ पड़ने पर दरिद्री मा बाप अपने बच्चों को छोड़ने पर बाध्य होते हैं; पर उस समय उनको मरणप्राय दुःख होता है । क्या करें बेचारे ? लाचारी में आकर किसी दूसरे को अपने बच्चे दे देने पड़ते हैं । कम से कम इस आशा से, कि कभी न कभी शायद फिर हमारे हाथ आ जाँय. किसी खाते-पीते गृहस्थ के सिपुर्द कर देने

पोथियों का वह बड़ा भारी भार पीठ पर लाद ले जाना उनके लिए बिलकुल असम्भव था। वे बिलकुल दरिद्री ब्राह्मण थे; किसी छकड़े इत्यादि का प्रबन्ध करना उनके लिए कब सम्भव था? पास में एक कौड़ी नहीं थी। मान लो, किसी से कोई छकड़ा मिल भी जाता, तो नदी नालों और पर्वतमार्गों से हांक कर उस को ले कौन जाता? और कहां कहां ले जाता? मान लो, कोई ले भी जाता; पर छकड़ा ही कौन देता? इसलिए बेचारे ने अपनी वह सारी भूर्जपत्री और ताड़पत्री सम्पत्ति अपने एक मित्र के घर में ले जाकर रखने का प्रबन्ध कर दिया; और आप तक्षशिला नगरी को छोड़कर मगध देश के लिए प्रयाण किया।

ऊपर इस बात का उल्लेख हो चुका है कि, उस समय पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर नगर वैभव के अत्यन्त ऊँचे शिखर पर विराजमान हो रहा था। उत्तर भारत में आर्यों का सब से बड़ा वैभवशाली राज्य यही था। इसलिये यवनों के शासन से त्रस्त हो कर जो लोग देश त्याग करते थे, वे सब पाटलिपुत्र नगर में ही जा कर अपनी कर्तव्यदक्षता और भाग्य की परीक्षा किया करते थे। मगध देश का राज्य उस समय बहुत विस्तृत था। सिकन्दर के अनुयायियों ने एक दो बार गंगा पार कर के इस राज्य को भी जीतने का प्रयत्न किया था; पर उनको सफलता नहीं हुई। सिकन्दर ने राजा पौरस (पर्वतेश) को पराजित करके पंजाब प्रान्त को अपने अधीन कर लिया था; और इस विजयमद में आकर मगध देश की ओर भी वह बढ़ा था; पर अपने इस प्रयत्न में उसको बहुत हानि उठानी पड़ी। इसके सिवाय उसके सिपाही भी उसके व्यवहार से बड़े तंग आ गये थे; अतएव वे उसके साथ जाने को तैयार नहीं हुए। यही नहीं, बल्कि उन्होंने अपने स्वामी को साफ़ साफ़ उत्तर दे दिया कि, "हम अब आगे आप के साथ जा कर अपना सत्यानाश नहीं कराना चाहते।"

लाचार उसको लौटना पड़ा। मगध देश के शूरवीरों के आगे सिकन्दर और उसके अधिकारियों की एक भी नहीं चलती थी। कहावत है कि, "आगे वाले को ठोकर लगने से पीछे वाले सावधान हो जाते हैं।" सो पंजाब में यूनानियों ने जो ऊधम मचाया उसको देख कर मगध वाले पहले ही होशियार हो गये। उन्होंने बहुत अच्छा बन्दोबस्त किया। पहले ही से ऐसी जंगी तैयारी कर रखी कि, जिसके सामने सिकन्दर की दाल नहीं गल सकती थी। उनका ऐसा निश्चय दिखाई दिया कि, शत्रु के आते ही उसका चकनाचूर कर दिया जाय। इसलिए सिकन्दर ने सोचा कि, ऐसे शूरवीर और दृढ़प्रतिज्ञ लोगों के चक्कर में न आना ही अच्छा, और यही सोच कर शायद सिकन्दर, अपनी उस धुन को छोड़कर, स्वदेश को लौट गया।

आज अनेक वर्ष से पाटलिपुत्र में नन्दबंश के महा प्रतापी राजा राज्य करते थे। आर्य विष्णुशर्मा जिस समय पाटलिपुत्र में आये, उस समय धनानन्द नामक राजा राज्य कर रहा था। राजसभा के पंडितों ने जब यह देखा कि यवन राज्य के परिडत अब हमारी राजसभा में आने लगे, और खूब आदर-सत्कार भी प्राप्त करने लगे, तब उनके हृदय में बड़ा मत्सर उत्पन्न हुआ। विष्णुशर्मा के पहले भी अनेक परिडत वहां पहुँच चुके थे; और राजसभा के आश्रय में रहने भी लगे थे। पहले तो यह बात राजा को और उसके सभापरिडतों को कुछ कौतुकास्पद मालूम हुई; पर ज्यों ज्यों राजा के दातृत्व और गुणग्राहकत्व की कीर्ति सारे भारत में फैलने लगी, त्यों त्यों विद्वान् याचक और भी अधिकाधिक आने लगे। अवश्य ही उनमें अनेक विद्वान् ऐसे भी आये, जो राजसभा के पंडितों की अपेक्षा कहीं अधिक योग्यता रखते थे, अतएव कभी कभी भरे दरबार में राज्य के सामने शास्त्रार्थ भी होने लगे, और ऐसे अवसरों पर राजसभा के पूर्व-

पंडितों को नीचा भी देखना पड़ता। विष्णुशर्मा जिस समय राजदरबार में उपस्थित हुए, उसके पहले से ही राजसभा के पंडितों में मत्सर की आग बड़े ज़ोरशोर से धधक रही थी, परन्तु जब विष्णुशर्मा राजसभा में आये, तब वह मत्सराग्नि, जो बहुत दिन से धधक रही थी, एकदम भड़क उठी। विष्णु-शर्मा ने पहले किसी की शिफ़ारिश इत्यादि भी नहीं पहुँचाई, किन्तु एकदम वे राजसभा में ही जा कर उपस्थित हुए। अब तक जितने पंडित आये थे, राजसभा के किसी न किसी पंडित के द्वारा उपस्थित किये गये थे, पर इस जमदग्निगोत्री ब्राह्मण को यह बात बिलकुल ही पसन्द नहीं आ सकती थी। उसने सोचा कि, मुझ में यदि कुछ योग्यता होगी, तो महाराज को आप ही आप दिख जायगी, इसमें किसी की शिफ़ारिश की क्या ज़रूरत? बस, यह सोच कर भरे दरबार में एकदम दुर्वासा ऋषि की भांति ही उन्होंने प्रवेश किया, और राजा के सामने उपस्थित हो कर नियमानुसार आशीर्वचन दिया। आशीर्वचन के श्लोक उन्होंने स्वयं ही रचे थे। वे श्लोक ज्योंही उन्होंने राजसभा में उपस्थित हो कर अपनी धीर, गम्भीर और अस्खलित वाणी से सुनाये, त्योंही सारी सभा चकित होकर बिलकुल तटस्थ रूप से उनकी ओर देखने लगी। उनकी उस उद्धत प्रणाली को देख कर सम्पूर्ण सभा-पंडितों ने तत्काल ही ताड़ लिया कि, यह कोई न कोई असाधारण बुद्धिमान्, तेजस्वी और विद्वान् ब्राह्मण है। यही नहीं, बल्कि इस राजदरबार में यदि यह एक बार चिपट जायगा, तो हमारे शिर पर आरूढ़ हुए विना नहीं रहेगा। इसलिए क्षणभर के लिए भी इसे यहां रुकने न देना चाहिए। बस, यही विचार चार पांच बड़े बड़े पंडितों के मन में आया; और वे आपस में कुछ खुसपुसाने लगे।

इधर उस अतिथि के तौर पर आये हुए ब्राह्मण की धीर गम्भीर वाणी से राजा धनानन्द के मन पर भी बड़ा विलक्षण प्रभाव पड़ा; और उसने बिलकुल स्वाभाविक रूप से उस ब्राह्मण को उत्थापन देकर अपने समीप आसन प्रदान किया। यह बात राजसभा के पंडितों को और भी विचित्र मालूम हुई। क्योंकि आज तक महाराज ने अन्य किसी पंडित का भी अपनी ओर से इतना आदर नहीं किया था। वास्तव में अब तक यही नियम था कि, पहले पहल कोई राजपंडित अतिथि पंडित को आदर-पूर्वक लाता; और महाराज को उसका नाम ग्राम इत्यादि बतला कर उसका परिचय कराता, तब उसके बाद फिर महाराज उसको उत्थापन देकर पंडित-सभा में उसको आसन दिखलाते। परन्तु आज ऐसा नहीं हुआ। आज स्वयं महाराज ने ही उस नवागत पंडित को अपनी तरफ़ से उत्थापन दिया; और उसे अपनी दाहनी ओर, अर्थात् सब पंडितों के सिर पर, स्थान दिया। यह बात उन पंडितों को कैसे सहन हो सकती थी? अतएव उन्होंने सोचा कि आज इस अवसर पर इस आगन्तुक का जितना आदर किया गया है, उतना ही अब इसका अचानक अपमान भी कराना चाहिए; और बस, अपने इसी उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए वे कोई न कोई युक्ति सोचने लगे।

इधर राजा धनानन्द, उस नवागत अतिथि से "आप कहां से पधारे" इत्यादि प्रश्न करके, उसका परिचय लेने लगे। पंडित ने भी "हम तक्षशिला नगरी से आये" इत्यादि कह कर अपना सब हाल बतलाया। जिसे सुनते ही राजाश्रित पंडितों में से एक पंडित बड़ी गम्भीरतापूर्वक उठ कर खड़ा हुआ; और बोला, "राजन्, अतिथि अभ्यागतों का आगत-स्वागत करके उनका आदर-सत्कार करना आप की दानशूरता के लिए उचित ही है। परन्तु चाहे आदर हो; और चाहे दान हो, पात्र-अपात्र का

विचार करके करना ठीक होगा। यही हम सब आश्रितजनों की श्रीमान् से प्रर्थना है। श्रीमान् से यह बात अविदित नहीं है कि, इस समय यवन राजा आर्यराजाओं के राज्यों पर घात लगाये हुए हैं; और उनको एकदम निगल जाने के बिचार में हैं। ऐसी दशा में इसका क्या ठीक है कि, किस बहाने से वे किसको यहां भेजेंगे; और किसको नहीं ? पंचजनों का संहार ऐसे ही विश्वास-घाती लोगों की घातक कार्यवाहियों से हुआ है। अन्यथा यह कब सम्भव था कि, यवन लोग भारतवर्ष में आकर आर्यों को परा-भूत करते ? तक्षशिला भी इस समय यवनों के ही अधिकार में है; और उसी नगरी से ये यहां आये हैं। कल ही उस नगरी से एक और महाशय यवनों के अत्याचार से त्रस्त होकर यहां आये थे; और उन्होंने बतलाया कि, यवन राजा किसी एक विद्वान् ब्राह्मण को यहाँ भेज कर सब भेद लेने के विचार में है। इस बात पर पूर्ण विचार करके तब आदरातिथ्य इत्यादि जो कुछ करना हो, करना चाहिए। ये किसी की पहचान के नहीं. इनको कोई पहचानता नहीं। ऐसी दशा में कौन कह सकता है कि, यवन राजा के भेजे हुए गुप्तचर ये नहीं हैं ? हम यह नहीं कहते कि, ये गुप्तचर ही हैं; पर कदाचित् हों ! ऐसी दशा में सांप को दूध पिलाने के समान पश्चात्ताप का अवसर न आवे, इसी लिए हमने इतनी निर्भीकता के साथ श्रीमान् से यह प्रार्थना की है।" राजा हिरण्यगुप्त उपनाम धनानन्द कीर्ति-लोलुप और दानशूर अवश्य था; पर साथ ही साथ कुछ चंचल स्वभाव का और संशयी पुरुष था। इसके सिवाय सिकन्दर ने पंचजनों में जो प्रलय मचा रखा था, उस पर भी उसका ध्यान आकर्षित हुआ। इस कारण उक्त पंडित के उपर्युक्त भाषण में उसको बहुत सा सत्यांश मालूम हुआ। उसने सोचा कि, निस्सन्देह यह ब्राह्मण कोई

अद्वितीय विद्वान् अवश्य है; और इसी अभिमान में इसने उद्धत-पन के साथ हमारी सभा में प्रवेश किया है; परन्तु विद्वत्ता के साथ नम्रता की भी आवश्यकता होती है, सो नम्रता इसमें बिलकुल ही दिखाई नहीं दी। यह इसका कोई अच्छा लक्षण नहीं। यह सोच कर राजा एकदम उस ब्राह्मण से बोला, "मेरे सभापंडितों ने अभी जो बात मुझे सुझाई, वह मुझे बिलकुल सत्य जान पड़ती है। आप के सभा में प्रवेश करते ही मैंने आप का आदर किया। परन्तु जब तक आप यह न प्रकट कर देवें, कि आपको यहां कौन पहचानता है, तब तक शायद आपको भी इस स्थान पर बैठा रहना समुचित न मालूम होगा। यह राज-नीति के विरुद्ध होगा। इसलिए कृप करके, इस पाटलिपुत्र में यदि कोई आप की पहचान का हो तो बतलाइये........."

यह भाषण सुनते ही उस कोपिष्ट ब्राह्मण का सारा शरीर, ऊपर से नीचे तक, एकदम जल उठा; और वह तुरन्त ही राजा हिरण्यगुप्त से बोला, "राजा, यह तू क्या कहता है? यवनों के शासन से त्रस्त होकर किसी न किसी आर्य राजा के राज्य में रहने के विचार से मैं चला था—यही नहीं, बल्कि मेरा तो यह उद्देश्य है कि, अपने नीतिज्ञान और धनुर्वेद का पूर्ण लाभ पहुँचा कर, किसी आर्य राजा के द्वारा, इन यवनों का और पर्वतेश के समान अभिमानी राजाओं का, नाश कराऊं; और चारों ओर फिर से आर्य राज्य का विस्तार कराऊं। मार्ग में तेरी कीर्ति सुनी; और इसी लिए तेरे पास आया। यवनों का द्वेष तो मेरे जीवन का व्रत है; और मैं उन्हीं का गुप्तचर बन कर आऊंगा?........"

विष्णु शर्म्मा का यह भाषण इतना उद्दण्डता-पूर्ण हुआ, और उनका कोप सब को इतना सत्य मालूम हुआ कि, सभा

पंडितों को अब यही जान पड़ा कि, राजा अब अवश्य ही इस ब्राह्मण से क्षमा-प्रार्थना करके इसको अपनी सभा में रख लेगा। परन्तु यह बात उनको अभीष्ट नहीं थी, अतएव पंडितों का प्रधान बीच ही में बोल उठा—"महाराज, जो पुरुष गुप्तचर बन कर आवेगा, वह क्या कभी यह कहते हुए आवेगा कि मैं यवनों का गुप्तचर हूं; और उन पर हमारा प्रेम है ? वह तो यही प्रकट करेगा कि, यवनों से मैं बहुत ही द्वेष रखता हूं, उनसे घृणा रखना ही मेरे जीवन का व्रत है। यही नहीं, बल्कि यदि कोई उसको यवनों का गुप्तचर बतलावेगा, तो वह बिगड़ कर अकांड-तांडव भी करेगा। ये सब बातें बिलकुल स्पष्ट हैं। दूर-दर्शी पुरुष ऐसी बातों का कभी विश्वास न करेंगे। हां, इस समय इनका अपमान होगा; और इनको बुरा लगेगा; पर यह कबूल है; क्योंकि पीछे से जब राज्य ही नष्ट हो जायगा, तब कितना भयंकर पश्चात्ताप होगा ? सोचिये तो सही। महाराज, हम लोग आप का अन्न खाते हैं; इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि, ज्यों ही आप पर कोई संकट आता हुआ देखें; त्यों ही पहले से आप को सचेत कर दें। फिर आप उस संकट से स्वयं अपनी, और हमारे समान प्रजाजनों की, रक्षा करने के लिए सर्वथा समर्थ हैं।"

इस अन्तिम कथन से राजा हिरण्यगुप्त की मानो आंखें खुल गईं; और उस ब्राह्मण के विषय में उसके मन में और भी अधिक सन्देह बढ़ गया। इसलिए वह उस ब्राह्मण से बोला, "ब्रह्मन्, दूरदर्शिता सदा सर्वदा अच्छी ही होती है। इसलिए जब तक मुझे इस बात का विश्वास न हो जाय कि, आप कौन-हैं, तब तक आप सभा से अलग रहें, यही उचित होगा। जब मुझे विश्वास हो जायगा, तब आप की विद्वत्ता और योग्यता के अनुसार आपका आदर और सत्कार अवश्य होगा, परन्तु तब-

ेक के लिए आप यह आसन छोड़ दें।" यह सुनते ही उस दुर्वासा ऋषि के समान क्रोधी ब्राह्मण का सारा शरीर—नख से शिख तक—सन्तप्त हो उठा: और एकदम उठ कर वहां से चलते चलते उसने यह प्रतिज्ञा की—"मैं यदि सच्चा ब्राह्मण होऊंगा, तो इस नन्दवंश को समूल नष्ट कर डालूंगा; और इसकी जगह जिसको मैं चाहूंगा, उसको गद्दी पर स्थापित करूंगा, और फिर उसी के हाथ से यवनों का पराजय कराऊंगा।" इतना कह कर उसने अपनी शिखा खोल दी; और यह भी निश्चय किया कि, जब तक मैं अपनी यह प्रतिज्ञा पूर्ण न कर लूंगा, तब तक बालों में हाथ न लगाऊंगा। लोगों ने यही कहा कि, इसको मनचाही दक्षिणा नहीं मिली: और राज-सभा में जिस बात की आशा करके यह आया था, वह आशा इसकी पूरी नहीं हुई; इसी कारण क्रोध में आकर यह कुछ न कुछ बक रहा है। बस, इसी विचार में आकर उसकी ओर किसी ने कुछ ध्यान नहीं दिया, और उलटे उसकी उक्त वल्गना पर सब को हँसी अवश्य आई।

इधर उस तेजस्वी ब्राह्मण ने यह निश्चय किया कि, अब इस समय हम पाटलिपुत्र मे रह कर जल ग्रहण भी न करेंगे, और यह निश्चय करने के बाद तुरन्त ही वह नगर से चल दिया। वहां से चल कर वह बहुत दूर निकल गया, इतने में लगभग सूर्यास्त का समय आया। उसी समय कुछ दूर पर उसने कुछ ग्वालों के लड़कों को परस्पर खेलते हुए देखा।

उन ग्वालों के लड़कों का वह खेल भी बहुत ही कौतूहल-प्रद और चित्ताकर्षक था। सब लड़के मिल कर एक ऐसा खेल खेल रहे थे कि जैसे उनके प्रदेश पर यवन लोगों ने धावा किया हो, और वे सब मिलकर उनसे मुकाबला करते हुए, उनको मार कर भगा रहे हों! उस खेल मे इस समय पंचजन प्रान्त पर सिकन्दर ने चढ़ाई करके वहां के लोगों को पादाक्रान्त किया

पंडितों को अब यही जान पड़ा कि, राजा अब अवश्य ही इस ब्राह्मण से क्षमा-प्रार्थना करके इसको अपनी सभा में रख लेगा। परन्तु यह बात उनको अभीष्ट नहीं थी, अतएव पंडितों का प्रधान बीच ही में बोल उठा—"महाराज, जो पुरुष गुप्तचर बन कर आवेगा, वह क्या कभी यह कहते हुए आवेगा कि मैं यवनों का गुप्तचर हूं; और उन पर हमारा प्रेम है ? वह तो यही प्रकट करेगा कि, यवनों से मैं बहुत ही द्वेष रखता हूं, उनसे घृणा रखना ही मेरे जीवन का व्रत है। यही नहीं, बल्कि यदि कोई उसको यवनों का गुप्तचर बतलावेगा, तो वह बिगड़ कर अकांड-तांडव भी करेगा। ये सब बातें बिलकुल स्पष्ट हैं। दूर-दर्शी पुरुष ऐसी बातों का कभी विश्वास न करेंगे। हां, इस समय इनका अपमान होगा; और इनको बुरा लगेगा; पर यह कबूल है; क्योंकि पीछे से जब राज्य ही नष्ट हो जायगा, तब कितना भयंकर पश्चात्ताप होगा ? सोचिये तो सही। महाराज, हम लोग आप का अन्न खाते हैं; इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि, ज्यों ही आप पर कोई संकट आता हुआ देखें; त्यों ही पहले से आप को सचेत कर दें। फिर आप उस संकट से स्वयं अपनी, और हमारे समान प्रजाजनों की, रक्षा करने के लिए सर्वथा समर्थ हैं।"

इस अन्तिम कथन से राजा हिरण्यगुप्त की मानो आंखें खुल गईं; और उस ब्राह्मण के विषय में उसके मन में और भी अधिक सन्देह बढ़ गया। इसलिए वह उस ब्राह्मण से बोला, "ब्रह्मन्, दूरदर्शिता सदा सर्वदा अच्छी ही होती है। इसलिए जब तक मुझे इस बात का विश्वास न हो जाय कि, आप कौन-हैं, तब तक आप सभा से अलग रहें, यही उचित होगा। जब मुझे विश्वास हो जायगा, तब आप की विद्वत्ता और योग्यता के अनुसार आपका आदर और सत्कार अवश्य होगा, परन्तु तब

लेक के लिए आप यह आसन छोड़ दें।" यह सुनते ही उस दुर्वासा ऋषि के समान क्रोधी ब्राह्मण का सारा शरीर—नख से शिख तक—सन्तप्त हो उठा; और एकदम उठ कर वहां से चलते चलते उसने यह प्रतिज्ञा की—"मैं यदि सच्चा ब्राह्मण होऊंगा, तो इस नन्दवंश को समूल नष्ट कर डालूंगा; और इसकी जगह जिसको मैं चाहूंगा, उसको गद्दी पर स्थापित करूंगा, और फिर उसी के हाथ से यवनों का पराजय कराऊंगा।" इतना कह कर उसने अपनी शिखा खोल दी; और यह भी निश्चय किया कि, जब तक मैं अपनी यह प्रतिज्ञा पूर्ण न कर लूंगा, तब तक बालों में हाथ न लगाऊंगा। लोगों ने यही कहा कि, इसको मनचाही दक्षिणा नहीं मिली; और राज-सभा में जिस बात की आशा करके यह आया था, वह आशा इसकी पूरी नहीं हुई; इसी कारण क्रोध में आकर यह कुछ न कुछ बक रहा है। बस, इसी विचार में आकर उसकी ओर किसी ने कुछ ध्यान नहीं दिया, और उलटे उसकी उक्त वल्गना पर सब को हंसी अवश्य आई।

इधर उस तेजस्वी ब्राह्मण ने यह निश्चय किया कि, अब इस समय हम पाटलिपुत्र मे रह कर जल ग्रहण भी न करेंगे; और यह निश्चय करने के बाद तुरन्त ही वह नगर से चल दिया। वहां से चल कर वह बहुत दूर निकल गया, इतने में लगभग सूर्यास्त का समय आया। उसी समय कुछ दूर पर उसने कुछ ग्वालों के लड़कों को परस्पर खेलते हुए देखा।

उन ग्वालों के लड़कों का वह खेल भी बहुत ही कौतूहल-प्रद और चित्ताकर्षक था। सब लड़के मिल कर एक ऐसा खेल खेल रहे थे कि जैसे उनके प्रदेश पर यवन लोगों ने धावा किया हो, और वे सब मिलकर उनसे मुकाबला करते हुए, उनको मार कर भगा रहे हों! उस खेल में इस समय पंचजन प्रान्त पर सिकन्दर ने चढ़ाई करके वहां के लोगों को पादाक्रान्त किया

था, और अब उसके बाद उसके अधिकारी आगे बढ़ कर अन्य प्रान्तों को भी अपने अधिकार में ले रहे थे। खेलने वालों में कुछ लड़के यवन बने थे, और कुछ आर्य बने थे। उन्हीं में वह पन्द्रह वर्ष का सुन्दर लड़का आर्यों का राजा बना था, और बड़े ज़ोर ज़ोर से अपने सिपाहियों को कुछ आज्ञा दे रहा था और उनसे उसका पालन करा रहा था। उसका यह चरित्र देख कर आर्य विष्णु शर्मा का चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ। उन्होंने सोचा कि, जिस लड़के का इतनी छोटी अवस्था में इतना सुन्दर चरित्र है, वह लड़का ग्वाले का कभी नहीं हो सकता, अवश्य इसमें कुछ भेद है, और जिस तरह से हो सके इस बालक की पूर्वपीठिका का पता अवश्य लगाना चाहिए।

बालकों का वह खेल बहुत देर तक जारी रहा। इतने समय में उस ब्राह्मण ने उक्त बालक की और भी बहुत कुछ परीक्षा कर ली। अन्त में वे लड़के जब खेलते खेलते बिलकुल थक कर एक जगह जमा हो गये, तब वह ब्राह्मण उनके पास गया, और उक्त बालक से बोला, "बेटा, मैं तेरा हाथ देखना चाहता हूं, दिखला तो!" लड़के ने ब्राह्मण को बहुत ही नम्र भाव से नमस्कार किया, और फिर अपना हाथ उसके आगे बढ़ाया। उसके हाथ को देखते ही ब्राह्मण को अत्यन्त आनन्द हुआ। उस पर चक्रवर्ती राजा के सब लक्षण बिलकुल स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ कि, यह लड़का ग्वाले के घर में कैसे जन्मा; अथवा कम से कम ग्वाले के घर में इसका पालन-पोषण ही क्यों कर सम्भव हुआ। इसके बाद उसने उस बालक के हाथ और मुख की फिर से भली भांति, सामुद्रिक की दृष्टि से, परीक्षा की। इस पर ज्यों ज्यों उसके एक एक सुलक्षण ब्राह्मण की दृष्टि में आने लगे, त्यों त्यों उस ब्राह्मण के मन में यह दृढ़ इच्छा होने लगी कि, इस बालक के मा-बाप के पास जाकर

उनसे इसके जन्म के विषय में पूंछ-तांछ करनी चाहिए; और यदि हो सके, तो उनसे इस बालक को मांग लेना चाहिए। इसी बात को ख़याल में रख कर विष्णु शर्मा ने उस बालक से भी पूछा कि, "क्या तू मेरे साथ चलेगा? मैं तुझ को सब विद्या सिखाऊंगा। शस्त्रविद्या और धनुर्वेद का भी मैंने अभ्यास किया है, सो सब तुझ को सिखाऊंगा।" शस्त्र-अस्त्र और धनुष का नाम निकलते ही बालक को परम हर्ष हुआ, और उसने कहा, "महाराज, आप यदि मुझे यह विद्या सिखाएंगे, तो मैं आजन्म आपका सेवक रहूंगा।" इतनी बातचीत होने के बाद कुछ समय में सब लड़कों ने अपने अपने पशु एकत्र किये: और सायं-काल हो जाने के कारण अपने अपने घर को चल दिये। ब्राह्मण भी उस ग्वाले के लड़के के साथ उसके घर गया। उस लड़के का पिता बहुत ही सज्जन पुरुष था। अपने लड़के पर तो वह बहुत ही प्रसन्न था। आज जब उसने देखा कि, हमारे लड़के की विलक्षण बुद्धि देख कर यह ब्राह्मण खास तौर पर उसके साथ उसके विषय में कुछ जानने को आया है, तब उसको बहुत ही हर्ष हुआ। ब्राह्मण देवता से उस रात को वहीं रह जाने की उसने प्रार्थना की। गौओं का दूध इत्यादि दुहने के बाद उसने ब्राह्मण से दुग्ध पान करने का आग्रह किया; और ब्राह्मण ने भी उसके आतिथ्य का स्वीकार करके उस रात को वहीं रह जाने का विचार किया।

दुग्धपान इत्यादि हो जाने के बाद ब्राह्मण ने उस ग्वाले को अपने पास बिठा कर बड़ी युक्ति के साथ उससे कहा, "हे वृद्ध गोप, तेरा यह लड़का बहुत ही विलक्षण बुद्धिमान और तेजस्वी है। इसके विषय में कुछ जानने की मैं इच्छा करता हूँ। तुझको यदि कुछ आपत्ति न हो; और मुझ पर नाराज़ न हो, तो मैं पूछूं।" ग्वाला जैसे यह समझ सा गया हो कि ब्राह्मण उससे

क्या प्रश्न करने वाला है; और इसी कारण वह हँस कर कहता है "महाराज, आप ब्राह्मण हैं, आपके पूछने पर मुझे आपत्ति क्या हो सकती है! और मैं नाराज़ क्यों होऊंगा? जो कुछ आप पूछना चाहते हों, आनन्दपूर्वक पूछें। मैं आप को सब उत्तर दूंगा।"

यह उत्तर सुन कर ब्राह्मण को सन्तोष हुआ; और वह तुरन्त ही फिर बोला, "बस, इतना आश्वासन तेरा काफ़ी है। मैं भी तुझ से बिलकुल स्पष्ट पूछूंगा। तू कहता है कि यह तेरा लड़का है, पर मुझे मालूम होता है कि, यह तेरा बालक तेरे वंश का नही है। इसलिए यदि इसका और कोई वृत्तान्त हो, तो तू मुझे बतला। मेरे अनुमान के अनुसार यदि इसका और कोई वृत्तान्त होगा, तो तू अच्छी तरह ध्यान में रख कि यह लड़का आगे चल कर एक बड़ा भारी भाग्यशाली पुरुष निकलेगा, यह सार्वभौम राजा होगा।"

ब्राह्मण का यह कथन सुनते ही ग्वाला कुछ चिन्तित सा दिखाई दिया। इसके बाद तुरन्त ही ब्राह्मण से बोला, "महाराज, मैंने यह निश्चय कर लिया है कि, आप के चरणों के समीप मैं झूठ कुछ भी नहीं कहूँगा, और इसी लिए मैं अब सारा सच्चा सच्चा वृत्तान्त आप को बतलाता हूँ। यह बालक हमारा नहीं है। हम ग्वालों के घर में ऐसा रत्न कहां से उत्पन्न हो सकता है? यह लड़का जब कि बिलकुल पैदा ही हुआ था, मुझे जंगल में एक वृक्ष के नीचे, चांदनी रात में, पड़ा हुआ मिला। यह रो रहा था। इसके समीप कोई भी नहीं था। मुझे तो इसी बात का आश्चर्य हुआ कि किसी मांसाहारी श्वापद ने इसे भक्षण कैसे नहीं कर लिया? आकाश से भगवान् चन्द्रदेव मानो बालक को धैर्य दिला कर इसको बिलकुल निर्भय रहने का आश्वासन दे रहे थे। बालक को मैंने तुरन्त ही उठा लिया और अपने घर ले आया। इसके माता पिता का पता लगाने के लिए मैंने बहुत

कुछ प्रयत्न किया, पर कुछ पता नहीं लगा। बालक के अंग पर वस्त्र इत्यादि कोई विशेष नहीं थे। सिर्फ़ एक रक्षाबन्धन मात्र इसके शरीर पर बालाभूषण के तौर पर था। उसको मैंने बड़ी सावधानी से अपने पास रख छोड़ा है। बालक किसका है, क्या बात है, कुछ पता नहीं लगा। इसी लिए मैं इसको अपना समझ कर इसका संवर्धन कर रहा हूँ।"

यह सुन कर ब्राह्मण कुछ देर तक चुप बैठा रहा; और फिर बोला, "वह रक्षाबन्धन कहाँ है? ज़रा दिखला तो।" ग्वाले ने उस रक्षाबन्धन को सात पर्त के अन्दर और सात तागों से बांध कर बड़े यत्न से रख छोड़ा था। सो उसको अत्यन्त प्रयास के साथ निकाल कर उसने ब्राह्मण को दिखलाया। ब्राह्मण ने एक ओर, जहां दिया जल रहा था, वहाँ जाकर बड़े ध्यान के साथ उस रक्षाबन्धन को देखा। उसकी छाप देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह एकदम उस ग्वाले से बोला, "भैया, तू यह लड़का मेरे सिपुर्द कर! यह आगे बड़ा भाग्यवान् निकलेगा, इसमें कुछ भी शङ्का नहीं। किन्तु, हां, इसको जब कोई अपने हाथ में लेगा, तभी यह बात सम्भव है। मुझे सब विद्याएँ आती हैं; और मेरा मन इस लड़के पर लग गया है इसलिए तू इसे मेरे सिपुर्द कर दे।" ब्राह्मण का यह कथन सुन कर वह गोप बहुत ही चिन्तित दिखाई दिया। इसलिए ब्राह्मण उससे फिर बोला, "देख भैया, राजा दशरथ ने रामचन्द्र को विश्वामित्र के सिपुर्द कर दिया था! विश्वामित्र ने रामचन्द्र को सब विद्याओं का अध्ययन कराया। बस, इसी प्रकार मैं तेरे पुत्र को भी शिक्षा देकर तैयार करूंगा। तू बिलकुल चिन्ता मत कर। यह राजबीज है।" इस मांग को सुन कर ग्वाले को बड़ा भारी दुःख हुआ। वह इस विवंचना में पड़ा कि, देखो, इतने दिन तक मैंने इस बालक का ऐसे प्रेम के साथ पालन-पोषण

किया; और अब यह ब्राह्मण आकर इसको अपने साथ ले जाना चाहता है, मैं इसको कैसे देऊँ! अब वह उस ब्राह्मण को क्या उत्तर देवे, उसे कुछ भी सुझाई नहीं दिया। बेचारा बड़े सङ्कट में पड़ा। पर उस ग्वाल को उत्तर देने की नौबत ही न आने पाई। उसके लड़के ने ही आकर ब्राह्मण के उस प्रश्न का उत्तर दिया। उसके पिता से इस ब्राह्मण की बातचीत इतनी देर से हो रही थी; पर पहले की कुछ भी बातचीत लड़के ने नहीं सुन पाई थी। वह वहीं एक ओर कहीं खेल रहा था; किन्तु अब जब ब्राह्मण ने उसके पिता से यह कहा कि, भाई, तू इस लड़के को मेरे सिपुर्द कर दे, तब यह बात उसके कानों में पड़ी; और उसे स्वाभाविक ही बहुत प्रिय जान पड़ी। इस लिए वह वहां दौड़ता हुआ आया; और अपने बेचारे गरीब पिता से बोला, "दादा, तुम ज़रूर मुझे इनके सिपुर्द कर दो। बिलकुल चिन्ता न करो। तुम हमेशा कहते रहते हो, कि इन यवनों का सत्यानाश यदि कोई कर डाले, तो बड़ा अच्छा हो। सो दादा, मैं ही यदि इनका सत्यानाश कर सकूं, तो इससे अच्छी बात और क्या होगी? तुम ने तो कई बार कहा है कि, तुमने यवनों के उस राजा को देखा था—हमेशा बतलाते रहते हो, कि उसके कपड़े ऐसे थे, उसका घोड़ा ऐसा था, अनेक बातें उसकी बतलाते रहते हो। दादा, तुम्हारे आशीर्वाद से और इन ऋषि महाराज की कृपा से मैं अवश्य ही बड़ा पराक्रमी बनूंगा। दुष्ट यवनों ने जितना राज्य जीता है, सब फिर उनसे छीन लूंगा, और एक बड़ा भारी स्वतंत्र राज्य स्थापित करूंगा। फिर दादा, और तुम बड़े आराम में रहोगे। सचमुच ही मैं इन यवनों को मार कर मगध देश के राजा के राज्य के समान ही एक स्वतंत्र राज्य इस ओर स्थापित करूंगा।"

मगध देश और उसके राजा का नाम निकलते ही ब्राह्मण

का क्रोध, जो अभी तक गुप्त था, एकदम जागृत हो आया; और वह बोला, "अरे बेटा, मगध देश के राज्य के समान राज्य की बात क्या कहता है—स्वयं उसी राज्य की गद्दी पर बिठा कर तुझे चक्रवर्ती बनाऊंगा।"

पहिला परिच्छेद

प्रयाण।
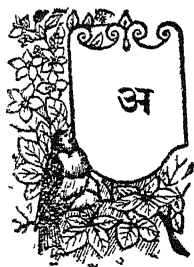
त्यन्त घना जंगल है—हिमालय का गहन जंगल है—और सचमुच ही गगनचुम्बी वृक्षों का बहुत ही घना जंगल है। नाना प्रकार के वृक्ष हैं—जिनके भेद गिनाये नहीं जा सकते। कहते हैं कि, हिमालय सम्पूर्ण ओषधिवनस्पतियों का आगार है; और यह बिलकुल सत्य है। सब प्रकार की वनस्पतियां, सब प्रकार की लताएँ, सब जाति के छोटे बड़े वृक्ष सचमुच ही उस पर्वत पर मौजूद हैं। ऐसी दशा में फिर उसके जंगलों की गहनता में कौन आश्चर्य की बात हो सकती है? बस, ऐसे ही एक घने जंगल के एक भाग में एक छोटा सा आश्रम है, जिसका प्रबन्ध सब प्रकार से बहुत ही उत्तम दिखाई दे रहा है। इस आश्रम को चाणक्याश्रम कहते हैं। एक छोटी सी नदी है, जो ब्रह्मपुत्रा में जाकर मिलती है; परन्तु अत्यन्त रमणीक है, उसी के तट पर यह आश्रम खुला हुआ है। इस नदी का प्रवाह अत्यन्त तीव्र, वायुवेग के समान, बह रहा है; और इसी कारण इसका नाम मरुद्वती पड़ गया है। परन्तु जिस जगह चाणक्याश्रम है, उस जगह इसका प्रवाह कुछ शान्त सा दिखाई दे रहा है। आश्रम के कुलपति चाणक्य नामक एक ब्राह्मण—महातेजस्वी, महाविद्वान् और महाक्रोधी ब्राह्मण—हैं। उनका तेज गोत्रपति के समान ही, बिलकुल अग्नि की तरह प्रज्वलित है। अनेक

ब्राह्मण और विद्याध्ययनेच्छु ब्राह्मणपुत्र उनके आश्रम में आकर निवास कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त हिमालय के भिल्लाधिपतियों पर भी उनका खूब प्रभाव है। सब भिल्लराज उनसे अत्यन्त नम्रता का व्यवहार रखते हैं। चाणक्य का अध्ययन ऐसा वैसा नहीं है; किन्तु अत्यन्त विस्तृत है। चारों वेद, उनकी शाखाएं तथा उनके षडंग और उपांग और अन्य सब शास्त्र, इत्यादि के आगे तक उनका अध्ययन पहुँचा हुआ है। अपनी योग्यता से वे कुलपति नाम को बिलकुल सार्थक कर रहे हैं। निस्सन्देह उनके जमाने में उनके समान और कोई भी कुलपति कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। सौ दो सौ विद्यार्थी उनके यहाँ अध्ययन करते थे। इनके सिवाय और कुछ छोटे विद्यार्थी भी थे। सब विद्यार्थी ब्रह्मविद्या ही सीखने वाले नहीं थे; किन्तु उनमें बहुत से अस्त्रविद्या और धनुर्वेद तथा आयुर्वेद, काश्यपसंहिता, इत्यादि की शिक्षा ग्रहण करनेवाले भी थे। क्षत्रियों के अतिरिक्त अनेक ब्राह्मण भी ये विद्याएं सीखते थे। मतलब यह कि पुराणों में बसिष्ठ, वाल्मीकि, विश्वामित्र, इत्यादि महर्षियों के आश्रमों का जैसा वर्णन पाया जाता है, ठीक वैसा ही सब व्यवस्था आर्य चाणक्य के इस आश्रम की थी। इसके सिवाय स्वयं चाणक्य को भी मानों इस बात का पूरा पूरा विश्वास था कि, उनकी योग्यता प्राचीन काल के वसिष्ठ, वामदेव इत्यादि ऋषियों से किसी प्रकार कम नहीं है। यही नहीं, बल्कि उनका कथन था कि, "विश्वामित्र के समान मैं भी किसी क्षत्रिय वीर को अपने हाथ में लेकर उससे ऐसा ही पराक्रम कराऊँगा, जैसा रामायण में वर्णन किया गया है। मैं एक बहुत बड़ा साम्राज्य स्थापित कराऊँगा। पृथ्वी विजय करने के लिए अश्वमेध कराऊँगा; और असंख्य मांडलिक राजाओं के प्रणाम से—उनके मुकुटरत्नों के प्रकाश से—उसके चरण-नखों को रंजित करा-

ऊँगा। राजा रामचन्द्र तो ईश्वरी अवतार थे; और अयोध्या की राजगद्दी के पूर्ण अधिकारी थे। ऐसी दशा में यदि विश्वामित्र ने उनको अपने हाथ में लेकर उनको सब विद्याओं का अध्ययन करा कर यदि उन्हें सुयोग्य और सामार्थ्यशाली बनाया, तो इसमें आश्चर्य की बात क्या हुई! परन्तु मैं तो एक ऐसे क्षत्रियपुत्र को हाथ में लेकर, कि जो राज्य का अधिकारी नहीं; और न जिसके पास ऐसा कोई बड़ा साधन है, उसी के द्वारा सम्पूर्ण आर्यावर्त में एक बहुत बड़ा राज्य स्थापित कराऊँगा, और उसे सर्वभौम चक्रवर्ती राजा बनाऊँगा। जिस मगधराज ने बिना कारण मेरा अपमान किया है—मेरी योग्यता को न जानते हुए, मत्सरपूर्ण क्षुद्र ब्राह्मणों की दुष्ट वाणी सुन कर मेरी अप्रतिष्ठा की है, उस मगधाधिपति के कुल का समूल नाश करके उसके सिंहासन पर मैं अपना यह क्षत्रियकिशोर बिठाऊँगा।" इस प्रकार के उद्‌गार उस आश्रम के कुलपति के मुख से प्रायः निकलते रहते थे। और इसी विचार से उसने सचमुच ही एक अल्पवयी, परन्तु तेजस्वी क्षत्रिय कुमार को, और उसके साथ ही साथ हिमालय के अन्य छोटे मोटे मांडलिक राज्यों के अनेक क्षत्रिय और भिल्लकुमारों को अपने आश्रम में लाकर रखा था; और उनको धनुर्वेद तथा शस्त्रविद्या की शिक्षा देता था। उसमें भी सन्तोष की बात यह थी कि, वे सब कुमार बड़े आनन्द और उत्साह के साथ अपने गुरु से प्रत्येक शास्त्र की प्रायोगिक और सैद्धान्तिक शिक्षा लिया करते थे; और उनकी प्रत्येक दिन की विद्याप्रगति को देख कर उनके गुरु को भी अत्यन्त हर्ष हुआ करता था। गुरु ने जब यह देखा कि, अब दिन पर दिन उसके उद्देश्य के सिद्ध होने का अवसर निकट आता जा रहा है, तब उसे जो असीम आनन्द हुआ, उसका वर्णन करना असम्भव है। जो हो, इसके बाद अब इस बात की ओर

उस ब्राह्मण का ध्यान गया कि, अगला कार्यक्रम अब किस प्रकार का रखा जाय। यह बात तो वह अच्छी तरह जानता था कि, हमारे ये शिष्य समरांगण में शत्रु के सामने खड़े होकर उसका पराभव नहीं कर सकते। हाँ, यह बात नहीं थी कि, उसके शिष्यों में शूरता, वीरता और कुशलता की कुछ कमी थी। नहीं, ये बातें उनमें भरपूर मौजूद थीं; पर संख्या को देखते हुए उनकी शक्ति कम थी। उतना बड़ा सैन्यबल कहाँ से आवे? चाणक्य इसी चिन्ता में थे। मगधदेश का राजा कोई मामूली राजा नहीं था—वह एक बड़ा भारी सम्राट था। आर्यावर्त के पूर्वोत्तर भाग में चारों ओर उसका राज्य फैला हुआ था, और पश्चिम की ओर भी अनेक राजा उसकी मांडलिकता में थे। ऐसी दशा में यदि कहीं युद्ध करने का प्रसंग आ गया, तो उसके लिए पर्याप्त सैन्यशक्ति हमारे इस वीर पुत्र को कहाँ से मिलेगी? यही विचार अब बराबर उस ब्राह्मण के मस्तिष्क में बार बार चक्कर काट रहा था। इसी विचार में एक दिन मध्यान्ह के समय, मध्यान्ह-स्नान के लिए, वे बिलकुल अकेले ही, मरुद्वती नदी के किनारे अपने नियमित स्थान को जा रहे थे। आश्रम में बहुत भीड़ रहती थी; इसलिए गुरु ने सब से अलग, अपने नित्य-कृत्य के लिए, नदी का कुछ भाग ख़ास तौर पर, एकान्त में नियत कर रखा था; और जब आप उस जगह होते, कोई भी आपके पास जाकर वार्तालाप नहीं कर सकता था। हाँ, उनका एक प्रिय शिष्य चन्द्रगुप्त अवश्य ही चाहे जब, चाहे जहाँ, जाकर अपने गुरु की समाधि तक भङ्ग कर सकता था। उसके लिए कोई मनाई नहीं थी। सच तो यह था कि जैसे किसी पिता के दस लड़के हों, परन्तु विशेष प्रेम एक ही पर हो, और वह लड़का चाहे जितने दोष करे, पिता को कुछ भी न मालूम हो; अथवा जानबूझ कर स्वाभाविक ही उसको क्षमा

मिलती जाय, बस, ऐसी ही दशा चाणक्य और चन्द्रगुप्त की थी। गुरु के पास अनेक शिष्य अनेक प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करने के लिए रहते थे, इस बात का उल्लेख ऊपर हो चुका है, पर उन सब में चन्द्रगुप्त ही सब से पहला और गुरु का अत्यन्त प्रेमपात्र शिष्य था।

पाठकों ने ताड़ ही लिया होगा कि उपोद्धात में जिस दरिद्री ब्राह्मण और हिमालय के गोप को मिले हुए क्षत्रियवत्स का वर्णन किया गया है, वही दोनों इस चाणक्याश्रम के चाणक्य और चन्द्रगुप्त हैं। उस गोप को चाँदनी रात में वृक्ष के नीचे अचानक वह बालक मिला था इसलिए इस दरिद्री ब्राह्मण ने यह सोच कर उसका नाम चन्द्रगुप्त रखा कि मानो चन्द्र ने ही अपने वंश के एक महावीर पुरुष की इस विचार से रक्षा की कि उसके हाथ से आगे चल कर कोई न कोई महान् कार्य होने वाला है। इसके सिवाय उसने अपना भी पहले का नाम बदल दिया, और यह प्रतिज्ञा की कि जिस नाम से हम राजसभा में गये; और हमारा अपमान हुआ, उस नाम को हम तब तक के लिए बिलकुल छोड़ देंगे, जब तक हमारे उस अपमान का पूर्ण परिमार्जन न हो जायगा। तब तक हम कोई और ही नाम धारण करेंगे—और जिस दिन हिरण्यगुप्त उपनाम धनानन्द को मगधदेश के राज्यसिंहासन से नीचे खींच लेंगे, उसी दिन अपने पहले नाम का उच्चारण हम करेंगे, अथवा अन्य किसी के द्वारा उच्चारण किया हुआ सुनेंगे—तब तक न हम स्वयं अपना वह नाम लेंगे; और न कोई दूसरा हमारा वह नाम ले! इस प्रकार की प्रतिज्ञा उस ब्राह्मण ने की। इसमें संदेह नहीं, ब्राह्मण अत्यन्त कार्यदक्ष और दृढ़प्रतिज्ञ था। गोप से उस बालक को माँग लेने के बाद फिर वह अपने देश—तक्षशिला-नगरी—को लौट कर नहीं गया, और वहाँ से बहुत दूर पर हिमा-

लय के उच्च और अन्तर्भाग में जाकर, उपर्युक्त मरुद्वती नदी के किनारे एक छोटी सी पर्णकुटिका बनाई और वहीं रह कर वह अपने उस बालक को शस्त्रास्त्र विद्या की शिक्षा देने लगा। परन्तु यह बात भी उसके मन में आई कि इस अकेले बालक को चाहे जितनी शिक्षा देवें; फिर भी इस अकेले के हाथ से हमारा उद्देश्य कैसे सिद्ध होगा। इसलिए और भी लोकसंग्रह की आवश्यकता है। ब्राह्मण बड़ा उत्साही, दृढ़-निश्चयी और अपनी कर्त्तव्यदक्षता के विषय में पूर्ण विश्वास रखने वाला था—ऐसे मनस्वी पुरुष के पास निराशा कैसे फटक सकती थी? तुरन्त ही उसने सोचा कि जिस प्रकार भगवान् रामचन्द्र ने दक्षिण के बानरों की सहायता लेकर रावण के समान प्रवल बैरी को जीता, उसी प्रकार हम भी अपने इस क्षत्रिय वीर को हिमालय के भिल्ल, मातंग, चांडाल, इत्यादि दीन समझे जाने वाले लोगों की सहायता दिलवायेंगे; और इन चांडालों से भी अधिक नीच उस मगधदेश के राजकुल का इसी के द्वारा सत्यानाश करावेंगे। इस प्रकार की विचित्र आशा उसने अपने मन में धारण की। इसके बाद भिल्ल, मातंग, चांडाल, इत्यादि निम्न श्रेणी के लोगों की हीनता अपने मन में बिलकुल ही न लाते हुए उस ब्राह्मण ने मानो अपने आशीर्वाद से ही उनको बिलकुल पवित्र कर लिया; और उनको अपने आश्रम में भरती करके शस्त्रास्त्र विद्या की शिक्षा देने लगा। इसके अतिरिक्त बहुत जल्द उसकी विद्वत्ता की कीर्ति भी चारों ओर फैल गई, इस कारण सब ओर से ब्राह्मणपुत्र भी उसके पास अध्ययन के लिए आने लगे। इस प्रकार, पहले की छोटी सी पर्णकुटिका डाले अभी लगभग एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ था, कि चाणक्याश्रम और उसके कुलपति की कीर्ति उस हिमालय प्रदेश में

अस्तु। हमने ऊपर बतलाया है, कि चाणक्य अपने अगले कार्यक्रम के विषय में विचार करते हुए आज दोपहर के समय अपने स्नान-स्थान की ओर जा रहे थे। आज उनके मन में यह बात विशेष रूप से आ रही थी कि, यदि हमें अपनी प्रतिज्ञा और कार्य सिद्ध करना है, तो अब विचार करते रहने से कोई लाभ नहीं—जो कुछ करना हो, उसका शीघ्र ही प्रारम्भ कर देना चाहिए। अब क्या किया जाय; और किस प्रकार से उसका आरम्भ किया जाय, यही उनके विचार का विषय था, जो उन्हें अत्यन्त चिन्तित कर रहा था। चन्द्रगुप्त आज बड़े तड़के उठकर शिकार की धुन में किसी ओर चला गया था। समय अत्यन्त शान्त, परन्तु प्रखर था। सूर्य आकाश के बिलकुल मध्यभाग में आरूढ़ हो रहा था। ऐसे समय में पशु पक्षी भी मानो विश्रान्ति ग्रहण करने के लिए अपनी अपनी गुफाओं और घोसलों में जा कर बैठ रहे थे। ब्राह्मण के बाहर आसपास बिलकुल शान्ति थी सही, किन्तु उसके अन्दर हृदय में शान्ति का लवलेश भी नहीं था। जब तक अपना अभीष्ट उद्देश्य सिद्ध नहीं हो जावे, तब तक शान्ति कहां? इस प्रकार जब कि चाणक्य अपने मन ही मन विचार कर रहे थे—ऐसा जान पड़ा कि, उनको कोई विचित्र कल्पना सूझी, कोई विलक्षण युक्ति उनके मन में आई। क्योंकि उनका चेहरा एकदम प्रफुल्लित सा दिखाई दिया। उसी उल्लास में उन्होंने दोनों हाथ से एक बार ताली बजाई; और मन ही मन कुछ न कुछ गुनगुनाये। इसके बाद एक दो बार गर्दन हिला कर आपही आप बोल उठे—"ठीक है, ऐसा किये बिना अब और कोई उपाय ही नहीं। जब तक हम खुद न जावें, यह प्रबन्ध हो नहीं सकता; और जब तक यह प्रबन्ध न होजाय, हम अपने अगले कार्यक्रम का उपक्रम भी नहीं कर सकते। सिर्फ़ यहां बैठे रहने से क्या होगा? जो कुछ होना है, वह वहीं जाने

स होगा। चन्द्रगुप्त ने एक वर्ष के अन्दर जो विद्या ग्रहण कर ली है, वह भी कुछ कम नहीं है—सन्तोषजनक है। और पाटलिपुत्र में जिस समय हम गये थे, उस समय जो दशा वहां देखी थी, वही दशा यदि अब भी बनी होगी, तो हम को अपने कार्य में कठिनाई नहीं उपस्थित होगी। निस्सन्देह, एक वर्ष के अन्दर ही हम वहां जाने को प्रस्तुत हो रहे हैं, यह बात कदाचित् कुछ कठिनता की मालूम होगी; पर उसमें कठिनाई किस बात की? हमने इतना बड़ा व्यूह रचने की आकांक्षा की है, ऐसी दशा में प्रारम्भ से ही यदि ऐसी ऐसी शंकाएँ करने लगेंगे, तो काम कैसे चलेगा? हमारी राजनीति में सब बातें चल सकती हैं। सच तो यह है कि, जो विचार हम ने किया है, वह यदि नहीं करेंगे, तो सफलता हमें कभी न प्राप्त होगी। इसलिए ऐसा हमें करना ही पड़ेगा।"

इस प्रकार मन ही मन कुछ विवेचना, कुछ निश्चय, और कुछ विचार करते हुए चाणक्य स्नान के लिए नदी में पैठे। स्नान के समय जिन मंत्रों का उच्चार प्रति दिन वे किया करते थे, वे बराबर उनके मुख से निकल रहे थे; पर आज उस मंत्रोच्चार में उनका मन बिलकुल ही नहीं था। आज उनका सारा मन अपने अगले कार्यक्रम में लगा हुआ था। ऐसी दशा में, नित्य के उन स्वाभाविक तौर से उच्चारित होने वाले मंत्रों में उनका मन क्योंकर लग सकता था? स्नान इत्यादि करके आप मध्यान्ह-सन्ध्या के लिए किनारे पर हरिणाजिन डाल कर उस पर बैठे; और आचमन करके अब प्राणायाम करने वाले थे कि, इतने में क्या देखते हैं कि उनका वह प्यारा शिष्य चन्द्रगुप्त दौड़ता हुआ उनके पास आया; और आते ही गुरु के सामने दण्डवत् प्रणाम करके निवेदन किया कि, आज वन में जाकर उसने क्या क्या पराक्रम के कार्य किये। विशेष कर जब कि वह

एक बहुत भारी जंगली शूकर और एक बहुत ही सुन्दर कृष्ण-मृग के मारने का वृत्तान्त बतलाने लगा, तब उसके साथ का एक दूसरा राजपुत्र बीच ही में बोल उठा—"और गुरुजी, यह अकेले जब उस जंगली शूकर के पीछे दौड़ने लगा, तब हम को सचमुच ही अर्जुन की याद आ गई। अर्जुन का बल देखने के लिए जब भगवान् शंकर ने किरात का रूप धारण करके अर्जुन को चिढ़ाया था, उस समय अर्जुन भी वास्तव में ऐसा ही सुशोभित हुआ होगा।" इतने मे एक और भिल्ल उतनी ही उत्सुकता के साथ कहता है, "गुरु जी, उस शूकर को जब आप देखेंगे, तब सचमुच ही आप इसको धन्य धन्य कहेंगे। इतना बड़ा शूकर आज तक इस जंगल में कभी भी किसी ने न देखा होगा। पर यह उसको बिलकुल ही नहीं डरा; और जैसे कोई कुत्ते बिल्ली को लाठी लेकर मारने दौड़े, उसी प्रकार इसने उसका पीछा करके उसको चित किया! आप उस शूकर को देखने अवश्य चलें।"

अपने किसी एकलौते और परम प्रिय पुत्र के पराक्रम पर जैसे किसी माता-पिता को अत्यन्त आनन्द हो, वैसा ही—किं-बहुना उससे भी अधिक—एक विचित्र ही प्रकार का आनन्द इस समय चाणक्य को हुआ। उन्होंने सोचा कि, जिस बालक को हमने अपने हाथ में लिया, उसकी यहां तक तो यह तैयारी बहुत अच्छी हुई; पर मुख्य काम तो अभी आगे ही है—उसके आगे यह कुछ भी नहीं है। यह सोच कर उनको कुछ खेद भी हुआ; पर वह सिर्फ क्षण भर के लिए! उस क्षण बीतते ही उन्होंने चन्द्रगुप्त की ओर देख कर कहा—"बेटा चन्द्रगुप्त, तेरा यह पराक्रम सुनकर मुझे सचमुच ही बड़ा आनन्द हुआ। तू दिन दिन ऐसे ही पराक्रम दिखला। किन्तु इस समय तुझे मैं और ही किसी बात के विषय में कुछ बतलाना चाहता हूँ। बालको, तुम दूर

जाओ—फिर जब हम बुलावें, तब आना।" लड़के गुरु के पूर्ण आज्ञापालक थे। वे आज्ञा पाते ही तुरन्त दूर चले गये। इसके बाद चाणक्य चन्द्रगुप्त से बोले—"वत्स चन्द्रगुप्त, मैं कुछ समय के लिए तुझको छोड़कर कहीं जानेवाला हूँ। तेरी अवस्था अभी बिलकुल छोटी है; पर तेरे हाथ से जो कार्य मुझे कराना है, उसका उपक्रम अभी से आरम्भ कर देना चाहिए। आगे टालना ठीक न होगा। इसके अतिरिक्त कम से कम चार मास के लिए यहां के सारे प्रबन्ध का भार भी तेरे कन्धों पर अवश्य डालना चाहिए। जिसको आगे चलकर एक बड़े भारी देश का राज्य करना है, उसे कुछ न कुछ ऐसे कार्य का अनुभव अभी से अवश्य प्राप्त कराना चाहिए। इसलिए—यद्यपि तू अभी इतना छोटा है, फिर भी कम से कम चार महीने के लिए इस आश्रम का भार तुझ पर डाल कर मैं अवश्य बाहर जाऊँगा। तू अच्छी तरह जानता है, कि जिस बात का मैं एक बार निश्चय कर लेता हूँ, उसको फिर कभी बदलता नहीं; और यदि हमको अपना उद्देश्य सिद्ध करना है, तो जैसा कि मैं कहता हूँ-उसके अनुसार तुझे अवश्यमेव करना ही चाहिए। देख, तू मुंह न बना! मुंह बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं बहुत जल्दी आजाऊँगा; और इस समय मैं अगले कार्यक्रम का प्रबन्ध बांधने के लिए ही जा रहा हूँ। और कोई उद्देश्य मेरे जाने का का नहीं है। मुझे क्या क्या करना है, सो अभी से तुझे बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। बेटा, मगध देश के राजा के सिंहासन पर जब तुझे बैठा हुआ देखूंगा, तभी मेरी आंखों को सुख होगा—बीच मे नहीं होगा। यह तू अच्छी तरह से मन में समझ ले। और मुझे तुझ से कुछ नहीं कहना है। आश्रम के और सब लोगों से भी मैं आवश्यक सब बातें बतला रखूंगा; पर नज़र सब पर तेरी रहेगी। तू इस आश्रम का स्वामी है।

तू ही यहां का राजा है। इन चार महीनों के तेरे प्रबन्ध से मुझे मालूम हो जायगा कि तू आगे का अपना राज्य किस प्रकार चलावेगा।"

बेचारा चन्द्रगुप्त सचमुच ही उदास मुख बनाये हुए चाणक्य का यह भाषण सुन रहा था। ज्योंही उसने यह सुना कि, अब हमारा गुरु हमको छोड़ कर कहीं जानेवाला है, त्यों ही उसको बड़ा दुःख हुआ। जिस गोप ने बिलकुल दुधमुहेपन से उसका संगोपन किया था, उससे भी अधिक चाणक्य ने, इतने ही थोड़े दिनों में, उसके चित्त को अपने वश कर लिया था। इसलिए वह बिलकुल गद्गद्कंठ से अपने गुरु से बोला, "चाणक्य महाराज, अभी मेरी शिक्षा भी पूरी नहीं हुई; और आप इतने ही में जाने कहते हैं! ऐसी दशा में आप मुझे भी क्यों नहीं अपने साथ लिये चलते? जहां आप, वहां मैं—आप यह न समझें कि, किसी संकट के आने पर मैं डर जाऊँगा। आपके पास रहते हुए मैं प्रत्यक्ष काल को भी नहीं डर सकता—फिर और किसी की क्या गिनती? लेकिन आप यदि मुझे छोड़ कर चले जायँगे, तो अवश्य ही मेरे मन की दशा न जाने कैसी होगी! हां, आपके साथ रहूँगा, तब चाहे जो हो, कोई परवा नहीं।

इस पर चाणक्य उससे कहते हैं, "तू ऐसा मत समझ कि, संकट के भय से मैं तुझे साथ नहीं लिये जा रहा हूँ। किन्तु वास्तव में बात यह है कि, इस समय मैं जिस कार्य के लिए जा रहा हूँ, उसके लिए मुझे अकेला ही जाना चाहिए। अब इस विषय में अधिक कुछ मत कह। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा ही कर। तेरे कल्याण के अतिरिक्त और कोई बात मेरे मन में है ही नहीं, सो तू स्वयं जान सकता है। विशेष कहने की आवश्यकता नहीं।" अब चन्द्रगुप्त और अधिक क्या कहे? लेकिन आर्य-

चाणक्य को स्पष्ट मालूम हुआ कि, चन्द्रगुप्त को इस समय अत्यन्त दुःख हो रहा है। परन्तु चाणक्य जितने मनोविकारवश थे, उतने ही दृढ़ भी थे। उन्होंने अपना निश्चय अणुमात्र भी डिगने नहीं दिया। उन्होंने यह पूरे तौर पर समझ लिया कि, जिस कार्य का अभी हमने विचार किया है, उसका प्रारम्भ अब कर ही देना चाहिए। उसकी उपेक्षा अब न करनी चाहिए; क्योंकि कार्य ही ऐसा है कि न जाने इसमें कितने दिन लग जायँ। इसलिए जितनी जल्दी इसका प्रारम्भ हो जाय, उतना ही अभीष्ट है।

धीर पुरुष अपने निश्चित कार्य में कभी विलम्ब नहीं किया करते। उसी दिन रात को चार मास के लिए आवश्यक प्रबन्ध करके दूसरे दिन बहुत ही तड़के, कुलपति चाणक्य अपने प्रिय शिष्यों से बिदा होकर अपने आश्रम से चल दिये।

दूसरा परिच्छेद

पाटलिपुत्र ।

छले परिच्छेदों में प्रसंगानुसार मगधदेश की राजधानी पाटलिपुत्र का कुछ वर्णन पाठकों के सन्मुख उपस्थित हो चुका है; परन्तु अब इस परिच्छेद में उक्त नगर का कुछ अधिक परिचय पाठकों को कराने का विचार है। आर्य चाणक्य अपने आश्रम से चल कर पाटलिपुत्र को आ रहे हैं—तब तक, आइये पाठकगण! आप को हम उस श्रीविशालनगरी का, तथा वहां के नन्दनृपति का भी, कुछ विशेष परिचय करावें। इससे हमारे इस कथानक को समझने में आपको विशेष सुविधा होगी।

पाटलिपुत्र को प्राचीन काल में पुष्पपुर भी कहते थे। परन्तु जिस काल की कथा हम लिख रहे हैं, उस काल में मगधदेश की शिरोमणि इस नगरी को विशेष कर पाटलिपुत्र ही कहते थे। अनेक लोगों का यह भी कथन है कि, रामायण-काल में यही नगरी कौशाम्बी और कुसुमपुर नाम से भी सुप्रसिद्ध थी। जो हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि, यह नगरी हमारे इस कथनाक के समय से पूर्व भी पुराणप्रसिद्ध थी; और जिस काल के उसके इतिहास पर आज हम दृष्टि डालना चाहते हैं, उस काल में तो पाटलिपुत्र के समान सब प्रकार

से अत्यन्त वैभवशाली और विस्तृत अन्य कोई भी नगर सम्पूर्ण आर्यावर्त में नहीं था। वहां के नन्दराजा बहुत ही समर्थ थे; और चारों ओर उनकी कीर्ति फैली हुई थी। परन्तु वास्तव में यह देखना चाहिए कि, उनकी कीर्ति सचमुच ही वैसी थी, अथवा जैसी कि अन्य सब राजाओं की, उनके सिर्फ़ राजा होने कारण ही, कीर्ति विस्तृत हो जाया करती है। उसी प्रकार विस्तृत हुई थी। इसमें संदेह नहीं कि, वहां के राजा चाहे जैसे हों, किन्तु पाटलिपुत्र अवश्य ही उस समय सर्वथा दिगन्त-विश्रुत हो रहा था। सब जगह उसकी कीर्ति फैली हुई थी। यह नगर लगभग पांच कोस लम्बा और तीन कोस चौड़ा था। उस समय के ग्रीक इतिहासकारों ने इस नगरी का बहुत अच्छा वर्णन किया है। उससे मालूम होता है कि, उस समय इस नगर के आसपास एक बहुत ही भारी खन्दक था; और खन्दक के भीतरी ओर लकड़ी की एक बहुत ज़बरदस्त दीवाल थी, जो चारों ओर से नगर को घेरे हुए थी। इस दीवाल के भीतरी ओर एक बड़ा ज़बरदस्त कोट था। यह भी उस विस्तृत नगर को चारों ओर से व्याप्त किये हुए था। इसके सिवाय यह नगर उस समय गंगा और शोण, इन दो नदियों के संगम से बने हुए दोआबे में, बड़े विस्तार के साथ, बसा हुआ था। यहां के लोगों को प्राच्य कहते थे। गंगा और शोण के समान भारी नदियों के संगम-स्थान में होने के कारण यह नगर उस सम्पूर्ण प्रान्त के व्यापार और व्यवसाय का एक बड़ा भारी केन्द्र था। इसके सिवाय राजधानी होने के क़ारण सब प्रकार के कारीगर और गुणी जन भी वहां आते ही थे। जिस किसी को अपनी करामात और कारीगरी दिखला कर राजाश्रय प्राप्त करना होता, वह पाटलिपुत्र नगर की ओर अवश्य ही दौड़ता था। यह नगर उस समय वैदिक धर्म का

भी अग्रस्थान था। नाना प्रकार के यज्ञ और अन्य हव्य कव्य वहां सदैव ही होते रहते थे। यज्ञ-धर्म का आत्यन्तिक प्रचार होने के कारण उस समय पशुहिंसा भी वहां बहुत होने लगी थी; और पशुओं पर होता हुआ वह अत्याचार देख कर सदय हृदय बुद्धदेव के प्रचलित किये हुए अहिंसा धर्म के प्रचारक भी पाटलिपुत्र में अपना प्रचारकार्य करने लगे थे, और धीरे धीरे अपने कार्य में उनको सफलता भी प्राप्त होने लगी थी; पर अभी तक उनका प्रचारकार्य खुल्लम-खुल्ला वहाँ पर जारी नहीं हुआ था; किन्तु गुप्त रूप से ही वे अपने अहिंसाधर्म का प्रचारकार्य करते रहते थे। वैदिक धर्म को ज़बरदस्त राजाश्रय मिला हुआ था; अतएव बौद्धयतियों को अपना धर्म कार्य बढ़ाने के लिए काफ़ी सुविधा नहीं मिल रही थी। बल्कि इसके विरुद्ध राजाश्रित पुरोहितों इत्यादि को जब उनके प्रयत्नों का समाचार मिल जाता था, तब उन बेचारों को कुछ कष्ट भी उठाना पड़ता था। जो हो, इस समय हम पाटलिपुत्र का वर्णन अन्य ही किसी दृष्टि से करना चाहते हैं। इसलिए इस विषय का इतना ही संकेत यहाँ पर पर्याप्त होगा।

पिछले वर्णन से पाठकों को मालूम हो चुका है कि, इस समय पाटलिपुत्र अर्थात् सारे मगध साम्राज्य पर नन्द राजाओं में से धनानन्द उपनाम हिरण्यगुप्त नाम का एक राजा राज्य करता था। यह राजा यद्यपि दूर दूर से सब लोगों को बड़ा दानी, शूरवीर और गुणग्राही मालूम होता था; पर वास्तव में वह वैसा ही था, यह नहीं कहा जा सकता। वास्तव में वह अत्यन्त दुर्बल-हृदय और चंचल वृत्ति का राजा था। उसका एक निश्चय तो कभी स्थिर ही नहीं रहता था। साथ ही साथ व्यसनी भी वह काफ़ी था। दूर दूर पर उसकी

कीर्त्ति चाहे जितनी फैली हो; पर आसपास के लोगों को वह बिलकुल प्रिय नहीं था। प्राचीन काल में—और यदा कदाचित् अब भी राजा—प्रत्यक्ष ईश्वर का अवतार माना जाता रहा है। फिर उस समय तो लोगों के हृदय में यह विचार बहुत ही दृढ़ता के साथ बैठा हुआ था, अतएव राजा चाहे जैसा हो लोग उसको, पूज्य मानने में कुछ भी कसर नहीं करते थे। धनानन्द का भी यही हाल था। कोई भी बात होती, राजा उसके विषय में अपने आसपास के लोगों की ही सलाह लेकर जो कुछ उसके मन में आता, किया करता था; और ऐसे दुर्बलहृदय राजाओं के आसपास किस प्रकार के लोग जमा रहते हैं, सो पाठकों को स्वयं अपने अनुभव से नहीं, तो कम से कम इधर उधर से सुन कर तो अवश्य ही मालूम होगा। सब प्रकार के व्यसनी लोग ऐसे राजाओं के आसपास आकर जमा होते हैं और उनको प्रसन्न करने के लिए सब प्रकार के बुरे-भले काम किया करते हैं। इससे राजा तो एक ओर रह जाता है, वे उसके चाटुकार लोग ही वास्तविक राजा बन बैठते हैं। प्रत्येक बात में अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए वे राजा को मनमाना उपदेश दिया करते हैं, और अपनी मनमानी बात उससे करा लेते हैं। वे लोग राजा को तो यह मालूम नहीं होने देते कि, उस पर उनका इतना प्रभाव है, परन्तु वास्तव में वे उसके हृदय पर अपना पूरा पूरा प्रभाव रखते हैं—उसको अपनी मुट्ठी में किये रहते हैं। राजा अवश्य ही यह समझता रहता है कि, प्रत्येक बात मैं अपने ही मन से करता हूँ; और सब अच्छे अथवा बुरे कार्यों के करने में मैं सर्वतंत्र-स्वतंत्र हूँ। पर वास्तव में उस बेचारे को यह क्या मालूम कि, सर्वतंत्र-स्वतंत्र कौन है; और कौन लोग उसके ऊपर अपना तंत्र चलाया करते हैं! बस, धनानन्द की भी ऐसी ही हालत हो रही थी। उसके आसपास

उसके जो परिचारक लोग थे, वही अपना मनमाना कार्य राजा से कराया करते थे; परन्तु राजा अपने मन में इसी अभिमान से फूला रहता कि, बस, ये सब काम मैं ही, अपने मन के अनुसार, कर रहा हूं। सारांश यह कि, राजा धनानन्द अपने परिचारकों के हाथ की कठपुतली बना हुआ था।

राजा की ऐसी परिस्थिति होने के कारण उसके अमात्य इत्यादि अधिकारियों को राज्य-संचालन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। फिर भी कई अमात्य अपनी स्वाभाविक प्रभुभक्ति के करण अपने अपने कार्य बड़ी श्रद्धा के साथ करते हुए अपने दिन व्यतीत कर रहे थे। इन सब अमात्यों में राक्षस नाम का एक अमात्य था। इसको राजवंश के विषय में अत्यन्त भक्ति थी; और स्वभाव में यह अपने नाम के बिलकुल प्रतिकूल था। यही राजा धनानन्द का मुख्य अमात्य था। राजा पर भी इसका काफी प्रभाव था। अन्य विषयों में चाहे राजा अपना कुछ मनमानी कर लेता; पर जहां राक्षस की कोई बात आ पड़ती, वहाँ कभी अन्यथा व्यवहार नहीं करता था। किसी बात में और लोग चाहे जो कहा करते; पर यदि राक्षस की सम्मति उसके प्रतिकूल होती, तो वह उस बात को कभी नहीं करता था। मतलब यह कि राक्षस के सामने वह और किसी की कुछ नहीं सुनता था; और उसके अनुकूल ही कार्य करता था। धनानन्द के जितने मांडलिक राजा थे, उनमें से अनेक राजाओं के मन में यह महत्वाकांक्षा उत्पन्न हो चुकी थी कि, मौका आते ही हम धनानन्द की अधीनता का जूं अपने कंधे से उतार कर फेंक देंगे, और उसका राज्य हम स्वयं अपने हस्तगत करेंगे। किन्तु साथ ही साथ उन अधीनस्थ राजाओं को इस बात का भी पूरा पूरा ज्ञान था कि, जब तक अमात्य राक्षस के हाथ में मगध राज्य की बागडोर मौजूद है, तब तक

हमारी एक भी नहीं चलेगी, और हम को अपनी यह महत्वाकांक्षा मन की मन ही में रखनी पड़ेगी। इसके शासनकाल में यदि हम अपनी इस महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने का कुछ भी प्रयत्न करेंगे, तो हमारा यह निज का राज्य भी हाथ से चला जायगा; और फिर भिक्षा मांगने की ही नौबत आवेगी। बस, यही कारण था कि, राजा धनानन्द के उन महत्वाकांक्षी मांडलिक राजाओं ने कभी भी अपना सिर ऊपर उठाने का साहस नहीं किया। उस समय यदि राक्षस के समान सुदक्ष अमात्य मगध देश के दरबार में न होता, तो राजा धनानन्द का राज्य अब तक कभी का अस्त होगया होता; और उसकी जगह पर वंग अथवा कलिंग देश का कोई राजा राज्य करने लगता। धनानन्द की जो परिस्थित थी, वह हमने अपने पाठकों से निवेदन की। अब ऐसी दशा में पाठकों को यह बात स्वयं ही सोच लेनी चाहिए कि, उस दशा में राजा धनानन्द की प्रजा उसके विषय में अपने हृदय में कितना आदरभाव रखती होगी। यह हम नहीं कह सकते कि, किसी परचक्र के आने—किसी शत्रु के धावा करने—पर राजा धनानन्द की प्रजा उनसे बाग़ी होकर शत्रुपक्ष में जा मिलती। यह प्रश्न दूसरा है। मगध देश की प्रजा ने ऐसा कभी भी न किया होता; क्योंकि स्वराज्य और स्वराज्याधिपति के विषय में उसके मन में काफी अभिमान मौजूद था। शत्रु में जा मिलने की तो बात ही न कीजिये—मगध देश की प्रजा ने स्वराज्य और स्वराजा की रक्षा के लिये जी जान तोड़ कर प्रयत्न किया होता; परन्तु वास्तव में यदि यह कहा जाय कि राजा के प्रति प्रजा का जो सच्चा प्रेम होना चाहिए, वह प्रेम धनानन्द की प्रजा में उसके प्रति नहीं था, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

धनानन्द का तो यह हाल था, अब उसके पुत्रों के विषय में इतना ही कहना काफी होगा कि जब राजा स्वयं इतना क्षीण-

चित्त और व्यसनी था, तब राजपुत्रों की बात क्या कहना—वे किसी किसी बात में अपने पिता से भी बढ़चढ़ कर थे। पिता की दाब न रहने पर पुत्रों का जो हाल होता है, उसका पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकते हैं। हाँ, मंत्रिमंडल अवश्य ही राक्षस के अधिकार में होने के कारण, अब तक निष्कलंक बना हुआ था—उस पर रक्षस का पूरा पूरा प्रभाव था। और इसी कारण मगध देश के राजा और उसकी राजसभा की कीर्ति दूर दूर तक फैली हुई थी। परन्तु राजसभा के पंडित लाग अवश्य ही राजा का मन. अपनी इच्छा के अनुसार अपने हाथ में रखने का प्रयत्न किया करते थे; और उनके इस प्रयत्न में उनको किस प्रकार की सफलता प्राप्त हुआ करती थी, इसका एक उदाहरण उपोद्घात के उत्तरार्ध में पाठकों को मिल भी चुका है।

जो भी कुछ हो, पाटलिपुत्र नगर उस समय चारों ओर विख्यात अवश्य था, और उसके विख्यात होने के लिए समुचित कारण भी उपस्थित थे। पाटलिपुत्र नगर एक बहुत ही विस्तीर्ण नगर था; और उसकी जनसंख्या भी बहुत बड़ी थी। सब प्रकार के लोगों की विस्तीर्ण जनसंख्या के साथ ही साथ भगवान् सिद्धार्थ के चलाये हुए अहिंसाधर्म के अनुयायी भी कुछ न कुछ संख्या में अवश्य ही थे। इनके सिवाय यवन, म्लेच्छ, बर्बर, हूण, किरात, शाक, चीन, गांधार, खास, पारसीक, और काम्बोल, इत्यादि भिन्न भिन्न जातियों के लोग भी व्यापार-व्यवसाय की इच्छा से उस वैभवशाली नगर में आकर बसने लगे थे। इस मगध नगरी की सम्पत्ति के विषय मे कहना ही क्या है! अपार सम्पत्ति भरी हुई थी। सुन्दर सुन्दर प्रासाद, वन-उपवन, बागबटिकाएं और नाना प्रकार के विद्यालयों से नगरी सब प्रकार सुशोभित थी। वहां के गलीकूचे और राजमार्ग, सभी उत्तम उत्तम भवनों से सुसज्जित दिखाई देते थे; अतएव नगरी का

सम्पूर्ण स्वरूप अत्यन्त मनोमोहक था। धनानन्द का प्रासाद तो मानो सम्पूर्ण ऐश्वर्यों और सौन्दर्यों का आगार ही बन रहा था। सम्पूर्ण आर्यावर्त में जितनी कुछ सुन्दर सुन्दर वस्तुएं उपलब्ध थीं, सभी उस प्रासाद में लाकर संग्रहीत की गई थीं। ऐसा जान पड़ता था कि, आर्यावर्त के सम्पूर्ण उत्तम उत्तम शिल्पज्ञों को बुला कर इस महल की एक एक वस्तु खास तौर पर तैयार कराई गई है। मतलब यह है कि, उस समय के सर्वोच्च कला-कौशल का पूरा पूरा उपयोग करके धनानन्द और उनके पूर्वजों ने अपना वह श्रीविहार नामक राज-भवन तैयार कराया था। दरबार की दशा चाहे जैसी हो; पर नगरी का बाह्य स्वरूप अत्यन्त ही सुन्दर अतएव चित्ताकर्षक था, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

नगर का सारा प्रबन्ध जिस प्रकार अत्यन्त उत्तम था, उसी प्रकार राजा की सेना का भी प्रबन्ध बहुत ही सुन्दर था। अन्य विषयों में राजा का बर्ताव चाहे जैसा स्वच्छन्द हो; परन्तु अपनी सेना के विषय में उसने प्रमाद कभी नहीं दिखलाया। सेनाधिपति के अधिकार में कभी भी हस्तक्षेप करने का उसने प्रयत्न नहीं किया। राज्यशासन में जिस प्रकार राक्षस को, उसी प्रकार सैन्य-व्यवस्था में अपने सेनापति को उसने पूरा पूरा अधिकार दे रखा था; और ये दो बातें यदि न होतीं; तो पाटलिपुत्र के सिंहासन पर इतने दिन वह राज्य भी न कर सकता।

यहां तक पाटलिपुत्र का अन्तर्बाह्य वर्णन किया गया। अब वहां के सौन्दर्य अथवा सौन्दर्य लानेवाली उपवन-वाटिकाओं इत्यादि का वर्णन न करते हुए एक ऐसे पात्र से अपने पाठकों की भेट करा देनी है कि जो हमारे इस कथानक की एक विशेष व्यक्ति है।

बिलकुल सन्ध्याकाल का समय है। पुष्पपुरी के समान विशाल नगरी के लिए यह समय अवश्य अत्यन्त भीड़ का समय है। फिर उसमें भी शहर की बड़ी बड़ी बाजारों और चौकों में तो

इस समय भीड़ का कहना ही क्या है। सब रास्ते और राजमार्ग जनसमुदाय के कारण बिलकुल प्रफुल्लित से दिखाई दे रहे हैं। चारों ओर दीपोत्सव करके अपनी अपनी दूकानें सुशोभित करने में सब लोग लगे हुए हैं; और दीपोज्वल होते ही लोग बड़ी भक्ति के साथ दीपदेवता को झुक झुक कर नमस्कार करने में लगे हैं। सन्ध्याकाल के समय मे ही विशेष कर भोगविलास की जिन सामग्रियों की अधिक खपत होती है उन सामग्रियों के बेचने वाले अपने अपने ग्राहकों को उक्त सामग्रियाँ देने में बिलकुल व्यग्र हो रहे हैं। परन्तु आज पाटलिपुत्र में, उस सन्ध्याकाल के समय मे, पुष्पवीथिका नामक मार्ग पर मालाकारों की दूकानों पर पुष्प खरीदने वालों की जो भीड़ हो रही है उसका ठिकाना नहीं है। जिसे देखिये, वही पुष्प खरीदने के लिए दौड़ा चला आ रहा है। प्रत्येक दूकान पर फूल लेनेवाले ग्राहकों की भारी भीड़ एकत्रित हो रही है। दीपोत्सव में भी आज एक खास विशेषता दिखाई दे रही थी। क्योंकि दीपावली के उत्सव की भांति सारे नगर में रोशनी की जा रही थी। प्रत्येक प्रासाद के सब से नीचे के मंजिल से ले कर बिलकुल ऊपर के सौध तक दीपोत्सव की छटा दिखाई दे रही थी। सब ऊंचे ऊंचे भवनों के वातायनों में स्त्रीपुरुषों की आज जो भीड़ दिखाई दे रही थी, उससे स्पष्ट मालूम हो रहा था कि, आज इस समय कोई न कोई मंगल-समारम्भ नगरी की भिन्न भिन्न वीथियों से निकलनेवाला है। उस समारम्भ को देखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति अत्यन्त उत्सुक दिखाई दे रहा था। प्रत्येक वातायन में युवयुवतियों और प्रत्येक वीथी में पंक्तिवार खड़े हुए लोगों की दृष्टि एक ही दिशा की ओर मुड़ी दिखाई दे रही थी। आज कौन सा ऐसा जालूस निकलनेवाला है, शायद पाठकों की जिज्ञासा प्रबल हो रही होगी। परन्तु पाठकों की वह जिज्ञासा अब शीघ्र ही, थोड़ी देर में, तृप्त होगी। तब

तक पाटलिपुत्र के अत्युत्सुक प्रेक्षकों के साथ ही साथ पाठकों को भी थोड़ा सा धैर्य रखना चाहिए। समारम्भ के समय अनेक प्रकार के लोगों के नानाविधि अनुमान भी निकलते रहते हैं। कई लोग झूठी ही गप्प उड़ा कर दर्शकों का प्रेक्षण-कौतुक अत्यन्त बढ़ा देते हैं: और जब उस गप्प के अनुसार कोई दृश्य सामने से आता हुआ दिखाई नहीं देता, तब बेचारे दर्शकों का बड़ी बुरी तरह से मनोभंग हुआ करता है। यही हाल आज पाटलिपुत्र के उस समारम्भ-दर्शनोत्सुक जनसमुदाय में भी दिखाई दे रहा था। बीच बीच में ऐसी ही कोई गप्प उड़ा देता था; और उस गप्प के अनुसार लोग कौतुक से किसी दिशा की ओर दौड़ पड़ते; और अपनी गर्दन को आगे बढ़ा बढ़ा कर दूर तक दृष्टि डालने का प्रयत्न करते; पर जब कुछ भी दिखाई नहीं देता, तब गप्प उड़ानेवाले अज्ञात व्यक्ति को मनमानी गालियां देकर अपने कौतूहल की शान्ति करते थे। इस प्रकार धीरे धीरे सारा नगर नख-शिखान्त दीपोत्सव से प्रज्वलित दिखाई देने लगा। ऊपर हमने बतलाया है कि, यह नगर उस समय गंगा और शोण इन दो नदियों के संगम के दुआबे मे बसा हुआ था। नगर के दोनों ओर बड़े बड़े विस्तृत जलप्रवाह प्रवाहित हो रहे थे। इस लिए जब दीपोत्सव का प्रतिबिम्ब-प्रकाश उस नदी-प्रवाह में दिखलाई पड़ने लगता, तब ऐसा मालूम होता कि, मानो नगर की प्रभा नगर में न समा सकने के कारण तप्त सुवर्ण की भाँति प्रवाहीरूप से सारे नगर को चारों ओर से घेर रही है। अस्तु। कुछ देर बाद नगर से कुछ दूर पर अनेक प्रकार के वाद्यों की ध्वनि सुनाई देने लगी। इससे, नगर की परिधि पर जो लोग थे, उनका कौतुक और भी अधिक बढ़ा: और वे उस ध्वनि की दिशा की ओर किसी तीव्र जलप्रवाह की भांति जाने लगे। सब इसी बात के लिए उत्सुक दिखाई दिये कि, सब से पहले उन्हीं को

वह जुलूस दिखाई पड़ जाय । क्षण क्षण पर वाद्य की ध्वनि और भी ज़ोर ज़ोर से सुनाई देने लगी । इसके साथ ही मानों दर्शकों के हृदय में भी कौतुक की अधिकाधिक वृद्धि होने लगी; और आनन्द के उद्गार उनके अन्दर से निकल निकल कर बाहर सुनाई देने लगे । वाद्यध्वनि और भी समीप ही आकर सुनाई देने लगी । इसके बाद, अन्त में, एक बड़े भारी हाथी पर मगध देश का राष्ट्रीय झंडा लोगों की दृष्टि में आने लगा । उसके पीछे अनेक प्रकार के वाद्य—कुछ हाथियों पर, कुछ घोड़ों पर, कुछ ऊँटों पर और कुछ पैदल मनुष्यों के हाथ में—दिखाई दिये; और ऐसा जान पड़ा कि, एक ही समय में वे सब वाद्य बड़े ज़ोर का आघोष कर रहे हैं । केवल इस प्रकार के वाद्यों की ही संख्या सौ सवा सौ से कम न होगी । उनके पीछे फिर पादाती, अर्थात् पैदल सेना, फिर अश्वारूढ़ सेना, फिर कुछ गजारूढ़ सेना चल रही थी । गजारूढ़ सेना के समाप्त होने पर फिर एक बहुत बड़ा गजपति दिखाई दिया, जिसकी पीठ पर हीरा और माणिकों से खचित की हुई सोने की अम्बारी में युवराज बैठा हुआ दिखाई दिया । उसके सामने ही एक अवगुंठनवती कन्यका थी । फूल फेकनेवाले दर्शकों की उस समय वहां इतनी गड़बड़ी मची कि, उनके मन में इस बात का विचार भी नहीं आया कि जो फूल हम नीचे से फेंक रहे हैं, वे हाथी के ऊपर युवराज तक पहुँचेंगे भी या नहीं । यहां से फिर आगे वह समारम्भ इतने धीरे धीरे चला कि, पाटलिपुत्र के अन्दर राजमार्ग तक पहुँचने में उसको पूरा पूरा एक पहर लगा ।

तीसरा परिच्छेद

मुरादेवी।

छले परिच्छेद में जिस समारम्भ का उल्लेख किया गया, वह समारम्भ बड़ी धूमधाम के साथ अब नगर के पास आ गया। उसे देखते ही अब लोगों के आनन्दोद्गार इतने ज़ोर ज़ोर से निकलने लगे, कि सम्पूर्ण नगर भर में एक बड़ा भारी आनन्दघोष छा गया। राजा के विषय में, उसके कितने ही कार्यों पर, प्रजा का मन चाहे जितना कलुषित हो; पर जब कोई बड़ा भारी उत्सव प्रसंग आ जाता है, तब सारी जनता राजा के विषय में अपने उक्त दुर्भाव को बिलकुल भूल जाती है; और उत्सव के आनन्द में बिलकुल तल्लीन हो जाती है। यह एक स्वाभाविक अनुभव है। क्योंकि मनुष्य मात्र उत्सव-प्रिय होता है; और फिर उसमें भी आज के समान उत्सव यदि हुआ, तब तो फिर कहना ही क्या है! धनानन्द के सेनापति ने एक सुदूरवर्ती राजा को पादाक्रान्त किया था; और आज उसी राजा की रूप-गुण-सम्पन्न कन्या से विवाह करके मगधदेश का युवराज, अपनी बधू-समेत, नगरप्रवेश कर रहा था। उसी के स्वागत का आज यह अपूर्व महोत्सव रचा गया था। अब, इससे अधिक और साधा-

रण जनता के लिए आनन्ददायक अन्य कौन महोत्सव हो सकता था? इसलिए राजा के विषय में दुर्भाव की तो बात ही जाने दीजिए—उस समय ऐसा कुछ जान पड़ता था कि, प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने निजी शत्रुओं का भी दुर्भाव भूल कर—सब शत्रु-मित्र मिल कर—उस महोत्सव के आनन्द में तल्लीन हो रहे थे। सब के नेत्र और कर्ण सिर्फ युवराज के स्वागत-समारम्भ की ओर लग रहे थे। सम्पूर्ण मार्ग में इतनी भीड़ दिखाई दे रही थी कि, मनुष्य की तो गिन्ती ही क्या—एक चींटी भी यदि उसमें घुसना चाहती, तो उसके लिए भी कठिनाई बीत रही थी। उस राज्य में—कम से कम उस नगरी में तो अवश्य ही ऐसा एक भी मनुष्य न होगा कि, जिसको इस सारे महोत्सव से आनन्द न हुआ हो। जिन जिन मार्गों से युवराज का वह समारम्भ जाने को था, उन उन सभी मार्गों में दर्शकों की भारी भीड़ एकत्रित हो रही थी। यही नहीं, बल्कि उस भीड़ में न आते हुए अपने अपने सौधों पर से और गवाक्षों से पाटलिपुत्र के सभी सुन्दर सुन्दर नेत्र और सुन्दर सुन्दर हस्तांजलियां युवराज पर अपने अपने कटाक्षों और पुष्पों की वृष्टि में बिलकुल उत्सुक हो रही थीं। बीच बीच में उन सुकोमल हाथों से कोई कोई फूल नीचे के एकत्रित लोगों में से किसी किसी के ऊपर गिर पड़ते थे। इसलिए इस प्रकार जब कोई फूल किसी पर गिर पड़ता, तब वह अत्यन्त हर्षित होकर ऊपर की ओर देखने लगता; और उसके पास खड़े हुए उसके मित्र विनोद-पूर्वक उसको युवराज की पदवी देकर उसको धन्य धन्य कहते; और फिर जिस सुन्दरी की अंजुलि से वह पुष्प गिरता, उसकी ओर सभी मिल कर देखने लगते। अवश्य ही इससे वह सुन्दरी लज्जित होकर जल्दी जल्दी से पीछे हटने लगती। इस प्रकार की अनेक विनोदपूर्ण घटनाएं मार्ग मार्ग में हो रही थीं। सच

तो यह है कि उस समय हर्ष के अतिरिक्त पाटलिपुत्र में अन्य कोई भी मनोविकार किसी ओर दिखाई नहीं देता था।

समारम्भ पाटलिपुत्र की सीमा पर आया। वहाँ आते ही सम्पूर्ण वाद्यों का घोष और भी अधिक ज़ोर से होने लगा। ऐसा कोई वाद्य उस समय बाकी नहीं था कि, जो उस समय अपनी ध्वनि करके उस आनन्दघोष को न बढ़ा रहा हो। यशो-दुंदुभी और भेरियों ने तो उस समारम्भ का मुखभाग अत्यन्त ही आघोषित कर रखा था। किसी का शब्द किसी को सुनाई नहीं पड़ सकता था। सीमा पर आते ही, युवराज और नव-बधू के नगरप्रवेश करने के पहले, वाद्यों का जो जयघोष हुआ, उस घोष में ही, खलदृष्टि से वधू-वर की रक्षा होने के निमित्त, अनेक महिषादि पशुओं का बलिदान किया गया; और उनके रक्त के प्रवाह नगर-द्वार के पास बहते हुए आये। नगरप्रवेश होने के बाद वह समारम्भ राजमार्ग पर से, एकदम सीधा, परन्तु बहुत ही धीरे धीरे, राजगृह की ओर जाने लगा। उस समय दोनों ओर के सौधों पर से सुन्दर नेत्रकटाक्षों, पुष्पों और लाजाओं की उस नवबधू और वर पर बराबर वृष्टि हो रही थी। उनमें से कितने ही पुष्प तो ऐसे बरस रहे थे कि, जो पुष्पां-जलि देनेवाली नवयुवतियों के आनन्दाश्रुओं से भींगे हुए थे। पुष्पांजलियों के साथ ही साथ कितनी ही युवतियों के मुख से धन्योद्गार और प्रौढ़ा स्त्रियों के मुख से आशीर्वचन निकल रहे थे, जिनको सुन कर बधू और वर भीतर ही भीतर आनन्द में निमग्न हो रहे थे। इस प्रकार बहुत ही धूमधाम के साथ वह समारम्भ राजद्वार तक आ पहुँचा। वहां आनन्द-प्रदर्शन के मानों सम्पूर्ण मार्ग एक साथ ही प्रकट हुए, और सब प्रकार से राजपुत्र का अभिनन्दन होने लगा।

यह सारा आनन्दोत्सव हो रहा था सही; और उपर्युक्त

रीति से, छोटे से लेकर बड़े तक, सभी लोग अनन्यचित्त से राज-पुत्र का स्वागत कर रहे थे सही; परन्तु प्रत्येक नियम का जिस प्रकार कोई न कोई अपवाद होता है, उसी प्रकार इस नियम के लिए भी एक अपवाद था। क्योंकि एक व्यक्ति राजमन्दिर में ऐसी भी मौजूद थी कि, जो आनन्दाश्रुओं के स्थान में, उसी समय, दुःखाश्रु बहा रही थी। और कह नहीं सकते, शायद उन दुःखाश्रुओं में कुछ कुछ क्रोध का भी अंश मौजूद था। अन्तःपुर की छोटी बड़ी, सभी व्यक्तियाँ, उत्सव मनाने के लिए, अन्तःपुर के सौध पर आकर खड़ी हुई थीं; और वहीं से वह सारा समारम्भ देख देख कर प्रसन्नता प्रकट कर रही थीं। परन्तु वह व्यक्ति जिसका ऊपर उल्लेख हुआ है, अन्तःपुर के अपने महल में एक ओर बैठ कर आँसू बहाती हुई शोक कर रही थी। उसका समाधान करने के लिए उसके पास प्रौढ़ वय की सिर्फ एक दासी मात्र थी। वह उसके समाधान करने का प्रयत्न कर रही थी, और यह बराबर शोक कर रही थी। यह शोक क्यों हो रहा था? पुष्पपुरी के सम्पूर्ण नरनारी तो युव-राज के विवाह के उपलक्ष में आनन्दोत्सव मना रहे थे, परन्तु यही एक स्त्री इस समय शोक में फूट फूट कर क्यों रो रही थी? पाठकों की जिज्ञासा स्वाभाविक है। सम्पूर्ण बस्ती एक ओर, और यह एक व्यक्ति एक ओर, परन्तु इसका भी कोई न कोई प्रबल कारण होना चाहिए। इसके लिए हम को उस सुन्दरी के, उस समय के शोकोद्गार और उसका समाधान करनेवाला उस दूसरी स्त्री का भाषण सुनना चाहिए। इससे हमको उक्त कारण सहज ही में मालूम हो जायगा। शोक करनेवाली सुन्दर स्त्री लगभग तीस-पैंतीस वर्ष की होगी। उसकी लाव-ण्यता स्पष्ट ही दिखाई दे रही थी। सौन्दर्य में कोई कसर नहीं थी; बल्कि विधना की सृष्टि की वह भी एक अनुपम कारी-

गरी थी—अंग-प्रत्यंग इतना सुन्दर था कि देखते ही बनता था । परन्तु शोक के मारे आज वह बिलकुल मलीन हो रही थी । सब ने तो आज महोत्सव के लिए उचित, सुन्दर सुन्दर वस्त्र परिधान किये थे; पर यह आज केवल एक मात्र श्वेत साड़ी पहने हुए थी । केश बिलकुल खुले हुए, कुछ उसके कपोल-प्रदेश पर, कुछ नेत्रों पर, कुछ कन्धों पर और बाकी सब पीठ पर, बिलकुल अस्तव्यस्त अवस्था में फैले हुए थे । शोक की आकुलता के आवेग में उसने अपना मस्तक मानो अनेक बार पृथ्वी में पटका था, और इसी कारण मस्तक धूलि से कुछ कुछ लिप्त सा दिखाई दे रहा था । इतने में उस दूसरी स्त्री के कुछ समाधानपरक वचन सुन कर वह सुन्दरी उससे कहती है, "वृन्दमाले, तेरा समाधान करना ठीक ही है, पर देख तो, जो महोत्सव मेरे पुत्र के लिए होना चाहिए था, वह एक दूसरी के पुत्र के लिए हो रहा है । इसको देख कर आज मेरे हृदय की जो दशा हो रही है, उसकी कल्पना तुझ को कैसे हो ? मैं राजकन्या हूँ, पर आज एक दासी से भी गईबीती दशा मेरी इस अन्तःपुर में हो रही है । मैं राजा किरात की कन्या हूँ । मेरे पिता पर चढ़ाई करके सेनापति ने मेरा हरण किया, और मुझको लाकर राजा के अर्पण किया । राजा ने गान्धर्वविधि से मेरे साथ विवाह किया । मेरे उदर से पुत्र उत्पन्न हुआ । इतना सब होने पर भी केवल मत्सरवश, अन्य राजपत्नियों ने मेरे विषय में षड्यंत्र रच कर मुझे वृषली बतलाया । और यह समझ कर कि, मैं अपने पुत्र को युवराज-पदवी दिलाने के लिए प्रयत्न करूंगी, उसके जन्म के विषय में ही बुरी बुरी शंकाएं उपस्थित करके, उसका घात कराया । ये बातें आज इतने वर्षों से मेरे मन में बराबर बनी हुई हैं, मैंने अपनी वैराग्नि वैसी ही जागृत रखी है—सो अब आज ऐसे मौके पर वह अग्नि बिना भड़के क्यों कर रह सकती

है ? मुझ को वृषली बतलानेवाली अपने पुत्र को युवराज पदवी दिला कर आज यह महोत्सव मनावें; और मैं 'ऐसी ही इस जगह धूल में लोटती रहूँ—इसके अतिरिक्त और आज मेरे हाथ में क्या है ? मौर्यवंश का राजा किरात मेरा पिता है—उसको उधर से तो यवनों ने और इधर से हिरण्यगुप्त ने धर दबाया, इसलिए वह यहां के सेनापति के अधीन हो गया। इसी अवसर से लाभ उठा कर ये लोग मुझ को हरण कर लाये; और अन्त में मुझ को वृषली बतला कर मेरे बच्चे को वृषलीपुत्र कायम किया; यही नहीं, बल्कि उसके जन्म के विषय में भी नाना प्रकार की शंकाएं उपस्थित कीं; और मेरे नाम और कुल को कलंक लगाया। उस दुधमुहे बच्चे को मेरी गोद से छुड़ा कर, कहीं ले जाकर, उसका घात कर डाला। वृन्दमाले—ये सारी बात क्या कभी भी मेरे चित्त से दूर हो सकती हैं ? मेरा कलेजा चाक करके जला कर ख़ाक कर दें, तब शायद भले ही मुझे ये बातें भूल जायँ—बीच में तो भूल नहीं सकतीं।"

ये उद्गार निकलने के बाद वह स्त्री और भी अधिक शोक के साथ फूट फूट कर रोने लगी; और क्रोध में आकर राजा और युवराज को भाँति भाँति की गालियाँ भी देने लगी। यह देख कर वह दूसरी स्त्री उसका समाधान करती हुई उससे कहती है, "देवी, तुम्हारा यह सारा कथन सत्य है, पर थोड़ा विचार करो—अब इन बातों से क्या होगा ? आज यदि राजा से जाकर कोई तुम्हारी ये सब बातें कह देगा, तो फिर तुम पर कैसी बीतेगी ? कैसा संकट तुम पर आवेगा ? कुछ सोचो। राजा यदि मन में लावेंगे, तो तुम को फिर पहले ही की भाँति बन्दिखाने में डाल देंगे, और फिर तुम को अनेक प्रकार से कष्ट पहुँचावेंगे। इस महोत्सव के अवसर पर यदि तुम अपने मन को नहीं रोकोगी, और यदि यह सब तुम्हारा हाल कहीं राजा के कानों तक

पहुँच जायगा, तो फिर सचमुच ही राजा एक क्षण भर के लिए भी तुम्हें क्षमा न करेंगे। राजाओं की कृपा, और अनकृपा केवल क्षुद्र क्षुद्र कारणों पर अवलम्बित रहती है। कृपा होने के लिए जिस प्रकार एक छोटा सा कारण भी पर्याप्त होता है, उसी प्रकार अनकृपा होने के लिए भी किसी बड़े भारी कारण की ही आवश्यकता नहीं होती। किसी क्षुद्र कारण पर से ही राजा नाराज़ भी हो सकते हैं—फिर, तुम्हारा बुरा चेतनेवालों को भी कुछ कमी नहीं है! सम्भव है, इस क्षण में भी तुम्हारी चुगली हो रही हो—तुम्हारी तरफ से फिर राजा का मन फिरन्ट करने के लिए शायद कोई उनके कान में कह रहा हो कि, तुम इस महोत्सव में शामिल नहीं हो, एक ओर बैठ कर इस मंगल अवसर पर अमंगल रोदन ठान रही हो—मुमकिन है, कोई इसी प्रकार से तुम्हारी शिकायत करके तुम पर फिर से कोई आपत्ति लाने का प्रयत्न कर रहा हो; इसलिए तुम इस समय शान्त रहो। जो बात हो गई, उसके विषय में वृथा शोक करने से क्या लाभ है? उससे लाभ तो कुछ होगा नहीं; और उलटे, बिना कारण, तुम पर कोई न कोई भयंकर संकट अवश्य आ सकता है। इसलिए तुम मेरी बात मानो; और इस समय शान्त ही रहो। मेरे साथ चलो। जहाँ अन्य सब महिलाएं बैठी हैं, वहीं तुम भी चल कर बैठो। इस शुभ काल में तुम ऐसा मौका मत लाओ कि, जिससे कोई कहे कि, हम अकेली दोनों यहां बैठी हुई इस आनन्द-अवसर पर शोक कर रही हैं।"

वृन्दमाला ने बहुत कुछ समझाया; पर मुरादेवी के ध्यान में एक बात भी नहीं आई। उसका क्रोध बढ़ता ही गया। इस लिए वह फिर उसी क्रोध के आवेश में उससे बोली, "तू क्या कहती है? मुझ पर और कौन सा ऐसा संकट का समय आ सकता है? सब से अधिक संकट का समय मौत है; पर वह

भी यदि आ जावे, तो मैं अब डर नहीं सकती। मेरा कलेजा बिलकुल ख़ाक हो गया है। जब से मेरे बच्चे का घात किया गया, एक दिन भी ऐसा नहीं गया, जिस दिन मुझे उसकी याद न आई हो, और मेरा हृदय उसके दुःख से सन्तप्त न हुआ हो। और अब, उससे अधिक और कौन सा संकट का समय आ सकता है? और यदि ऐसा कोई मौका आ भी जावे, तो आनन्दपूर्वक मैं उसका स्वागत करूँगी—एक बार इस दुःखमय संसार से छुटकारा तो पा जाऊँगी। बारबार जो मेरे मन के सामने वही वही भय उपस्थित किया जाता है, उससे मैं एक बार मुक्ति पा जाऊँगी। जो कुछ होना हो, एकबारगी हो जाने दे। उनसे कहो कि, अब मेरा वध कर डालें। मुझे सूली पर चढ़ा दें। जा—यदि और किसी ने राजा से मेरा यह वृत्तान्त न बतलाया हो, तो तू ही जाकर बतला दे। जा। अब मुझे इसका कुछ भी भय नहीं रहा है। मैं मृत्यु का आह्वान ही कर रही हूँ। पर वह भी दुष्ट तो नहीं आ रही है—मुझ को डर डर कर और दूर ही दूर भाग रही है।"

यह भाषण सुन कर वृन्दमाला बड़ी गड़बड़ी में पड़ी। उसके कुछ ध्यान ही में न आने लगा कि, अब वह क्या कहे। मुरादेवी की बकवाद, उसका क्रोध और परिताप, बराबर बढ़ रहा था। वह बार बार अपने मन में कह रही थी कि, देखो, हमारे बच्चे का शत्रुओं ने घात कर डाला; और यदि उसका घात न हुआ होता, तो आज वह इतने वर्ष का हुआ होता। हम पर यदि व्यर्थ के लिए कलंक न लगाया गया होता, तो आज दिन हम पटरानी के पद पर होतीं; और हमारा लड़का युवराज बना होता। परन्तु ये सब बातें आज न जाने कहां की कहां चली गईं; और आज हम इस दुर्दशा में पड़ कर ऐसा दुःख उठा रही हैं। बस, इसी प्रकार के विचार

उसके मन में आ रहे थे; और बीच-बीच में इसी प्रकार के उद्गार भी उसके मुहँ से निकलते जाते थे। ऐसी दशा में अब उसके मन का समाधान कोई क्या करे? उस समय तो उसका सब से बड़ा समाधान यही था कि, उसको चुपके से बैठे हुए इसी प्रकार शोक करने दिया जाय। बस, अन्त में यही सोच कर वृन्दमाला अपनी स्वामिनी के सामने चुपचाप बैठी रही।

कुछ देर शोक करने के बाद मुरादेवी एकदम वृन्दमाला की ओर मुड़ कर बोली, "वृन्दमाले, जो बात हो गई, सो हो गई—मैं अब तक चुप बैठी रही, यह भी मैंने एक बड़ी भारी मूर्खता की। पर अब मैं चुप नहीं बैठूंगी। जिसको आज इतने महोत्सव के साथ युवराज-पदवी दे रहे हैं, उसको मैं पाटलिपुत्र के राज्य का उपभोग कभी नहीं करने दूंगी। बस, यह बात निश्चित हो चुकी। मै यदि सच्ची राज-पुत्री होऊंगी, तो अब मैं आकाश-पाताल एक करके हज़ारों विघ्न उपस्थित करूंगी; और यदि मौका मिल जायगा, तो इस राजपुत्र का घात करने में भी नहीं चूकूंगी। मैं बड़ी मूर्ख हूं, जो आज तक चुप बैठी रही। मैं राजा की प्रसन्नता को फिर अपने ऊपर खींच लूंगी। बलात् उसकी कृपा सम्पादन करूंगी। राजा ने जिस समय मेरे साथ विवाह किया, मैं बिलकुल अनभिज्ञ—मुग्धा—थी। कृत्रिमता कैसी होती है, सो मुझे कुछ भी मालूम नहीं थी। पर अब मैं वैसी नहीं रह गई हूं। अब तो तू मुझे नीचे से ऊपर तक बिलकुल कृत्रिमतामय समझ। इतने वर्ष मैं चुप बैठी रही, इसका अब मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। अस्तु। जो बात होगई, सो होगई। किरात राजा की कन्या मैं मुरा—यदि फिर से आर्यपुत्र की पूर्ण कृपा सम्पादन करके उनके चित्त की स्वामिनी न बन गई—और सो भी सिर्फ चार मास के अन्दर—तो तुझ को साथ लेकर हिमाचल के अरण्य में तेरे देखते देखते

चिता लगा कर भस्म हो जाऊंगी। इस बात में अब तू बिलकुल शंका मत कर। पर ऐसा मौका ही न आने पावेगा—मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सारी बातें सत्य कर दिखलाऊंगी। आर्यपुत्र की प्रीति पुनः सम्पादन करूंगी; और अपने मन के अनुसार ही उनसे सब बातें करवाऊंगी, इस बात का मुझे पूर्ण विश्वास है। इन राजमहिलाओं में से एक के भी पुत्र को मैं मगध देश का राज्य प्राप्त नहीं होने दूंगी, किरात वंश के धनुर्धर को यहां लाकर महाराज के द्वारा उसका राजतिलक करवाऊंगी। वे यदि अपने बाद खुशी से उसे राजगद्दी नहीं देने कहेंगे, तो उसके हाथ से उनको भी सिंहासन से हटवा दूंगी; और फिर उसको मगधराज बनाऊंगी। मेरे शरीर में आज कोई दूसरा ही संचार कर गया है, यह तू अच्छी तरह समझ ले। मैं अब पहले की मुरा नहीं हूँ। जिन राजमहिलाओं ने मुझ पर वृषलीपन का आरोप किया है; और कपट के साथ मेरे बच्चे का वध करा कर इतने वर्षों से मुझे कष्ट में डाल रखा है, उन सभी राजमहिलाओं को मैं अब वृषली बना कर रहूंगी। उनको दासियों से भी अधिक नीच दासी बनाऊंगी। बस, इससे अधिक इस समय मैं और कुछ नहीं कह सकती। चल, अब मैं तेरे साथ चलती हूं। अब मैं अपने शोक को अपने अन्दर दबाए देती हूं, क्रोध को भी बिदा करती हूं, दुःख से म्लान होनेवाले इस मुख को मन्द मुसक्यान से सुशोभित करती हूं। अब मेरी यह जिह्वा अनर्गल गालियां नहीं बकेगी; किन्तु नाना प्रकार के अभिनन्दन-प्रदर्शक नागरिक भाषण करेगी। इस प्रकार ऊपर से मैं सब प्रकार से सब को मोहित करूंगी; पर अन्तर में क्रोध अवश्य जागृत रखूंगी। और उसमें कपट-विष जितना मिलाते बनेगा, मिलाऊंगी; और जब उसको बाहर निकालने लगूंगी, तब उसको मधुर भाषण से ऐसा आच्छादित करूंगी कि, सुनने वाला मोहित हो जावे। आज

तक तेरी यह मुरादेवी बिलकुल निष्कृत्रिम, निष्कपट और मुग्धा थी; पर अब वह नहीं रही। अब यह दूसरी मुरादेवी है। अब यह अत्यन्त कपटपटु बनेगी—अब यह ऐसी बन जायगी कि, अपने स्वार्थसाधन के अतिरिक्त इसकी दृष्टि और किसी ओर भी नहीं रहेगी—अब इसका प्रत्येक भाषण, प्रत्येक चलन, प्रत्येक चलन, प्रत्येक वीक्षण, प्रत्येक हावभाव, स्वार्थ-साधन के लिए ही होगा, अपने वैरियों का नाश करने के लिए यह आर्यपुत्र को मिला लेगी, उनको धोखे में रखेगी; और प्रत्येक बात अपने मन के अनुकूल ही उनसे करावेगी—अब इसी प्रकार की अपनी यह स्वामिनी यदि तुझ को पसन्द हो, तो तू उसके पास रह—अन्यथा अन्य जनों की भांति तू भी उसकी वैरिन बन। देख, तू अब यदि मेरी सेवा में रहेगी, तो तुझ को ऐसे भी अनेक मौके आवेंगे कि, जब कोई न कोई भारी दुष्कार्य और अत्याचारपूर्ण व्यवहार भी करने पड़ेंगे। तू उनको करने के लिए तैयार हो, तो मेरे पास रह। देख, सोचकर देख ले।"

यह भाषण करते समय सचमुच ही मुरादेवी की चेष्टा में एकदम बहुत ही विचित्र अन्तर पड़ गया, जिसको देख कर उसकी परिचारिका वृन्दमाला भी बहुत ही चमत्कृत हुई; और बड़े अचम्भे के साथ उसकी ओर देखने लगी। उसने सोचा कि, जैसे मंथरा के शरीर में कलि का संचार हुआ था, वैसे ही उसकी स्वामिनी के शरीर में भी किसी न किसी ऐसी ही कलि-शक्ति का संचार हो गया है।

चौथा परिच्छेद

बुद्धभिक्षु ।

आर्य चाणक्य अपने आश्रम से चल कर कुछ दिन के बाद मगध देश में आ पहुँचे। उनका यह विचार था कि, अपने शिष्य के द्वारा यदि मगध देश को विजय कराना है, तो सेना लाकर धनानन्द का पराभव कराना बिलकुल असम्भव है। क्योंकि मगध देश का सेनापति और उसकी सेना बहुत भारी है, हमारे शिष्य की सेना में भिल्ल, किरात, गोंड, खोंड, इत्यादि लोगों की ही विशेष भरती है, उनके पास धनुर्बाण, परशु, करवाल, इत्यादि हथियारों के अतिरिक्त और कोई हथियार भी नहीं हैं। संख्या भी उनकी बहुत ही कम है। ऐसी दशा में व्यर्थ के लिए वह सेना लाकर मगध देश पर चढ़ाई करना मानो अपने हाथों ही अपना सत्यानाश करना है। इसलिए हम को पहले मगध देश में स्वयं जाकर यह देखना चाहिए कि वहां की अन्तर्व्यवस्था में हम भेद्-नीति से कहां तक काम ले सकते हैं। अल्पबली मनुष्य को यदि किसी इमारत को ढहाना हो, तो उस पर बाहर से प्रहार करने के पहले, उसकी नीवँ को पहले पोला करने के प्रयत्न में लगना चाहिए। ऐसा किये बिना अभीष्ट उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए पहले हम को धनानन्द के राज्य पर बाहर से आक्रमण न करके उसकी नीवँ को पोला करके उसके

भीतर भेद करना चाहिए। उसके जो आधारस्तम्भ हों, उन्हीं को निकाल डालना चाहिए। उस पर जितने मनुष्यों का किसी कारण से क्रोध हो, उन सब को अपने वश में कर लेना चाहिए। और इस प्रकार जब भीतर भीतर से उसको पोला कर लें, तब फिर बाहर से उस पर आघात करें, इससे तुरन्त ही यह इमारत ढह गिरेगी; और बिलकुल चकनाचूर हो जायगी। इस लिए इस समय हम को जो बुद्धिपराक्रम दिखलाना है, वह इस बात के खोज करने में दिखलाना चाहिए कि, धनानन्द के मर्मस्थान कौन कौन से हैं। इसमें जब हम को सफलता प्राप्त हो जाय, अर्थात् जब धनानन्द के सब मर्मस्थल हमारे हाथ आ जायँ, तब हम फिर उस पर ऊपर से आघात करें; और तब हम को उसे बिलकुल जर्जर कर डालने में कुछ कठिनाई भी नहीं पड़ेगी। बस, यही सब बातें सोच-विचार करके चाणक्य ने इस समय पाटलिपुत्र की ओर प्रयाण किया था। उस समय उनके मन में एक बार यह शंका भी आई कि, हम पाटलिपुत्र को जा तो रहे हैं; पर शायद हमें कोई वहां पहचान न ले; पर फिर उन्होंने सोचा कि, राज-सभा में हम सिर्फ एक ही बार गये हैं, और हम को गये भी लगभग तीन वर्ष हो गये—ऐसी दशा में हमको वहां कौन पहचान सकेगा? और यदि, मान लो, कि किसी ने पहचान भी लिया, तो फिर देखा जायगा। निस्सन्देह, कार्यसाधक पुरुष को बहुत दूर तक दृष्टि रख कर अपना कार्य प्रारम्भ करना चाहिए, परन्तु यह भी नहीं कि, नाना प्रकार की कठिनाइयां पहले ही से अपने सामने कल्पित करके एक ऐसा संकटमय चित्र अपने सामने उपस्थित करे कि, जिसके कारण अपने कार्य के उपक्रम करने का ही उसे साहस न हो। इसलिए बुद्धिमान पुरुष का कर्तव्य इतना ही है कि, वह साधारण तौर से सब कठिनाइयों का

विचार करके एक बार कार्य में हाथ लगा दे; और फिर ज्यों ज्यों कठिनाइयां आती जावें, त्यों त्यों उनका निवारण भी करता जाय—किंबहुना साहसी पुरुष के सामने की कठिनाइयां प्रायः आप ही आप दूर भी होती जाती है, इसके लिए उसको कोई विशेष प्रयास नही करना पड़ता। बस, इसी प्रकार का सारा विचार करके चाणक्य ने पाटलिपुत्र में कदम रखा।

पाटलिपुत्र में पहुँचते ही पहले पहल उनके मन में एक बड़ा भारी प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि, अब यहां आकर हम उतरें कहां? अच्छा, मान लो, किसी ब्राह्मण के घर जाकर उतरें, तो यहां हमारी किसी से पहचान भी नहीं है, इसलिए पहले पहल जहाँ कहीं स्थान मिल जाय, वहीं जाकर उतरने का उन्होंने विचार किया। इसी विचार में वे शोणनद के किनारे किनारे चले आ रहे थे कि इतने में सामने से आते हुए एक बुद्धभिक्षु की उन पर दृष्टि पड़ी। भिक्षु ने उनकी चेष्टा पर से तुरन्त ही ताड़ लिया कि, यह ब्राह्मण इस नगर में बिलकुल नवागत सा जान पड़ता है, और कहीं न कहीं ठहरने के विचार में चला आ रहा है। उस समय बुद्धभिक्षुओं का प्रचार मगध देश में थोड़ा थोड़ा होने लगा था, और ब्राह्मण तथा क्षत्रियों को वे अपने मत में लाने का प्रयत्न भी कर रहे थे। परन्तु उनके इस प्रयत्न को कोई विशेष उग्र अथवा भयप्रद स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ था—अर्थात् लोगों का ऐसा ख़याल नहीं हुआ था कि, इनका यह प्रयत्न हमारे लिए कोई बड़ा भारी अरिष्ट है। फिर भी कट्टर ब्राह्मणधर्म को माननेवाले लोग अवश्य ही हृदय से उनसे घृणा रखते थे। इसलिए उक्त बुद्धभिक्षु को देखते ही चाणक्य के मस्तक में भी सिकुड़े पड़ गए, और इधर वह बुद्ध-भिक्षु हास्ययुक्त मुद्रा से "नमो अरिहंताणम्" कहते हुए उनके पास आया। उस समय चाणक्य की चेष्टा और भी विशेष

तिरस्कारयुक्त दिखाई दी, जिसे देख कर बुद्ध-भिक्षु को और भी विशेष हँसी आई, और वह चाणक्य से बोला, "ब्राह्मणश्रेष्ठ, आप मेरा तिरस्कार करते हैं, यह मैं जानता हूँ, परन्तु भगवान् बुद्धदेव की हमारे लिए यह आज्ञा है कि, जो तुम्हारा तिरस्कार करे, उसी का तुम सत्कार करो। आप इस नगरी के लिए एक नवागत पुरुष हैं, और यह बात आपकी चेष्टा से स्पष्ट दिखाई दे रही है। ऐसी दशा में यदि आप हमारे साथ चलें, तो मेरे विहार के समीप ही जो कैलासनाथ का मन्दिर है; वहां मैं आपके ठहरने का सारा प्रबन्ध कर दूंगा। आप यह न सोचें कि, मैं किसी अन्य भाव से आपको वहां लिये चलता हूँ। नहीं। आपको साथ ले चलने में मेरा और कोई भी स्वार्थ नहीं है। मैं सिर्फ भगवान् बुद्ध की आज्ञा का पालक हूँ कि, जिनका यह उपदेश है कि, संसार में किसी से भी घृणा न करो, और सब के साथ बराबर उपकार करो।"

बुद्धभिक्षु एक वृद्ध पुरुष था, और उसका उपर्युक्त कथन भी प्रेम से भरा हुआ था। इसके सिवाय चाणक्य को भी कहीं न कहीं सहारे का कोई स्थान चाहिए था। इसलिए उतनी देर के लिए बुद्धभिक्षु-विषयक अपना तिरस्कार भूल कर उन्होंने उसके आमंत्रण को स्वीकार कर लिया।

बुद्धभिक्षु अपने विहार के पास उनको ले गया, और वहीं पास के एक मन्दिर में उनका सारा प्रबन्ध कर दिया।

चाणक्य ने बुद्धभिक्षु का यह सारा स्वागत बड़े कष्ट के साथ स्वीकार किया। और उनको बड़ा पश्चात्ताप होता रहा। पर उसी रात को वहां एक ऐसा चमत्कार हुआ कि जिसके कारण उनका वह सारा पश्चात्ताप न जाने कहां चला गया, और उलटे उनको बड़ा आनन्द हुआ।

अभी हमने बतलाया है कि, इस समय उत्तर-भारत में बौद्ध

धर्म का प्रचार बड़े वेग के साथ नहीं हो रहा था। साथ ही साथ उक्त धर्म के विरुद्ध, कोई बहुत प्रयत्न करके, उसको नीचा दिखाने का भी उद्योग नहीं हो रहा था। अर्थात् उसके प्रचार में बाधा उपस्थित करनेवाले लोग भी आगे नहीं बढ़े थे। कभी कभी एक आध ब्राह्मण, कुछ थोड़े क्षत्रिय, थोड़े से वैश्य, उससे भी कम शूद्र लोग उक्त धर्म की ओर आकर्षित हो जाते थे। यह नहीं कह सकते कि, बौद्ध भिक्षु लोग अपने प्रयत्नों में कुछ त्रुटि कर रहे थे—नहीं, वे लोग अपनी ओर से बहुत काफी कोशिश कर रहे थे; परन्तु उनकी वह कोशिश अभी ऐसी नहीं थी कि जो ब्राह्मणधर्मी राजाओं अथवा स्वयं ब्राह्मण आचार्यों, अथवा कुलपतियों की निगाह में चढ़ सकती। बल्कि इन लोगों का उस समय यही ख़याल था कि, यह एक पागलपन का मत है, और कुछ सनकी मनुष्य इसकी धुन में पड़े हैं—पड़े रहने दो—इससे हमारा क्या जाता है! बस, यही कह कर वे लोग बौद्ध लोगों के प्रयत्नों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। परन्तु जो कट्टर ब्राह्मण थे, वे अवश्य ही उनका पूर्ण तिरस्कार करते थे, यही नहीं, बल्कि उनका नाम लेना तक वे पाप समझते थे। परन्तु अभी तक उनका भी ऐसा ख़याल नहीं हुआ था कि, यह कोई ऐसा खतरनाक मज़हब है कि, जिसका समूल सत्यानाश इसी दम कर देना चाहिए। अस्तु। पाटलिपुत्र में आते ही प्रथमतः बुद्धभिक्षु के मिलने और उसी के द्वारा आश्रय पाने पर चाणक्य को जो पश्चात्ताप हुआ, उसका कारण यही उपर्युक्त घृणा थी। परन्तु फिर उन्होंने सोचा कि यदि हम को गुप्त रह कर अपना कार्य सिद्ध करना है, तो इस बात का विचार करना व्यर्थ है कि, हम अमुक व्यक्ति से मदद लेंगे और अमुक से नहीं लेंगे। इसके सिवाय यह बुद्धभिक्षु हम से यह आग्रह भी नहीं करता कि,

तुम हमारे विहार में ही आकर रहो, बल्कि श्रीकैलासनाथ के मन्दिर में हमारे उतरने का सारा प्रबन्ध कर रहा है, इसलिए अब ऐसी दशा में, सिर्फ उसके साथ जाकर, उस मन्दिर में उतरने में हमारी क्या हानि है? इस प्रकार का सम्पूर्ण विचार करके चाणक्य ने उसके आमंत्रण का स्वीकार किया था।

श्रीकैलासनाथ का वह मन्दिर बहुत ही विशाल और रमणीय था। उसके आसपास एक बड़ी भारी फुलवाड़ी थी, जिसका नाम "पुष्पवाटिका" था। इस पुष्पवाटिका में अनेक जगह और छोटे छोटे देवालय थे, उन सब देवालयों के आगे एक एक छोटी पुष्करणी बनी हुई थी, जिसके पास ब्राह्मणों के नित्यनैमित्तिक पवित्र कर्मों के करने योग्य सुन्दर सुन्दर स्थान भी बने हुए थे। हिरण्यवती नामक एक छोटी सी नदी भी उसी ओर, पुष्पपुरी के एक पार्श्व पर, बह रही थी; और उसी का पानी नलों के द्वारा लाकर उस पुष्पवाटिका की पुष्करणियों में छोड़ा गया था। इसके सिवाय उस पुष्पवाटिका के एक ओर एक कृत्रिम वन भी लगाया गया था, जिसमें दर्भ इत्यादि जंगली पौधे उगाये गये थे। सारांश यह कि, कर्मनिष्ठ और तपोनिष्ठ ब्राह्मणों के लिए अपने धार्मिक कृत्य करने को जैसे एकान्त-स्थान की आवश्यकता थी, वैसा उत्तम स्थान वहां मौजूद था। इसलिए चाणक्य अब बौद्धभिक्षु से बिदा होकर उस कैलासनाथ के मन्दिर में आये और वहां की वह सारी रमणीयता देखकर उनको बड़ा आनन्द हुआ।

वहां पहुँच कर उन्होंने अपने सब आह्निक कर्म किये, और इतने में उस भिक्षु के यहां से यह सन्देशा आया कि, आप के भोजन के लिए क्या प्रबन्ध किया जाय—सीधा-सामग्री भेजी जाय, अथवा फल-मूल इत्यादि का प्रबन्ध किया जाय। यह सन्देश सुनकर चाणक्य देव बड़े संकोच में पड़े कि, अब इस

महाशय का उपकार कहां तक ग्रहण किया जाय; और कहां तक न ग्रहण किया जाय। परन्तु अन्त में कुछ सोच-विचार कर उन्होंने उसी आदमी से यह सन्देशा कहला भेजा कि, अच्छा, मैं अपने नित्यकृत्य से निपट कर स्वयं आपसे आकर मिलूंगा; और तब जो कुछ कहना होगा, कहूँगा। यह सन्देशा पाते ही बौद्धभिक्षु अपने मन में समझ गया कि, यह ब्राह्मण हम से भोजन-सामग्री लेने में बहुत संकोच कर रहा है। अस्तु। जो कुछ हो। उसने सोचा कि, यहां आने पर उसको समझायें-बुझायेंगे। कुछ देर बाद चाणक्य भी अपने नित्यकर्मों से फुरसत पा गये, और अब इसी विचार में थे कि, आगे अब क्या किया जाय कि, इतने में उस भिक्षु का एक आदमी फिर आकर उपस्थित हुआ; और यह निवेदन किया कि, "ब्रह्मर्षि महाराज, अब यदि आप अपने आह्निक कर्मों से अवकाश पा गये हों, तो भिक्षु जी आपकी प्रतीक्षा में हैं।" यह दूसरा सन्देशा तुरन्त ही पाकर चाणक्य को पहले पहल बड़ा अचम्भा हुआ; और उन्होंने समझा कि, न जाने क्यों भिक्षु हमारे भोजन के लिए इतनी जल्दी मचा रहा है; और यह सोचकर वे उसको कुछ तिरस्कारपूर्ण उत्तर देनेवाले थे; पर फिर तुरन्त ही उन्होंने सोचा कि, हम इस नगर में अपने एक विशेष कार्य के लिए आये हैं, और यदि वह कार्य हम को निर्विघ्नरूप से सिद्ध करना है, तो सब से मिलकर ही हमें अपना कार्य निकालना चाहिए; क्योंकि न जाने किस समय किस व्यक्ति का हम को किस प्रकार से उपयोग हो जाय। सच तो यह है कि कार्यसाधक मनुष्य को अत्यन्त नीच व्यक्ति से लेकर अत्यन्त उच्च व्यक्ति तक—सब का स्नेह सम्पादन करना चाहिए। घास के एक डंठल से लेकर सब वस्तुओं का यथावकाश संग्रह करना चाहिए। इस बात का विचार नहीं करना चाहिए कि, अमुक वस्तु अच्छी अथवा

संग्रहणीय है; और अमुक वस्तु त्याज्य अथवा तिरस्करणीय है। सब वस्तुओं का, और सब मनुष्यों का, यथाकाल और यथावकाश उपयोग होता है। इस प्रकार चाणक्य ने नीति-विचार करके उस समय अपनी जिह्वा का नियंत्रण किया; और उस सन्देशा लानेवाले मनुष्य से कहा, "मैं शीघ्र ही आता हूँ, तुम चलो।"

उपर्युक्त विचार मन में आने के बाद चाणक्य कुछ ही समय बाद उस भिक्षु के पास गये।

बुद्धभिक्षु उनकी प्रतीक्षा कर ही रहा था। चाणक्य के आते ही उसने उनको उत्थापन देकर नमस्कारपूर्वक उनका स्वागत किया, और फिर उपाहार के लिए प्रश्न किया। उस प्रश्न को सुनते ही चाणक्य को फिर कुछ संकोच मालूम हुआ; और वे उससे बोले, "भिक्षो, आप यदि मुझे यह बतला दें कि, धान्यादि पदार्थ कहां मिलते हैं, अथवा पण्यवीथिका दिखलाने के लिए कोई अपना आदमी हमारे साथ दे दें, तो बड़ा उपकार हो—मेरे पास द्रव्य मौजूद है; मैं उस द्रव्यव्यय से अपनी भोजन-सामग्री लाकर अपना प्रबन्ध कर लूंगा। आप इसके लिए कोई कष्ट करें। आपने अब तक मुझे जो सहायता दी है, उसअपने ही ऋणभार से मैं दबा हुआ हूँ; और आपके समान ितो जब का ऋण ऐसा है कि, जिससे मैं कभी उऋण भी नहीं हो सकए—अब क्योंकि आपको प्रत्युपकार की कभी आवश्यकता ाहिए। अब उपकार ऐसे मनुष्यों का लेना चाहिए कि जिसके ? अब तक हम पड़ने पर स्वयं भी प्रत्युपकार कर सके। इसलिए ; परन्तु अब हम

इतना सुनकर वह भिक्षु कुछ हँसा; औरााना है, इसलिए से बोलाः— चाहिए। सारांश

"ब्राह्मणश्रेष्ठ, आपका कथन बिलकुल सत्य है, हम को अपना दान चाहे जिससे मिलता हो, ब्राह्मण को उसकी बुद्धभिक्षु है, इस

फिराना नहीं चाहिए। इसके सिवाय मैं आपसे यह भी आग्रह नहीं करता कि, आप पका हुआ भोजन ग्रहण करें—भगवान् गौतम का हम को आदेश है कि, अतिथि का सत्कार अवश्य करो—इससे बढ़कर और कोई महत्व का कार्य नहीं। इसके सिवाय आप आज बिलकुल नवीन यहां पर आये हैं, अपराह्न-काल हो चुका है। इसलिए फल-मूलादि का आहार आप अवश्य करें। कल फिर जैसी आपकी इच्छा हो, कीजिएगा, मुझे कोई आपत्ति नहीं। मेरी प्रार्थना सिर्फ़ इतनी ही है कि, यावत्काल-पर्यन्त आप इस पाटलिपुत्र में रहेंगे, तावत्काल-पर्यन्त जिस प्रकार की सहायता मुझ से हो सकेगी, मैं आपको देने को तैयार रहूँगा। आप मुझ से किसी प्रकार का संकोच न करें। भगवान् बुद्धदेव का शिष्यत्व स्वीकार करने से क्या हमारी गणना अधमों में होगी ?"

भिक्षु का यह भाषण सुन कर चाणक्य फिर आगे कुछ भी न कह सके। उसने लाकर कुछ फल-मूलादि उनके सामने रखे। चाणक्य ने भी यथारुचि उससे ग्रहण कर लिया; और पुष्करिणी के तट पर जाकर फलाहार किया। इसके बाद फिर तिष्ठ इस विचार में लगे कि, अब आगे क्या करना चाहिए। सोचाने अस्तमान् का समय आया। उस सम्पूर्ण मन्दिर में, आये हैं,न्न भिन्न छोटे देवालयों में, दीपक लगाये गये। पक्षीगण है, तो सबने घोंसलों की ओर आने लगे। सायङ्काल का समय क्योंकि न आक्य अपनी सायंसंध्या की तैयारी में लगे। सायं-से उपयोग र्धक हो चुकने के बाद चाणक्य अब इस विचार को अत्यन्त नीच्पाटलिपुत्र में कुछ इसी हेतु से नहीं आया हूँ कि, का स्नेह सम्पा‹ करते हुए ही अपना उदरनिर्वाह करता रहूँ; सब वस्तुओं क‹बड़े महत्वपूर्ण काम में लगना है। इसलिए इस का विचार नहीं चलेगा। वास्तव में पहले हम को इस बात का

पता लगाना चाहिए कि, राजा धनानन्द के मर्मस्थान कौन हैं; और उसके घर में भेद करने के लिए कहीं कोई स्थान है, अथवा नहीं। इसी प्रकार हम को यह भी देखना है कि किस उपाय से हम, लोगों का मन उसके विरुद्ध कर सकेंगे। इस लिए अब किसी के आतिथ्य इत्यादि में पड़े रहने से कोई लाभ नहीं है। गुरुपुत्र को मृतसञ्जीवनी का लाभ वास्तव में शुक्राचार्य के पेट में पैठने ही से हुआ था। इसलिए अब हमको भी मगध देश के लोगों में मिलजुल कर—उनके पेट में पैठकर—यह ज्ञान प्राप्त करना चाहिए कि, उनकी भीतरी बातें क्या क्या और किस किस प्रकार की हैं। ऐसा करने से ही हमको अपनी अभीष्ट जानकारी प्राप्त होगी; और हम अपने अगले व्यूह की रचना कर सकेंगे। इसलिए अब हमको ख़बरें लेना शुरू करना चाहिए। आओ, पहले इस बुद्धभिक्षु से ही इस कार्य का प्रारम्भ करें। इस बुद्धभिक्षु के मन में भी यह इच्छा अवश्य ही होगी कि, इसके धर्म का प्रचार राजकुल में भी हो। ऐसी दशा में राजकुल की सब बातों के जानने का इसने भी अवश्य ही प्रयत्न किया होगा। इसलिए अब चार दिन के लिए—नहीं, नहीं, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नन्दवंश का समूल उच्छेद करके यदि अपने प्रिय शिष्य को मगधदेश के राजसिंहासन पर बैठाना है, तो जब तक यह कार्य पूरा पूरा सिद्ध न हो जाय, तब तक के लिए—अब अपना यह सारा कर्मकाण्ड एक ओर रख देना चाहिए। अब हमको क्षात्रधर्म का आचरण करना है—निस्संदेह अब तक हम ने इस धर्म के योग्य कोई कार्य नहीं किये हैं; परन्तु अब हम को अपने शिष्य के द्वारा उसका आचरण कराना है, इसलिए पहले हम को भी उनका अभ्यास अब करना चाहिए। सारांश यह है कि, जब तक यह कार्य सिद्ध न हो जावे, हम को अपना ब्राह्मणधर्म कुछ कम कर देना चाहिए। यह बुद्धभिक्षु है, इस

से मत बोलो, इसके साथ कोई व्यवहार न करो, इत्यादि बातों से अब काम नहीं चलेगा। इसलिए अब हम को यहाँ से चल कर उसी के पास बैठना चाहिए, और उससे कुछ गपशप करना चाहिए। बहुत सम्भव है कि, उस गपशप में ही कोई हमारे मतलब की बात निकल आवे। बस, यह सोचते हुए आप वहाँ से उठ कर उस भिक्षु के आश्रम में आये। भिक्षु ने आगत स्वागत करके उनको बैठाया। इसके बाद चाणक्य उससे राजसभा, अमात्यगण, इत्यादि के विषय में जानकारी प्राप्त करने लगे। भिक्षु ने समझा कि, ब्राह्मण राजसभा में अपना प्रवेश करना चाहता होगा; और यह जानने की इसकी इच्छा होगी कि, राज-दरबार में किस प्रकार से इसका आदर-सत्कार होगा, और इसी कारण यह ये सब बातें पूछता होगा। इसलिए उसने भी, अपने इसी ख़्याल के अनुसार, चाणक्य को वहाँ का सब वृत्तान्त बतलाया; और साथ ही साथ यह भी सूचित किया कि, ऐसे अनेक धनाढ्य श्रेष्ठी, कि जिनका राजसभा में कई अमात्यों पर खासा प्रभाव है, गुप्तरूप से मेरे शिष्य बन चुके हैं। इसलिए उनके द्वारा मैं राजसभा में आपका प्रवेश बहुत ही सहज में करा दूंगा। चाणक्य भी यही चाहते थे कि, उनका असली उद्देश्य किसी को मालूम न हो, इसलिए उन्होंने भी भिक्षु से यही कहा कि, यदि आप ऐसा कर देंगे, तब तो हमारा सारा कार्य बन जायगा। इस प्रकार बातचीत करके अब चाणक्य, रात हो जाने के कारण, अपने स्थान को आने के लिए वहां से उठने ही वाले थे कि, इतने में भिक्षु ने निवेदन किया, "इतनी जल्दी क्यों? अभी और बैठिये, अब मुझे इस समय अवकाश है। कोई काम-धाम नहीं। कृपया अपना और कुछ वृत्तान्त मुझे बतलाइये।" यह सुन कर चाणक्य वहाँ बैठ गए; और अब बुद्धभिक्षु उनसे कोई प्रश्न करने ही वाला था कि, एक स्त्री

उस भिक्षु के पास आई; और बड़ी भक्ति के साथ उसको प्रणाम करके उससे बोली, "भगवन् वसुभूति, आज मैं आपके समीप किसी विषय पर सम्मति लेने आई हूं। मैं बड़ी चिन्ता में पड़ी हुई हूँ। लगभग एक पक्ष से मैं अपना एक गुह्य अपने मन ही मन में रख रही हूँ; पर आज मैंने सोचा कि, अब मैं उसे आपके सामने प्रकट कर दूं, और उस पर आपकी सम्मति ग्रहण करूँ।"

यह सुनते ही बुद्धभिक्षु वसुभूति उससे बोले, "वत्से वृन्द-माले, तू इतनी सूखती क्यों जा रही है? अवश्य ही तुझ को कोई विशेष चिन्ता सता रही है। मुरादेवी तो शरीर से कुशल-पूर्वक है?"

अन्तिम प्रश्न सुनते ही वृन्दमाला एकदम बोली, "भग-वन्, मुरादेवी शरीर से तो कुशलपूर्वक है; पर मन में उसके कुशल नहीं है। जिस दिन से कुमार सुमाल्य को यौवराज्या-भिषेक हुआ उसी दिन से उसकी चित्तवृत्ति ठिकाने नहीं है।"

वृन्दमाला ज्यों ही वहाँ आई, और विशेषतः जब कि उसने यह कहा कि, हम आज आप से किसी बात पर सम्मति लेने आई हैं, तब चाणक्य ने यह सोचा कि, अब यहाँ पर हमारा बैठना उचित न होगा; पर फिर जब उन्होंने मुरादेवी का नाम सुना, तब उन्होंने सोचा कि, अब राजघराने की कोई न कोई बातें निकलनेवाली हैं; इसलिए वे वहीं ज़रा ठहर गये; और और फिर जब उन्होंने यह सुना कि, कुमार सुमाल्य को यौव-राज्याभिषेक होने से मुरादेवी की चित्तवृत्ति ठिकाने नहीं रही है, तब उन्होंने यही निश्चय किया कि, अब यहाँ से हम को न जाना चाहिए। और इनका सब वृत्तान्त सुनना चाहिए। इस लिए अब यह सुनने के लिए उनके कर्ण अत्यन्त उत्कंठित हुए

कि, वृन्दमाला से अब वसुभूति क्या कहते हैं; और फिर वृन्द-माला उनसे क्या कहती है। आर्य चाणक्य कितने चतुर और कूटनीतिज्ञ थे, सो बतलाने की यहाँ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि चाणक्य की 'चाणक्यता' प्रायः सभी को मालूम है। उन्होंने तुरन्त ही ताड़ लिया कि, वृन्दमाला, अवश्य ही, यह मुरादेवी की परिचारिका होनी चाहिए; और इसमें संदेह नहीं कि, कुमार सुमाल्य को यौवराज्याभिषेक होने के कारण मुरादेवी को मत्सर-पिशाच ने पछाड़ा है; और ये सब बातें यदि सचमुच ही सत्य हैं, तो हम को अब अपनी अभीष्ट जानकारी बहुत कुछ प्राप्त होगी; और उस जानकारी के प्राप्त होने पर राजकुल में भेद करने का एक अच्छा साधन हमारे हाथ आ जायगा। बस, यही सब सोच कर फिर चाणक्य को वहाँ से उठने का मन नहीं हुआ।

वसुभूति वृन्दमाला से कहते हैं, "वृन्दमाले, तू यह क्या कह रही है? तू कहाँ है, क्या कह रही है, कुछ विचार कर। वत्से, ये गृहच्छिद्र वास्तव में किसी तीसरे के कान में न जाने चाहिए। फिर उसमें भी तेरे समान विश्वासपात्र सेवक को तो अपनी जिह्वा और भी अधिक सम्हाल कर रखनी चाहिए। मुरादेवी ने अवश्य ही सोचा होगा कि, उसका पुत्र यदि आज होता; और अन्य सपत्नियों तथा मंत्रियों ने यदि उस पर कुचक्र न चलाया होता, तो आज उसी के पुत्र को यौवराज्य पद प्राप्त होता; और उसी का पट्टाभिषेक हुआ होता। बस, यही सोच कर शायद उसे खेद और उद्वेग हुआ होगा; और यह एक स्वाभाविक बात है; पर तेरे समान सेवकों को कहीं बाहर ऐसी बात का शोर.गुल न मचाना चाहिए। विश्वासपात्र सेवक को अपने नेत्र और कान खुले रखने में कोई हानि नहीं; पर मुँह सदैव बन्द

रखना चाहिए। और यदि कभी खोलने की इच्छा भी हो, तो अपने स्वामी के सामने ही खोलना चाहिए, और जो कुछ कहना हो, उसी से कहना चाहिए; और किसी के सामने उसका स्फोट न करना चाहिये।" वसुभूति जब यह कह रहे थे, वृन्दमाला चुपके बैठी हुई सुन रही थी; परन्तु उनका उपर्युक्त कथन समाप्त होते ही फिर वह तुरन्त ही बोली, "भगवन्, आपका उपदेश बहुत ठीक है। उसको मैं बद्धांजलि होकर शिरोधार्य करती हूँ, पर मेरी एक प्रार्थना है। इस समय मैंने जिस बात का आपके सम्मुख उच्चार किया, उसका उच्चार मैंने अब तक अन्य किसी के सामने नहीं किया। परन्तु आज मुझ से रहा नहीं गया; क्योंकि मैंने सोचा कि, आज देवीजी की जो दशा हो रही है, वही दशा यदि और भी कुछ दिन क़ायम रही, तो कोई न कोई बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा; अथवा स्वयं देवीजी का ही सर्वथा घात होगा। बस, यही सोच कर मैंने इतना आप से निवेदन किया। आप मेरे गुरु हैं। भगवान् तथागत का आपने मुझे यह उपदेश किया है कि, कहीं कुछ यदि कोई घातपात होता हो; और वह यदि अपने हाथ से निवारण हो सकता हो, तो अवश्य उसका निवारण करना चाहिए। इसी लिए मैं आपकी सेवा में आज कुछ सम्मति लेने को आई। क्योंकि मैं स्पष्ट देख रही हूँ कि, मेरी स्वामिनी की ऐसी ही दशा यदि और कुछ दिन भी बनी रहेगी, तो अवश्य ही या तो स्वयं उसका ही घात होगा, अथवा अन्य कोई महा अनर्थ होगा। निस्सन्देह, यह बात मैं प्रत्यक्ष देख रही हूं; पर मेरी समझ में नहीं आता कि, इसका निवारण किस प्रकार किया जाय। देवी जी को मैंने बहुत कुछ समझाया-बुझाया; पर नहीं; उनकी समझ में कुछ भी नहीं आता। बस, इसी लिए मैंने सोचा कि, आप की सेवा में चलकर सब वृत्तान्त प्रकट करूँ; और इस विषय

में आपकी सम्मति लूं। गृहच्छिद्र किसी के कान में जावे, इस उद्देश्य से मैं नहीं आई। मैं और अब किसके पास जाऊं?"

वसुभूति चाहते थे कि, चाणक्य के सामने ये बातें न निकलें और इसी लिए उन्होंने चाणक्य की ओर देख देख कर वृन्दमाला को उपर्युक्त उपदेश कुछ कठोर शब्दों में दिया। पर वृन्दमाला उनका संकेत नही समझ सकी। उसने सोचा कि, चाणक्य भी शायद मेरी ही तरह इनका कोई गुप्त शिष्य होगा; ऐसी दशा में इसके सामने इस प्रकार का वार्तालाप हानिकारक नहीं हो सकता। इसके सिवाय यह भी सम्भव है कि, वृन्दमाला जब राजमहल से चली होगी, तभी से वसुभूति के सम्मुख वे सब बातें बतलाने को वह आतुर हो रही होगी। जो भी कुछ हो, वह उस समय आत्मसंयम नहीं कर सकी; और अपने पेट की सब बातें चाणक्य के सामने ही उसने वसुभूति से कह डालीं। वसुभूति उस ब्राह्मण से भी यह नहीं कह सके कि, "आप ज़रा यहां से चले जायँ।" अप्रत्यक्षरूप से वृन्दमाला को उक्त बात सूचित करने में उन्होंने कोई कसर नहीं की; पर उसके ध्यान ही में न आया। इसलिए अन्त में वसुभूति ने वृन्दमाला के नियंत्रण करने का प्रयत्न तो एक ओर रख दिया; और वे उससे बोले, "वत्से वृन्दमाले, तेरी स्वामिनी की यदि ऐसी दशा हो रही है, तो तू उसको मेरे पास ले आ। और नहीं तो, भगवान् तथागत का जो आदेश मैंने तुझ को किया है, वही उपदेश तू उसको करके उसके चित्त को शान्त कर; और मैं विशेष क्या बतलाऊँ? वत्से, तूने आज यह समाचार जो मुझे दिया है, उससे मेरे मन में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई है। मैं आज इसका विचार करूंगा; और फिर तुझको इसका उपाय बतलाऊँगा। तू कल यहां आ। लेकिन एक बात ध्यान में रख। आज जो बात तूने मुझ से बतलाई है, उसका

उच्चार किसी दूसरे से तो क्या, तू स्वयं अपने से भी मत कर। आज तक तूने अपनी स्वामिनी के विषय में जितना कुछ वृत्तान्त बतलाया है, उससे यही जान पड़ता है कि भगवान् तथागत ने इस नगरी के विषय में जो भविष्य कथन किया था, वह तेरी स्वामिनी के कारण से ही सत्य होगा। क्योंकि वह बड़ी दीर्घद्वेषी जान पड़ती है। मैं समझता हूँ—अब लगभग १६, १७, वर्ष हो गये होंगे, जब कि उसके दुधमुहे बच्चे को वन में भेजकर उसकी हत्या कराई गई?"

"हां, इसमें क्या सन्देह? सोलह वर्ष अवश्य हो गये; परन्तु देवीजी उसको याद कर करके ऐसा दुःख और क्रोध कर रही हैं कि जैसे कल ही वह क्रूर कार्य हुआ हो!"

"हां, भगवान् अर्हत की जो कुछ मर्जी हो, वही ठीक! अब तू जा; और कल फिर आ।" यह कहकर वसुभूति ने वृन्दमाला को बिदा किया; और आप स्वयं एक बड़ी भारी लम्बी सांस छोड़ कर कुछ देर तक चुप बैठे रहे। चाणक्य के मन में आया कि, अभी जो कुछ हमने सुना है, उसके विषय में वसुभूति से और भी कुछ प्रश्न करके कुछ विशेष जानकारी प्राप्त कर लें; और इसी कारण वहां से उठने का उनका मन नहीं हो रहा था; परन्तु सहसा कोई प्रश्न भी उनके मुख से नहीं निकल रहा था। इतने में वसुभूति ने फिर एक लम्बी सांस छोड़ी; और चाणक्य को सम्बोधन करके बोले:—

"विप्रवर, आप शायद सच नहीं समझेंगे, परन्तु हमारे महापरिनिब्बाणसुत्त में भगवान बोधिसत्व ने इस पाटलिपुत्र के विषय में यह भविष्य-कथन किया है कि, इस नगरी पर तीन अरिष्ट आवेंगे—अग्निप्रलय, जलप्रलय; और गृहकलह। सो, ऐसा जान पड़ता है कि, यह गृहकलह का प्रारम्भ है! राजा और मंत्री यदि योग्य विचार करनेवाले नहीं होंगे, तो ऐसा

होना अवश्यम्भावी है। मुरादेवी वास्तव में राजकन्या है—वह किरात राजा की कन्या है; पर उसको बृषली ठहरा कर, और उसके उदर से धनानन्द को जो पुत्र हुआ, उसके विषय में कुत्सित संशय निकाल कर, दुधमुहेपन में ही हिमालय के जंगल में ले जाकर उसकी हत्या करा डाली। यह अन्यायपूर्ण हत्या अब शायद गृहकलह का कारण बनेगी; और इस प्रकार भगवान् बोधिसत्व का उक्त भविष्य-कथन कदाचित् सत्य होगा।"

वसुभूति का यह भाषण चाणक्य बड़ी उत्सुकता से सुन रहे थे, सो बतलाने की आवश्यकता नहीं।

पांचवां परिच्छेद

चाणक्य का विचार।
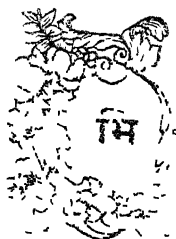
भिक्षु वसुभूति जब उपर्युक्त भाषण कर रहे थे, उसी समय से चाणक्य के हृदय में नाना प्रकार के विचारतरंग उठने लगे। उन्होंने सोचा कि, हम जिस उद्देश्य से अपना आश्रम छोड़ कर इस नगरी में आये, उस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए राजकुल की जिस प्रकार की अवस्था हमारे लिए आवश्यक थी, उसी प्रकार की अवस्था वास्तव में इस समय उसकी दिखाई दे रही है; और ऐसा जान पड़ता है कि, गृहकलहाग्नि के सुलगने का प्रारम्भ हो चुका है, अब उसमें आज्याहुति देना हमारे हाथ में है। इस प्रकार की दशा जब चाणक्य को प्राप्त हो गई, तब और फिर अब क्या चाहिए? प्रथम तो चाणक्य स्वयं ही अत्यन्त दूरदर्शी और सूक्ष्मदर्शी ऋषि थे; और फिर इधर भिक्षु वसुभूति ने मुरादेवी के पुत्र की जो कथा बतलाई, वह चन्द्रगुप्त से पूरी पूरी मिल गई—अब क्या कहना है! चाणक्य का हृदय आनन्द से उछलने लगा। परन्तु फिर भी उन्होंने सोचा कि, शायद जिसको हम अपनी अत्यन्त अनुकूल अवस्था समझ कर इस प्रकार फूले नहीं समा रहे हैं, उसमें कुछ चूक हो, इसलिए पहले इसकी पूरी तरह से चौकसी करनी चाहिए, और तब फिर हर्ष अथवा

विषाद, जो कुछ मनाना हो, मनाना चाहिए। कोई भी कार्य हो, उसकी सिद्धता के विषय में जब तक पूर्ण विश्वास न हो जाय, तब तक ऐसा ख़याल न करना चाहिए कि, बस अब यह सिद्ध ही हो जायगा—शायद उसमें कोई चूक हो, और ऐसी दशा में यदि हम उसकी सिद्धता का पूर्ण विश्वास करके हर्ष मनाने लगेंगे, तो अन्त में हम को, उतना ही शोक होगा। बस, यही सब सोच कर चाणक्य मुनि वसुभूति से बोले :—

भिक्षुश्रेष्ठ, आपकी इस नगरी का मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है। मैं अभी तक हिमालय में मरुद्वती के तीर चाणक्याश्रम में रहा करता था। आपकी इस नगरी का बड़प्पन और महाराज की भारी कीर्ति सुन कर मैं इस विचार से यहां आया कि, शायद यहां पर मुझे कोई अच्छा सा आश्रय मिल जाय; पर यहां आकर मैं स्वयं राजकुल में ही कलहाग्नि धधकने की यह कथा सुन कर बड़ा चकित हो रहा हूँ; क्योंकि जहां एक बार गृह-कलह उत्पन्न हो जाता है, वहां फिर लक्ष्मी बहुत दिन तक बास नहीं करती। अस्तु। हम को इससे क्या? किन्तु भगवान् वसुभूते, यह मुरादेवी कौन है? और उसके पुत्र की हत्या किसने और किस कारण कराई? क्षमा हो मुझे इन प्रश्नों के लिए—किन्तु यह सब यदि मुझे मालूम हो जायगा, तो मैं इस कलह की शान्ति के लिए कोई अनुष्ठान करूंगा।

चाणक्य का यह भाषण सुन कर भिक्षु वसुभूति कुछ हँसे; और फिर बोले, "विप्रवर, ये सब बातें आपको कहां तक बतलाई जायँगी? बात यह है कि, पाटलिपुत्र की कीर्ति आप सब लोगों को, जो दूर रहते हैं, जितनी धवल दिखाई देती है उतनी वास्तव में वह नहीं है। राजा धनानन्द अत्यन्त अविचारवान् और परप्रत्ययनेयबुद्धि—अर्थात् दूसरों के सुझाने पर चलनेवाला

है। उसके दरबार में अनेक मंत्री हैं; पर दैव की गति ऐसी कुछ विलक्षण है कि उन मंत्रियों में से जितने मूर्ख और कार्यसाधु मंत्री हैं, उन्हीं की बुद्धि से धनानन्द के सब व्यवहार होते रहते हैं। मुरादेवी पर किसी समय राजा की बड़ी प्रीति थी। उसके बिना क्षण भर भी राजा को चैन नहीं पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि, अन्य राजपत्नियां उससे मत्सर करने लगीं; और उसके नाश करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। सेनापति भागुरायण किरात राजा का पराजय करके उसकी यह कन्या हरण कर लाया था; और उसको राजा को समर्पण किया था। उसका अलौकिक सौन्दर्य देख कर महाराज ने उसके साथ गान्धर्व बिधि से विवाह किया; और उसको गर्भ रहा। उस समय तक महाराज की अन्य पत्नियों से कोई भी पुत्र नहीं था। इस कारण मुरादेवी के विषय में उन रानियों का मत्सर और भी अधिक भड़का। उसके विरुद्ध वे सब मिल कर षड्यंत्र करने लगीं। फलतः राजा के मन में उन्होंने यह बात भर दी कि, यह (मुरादेवी) वास्तव में किरात राजा दासीपुत्री है; और यह आचरण की भी अच्छी नहीं थी। इससे राजा ने आज्ञा दी कि, इसको वन्दितखाने में डाल दो; और इसके जो सन्तान उत्पन्न हो—फिर चाहे वह लड़का हो या लड़की—उसको जंगल में ले जाकर मार डालो। राजा की आज्ञा हो गई—अब उसका विरोध कौन करे? बात की बात में उसी आज्ञा के अनुसार सब प्रबन्ध किया गया। मुरादेवी को वन्दीगृह में डाल दिया गया; और उसके पेट से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका वध करने की आज्ञा हुई। बच्चा अभी हाल ही का पैदा हुआ था, बड़ा सुन्दर और तेजस्वी दिखाई देता था। इस कारण ज़िन परिचारिकाओं को उसको वध करने का काम दिया गया था, उनको अमात्य और अन्तःपुर की सपत्नियों ने विशेष रूप

से पुरस्कृत करके उस बच्चे का बध करवा डाला। इस घटना को आज कई वर्ष हो गये। बाद को राजा की एक दूसरी पत्नी से सुमाल्य नामक पुत्र उत्पन्न हुआ; और यही सब से बड़ा माना गया; इसलिए इसी को अभी दिन कुछ पहले यौवराज्याभिषेक हुआ। उस उत्सव के अवसर पर अनेक कैदी लोग छोड़े गये, जिनमें मुरादेवी भी बन्धनमुक्त की गई, और उसको पहले ही की भाँति फिर अन्तःपुर में रहने की आज्ञा मिली। पर मुरादेवी को इससे कुछ भी हर्ष नहीं हुआ; और मत्सर के कारण उसकी जो दशा हुई, वह वृन्दमाला के द्वारा अभी मालूम ही हो चुकी है। इस मुरादेवी को यदि भगवान् तथागत के उपदेशामृत को पान कराने का अवसर मुझे मिल जाय, तो उसका बड़ा कल्याण हो, मैं उसको ऐसा मार्ग दिखला दूं कि, जिससे वह इस भवसागर से पार हो कर निर्वाण की प्राप्ति कर सकती है। मैं उसको ऐसा उपदेश दे दूँगा कि, जिससे उसे राजकुल के लोगों की संगति से आपही आप बैराग हो जायगा; और वह संन्यास-दीक्षा लेकर, सर्वसंग-परित्याग करके, निर्वाणपद की प्राप्ति में लग जायगी।"

वसुभूति जब कि उपर्युक्त भाषण कर रहे थे, चाणक्य उसको शान्ति के साथ सुन रहे थे। उनके मन में उस समय और ही कोई विचार आ रहे थे। परन्तु अन्त में जब उन्होंने यह सुना कि, वसुभूति उसको संन्यास दीक्षा देकर बुद्धरक्षिता बनाने की बात कह रहा है, तब उनको बड़ी हँसी आई; परन्तु प्रकट रूप से उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि, "देखिये, भगवान् शंकर की इच्छा है! उनके मन में जैसा आवेगा, वैसा ही वे करेंगे। हमारे हाथ में क्या है ?" यह कह कर वे वहां से उठकर विश्राम के लिए, अपने उसी कैलासनाथ के मन्दिर में, जाने लगे। रात बहुत बीत चुकी थी, अथवा यों कहिये कि उस वृद्ध

भिक्षु को एकान्त में कुछ विचार करना था—जो भी कुछ कारण हो, उसने फिर चाणक्य को और अधिक बैठने का आग्रह नहीं किया।

चाणक्य उस मन्दिर में आकर अपना हरिणाजिन बिछाकर उसी पर लेट रहे। परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी उनको नींद नहीं आई। अनेक प्रकार के विचार उनके मन में आने लगे; और वे उठ कर बैठ गये। उन्होंने सोचा कि, अब सब से पहला काम हमारा यह होना चाहिए कि, हम वृन्दमाला से मिलें; और ऐसा प्रयत्न करें कि, जिससे किसी प्रकार उसकी स्वामिनी से हमारी भेट हो जाय। मुरादेवी की जहां हम से एक बार भेट हो गई कि, फिर हम बड़ी तीव्रता के साथ उसकी महत्वाकांक्षा बढ़ावेंगे; और उसको अपने वश में रखेंगे। इसके साथ ही साथ उन्होंने यह भी विचार किया कि, चन्द्रगुप्त की, और इसके पुत्र की, कथा बिलकुल एक सी मिलती है, ऐसी दशा में यदि हम उसके मन में यह भाव बैठा देंगे कि, चन्द्रगुप्त ही वास्तव में उसका लड़का है, तो यह भी ठीक होगा। चन्द्रगुप्त यदि सचमुच ही उसका लड़का निकल गया, तब तो ठीक ही है; और यदि शायद न भी निकला, तो भी उसे यही भासित करावेंगे कि, यह तेरा ही लड़का है; और तू इसको राज्य पर बैठाने में हम को सहायता दे। जहां उसको इस बात का विश्वास एक बार होगया कि, यह मेरा ही लड़का है कि, फिर सब काम बन जायगा—हमको कोई विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता ही न रहेगी—उस दशा में फिर हमको सिर्फ इतनी ही सावधानी रखने की आवश्यकता रह जायगी कि, जिससे किसी प्रकार का अविचार उसके हाथ से न होने पावे; और हमारा षडयंत्र बाहर न फूटने पावे। चाणक्य ने सोचा कि, हम बड़े अच्छे मुहूर्त पर पाटलिपुत्र में आये। देखो, हम को आये अभी पूरे पूरे आठ पहर

भी नहीं हुए कि इतने ही में हमारे लिए उपयोगी एक कितना अच्छा साधन हमारे हाथ लगा। यह सब उस भगवान् शंकर की कृपा है। मुरादेवी जहां एक बार हम से मिली कि, फिर हम अनेक प्रकार की बातें उसके मन में भर देंगे—उसको यह पूरा पूरा विश्वास करा देंगे, कि तेरा पुत्र अभी जीवित है। परन्तु हां, उसकी भेट एकान्त में हम को कैसे हो? यह बात चाणक्य के ध्यान में नहीं आ रही थी। परन्तु फिर उन्होंने निश्चय किया कि, उससे भेट करने के लिए पहले हम को वृन्दमाला पर ही अपना विश्वास जमाना होगा। वृन्दमाला वसुभूति के पास आया जाया करती है; परन्तु यहां पर उससे इस विषय में बातचीत करने से कोई लाभ न होगा। वास्तव में एकान्त में उससे मिल कर उसकी स्वामिनी तक अपना समाचार पहुँचाना चाहिए। इतना निश्चय हो जाने के बाद फिर उन्होंने सोचा कि, इस विषय में वसुभूति को भी हम शामिल करें या न शामिल करें। वृन्दमाला से जब काम लेना है, तब वसुभूति पर भी अपने विचार प्रकट कर देने चाहिए; क्योंकि ऐसा किये बिना यह कार्य सिद्ध होना बिलकुल असम्भव है, और अधिकांश में अनिष्ट भी है। वसुभूति को यदि हम अपनी मंत्रणा में सम्मिलित कर लेंगे, तो इससे लाभ ही होगा। क्योंकि वसुभूति का परिचय यहां बहुत अधिक जान पड़ता है। उसने कहा ही है कि बड़े बड़े श्रेष्ठी उसके गुप्त शिष्य हैं। इसलिए यदि आदि से ही उसे हम अपना सारा उद्देश्य बतला देंगे, तो कदाचित् वह हम को सहायता भी करेगा। परन्तु यह विचार चाणक्य के मन में बहुत देर नहीं टिका। तुरन्त ही उन्होंने सोचा कि, हम इस पाटलिपुत्र में बिलकुल नवीन हैं, अभी हम को यहां आये पूरे आठ पहर भी नहीं हुए, और इतने ही में हम यदि वसुभूति को इस चक्कर में लाने की कोशिश करेंगे, तो उसको

व्यर्थ के लिए हमारे विषय में सन्देह हो जायगा। इसलिए इससे तो यही अच्छा होगा कि, केवल वृन्दमाला को मिलाया जाय, अथवा उसको चकमा देकर अन्तःपुर में प्रवेश कर लिया जाय। इसके बाद यदि ऐसा मालूम हो कि, वसुभूति को अब यह समाचार मालूम हुए बिना नहीं रहता, तब फिर उससे भी सब बातें स्पष्ट बतला दी जायँ; और उससे सहायता माँगी जाय। इस प्रकार विचार करते करते उषःकाल हो गया। उस रात को उस ब्राह्मण को एक पल भर के लिए भी निद्रा नहीं आई।

उषःकाल हो गया। चाणक्य ने पूर्व-आकाश की ओर दृष्टि डाली, तो अरुण तेज से उक्त दिशा बिलकुल आरक्त दिखाई दी। उस रमणीय काल को देख कर चाणक्य ने सोचा कि, यह आज के दिन का ही उषःकाल नहीं है; किन्तु हमारे प्रतिज्ञात कार्य की सिद्धि का भी उषःकाल है। इसके बाद फिर उन्होंने आप ही आप कहा—"निद्रे, अच्छा हुआ, जो आज नहीं आई। मैं तो यह चाहता हूँ, कि जब तक इस धनानन्द का और इसके आठ पुत्रों का पूर्ण तत्सत् न हो जावे, और मेरा चन्द्रगुप्त इस पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर आसीन होकर अभिषिक्त न हो जावे, तब तक तू मेरी ओर झांक करके भी न देख। तेरी आवश्यकता सुखकाल में है; कार्यकाल में यदि तेरी संगति न हो तो ही अच्छा!" बस, इतना कह कर चाणक्य प्रातर्विधि करने को उठे।

उस दिन उन्होंने अपने कर्म नित्य-नियमानुसार यथास्थित रूप से किये सही; परन्तु वास्तव में एक भी कर्म में उनका चित्त नहीं था। उनका सारा चित्त वृन्दमाला, मुरादेवी और चन्द्रगुप्त की ओर लगा हुआ था। वे बराबर इसी विचार में लगे हुए थे कि, वृन्दमाला को अनुकूल करके उसके द्वारा राजा

के अन्तःपुर में किस प्रकार प्रवेश किया जाय, और फिर मुरा-देवी से मिल कर उसको इस बात का विश्वास किस प्रकार कराया जाय कि, चन्द्रगुप्त और उसका सम्बन्ध माता-पुत्र का है। इस प्रकार विचार करते करते मध्यान्ह के बाद उनके सब पवित्र कर्म समाप्त हुए, और अब वे भोजन इत्यादि की धुन में लगे। वसुभूति ने पिछले दिन के अनुसार उनके पास सीधा-सामग्री भेजी, और चाणक्य ने भी उस दिन उसको स्वीकार कर लिया—पिछले दिन की भांति उसका अनादर नहीं किया। वास्तव में अपने साथ उनको शिष्य लाना चाहिए था; पर ऐसा कोई शिष्य वे अपने साथ नहीं लाये थे, इसलिए उनको कुछ कठिनाई मालूम हुई। परन्तु फिर सोचा कि, शिष्यों की हमारे लिए क्या कमी? थोड़ा सा प्रबन्ध होने दो, किसी शास्त्र के अध्ययन का निमित्त जारी करेंगे; और तमाम शिष्य ही शिष्य आकर खड़े हो जायँगे। बस, इसी प्रकार विचार करते हुए उन्होंने अपना भोजन तैयार करने के लिए चुल्लिका-पूजन किया। पाक-सिद्धि हो जाने पर यथाविधि उसका सेवन किया; और इसके बाद फिर उन्होंने वसुभूति के विहार का रास्ता पकड़ा। इधर वसुभूति भी अपने धर्मकृत्य करके पत्र-लेखन में लगे थे। चाणक्य वहां पहुँच कर उनके पास बैठ गये। इतने में वसुभूति का पत्र-लेखन भी समाप्त हुआ, और उन्होंने अपने सिद्धार्थक नामक एक शिष्य को बुला कर कहा कि, तू यह पत्र ले जाकर गुप्तरूप से वृन्द-माला को दे।

अभी एक क्षण नहीं हुआ—उसी क्षण में चाणक्य के मन में एक कल्पना आई; और तुरन्त ही उन्होंने उसको कार्यरूप में परिणत करने का निश्चय करके वसुभूति से कहा—"भिक्षुवर, मैं इस नगरी में बिलकुल नवीन आया हूँ। अभी तक मैंने इसको

कभी नहीं देखा, इसलिए यदि आपकी आज्ञा हो, तो इस सिद्धार्थक के साथ मैं भी चला जाऊं। इससे मुझे सहज ही में नगरी की शोभा देखने को मिल जायगी।"

वसुभूति ने क्षण भर विचार किया; और फिर बोले—"जाइये। जाने को मैं मना नहीं करता; पर मैं इसे किसी गुप्त कार्य के लिए भेज रहा हूँ; इसलिए आप यदि साथ रहेंगे, तो...... ..."

"मेरे साथ रहने से यदि कार्य में कोई हानि पहुँचने की सम्भावना हो, तो मेरा कोई विशेष आग्रह भी नहीं; परन्तु आप ऐसा विचार त्रिकाल में भी न लावें कि, मेरे कारण किसी प्रकार गोपनस्फोट होगा। जब से मैंने इस नगरी में प्रवेश किया, तब से आप बराबर इतने आदर और प्रेम के साथ मेरा आतिथ्य कर रहे हैं—फिर ऐसी दशा में आपके कार्य का स्फोट मेरे कारण हो, इससे अधिक अनुचित और कौन सी बात हो सकती है? इसलिए आप ऐसा विचार कभी भी अपने मन में न लावें। मेरे हाथ से कभी आपकी कार्यहानि नहीं हो सकती—हाँ, मुझ से यदि हो सकेगा, तो आपको सहायता करके ही आपके ऋण का बदला चुकाऊंगा।"

चाणक्य ने इतनी आतुरता के साथ ये वचन कहे कि, वसुभूति के मन में किसी प्रकार की शंका नहीं रही; और उन्होंने तुरन्त ही सिद्धार्थ को सम्बोधन करके कहा, "अच्छा कोई बात नहीं—सिद्धार्थक, तू इनको भी अपने साथ लेते जा। लेकिन वृन्दमाला को जब पत्र देना, तब बिलकुल गुप्तरूप से देना।" चाणक्य को प्रसन्नता हुई, और वे सिद्धार्थक के साथ चल दिये।

सिद्धार्थक एक बिलकुल नवयुवक कायस्थ था। किसी कारणवश एक बार उसे राजदण्ड मिला था। उस दण्ड से मुक्त होने के बाद जब वह विमार्ग में लगता हुआ दिखाई दिया,

तब वसुभूति ने उसे उपदेश देकर अपना शिष्य बना लिया। वह भी वसुभूति पर अत्यन्त श्रद्धा रख कर उनकी सेवा करने लगा। चाणक्य ने जब से सिद्धार्थक को देखा, तभी से उनके मन में आया कि इस मूर्ति से हम को अपने प्रतिज्ञात कार्य में बहुत सहायता मिलेगी। इसलिए इसको अपने अनुकूल करके इसकी मित्रता सम्पादन करनी चाहिए। इससे हम को बहुत लाभ होगा। बस, यही निश्चय करके वे सिद्धार्थक के साथ चले थे।

सिद्धार्थक के पास वह पत्र था ही, जिसे वह वृन्दमाला को देने चला था। उस पत्र में क्या वृत्तान्त होगा, इसकी कल्पना सहज ही में चाणक्य ने कर ली। क्योंकि पिछले दिन वसुभूति और वृन्दमाला में जो बातचीत हुई थी, वह चाणक्य को मालूम ही थी। सिद्धार्थक ने मार्ग में चलते चलते, बीच में मिलनेवाले अनेक स्थानों, मन्दिरों और प्रासादों के नाम इत्यादि बतलाये। इसके बाद जब वह भिन्न भिन्न धनाढ्य, श्रेष्ठियों और व्यापारियों इत्यादि की वीथिका में पहुँचा, तब उन सब के भी नाम इत्यादि बतलाये। इसी प्रकार भिन्न भिन्न उद्यान, वाटिका, और अन्य दर्शनीय स्थान, जो उसके मार्ग में पड़े, उन सब के नाम बतला कर थोड़ा थोड़ा उन सब का परिचय भी चाणक्य को कराया। इस के बाद अन्त में वे एक जलमन्दिर के पास पहुँचे। तब उसका वर्णन करते करते सिद्धार्थक के मुँह से राजा धनानन्द का नाम निकला। राजा का नाम निकलते ही सिद्धार्थक ने उसकी खूब निन्दा करना प्रारम्भ किया। उसने कहा—"धनानन्द के समान अन्यायी राजा संसार में नहीं मिलेगा। उसके समान सनकी स्वभाव का और दुराग्रही शायद ही कोई हो। बड़ा नीच राजा है। सत्य से उसे कुछ भी प्रेम नहीं। मुझे निरपराध—केवल

दुष्ट बुद्धि रख कर—उसने दण्ड दिया। सम्पूर्ण पाटलिपुत्र में कोई उससे प्रसन्न नहीं। सब उसकी निन्दा करते हैं।" इस प्रकार के प्रलाप बराबर उसके मुख से निकलते गये। चाणक्य पहले कुछ आश्चर्य में आये; पर जब उन्होंने सोचा कि, इसको एक बार राज-दण्ड मिल चुका है, इसी कारण यह राजा को इतना गालिप्रदान कर रहा है, तब उनका वह आश्चर्य जाता रहा। परन्तु उन्होंने यह सोचा कि, अब इससे इसका भी कुछ वृत्तान्त जानना चाहिए; और इससे यह पूछना चाहिए कि, इसे कितने दिन कारागार में रहना पड़ा। यह सोच कर उन्होंने सिद्धार्थक से उसका सब हाल पूछा।

सिद्धार्थक ने भी अपना सब वृत्तान्त बतलाया। उसमें अवश्य ही उसने यह प्रकट किया कि, वास्तव में उसका कोई भी दोष नहीं था; और राजा ने केवल उससे द्वेष रख कर ही दण्ड दिया। यह कह कर उसने राजा को फिर यथेच्छ गालिप्रदान किया। इस पर चाणक्य हँसते हँसते उससे बोले, "सिद्धार्थक, जान पड़ता है, राजा पर तू बहुत ही नाराज़ है। मैं समझता हूं कि, यदि राजा का कोई अहित करने का मौका आ जावे, तो तू बात की बात में वैसा कर सकता है।"

सिद्धार्थक तत्काल ही उत्तर देता है, "अवश्य, अवश्य, इसमें क्या सन्देह ? मैं कभी ऐसे राजा का अहित करने में नहीं चूक सकता। धनानन्द कितना मूर्ख, कितना दुष्ट और अंधा है, जिसकी आपको कल्पना भी नहीं हो सकती। परन्तु अमात्य राक्षस जब तक राजकाज करने का प्रमुख बना हुआ है, तब तक राजा का कोई कुछ भी अहित नहीं कर सकता। वृन्दमाला मुझ से बतलाती थी कि, मुरादेवी के सदृश साध्वी और सद्गुण-सम्पन्न स्त्री और कोई नहीं मिल सकती; पर राजा ने स्वयं उसके विषय में भी नाना प्रकार के कुतर्क निकाले; और अन्य दो, सौती-

मत्सर से, पछाड़ी हुई स्त्रियों, का कथन सच मान कर उस बेचारी का त्याग किया। केवल त्याग ही नहीं किया; बल्कि उसके बालक का वध भी कराया। यह अन्धेर तो देखिये ! अब सुमाल्य के यौवराज्याभिषेक के उपलक्ष में अन्य कैदियों के साथ उसको भी छोड़ा है। जैसे जेलखाने के अन्य चोर और डाकुओं में ही उसकी गिनती की गई हो..."

"क्या! मुरादेवी इतनी उत्तम स्त्री है?" चाणक्य बीच में ही बोल उठे, "मैं भी इस नगरी में जब से आया, बराबर उस साध्वी के गुणों की प्रशंसा ही सुन रहा हूँ। सचमुच ही यदि वह इस प्रकार की महा पुण्यवती सती है, तब तो इसके दर्शन करने की मुझे भी बड़ी अभिलाषा हो रही है।"

"फिर इसमें असम्भव क्या है? सिद्धार्थक तुरन्त ही उनसे कहता है, "आप अवश्य उसके दर्शन कीजिए। वह प्रति सोमवार को श्री कैलासनाथ जी के मन्दिर में दर्शन करने और पुराण श्रवण करने आती है। वन्दीगृह में रहते समय भी उसको यहां आने की आज्ञा मिल गई थी। परसों सोमवार है; और उसी दिन पक्ष प्रदोष भी है। इसलिए उस दिन वह सूर्यास्त के लगभग प्रदोष काल में अवश्य आवेगी। अब उसके आस-पास राजपुरुषों का वलय भी नहीं रहता। सिर्फ उसका परिजन भर रहता है, इसलिए उस समय आपको उसके दर्शन करने में कोई कठिनाई भी नहीं पड़ेगी।"

चाणक्य ने अपनी गर्दन हिलाई। शब्दों से उन्होंने उसको कोई भी उत्तर नहीं दिया। कुछ देर दोनों चुपके चलते रहे। इतने में सिद्धार्थक उनसे बोला, "यह राजप्रासाद के अगले प्रांगण में एक छोटा सा उपवन है। इसमें जाकर आप किसी छाया वृक्ष के नीचे शिलातल पर बैठिये। मैं जाकर गुरु जी का यह गुप्त पत्र वृन्दमाला के हाथ में दूंगा; अथवा ऐसा प्रबन्ध

करूंगा कि, यह ठीक उसी के हाथ में पहुँच जाय।" चाणक्य कुछ स्तब्ध खड़े रहे; फिर बोले, "सिद्धार्थक, शायद तुम सन्देह करते हो कि, मेरे द्वारा गोपन स्फोट हो जायगा; और इसी कारण शायद तुम मुझ को यहां बैठने के लिए कहते हो; परन्तु जो बातें गुरु जी ने इस पत्र में लिखी हैं, वे सब मुझे मालूम हैं। वृन्दमाला कल रात को क्यों आई थी; और उसने गुरु जी से क्या क्या बतलाया, सो सब मैंने सुना था। इसलिए अब तुम मुझ से इन बातों को छिपाने के झगड़े में मत पड़ो। मुझ को भी अपने साथ ले चलो। इससे तुम को फायदा ही होगा, शायद कोई कठिनाई आवेगी, तो मैं तुम को सहायता करूंगा। मैं यहां अकेले पागल की तरह बैठ कर क्या करूंगा?"

चाणक्य के ये वचन सुन कर सिद्धार्थक कुछ देर तक बिलकुल स्तब्ध रहा। क्योंकि वह चाणक्य से स्पष्ट नहीं कह सकता था कि, तुम मेरे साथ मत आओ। ऐसी दशा में उसने चाणक्य से सिर्फ इतना ही कहा, "आप चल सकते हैं, मुझे कोई आपत्ति नहीं, लेकिन जहां मेरा ही प्रवेश बड़ी कठिनाई से हो सकता है, वहां आपको ले जाना कितना असम्भव है—आप सोच लें।"

"क्या! मेरे समान ब्राह्मण को भी भीतर जाने में इतनी कठिनाई है? वाह! बहुत ही उत्तम राज्यप्रबन्ध है! तब तो मैं तुम्हारे साथ अवश्य ही चलूंगा। यही देख लूंगा कि, भूले भटके किसी ब्राह्मण के आजाने पर राजा उसको क्या दण्ड देता है। चलो। वृन्दमाला पहचान की है। मैं यदि तुम्हारे साथ चलूंगा, तो उसे बुरा बिलकुल न मालूम होगा; और न वह तुम पर नाखुश होगी।"

सिद्धार्थक अब क्या कहे? लाचार उसने इतना ही कहा कि, "अच्छा, आप नहीं मानते, तो चलिये।" इतना कह कर वह

आगे बढ़ा। चाणक्य भी उसके साथ चले। इसके बाद वे दोनों-ही राजप्रासाद के पश्चाद्भाग को ओर अन्तःपुर के लघुद्वार की तरफ गये। सिद्धार्थक को मालूम था कि, यहां वृन्दमाला किस समय किस प्रकार मिला करती है। उसका समय और स्थान सदैव के लिए निश्चित था। अन्तःपुर में किसी को भी जाने की इजाज़त नहीं थी। हां, द्वारपालों और अन्तःपुर की दास-दासियों के परिचित व्यक्तियों के लिए अन्तःपुर के उस बाहरी प्राकार में जाने के लिए मनाई नहीं थी। उस प्राकार-परिघ को पार कर के जो लोग आगे जाना चाहते थे, उनको फिर इसके लिए इजाज़त लेने की आवश्यकता होती थी। सिद्धार्थक जिस समय वहां पहुँचा, वह समय वृन्दमाला से उसके मिलने का नियत था; और इसी कारण वह इस समय वहां आया था। अस्तु। वे दोनों नियत स्थान पर जा कर खड़े हो गये। इतने में वृन्दमाला वहां आई। सिद्धार्थक ने उसके हाथ में गुरु जी का वह पत्र दे दिया। इसके बाद चाणक्य की ओर देख कर भी वह बोली, "आप भी, मालूम होता है, गुरु जी का उपदेशामृत पान कर के उनकी सेवा का व्रत धारण करने वाले हैं? अच्छी बात है। क्या बतलाऊं? उनकी सेवा करने की मेरी जितनी इच्छा होती है, उतनी मुझ से नहीं हो सकती; और इस कारण मुझे बड़ा खेद होता है; परन्तु जब मैं यह देखती हूं कि, अब दिन दिन उनके शिष्य-समुदाय की उन्नति हो रही है, तब मुझे बड़ा आनन्द होता है।" यह कह कर उसने उनको बिदा किया; और वे दोनों वहां से चल दिये।

छठवां परिच्छेद।

आरम्भ।

वसुभूति का पत्र पढ़ने के लिए वृन्दमाला बहुत ही उत्सुक हो रही थी; क्योंकि उसकी हार्दिक इच्छा थी कि, मुरादेवी का वह पागलपन किसी प्रकार दूर हो; और वह अन्तःपुर में सुख-शान्ति-पूर्वक रहे। मुरादेवी पर वृन्दमाला की बड़ी दृढ़ भक्ति थी। राजा धनानन्द ने मुरादेवी के साथ बहुत ही अन्याय का बर्ताव किया, और उसके बालक की बिना कारण हत्या कराई, इस बात का वृन्दमाला को भी बड़ा दुःख था। पर क्या करती? उसके हाथ में अब कोई बात नहीं थी। अतएव उसने यही सोचा था कि, जो बात हो गई, सो हो गई, अब उसके विषय में, पन्द्रह-सोलह वर्ष बाद, गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या लाभ? इसलिए उसने सोचा कि मुरादेवी यदि इस विषय में अब कुछ अधिक ज़िद करेगी, तो उसकी हानि ही होगी; और यही सोच कर वह बेचारी रात-दिन चिन्ता में निमग्न रहती थी। इसके सिवाय गृह-कलह मचाना भी उसे अच्छा नहीं लगता था। उसमें भी यदि वह यह समझती कि, मुरादेवी का पुत्र अब फिर किसी प्रकार जीवित होकर उसके हाथ में आजायगा, तो शायद वह उसको राज्य-प्राप्ति कराने में मुरादेवी को सहायता भी देती; पर मृत पुत्र के जीवित होने की सम्भावना कैसे की जा सकती थी? इसलिए उसने सोचा कि, मुरादेवी के पुत्र की हत्या

हो गई है सही; और उसका अपमान भी बहुत हुआ है; पर अब इसके लिए, इतने दिन का दीर्घ द्वेष रख कर, यदि यह राजकुल को विध्वंस करने की इच्छा करेगी; तो इससे बड़ा भारी अनर्थ होगा। इसके सिवाय मुरादेवी ने सोचा था कि, नन्दकुल का विध्वंस करके उसकी जगह अपने पितृगृह के किसी राजकुमार को गद्दी पर स्थापित करूंगी; पर उसका यह उद्देश्य वृन्दमाला को बहुत ही अनिष्ट जान पड़ा। इसके सिवाय वृन्दमाला को यह भी विश्वास नहीं था कि, मुरादेवी इस प्रकार का व्यूह रच कर उसमें किसी प्रकार भी कृतकार्य हो सकेगी। क्योंकि मुरादेवी की शक्ति ही क्या थी? इसलिए वृन्दमाला को यही भय हुआ कि, कहीं यह अपने उद्देश्य के अनुसार कोई कार्य करने में धोखा न खा जावे; और अपने ही ऊपर कोई भयंकर आपत्ति न बुला लेवे। बस, इसी भय से वह बेचारी व्याकुल हो रही थी। उसने सोचा कि अभी इतने वर्ष तो वह बन्दीगृह में बन्द रही है; और अब कहीं जा कर सौभाग्य से उसका छुटकारा हुआ है; फिर इतने ही मे यदि वह किसी और कुचक्र मे पकड़ी जायगी, तो न जाने फिर इसका क्या हो—न जाने कितना भयंकर दण्ड इसको दिया जाय! इसलिए वृन्दमाला को अपनी स्वामिनी का उक्त विचार बहुत ही अनिष्ट मालूम हुआ। वह अपनी स्वामिनी पर बहुत अधिक भक्ति रखती थी; और इसी कारण सदैव उसे यह चिन्ता रहती थी कि, अब फिर कहीं हमारी स्वामिनी पर कोई बड़ा भारी संकट न आजाय। उसका यह पक्का खयाल था कि उसकी स्वामिनी अपने दीर्घद्वेष से कोई न कोई विकट संकट अवश्य ही अपने ऊपर फिर उपस्थित करेगी; और इसी लिए वह वसुभूति के पास दौड़ी गई थी कि, शायद वे कोई ऐसी तरकीब बतला देवें कि, जिससे मैं अपनी स्वामिनी को उसके उक्त कुविचार से परावृत्त कर सकूं;

अथवा स्वयं वसुभूति ही उसको अपने समीप बुला कर उसको कुछ सदुपदेश दें कि, जिससे उसके वे पागलपन के विचार दूर हो जावें। वृन्दमाला को अपने दीक्षा-गुरु वसुभूति पर बहुत विश्वास था कि, वे अवश्य ही कोई ऐसी युक्ति हम को बतलावेंगे कि, जिससे हम अपनी स्वामिनी की रक्षा कर सकेंगी। इसलिए, इस समय, सिद्धार्थक ने जब वसुभूति का पत्र लाकर वृन्दमाला को दिया, तब स्वाभाविक ही वह उस पत्र को खोल कर उसे पढ़ने को बहुत उत्सुक हुई, क्योंकि उसको पूर्णतया विश्वास हो गया कि, हमारे गुरुजी को हमारी स्वामिनी की सचमुच ही बड़ी चिन्ता लगी है, और अब अवश्य ही उन्होंने कोई ऐसी युक्ति सोच ली होगी कि, जिससे हमारी स्वामिनी के चित्त को शान्ति मिलेगी।

पत्र के हाथ आते ही उसने एक ओर जाकर उसको जल्दी जल्दी से खोल कर पढ़ा। उसमें निम्न-लिखित वृत्तान्त था—

'स्वस्ति, तू कल रात को जब से यहाँ से गई, तब से मन अत्यन्त चिन्तामग्न हो रहा है। मुरादेवी के विषय में जो समाचार तू बतला गई थी, उस पर मैंने बहुत कुछ विचार किया। मुझे मालूम होता है कि, यदि मुरादेवी को उसके इन्हीं विचारों में रहने दिया जायगा, तो कुशल नहीं होगी। उसी का नाश होगा। इसलिए कोई न कोई उपाय-योजना करनी चाहिए। ऐसी कौन सी योजना करनी चाहिए, इसका विचार मैंने कर लिया है। तू मुझ से फिर एक बार आकर मिल। इससे इस बात का विचार किया जा सकेगा कि, मुरादेवी से मैं कहां पर और किस प्रकार मिल सकता हूँ। एक बार उससे यदि मेरी भेंट हो जायगी, तो सब काम बन जायगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। एक दृष्टि से हम को तो ऐसा जान पड़ता है कि, मुरादेवी की ऐसी वल्गनाओं से केवल उसी का नाश होगा—

और क्या हो सकता है ? हां, एक बात अवश्य हो सकती है इस समय धनानन्द के विषय में उसके अमात्यगणों में भी बहुत कुछ असन्तोष उत्पन्न हो रहा है। और इधर यवन लोग, अपनी ओर से, मगधदेश में प्रवेश करने की पूरी पूरी कोशिश कर रहे हैं। ऐसी दशा में थोड़े से भी गृहकलह से बहुत बड़ी हानि हो सकती है। इसलिए इस गृहकलह रूपी आग को शान्त करने के लिए हम को काफी जलवृष्टि शीघ्र ही करनी चाहिए। अब तू इस बात की सावधानी रख कि, मुरादेवी की प्रकृति और भी अधिक अशान्त न होने पावे। इधर मैं भी उपाय सोचने में लगा हुआ हूँ। इसके सिवाय अब तू इस बात की भी पूरी पूरी निगहबानी रख कि, अब आगे मुरादेवी के अन्तःपुर में कौन आता है; और कौन जाता है, किससे वह बातचीत करती है और क्या बातचीत करती है। फिर जो कोई नवीन बात तुझ को कभी दिखलाई देवे, तो तू शीघ्र ही आकर मुझ को बतलाया कर, अब विशेष और क्या लिखा जाय। मिलने पर मालूम होगा। पत्र पढ़ने के बाद इसको नाश कर डालना। रखना नहीं। भगवान् बुद्ध का विजय हो। और तेरा कल्याण हो। वही हम को इस समय कोई न कोई मार्ग दिखावेगा। इति शुभम्।"

यह पत्र पढ़ते ही वृन्दमाला का मन कुछ शान्त हुआ। वसुभूति पर उसका बड़ा भरोसा था। इसलिए अब उसने सोचा कि, जब स्वयं गुरु जी ने अब इस विषय को अपने हाथ में ले लिया है, तब अब इसमें और कोई विशेष विघ्न नहीं होगा। अब सब काम ठीक हो जायगा। वे इसका पूरा पूरा प्रबन्ध करेंगे। यह सोच कर उसने फिर उस रात को वसुभूति के दर्शन को जाने का निश्चय किया। और तदनुसार वह उचित समय पर अन्तःपुर से बाहर निकली।

इधर सिद्धार्थक और चाणक्य जब वृन्दमाला को वसुभूति

का पत्र देकर लौटे, तब मार्ग में और भी, कुछ नगर की सैर करते हुए चले। मार्ग में चलते चलते चाणक्य दो कार्य करते जा रहे थे। एक तो वे सिद्धार्थक से नाना प्रकार के प्रश्न करके नगर की और राजकुल की अन्तर्बाह्य अवस्था जान लेने का प्रयत्न कर रहे थे; और दूसरे इस बात का विचार भी साथ ही साथ करते जा रहे थे कि, वृन्दमाला से मिल कर उसको अपने वश में कर लेने के लिए अब हम को क्या क्या उपाय-योजना करनी चाहिए। चाणक्य ने सोचा कि, आज वसुभूति ने वृन्दमाला को जो पत्र भेजा है, उसमें अवश्य ही वसुभूति ने उसको बुलवाया होगा। साथ ही साथ उन्होंने यह भी सोचा कि, कल रात को वृन्दमाला ने आकर जो वृत्तान्त वसुभूति से बतलाया था, उसी के विषय में कुछ विचार करके और अब उस विचार को वृन्दमाला से बतलाने के लिए ही उन्होंने उसको बुलाया होगा। इसलिए उन्होंने सोचा कि अब आज उन दोनों की जो बातें होंगी उनको हमें अवश्य सुनना चाहिए; क्योंकि उन बातों से हम को आगे चल कर अपने कार्य में बहुत मदद मिलेगी। इसलिए उन्होंने यह विचार किया कि, कल रात की ही तरह हमें आज भी वहाँ जाकर बैठना चाहिए। परन्तु फिर सोचा कि, आज यदि हम फिर वैसा ही करेंगे, तो शायद वसुभूति को यह अच्छा न लगेगा, इसलिए आज उन्होंने किसी दूसरी ही तरकीब से काम लेने का विचार किया। इतने में सिद्धार्थक से कुछ बातचीत करते करते वे बीच में ही एक मन्दिर के सामने खड़े हो गये। वह मन्दिर किस देवता का है, सो उन्होंने जान लिया; परन्तु फिर भी उन्होंने जानबूझ कर सिद्धार्थक से पूछा, "सिद्धार्थक, यह विशाल मन्दिर किसका है?" यह प्रश्न सुनते ही सिद्धार्थक ने शरीर को मानों रोमांचित सा करके कहा, "नमो अलिहंताणम्। नमो अलिहंताणम्। ब्राह्मण श्रेष्ठ, यह मन्दिर? अरे यह मन्दिर

जिसका है, उसका नाम भी मेरे मुख से उच्चारण न होना चाहिए। यह मन्दिर वाममार्गी कालिभक्तों का है। भीतर देवी की मूर्ति है, जिसको चंडिकेश्वरी कहते हैं। प्रति मंगलवार न जाने कितने पशुओं की हत्या उसके सामने वाले कुण्ड पर हुआ करती है।" इतना कह कर सिद्धार्थक ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी और चुप हो रहा। इतने में चाणक्य उससे कहते हैं, "सचमुच ही सिद्धार्थक, यह हत्या यदि बन्द हो जाय तो बहुत ही उत्तम हो। परन्तु भगवती अम्बिका की उपासना करने में कोई हानि नहीं। मैं चंडीभक्त हूँ; और इस समय श्रीचंडिका का दर्शन मुझे अनायास हो रहा है, इसलिए मुझे उसका दर्शन अवश्य करना चाहिए। तू यहीं खड़ा रह। मैं अभी दर्शन करके आता हूँ।"

सिद्धार्थक की यह इच्छा नहीं थी कि चाणक्य उस मन्दिर में जावें। इसलिए वह उनका निषेध करनेवाला था कि, इतने में चाणक्य उस मन्दिर के द्वार से जाकर उसके भीतर भी चले गये। सिद्धार्थक अवश्य ही, प्राण जाने पर भी, उस मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकता था। अतएव वह चाणक्य की प्रतीक्षा करता हुआ बाहर मार्ग पर खड़ा रहा।

एक घंटा हुआ, दो घंटे हुए, चाणक्य का कहीं पता नहीं। सिद्धार्थक उस मन्दिर में कदम भी नहीं रख सकता था; और यदि चाणक्य को छोड़ कर जाता है, तो उसे यह चिन्ता थी कि, यह नवीन ब्राह्मण इस नगर में आया है, हमारे चले जाने पर यह कहीं मार्ग न भूल जाय; और भटक कर कहीं इधर उधर न चला जाय। इसके सिवाय वह यह भी डरा कि, इसको छोड़कर जाने से कहीं गुरु जी हम से नाराज़ न हों। यह सब सोच कर वह और भी थोड़ी देर

वहीं खड़ा रहा। अब बिलकुल शाम का समय आगया; पर चाणक्य का फिर भी कोई पता नहीं।

बेचारा बड़े संकट में पड़ा। सोचा कि, इस मन्दिर के चारों ओर जो दरवाज़े हैं, उन्हीं दरवाज़ों में से कहीं भटक कर यह ब्राह्मण किसी दूसरी ही ओर तो नहीं निकल गया। यह सोच कर उसने उस मन्दिर के चारों ओर चक्कर लगाने का विचार किया। चक्कर लगाये भी; और प्रत्येक द्वार के सामने थोड़ी देर खड़े रह कर प्रतीक्षा भी की; पर चाणक्य का कहीं पता न लगा। इसलिए अन्त में लाचार होकर उसने अपने विहार का रास्ता पकड़ा। बेचारा प्रतीक्षा भी कितनी देर करता? फिर भी मार्ग में चलते चलते उसने इधर उधर मुड़कर बहुत कुछ उनका पता लगाया।

इधर चाणक्य किसी ख़ास उद्देश्य से उस मन्दिर में गये थे। उनको मालूम था कि, सिद्धार्थक हमारे पीछे इस मन्दिर में कभी नहीं आवेगा; और इसलिए उससे अलग हो जाने का हमारे लिए यह एक बहुत अच्छा मौका है। बस, इसी उद्देश्य से भीतर जाकर फिर वे बहुत देर तक बाहर नहीं निकले। उस चंडिकेश्वरी के मन्दिर में भी श्रीकैलासनाथ के मन्दिर की भांति बहुत सी पुष्करिणियां इत्यादि थीं। वहीं अपना सायंसंध्यादि कर्म करके, तब उचित समय पर बाहर निकलने का उन्होंने निश्चय किया; और इसी लिए वे मन्दिर में इतनी देर छिपे रहे। ज्यों ही थोड़ा सा सायं-प्रकाश पड़ने लगा, त्यों ही उन्होंने एक पुष्करिणी पर जाकर अपने सन्ध्यावन्दनादि कर्मों का प्रारम्भ किया; और सब कर्म बिलकुल यथाविहित और शान्ति के साथ करने लगे। मानो इस बात का ख़याल उनको स्वप्न में भी न रहा कि, बाहर खड़ा हुआ हमारी कोई प्रतीक्षा

कर रहा है! सच ही है, जान बूझ कर जहाँ सब बातें करनी हैं वहां स्मरण भी बेचारा क्या कर सकता है?

शान्त चित्त से सम्पूर्ण धर्मकृत्य समाप्त करके चाणक्य उस मन्दिर से बाहर निकले। अब मन्दिर में गये उनको पूरा एक पहर व्यतीत हो चुका था। ऐसी दशा में उनको पूरा विश्वास था कि, एक पहर तक अवश्य ही सिद्धार्थक हमारी प्रतीक्षा नहीं कर सकता—वह अब अवश्य ही चला गया होगा; और सच-मुच ही वह चला गया था। इसलिए अब चाणक्य ने उसको इधर उधर देखने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। उनको इससे कर्तव्य ही क्या था!

अस्तु। चाणक्य चंडिकेश्वरी के मन्दिर से निकल कर अब राजमन्दिर की ओर चले। मार्ग उनको अच्छी तरह मालूम नहीं था; परन्तु यह सोच कर कि, हम को फिर भी कभी न कभी इधर अवश्य ही आना पड़ेगा; उन्होंने सिद्धार्थक के साथ जाते और आते समय, उस मार्ग को भली भांति ध्यान में रख लिया था। अब राजमहल की ओर चाणक्य के चलने का उद्देश्य यह था कि, वृन्दमाला जब रात को वसुभूति के पास जाने लगे, तब बीच में ही हम उसको मिल जावें; और उससे यह प्रकट करें कि मार्ग भूल कर हम इधर उधर भटक रहे थे; और इतने में तू हम को यहां मिल गई! बस, इस प्रकार उससे अचानक मिल कर फिर उसी के साथ वसुभूति के बिहार की ओर चले जावें। इस प्रकार जब मार्ग में हम उसके साथ चलेंगे, तब अवश्य ही बीच में हमारी उसकी कोई न कोई बातचीत होगी; और फिर उसी बातचीत में हम को वृन्दमाला से उसकी स्वा-मिनी का भी कोई न कोई वृत्तान्त आवश्य ही मालूम होगा। फिर जो वृत्तान्त हम को उससे मालूम होगा, उसका

आगे चल कर हम अपने कार्य में बहुत अच्छा उपयोग कर सकेंगे । बस, इस प्रकार मन ही मन व्यूहरचना करते हुए आप वहां से चले: और राजप्रासाद् के पश्चाद्भाग की ओर जाकर चक्कर काटने लगे । इस विषय में उनको कोई शङ्का थी ही नहीं कि वसुभूति ने आज वृन्दमाला को रात के समय मिलने के लिए बुलाया है, अथवा नहीं; क्योंकि उनको इस बात का दृढ़ विश्वास था कि, वसुभूति ने अपने पत्र में अवश्य लिखा होगा कि, "तू आज रात को मुझ से आकर मिल ।"

लगभग पहर भर रात गई होगी कि वृन्दमाला सचमुच ही राजमन्दिर के पश्चाद्भाग के लघुद्वार से बाहर निकली । चाणक्य उसकी निगरानी पर थे ही । उन्होंने उसे बाहर निकलते हुए देखा; और साथ ही साथ यह भी देखा कि, जैसे द्वार के भीतरी ओर वह किसी से कुछ गुप्त बात कह कर बाहर निकल रही हो । चाणक्य उस द्वार से ख़ास तौर पर दूर खड़े थे, जिससे ऐसी रात के समय राजमहल के आसपास घूमते हुए उनको कोई देख न पावे कि, यह मनुष्य राजमन्दिर की ही किसी व्यक्ति की प्रतीक्षा में इधर घूम रहा है ।

अस्तु । उनके अनुमान के अनुसार वृन्दमाला द्वार से बाहर निकल कर वसुभूति के बिहार की ओर चल दी । उसके साथ एक परिचारक मात्र था । चाणक्य ने सोचा कि, वृन्दमाला जब तक बहुत दूर तक आगे न निकल जावे, तब तक हम को उसके सामने जाकर उसे न छेड़ना चाहिए । क्योंकि यदि हम ऐसा करेंगे, तो वह समझेगी कि, हम यहीं कहीं ख़ास उद्देश्य से घूम रहे थे; और मार्ग भूल जाने का सिर्फ़ बहाना मात्र कर रहे हैं । इसलिए ऐसी भावना उसको न होने देना चाहिए । यह सोच कर उन्होंने उसको कुछ दूर तक मार्ग में चलने दिया; और फिर एकदम उसके सामने जाकर इस प्रकार एक चक्कर लगाया

कि जैसे भूल से लौट रहे हों। फिर इसके बाद चाणक्य बिलकुल उसके मार्ग में आ गये, जैसे सामने से आ रहे हों! इसके बाद वृन्दमाला के पास से निकलते हुए वे बिलकुल विरुद्ध दिशा की ओर थोड़ी दूर चले गये; और फिर एकदम कुछ स्मरण सा करके पीछे लौटे; और वृन्दमाला के पास ही जाकर जोर से बोले, "कौन, वृन्दमाले? तू यहाँ कहाँ? अरे, मैं बड़ी बुरी तरह से भटक रहा हूं; परन्तु भगवान् कैलासनाथ ने मानो इस समय मुझे मार्ग बताने के लिए ही तुझे यहाँ लाकर उपस्थित कर दिया! वृन्दमाले, भिक्षु वसुभूति का पत्र देकर जब मैं और सिद्धार्थक तेरे यहाँ से वापस जा रहा था, तब रास्ते में चंडिकेश्वरी के मन्दिर के पास से मैं जा निकला। वहाँ मन्दिर के सामने पहुँचते ही स्वाभाविक ही मुझे यह इच्छा हो आई कि, मन्दिर में जाकर देवी जी के दर्शन ही कर लूं। सिद्धार्थक ने मुझे मना किया था कि, यहाँ बलिदान के नाम पर मेषादिकों की हत्या बहुत होती है—तुम वहाँ मत जाओ; पर मुझे चंडिकेश्वरी के दर्शन की बड़ी इच्छा हुई; और मैं भीतर चला गया। क्या बतलाऊं—उस भिक्षु की अवज्ञा का फल मुझे मिल गया। मैं मन्दिर के न जाने किस द्वार से बाहर निकला कि, सिद्धार्थक मुझे बाहर कहीं दिखाई ही नहीं दिया। मैं फिर मन्दिर में चला गया; और इधर उधर घूम कर उसी पहले द्वार का पता लगाने लगा कि, जिस द्वार पर मैंने सिद्धार्थक को छोड़ा था, परन्तु मैं ऐसे कुछ भ्रम में पड़ गया कि, वह द्वार मुझे किसी प्रकार भी नहीं मिला। तब प्रत्येक द्वार से बाहर निकल निकल कर मैं सिद्धार्थक को देखने लगा; पर सिद्धार्थक मुझे नहीं मिला। अन्त में निरुपाय हो गया; और मन्दिर से बाहर निकल कर इधर उधर भटकने लगा। विहार का मार्ग मुझे नहीं मिला। इतने में तू मुझे यहाँ दिखाई दे गई। अब मेरे जी में जी आया। वृन्द-

माले, तू इस समय कहाँ जा रही है? मैं तो बिलकुल हैरान हो गया। तू क्या वसुभूति के यहाँ तो नहीं जा रही है? यदि वहीं जा रही हो, तो मुझे भी साथ लिये चल। मैं जब सिद्धार्थक के साथ तेरे पास आया था, तब विहार की ओर जाने का सारा मार्ग मैंने ध्यान में रख लिया था; पर कोई लाभ न हुआ; क्योंकि जिस मार्ग से मैं तेरे यहाँ आया था, उसी मार्ग से वापस नहीं जा रहा था, इसीलिए यह भूल हुई; और मैं इधर उधर भटकता रहा!"

यह सुन कर वृन्दमाला को उस ब्राह्मण पर बड़ी करुणा आई; और वह उससे बोली, "ब्राह्मणश्रेष्ठ, मैं आपको यहाँ मिल गई, यह सचमुच ही बहुत अच्छा हुआ, क्योंकि आप बिलकुल विरुद्ध दिशा को जा रहे थे। अच्छा, अब हमारे साथ चलो। मैं गुरु जी के ही पास जा रही हूँ। अभी तुमने हम को जो पत्र जाकर दिया था, उसमें उन्होंने मुझे दर्शन के लिए बुलाया था। सचमुच ही, यदि इस समय आप मुझे यहां न मिल जाते, तो आप को बहुत हैरान होना पड़ता। आप यदि इसी दिशा की ओर गये होते, तो सारी रात आपको भटकना पड़ता। अस्तु। यह अच्छा ही हुआ, जो मैं मिल गई। अब आप मेरे साथ चलें। मैं आप को उस कैलास-नाथ के मन्दिर में बिलकुल सुरक्षित रूप से पहुँचा दूंगी। भगवान् वसुभूति और सिद्धार्थक दोनों आप की चिन्ता में होंगे। यही नहीं, बल्कि सिद्धार्थक को उन्होंने शायद दुबारा भी आप को ढूंढ़ने के लिए भेजा होगा।"

"क्या करूं? मैं लाचार हो गया। जिस द्वार से भीतर गया, वह द्वार फिर मुझे मिला ही नहीं। बड़े भ्रम में पड़ गया। मुझ को भी बड़ा खेद हो रहा है; पर क्या करूं। इतना विस्तृत नगर और मैं नवीन आदमी! मार्ग ही न मिला।"

इतनी बातचीत होने के बाद फिर दोनों अपने मार्ग में आगे बढ़े। कुछ देर बाद चाणक्य उससे बाले, "वृन्दमाले, कल तूने अपनी स्वामिनी के विषय में गुरु जी के सामने जो निवेदन किया, उसे सुन कर मुझे बड़ा खेद हुआ। तेरे चले आने के बाद वसुभूति से इस बिषय पर मेरी बहुत सी बातचीत हुई; उन्होंने तेरी स्वामिनी का पहले का भी सारा वृत्तान्त मुझे बतलाया, जिसे सुनकर मुझे और भी विशेष खेद हुआ। देखो तो-बेचारी पर कैसा संकट आया !"

"संकट तो अवश्य आया;" वृन्दमाला चाणक्य से कहती है, "पर उस संकट के विषय में अब शोक अथवा क्रोध करने से क्या लाभ हो सकता है ? मेरी स्वामिनी अब सनक में आकर जिस प्रकार की उलटी-पलटी प्रतिज्ञाएं कर रही है, उनसे अब कुछ लाभ नहीं हो सकता। हां, उसकी हानि अवश्य हो सकती है।"

"वृन्दमाले, ऐसा क्यों कहती है ?" चाणक्य उसको उत्तर देते हैं, "स्त्रियां जो प्रतिज्ञा करती हैं, वे क्या उनसे पूरी नहीं हो सकती ? हां, यह बात सच है कि, मुरादेवी को अब ऐसी प्रतिज्ञाएं न करनी चाहिएं; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, स्त्रियों की की हुई प्रतिज्ञाएं अच्छी तरह पूरी होती हैं; और इतिहास मे ऐसे बहुत से उदाहरण भी मौजूद हैं। वृन्दमाले, देख, मुरादेवी का इसमें कुछ भी अपराध नहीं था, और व्यर्थ में उसके नाम को और उसके पितृकुल को कलंक लगाया गया। यही नहीं, बल्कि उसके नवजात पुत्र की हत्या भी अत्यन्त अन्याय के साथ कराई गई; इससे अधिक अब दीर्घद्वेष के लिए और क्या कारण हो सकता है ?"

चाणक्य ने कुछ आवेश के साथ ये वचन कहे; इसलिए वृन्दमाला कुछ चमत्कृत सी हुई; और उस अन्धकारमय रात्रि

में वह उनकी चेष्टा की ओर कुछ विलक्षण दृष्टि से देखने लगी। इसके बाद कुछ देर तक वह कुछ भी नहीं बोली। परन्तु फिर इस प्रकार कहने लगीः—

"ब्राह्मणश्रेष्ठ, आप जो बात कहते हैं वह बिल्कुल सच है और हम भी ऐसा ही समझती हैं। परन्तु जैसे पर्वत किसी के ऊपर फट पड़े और वह उसके नीचे दब कर मर जावे, ऐसा हाल इस समय हमारी स्वामिनी का है। राजा ने ही जहां अन्याय किया, वहां हम क्या कर सकती हैं? अब न्याय किस-के पास मांगने जावें, और क्या करें?"

"वृन्दमाले, तेरा यह कथन सच है; पर भगवान् कैलासनाथ उसके ऊपर भी न्याय देने को तैयार हैं। उन्हीं का नाम लेकर यदि हम उद्योग में लग जायें, तो ऐसा नहीं हो सकता कि, सफलता प्राप्त न हो।"

कुछ देर ठहर कर चाणक्य फिर उससे बोले, "वृन्दमाले, तेरी बातों से मुझे ऐसा मालूम होता है कि तू अपनी स्वामिनी के लिए सब कुछ करने को तैयार है।"

"हां, अवश्य। इसमें कोई सन्देह नहीं। मैं उसके लिए प्राण तक देने को तैयार हूँ। और अधिक क्या कहूँ?"

"वाह! स्वामिभक्ति ऐसी ही चाहिए। तुझ को देख कर पहले ही मैंने जान लिया था कि तू सच्ची स्वामिभक्त है। नहीं तो जिस स्वामिनी से असन्तुष्ट होकर राजा ने स्वयं उसे बन्दी-गृह में डाल दिया, उस स्वामिनी के विषय में कौन सी दासी इतनी चिन्ता रख सकती है? यह प्रशंसा सुन कर वृन्दमाला बहुत ही सन्तुष्ट हुई, और कहने लगी कि "विप्रवर, इसमें मेरी क्या विशेषता? यह तो मेरा धर्म ही है।"

"हां, हां," चाणक्य एकदम बीच में ही कहते हैं, "धर्म तो

अवश्य है; पर उसका पालन करनेवाले सेवक आज-कल बहुत कम हैं। बस, यही विशेषता है।"

इसके बाद कुछ समय तक दोनों बिलकुल चुपचाप चलते रहे। फिर चाणक्य उससे बोले, "वृन्दमाले, तू अपनी स्वामिनी की रक्षा के लिए जिस प्रकार चाहे जो कर सकती है, उसी प्रकार उसके किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए भी क्या तू हर एक प्रकार का साहस कर सकती है?"

"हां, ज़रूर कर सकती हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं। मै तो यहां तक कहती हूँ कि, देवी जी आज जो बात पागल की भांति बड़बड़ा रही हैं, वही बात यदि सुसंगत और साध्य मुझे दिखाई देती, तो मैं उसके कार्य में सब प्रकार की सहायता कर सकती थी; पर अब क्या? अब तो उसका कथन एक प्रकार से पागल का प्रलाप ही कहा जायगा। वह कहती है कि, मैं नन्दकुल का नाश कर दूंगी; और उसकी जगह अपने पितृकुल का कोई राजा स्थापित करूंगी। पर यह कैसे सम्भव है? हां, यदि उसका निज का लड़का होता, तो अवश्य ही ऐसा हो सकता था। पर अब कुछ नहीं हो सकता।"

चाणक्य ने उसके अन्तिम कथन की ओर कुछ बहुत ध्यान नहीं दिया; और बोले, "मतलब यह कि यदि तुझे यह मालूम हो जाय कि उसका लड़का जीवित है, और उसी के लिए वह प्रयत्न कर रही है, तो तू अवश्य ही उसको सब प्रकार की मदद देगी? ठीक। वृन्दमाले! तू सचमुच ही बड़ी स्वामिभक्त दासी है और तेरे समान स्त्री की जहां तक प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।"

चाणक्य के ये अन्तिम शब्द सुन कर वृन्दमाला बहुत ही हर्षित हुई।

सातवाँ परिच्छेद

पहला डग।
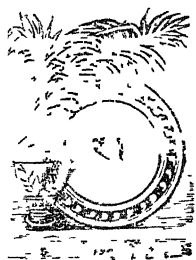
जा धनानन्द अपने प्रासाद के सौध पर बैठा हुआ नगरी की मौज देख रहा है। पास में दासदासी और परिचारकवृन्द बहुत थोड़ा है। ऐसा जान पड़ता था कि, जैसे परिचारकवृन्द के नित्य सहवास से उद्विग्न होकर ही आज उसने बहुतों को अपने पास से अलग कर दिया है; और शान्ति के साथ यहां एकान्त में बैठा हुआ मन ही मन कुछ विचार कर रहा है, अथवा नगरप्रेक्षण से होनेवाले आनन्द का अनुभव ले रहा है। कुछ देर बाद मानो उसके मन में यह आया कि, अब जो ये थोड़े से लोग पास हैं, इनको भी भगा देना चाहिए; और इसी विचार से उनकी ओर देख कर उनको वहां से चले जाने की आज्ञा दी। उस आज्ञा को सुन कर उनमे से और भी कुछ लोग चले गये। अब सिर्फ दो आदमी वहां रह गये। एक द्वार में प्रतीहारी, और दूसरा द्वार के भीतर की ओर वेत्रवती नामक एक दासी, बाकी सौधप्रान्त बिलकुल निर्मक्षिक हो गया। धनानन्द के मन की दशा इस समय कुछ विचित्र सी दिखाई दे रही थी। नीचे चारों ओर नगर का विस्तार फैला हुआ है; और उसमें नागरिकों के नानाविध व्यवसाय का कलरव मचा हुआ है। परन्तु ऐसा जान पड़ता था कि, नगर के उस दृश्य की की ओर राजा का कोई विशेष ध्यान नहीं है। उसका मन किसी दूसरी ही ओर लग रहा था। उसकी चेष्टा से ऐसा मालूम हो

रहा था कि, जो विचार इस समय उसके मन में आ रहे हैं, वे उसके लिए कोई विशेष आनन्ददायक नहीं। किन्तु इसके विरुद्ध उसके मन को मानो किसी प्रकार की उत्सुकता सी हो रही थी; और उसी उत्सुकता के कारण की खोज में वह लगा हुआ था। इसके सिवाय यह भी दिखाई दिया कि, उस उत्सुकता का कारण कोई न कोई भय है। जैसे उसको यह ख़याल हो रहा हो कि, उसके ऊपर बहुत जल्द कोई न कोई दुःख; कोई न कोई अरिष्ट, आनेवाला है; और उसी के कारण वह इस समय बहुत चिन्तित हो रहा है। वास्तव में उस समय राजा के लिए इस प्रकार के भय अथवा चिन्ता का कोई कारण नहीं था। किसी दिशा की ओर से भी, किसी अरिष्ट की सम्भावना की वार्ता नहीं थी। बल्कि राजा उस समय केवल सुखावस्था में नगर की शोभा देखने की इच्छा से ही वहां बैठा हुआ था। फिर भी एकाएक उसके मन में उपर्युक्त प्रकार का उत्सुकतापूर्ण और भयप्रद विचार आया। इसका कारण क्या है? राजा, इस प्रकार के विचारों से तो क्या—प्रत्यक्ष भयप्रसंग उपस्थित हो जाने पर भी डगमगाने वाला न था। परन्तु क्या किया जाय—कभी कभी मन की दशा ही ऐसी हो जाती है कि, उस समय मन में जो विचार आने लगते हैं, वे बड़ी बुरी तरह से मन को ग्रस्त कर लेते हैं। वे जल से मिश्रित धूलि की भाँति केवल झाड़ने से दूर नहीं होते। चाहे जितना झाड़िये, वे अपना बुरा-भला प्रभाव अपनी जगह पर अवश्य ही कायम रखते हैं। राजा धनानन्द ने भी, अपनी ओर से, उपर्युक्त सब विचारों को अपने मन से दूर करने का प्रयत्न किया; परन्तु इसमें उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। यही नहीं, बल्कि जैसे जैसे वह उन विचारों को दूर करने का प्रयत्न करने लगा, वैसे वैसे ही वे विचार उसके मन में और भी

अधिक चिपटने की कोशिश करने लगे। इसके बाद उसको अपने उन विचारों में ही कुछ खेदमिश्रित आनन्द भी मालूम होने लगा। बस, इसी से उसने सोचा कि, हमारे पास जो ये परिचारक इत्यादि मौजूद हैं, उनकी इस समय कोई आवश्यकता नहीं; और इसी कारण उसने उनको वहाँ से अलग कर दिया; और स्वयं अपनी उसी विलक्षण मनोदशा में अकेला वहाँ बैठा रहा। इतने में वेत्रवती धीरे से ही उसके पास आई; और अत्यन्त नम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर और घुटनों को पृथ्वी पर टेक कर बोली, "देव, अन्तःपुर की कोई परिचारिका एक पत्रिका ले आई है; और कहती है कि, उस पत्रिका को स्वयं महाराज के ही हाथ में देने के लिए देवी ने आज्ञा दी है। विनयंधर कंचुकी ने उसको यह कह कर दरवाजे पर ही रोक रखा है कि, पहले महाराज की मनोदशा जान कर और उनकी आज्ञा लेकर आता हूँ; और तब तुझे भीतर जाने दूंगा। अब महाराज की जो आज्ञा हो!"

वेत्रवती का उक्त भाषण सुनते ही महाराजा धनानन्द मानो कुछ भान पर आया, और फिर एकदम उससे बोला, "वेत्रवति, क्या कहती है—देवी के यहाँ से परिचारिका आई है? और, वह पत्रिका मेरे पास लाकर देने को भीतर आने के लिए आज्ञा माँग रही है? देवी की परिचारिका—और इस समय पत्रिका लेकर आई है? बात क्या है?" इस प्रकार राजा ने कुछ वेत्रवती को सम्बोधन करके, और कुछ अपने ही आप कहा; और फिर कुछ देर के लिए चुप हो रहा। वेत्रवती भी जहाँ की तहाँ खड़ी रही। अन्त में राजा धनानन्द ने स्वयं सोचा कि, हम यदि इसी प्रकार बैठे हुए अपने इन भयप्रद विचारों में फँसे रहेंगे, तो ये विचार और भी बढ़ कर अन्य अनेक विचार उत्पन्न करेंगे। इससे यही अच्छा होगा कि यह नवीन कार्य जो आ

गया है, उसकी ओर ध्यान दें, तो उसमें मन लग जाने से हमारे ये वर्तमान विचार दूर हो जाँयगे। यह सोच कर राजा ने वेत्रवती से कहा, "वेत्रवति, जा! विनयंधर से कह कि, वह उस परिचारिका को भीतर आने दे; और तू उस परिचारिका को ले आ।"

आज्ञा होते ही वेत्रवती गई, और उस परिचारिका को भीतर ले आई। परिचारिका ने वहाँ आते ही महाराज के सामने यथोचित रीति से जानुदेपन किया, और मस्तक पर अंजलि रख कर निवेदन किया, "देव, देवी ने यह पत्रिका दी है, और यह आज्ञा मुझ को दी है कि. महाराज इस पत्रिका को पढ़ कर जो कुछ आज्ञा करें, वह मुझ से बहुत जल्द आकर बतला। इसलिए अब महाराज इस पत्रिका को पढ़ कर इस गरीब दासी को आज्ञा दें।"

राजा धनानन्द ने उस परिचारिका की ओर एक बार देखा, और उसे ऐसा मालूम हुआ कि, यह परिचारिका उसके सदैव के परिचय की नहीं है। हाँ, उसको यह स्मरण अवश्य आया कि, कभी न कभी एक बार हमने इसको कहीं देखा अवश्य है; पर उसे यह याद नहीं आया कि, इसको कहाँ देखा है। फिर भी परिचारिका के विषय में विशेष चौकसी न करते हुए उसने उस पत्रिका को खोला; और मन ही मन उसे पढ़ने लगा।

"स्वस्ति! महाराज को मेरे इस पत्र-लेखन से अवश्य ही अत्यन्त क्रोध होगा। कदाचित् यह भी मन में आवे कि, इस चरणदासी को अभी तक जिस प्रकार रखा, उसी प्रकार आगे भी रखा जाय। परन्तु एक बार दर्शन देकर कम से कम इस दासी की प्रार्थना तो अवश्य ही सुन ली जाय। कुमार सुमाल्य के यौवराज्याभिषेकोत्सव के आनन्द में भी जब कि इस दासी का स्मरण हुआ; और इसको बन्धमुक्त किया, तब अवश्य ही

यह स्पष्ट है कि, आर्यपुत्र को इस दासी का सर्वथा विस्मरण नही हुआ है। जिस प्रकार स्वातिबिन्दु की प्राप्ति के लिए चातकी अथवा अपने पति के पुनर्दर्शन के लिए (निशा-समय में वियुक्त होनेवाली) चकोरी अत्यन्त उत्सुक होती है, उसी प्रकार यह दासी मुरा आर्यपुत्र के दर्शन की प्रतीक्षा कर रही है। विशेष, आर्यपुत्र सब प्रकार से समर्थ हैं।"

पहले पहल धनानन्द ने उस पत्र की कुछ पंक्तियां जब पढ़ीं तब उनके ध्यान में यह नहीं आया कि, यह पत्र किसका है: परन्तु जब वे आधा पत्र पढ चुके, तब उनको पत्र-लेखक के विषय में कुछ संशय मात्र हुआ, फिर इसके बाद अन्तिम दो पंक्तियों में वह संशय भी दूर हो गया; और उन्हें स्पष्ट ही मालूम हो गया कि, पत्र किसका है। पत्र ले आनेवाली परिचारिका पास ही खड़ी थी। उसकी ओर धनानन्द ने एक बार देखा: और फिर एक बार पत्रिका की ओर अपने नेत्र फिराये। इसके बाद उन्होंने उस पत्र को एक बार फिर पढ़ा; और कुछ देर चुपके विचार करते रहे। तत्पश्चात् एकदम उस परिचारिका से कहा, "परिचारिके, जा। तू अपनी स्वामिनी से कह कि, महाराज शीघ्र ही तेरे अन्तःपुर में आते हैं। वेत्रवति, मुरा के अन्तःपुर का मार्ग दिखला।"

धनानन्द के ये वचन सुनते ही वह परिचारिका और वेत्रवती, दोनों ही इस प्रकार खड़ी रहीं कि, जैसे कोई किसी अनपेक्षित आकाशवाणी को सुन कर चकित हो जावे, अथवा विद्युल्लता के आघात से कोई बिलकुल जीवहीन हो जावे। परन्तु इतने में वह परिचारिका शीघ्र ही अपने भान पर आई; और यह सोचा कि, अब मैं बहुत जल्द जाकर यदि महाराज के तुरन्त अन्तःपुर में आने की आज्ञा की शुभ वार्ता अपनी स्वामिनी को सुनाऊंगी, तो वह अत्यन्त आनन्दित होगी—बस,

यह सोच कर वह तुरन्त वहाँ से चल दी; और मुरादेवी के अन्तःपुर की ओर दौड़ती ही गई। परन्तु हाँ, वेत्रवती का आश्चर्य अभी दूर नहीं हुआ। वह मानो यही सोचती हुई रह गई कि, जो शब्द अभी मैंने सुने, वे सचमुच ही जागृत अवस्था में मेरे कानों में आये, अथवा मैं यह स्वप्न देख रही हूं। कुछ उसकी समझ में न आया। वह वास्तव में एक पाषाणमूर्ति के समान खड़ी रही। राजा धनानन्द मानो पहले ही से यह ताड़ गये थे कि, इसकी ऐसी दशा अवश्य होगी। अतएव वे कुछ मुसकराते हुए कहते हैं, "वेत्रवति, तू स्वप्न में नहीं है। जागृत अवस्था में है—समझ गई? किरात-कन्या मुरादेवी के अन्तःपुर का मार्ग सचमुच ही मुझे दिखला। उसके दर्शनों की मुझे इच्छा हुई है। आज सत्रह वर्ष से मैंने उसका त्याग किया है; पर अब कुमार सुमाल्य के इस यौवराज्य के उत्सव में उसे दुःख में नहीं रखेंगे।"

राजा ने ऊपर ऊपर से तो यह कारण बतलाया; परन्तु वास्तविक कारण यह था कि, आज इस समय जो अरिष्टदर्शी और भयप्रद विचार उसके मन में आ रहे थे, उनसे मन को अलग करके अन्य किसी स्थान में वह उसको लगाना चाहता था; और इसी लिए उसने सोचा कि, आज पन्द्रह-सोलह वर्ष से हमने जिसका त्याग कर रखा है, वह मुरादेवी जब कि इस समय हम को बुला रही है, तब उसी के पास चल कर हम अपना यह समय क्यों न व्यतीत करें—शायद वहां जाने से हमारा मनोरंजन हो; और इन विचारों से हमें छुटकारा मिल जाय। मन के सामने जब कोई नवीन विषय आ जाता है, तब स्वाभाविक ही उससे उसका रंजन होता है; और उस मनोरंजन के कारण पिछले अप्रिय विचार भी प्रायः दूर हो जाते हैं। बस, यही सोच कर राजा धनानन्द अपने आसन से उठा; और वेत्रवती के दिखलाये हुए मार्ग से चलने लगा।

इधर मुरादेवी की परिचारिका इस आनन्द में आकर, कि आज महाराज की सवारी हमारी स्वामिनी के अन्तःपुर में आवेगी, दौड़ती ही हुई, पागल की भांति, अपनी स्वामिनी के पास पहुँची, और अत्यन्त हर्ष के साथ उसको उक्त आनन्द समाचार बतलाया। मुरादेवी ने जब वह समाचार सुना. तब पहले क्षण भर—सिर्फ एक क्षण भर—उसे वह सच नहीं मालूम हुआ। इसके बाद जब उसने परिचारिका के चेहरे की ओर दृष्टि डाली, तब उसे उक्त समाचार सत्य ही जान पड़ा। इसलिए तुरन्त ही वह महाराज का स्वागत करने के लिए तैयारी करने को उठी। उसके शरीर पर आभूषण इत्यादि पहले ही से कोई बहुत से न थे; चार-पांच आभूषण थे, उनको भी उसने उतार डाला। उस समय जो वस्त्र वह पहने थी, वह रेशमी था, इस लिए उसको भी उसने उतार डाला; और उसकी जगह; उसने एक सफेद सूती सादी साड़ी पहन ली। गले में एक सिर्फ मौक्तिक माला धारण की। केशरचना इस प्रकार की बना ली कि जो न तो बहुत सुव्यवस्थित थी; और न बिलकुल अस्ताव्यस्त थी। हां, उस केशरचना के ऊपर उसने एक मदनबाण का पुष्प अवश्य धारण कर लिया। इसके बाद वह अपने मुख पर ऐसी छटा लाई कि, जो किसी विरहिणी स्त्री के लिए बिलकुल योग्य थी—आज दस-बारह दिन से क्रोध अथवा मत्सर के विकार जो उसके मुख पर झलक रहे थे, उनको उसने बिलकुल दूर कर दिया। इसके बाद फिर उसने अपना मुख शीशे में देखा कि, जिस प्रकार का भेष वह चाहती है, उस प्रकार का भेष उसका बन गया है, अथवा नहीं। फिर जब उसको पूरा पूरा विश्वास हो गया कि, सचमुच अब मैं किसी विरहिणी स्त्री के समान ही दिखाई दे रही हूँ, तब वह एक ओर खड़ी होकर महाराज के आने की प्रतीक्षा करने लगी। मुरादेवी ने उपर्युक्त

प्रकार का बनाव तो बनाया ही था, इसके सिवाय उसने अपने मन में यह भी सोच रखा था कि, महाराज के आने पर हम उनसे भाषण कैसे करेंगी, कैसे उनके सामने हँसेंगी; और किस प्रकार की चेष्टा बनावेंगी। यह सब उसने सोच रखा था।

अस्तु। मुरादेवी अभी अपना सब बनाव बना कर एक ओर खड़ी ही हुई थी कि, इतने में महाराज की सवारी आ पहुँची। वेत्रवती, नियमानुसार, यह कह कर कि, "इत इतो देवः, यह मुरादेवी श्रीमान् की प्रतीक्षा कर रही है," ज्यों ही दृष्टि की ओट हुई, त्यों ही मुरादेवी एकदम अत्यन्त उद्वेग-जनक स्वर से बोलीः—

"आर्यपुत्र, मुझ को सब प्रकार से अपराधी समझ कर आज तक आपने मेरी उपेक्षा भले ही कर ली; पर अब आगे तो कृपादृष्टि रखें।" यह कह कर वह राजा के चरणों पर गिर पड़ी; और अपने आंसुओं से उनके चरण धोने लगी। मुरादेवी का कंठ इस समय इतना गद्गद् हो गया था; और वह इतने आर्तस्वर से शोक कर रही थी कि, जिसे सुन कर राजा का हृदय एकदम द्रवीभूत हो गया। राजा ने उसे तुरन्त ही उठाया; और कुछ भी न बोलते हुए उसे अपने अंक पर बिठा लिया। इसके बाद जब उसने मुरादेवी के उस करुणार्द्र, परन्तु अत्यन्त सुन्दर, चेहरे की ओर देखा, तब उसका चित्त स्वाभाविक ही उसकी ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। इस समय मुरादेवी की मनोहरता को न पूछिये! वह एक सुन्दर शुभ्र वस्त्र पहने हुए थी, अलंकार उसके शरीर पर एक भी नहीं था; और विरहिणी के लिए योग्य सिर्फ एक पुष्प धारण किये हुए थी। ऐसी दशा में उसका वह निसर्ग मधुर स्वरूप स्वाभाविक ही अत्यन्त चित्ताकर्षक था। सच ही है, स्वाभाविक सुन्दर स्वरूप को बाहरी अलंकारों की क्या आवश्यकता?

उसमें भी, वह इस समय प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो चुकी थी; इस कारण वह शुभ्र वस्त्र, वह शुभ्र, परन्तु अत्यन्त सतेज, मौक्तिक माला, वह मदनबाण का पुष्प, इत्यादि सामग्री अत्यन्त शोभा दे रही थी। उस मदनबाण के पुष्प से तो राजा का हृदय अत्यन्त ही विह्वल हो गया। फिर, उसी दशा में मुरादेवी ने अपने कुछ नम्र वाक्यों से, कुछ प्रेमवाक्यों से, भृकुटि-विलासों से, और नेत्र कटाक्षों से तथा विरहोद्‌गारों से धनानन्द को इतना मोहित किया कि, उसको अपने तन-बदन की भी सुधबुध न रही; और वह एकाग्र होकर उसके रूप-सुधा का पान करने लगा। मुरादेवी ने पन्द्रह-सोलह वर्ष बाद कारागार से निकल कर आज पहले ही पहल वह पत्र लिख कर उसको राजा के पास भेजने का साहस किया था; और आज ही उसे इतनी सफलता प्राप्त हो गई! उसने सोचा था कि, आज हम एक पत्रिका लिख कर महाराज के पास भेजेंगी, और उससे यदि कुछ लाभ हो जायगा, तब तो ठीक ही है, अन्यथा फिर एक पत्रिका लिखेंगी, फिर भी यदि राजा कुछ ध्यान न देंगे, तो फिर उसी प्रकार लिखूंगी, कभी न कभी तो हमारा प्रयत्न सफल होगा हो, और महाराज अवश्य हमारे महलों में आवेंगे। एक बार जब वे हमारे महलों में आ जायँगे, तब फिर हम अवश्य ही उनके सामने सुन्दर सुन्दर वचन कह कर उनको अपने वश में कर लेंगी। बस, इसी विश्वास से उसने आज महाराज को पत्र लिखा था और इस समय, जब कि उसने देखा कि, उसका उक्त विश्वास पूर्णतया सफल हुआ, तब उसको स्वाभाविक ही अत्यन्त आनन्द हुआ। परन्तु उसने अपने उस आनन्द को राजा के सामने प्रकट नहीं होने दिया। उसने इस समय अपने भाषण से, अपने हावभावों और चेष्टा से, सिर्फ इतना ही प्रकट किया कि, महाराज ने, उसकी भूर्ज-

पत्र पर लिखी हुई पत्री को पाकर, तुरन्त ही उसके ऊपर यह कृपा की; और वह उनके चरणों पर गिर कर कृतकृत्य हुई. महाराज ने उस पर प्रेम दर्शाया, इसके लिए वह उनकी बहुत ही कृतज्ञ है। इसके अतिरिक्त और कोई भी आनन्द का भाव उसने अपनी ओर से प्रकट नहीं होने दिया। परन्तु धनानन्द के मन पर उसकी उन चेष्टाओं का ही बडा विलक्षण प्रभाव पड़ा, और वह एकदम उससे बोला, "प्रिये, बस, अब, अब अधिक शोक मत करो। जो बात हो गई, सो हो गई—अब उसके लिए शोक मत करो। वह समय ही ऐसा था; मेरी बुद्धि भी ठिकाने नहीं रही; पर आज जब से मैंने तुझ को देखा, मेरी चित्तवृति बदल गई है। सत्रह वर्ष के वन्दिवास से तेरी जो विरहदशा हो रही है, उसको देख कर मुझे भी अब ऐसा ही मालूम हो रहा है कि, उस समय सचमुच ही मेरी बुद्धि ठिकाने पर नहीं रही। अन्यथा तेरा प्रेम इतना अचल कैसे रह सकता था ? कुछ चिन्ता मत करो। यदा-कदाचित् तेरे हाथ से कोई अपराध भी हो गया हो, पर अब उसका कोई विचार नहीं—मेरे ही हाथ से कोई अविचार हो गया हो, तो तू भी अब उसका ख़्याल मत कर। उसका जो कुछ प्रायश्चित्त मिलना था वह तुझ को और मुझ को, दोनों को मिल चुका। अब उसको भूल जाना ही कर्तव्य है। सो हम दोनों ही किसी न किसी तरह भूल जावें ! प्रिये मुरे, तुझ को मैंने व्यर्थ ही के लिये कष्ट दिया न ?"

"आर्यपुत्र, मैं भला यह कैसे कह सकती हूँ ? आप के हाथ से अन्याय अथवा अदूरदर्शिता कैसे हो सकती है ? मैं तो यही कहूँगी कि, आप के हाथ से अन्याय कभी नहीं हो सकता। यह सब मेरे कर्मों का फल है। मेरे दुर्भाग्य से सत्य-स्थिति आप को मालूम नहीं हुई। इसके लिए मैं क्या करूँ; और आप भी क्या करें ? आप को मैं दोष नहीं दे सकती। दोष

मैं अपने प्राक्तन को देती हूँ। परन्तु आपके चरणों में इतना निवेदन मैं अवश्य करूंगी कि, मैं इस वन्दिवास अथवा लोकोपवाद के योग्य नहीं थी। मैं किरात राजा की कन्या—एकलौती कन्या—हूँ, जिसका आप ने क्षात्र धर्म से—गान्धर्व विधि से पाणिग्रहण किया है, और आज मेरे बड़े भाग्य का दिन है कि, मैं फिर महाराज का दर्शन करके अपने नेत्रों को तृप्त कर रही हूँ। इसलिए अब आगे तो अवश्य ही महाराज की मुझ पर पूर्ण कृपादृष्टि रहे।"

ये वचन कहते हुए मुरादेवी की चेष्टाएं इतनी निसर्ग-मनोहर थीं; उसका सम्पूर्ण बर्ताव इतना चित्ताकर्षक था: और दृष्टिक्षेप तथा भृकुटिविलास वह इतनी मनोहरता के साथ कर रही थी कि, जैसे कोई चतुर व्याधा किसी कृष्ण मृग को अपने जाल में फँसा रहा हो! मृगा कदम कदम पर व्याध के जाल में फंसता जा रहा है, परन्तु फिर भी उसके मधुर वेणुनाद पर लुब्ध होकर स्तब्ध खड़ा हो रहता है: और उसके बाण से विद्ध होता है, अथवा उस पाश में ही जाकर पूर्णतया फँस जाता है। धनानन्द की भी ऐसी ही कुछ दशा हुई। वह मुरा की मधुर मुरली से मोहित हो गया, उसके नेत्रकटाक्षों से विद्ध हो गया; और उसके वाक्पाश में पूर्णतया फँस गया। सत्रह वर्ष पहले जिस समय उसका सेनापति मुरादेवी के पिता को जीत कर उसको हरण कर लाया था, उससे भी अधिक आज वह, इस प्रौढ़ावस्था में, राजा को रमणीय दिखाई दी; और वह उससे बोला:—

"प्रिये मुरे, तू अब बिलकुल शंका मत कर। मैं आज की रात तेरे ही मन्दिर में रहूँगा। आज रात का उपाहार भी तेरे ही भवन में तेरे साथ करूंगा। लेकिन अब तू बीती बातों की याद मत कर, और मुझे दोष न दे—मैं भी तुझे न दूंगा। मैंने सुमाल्य

का यौवराज्याभिषेक किया ही है। अब कुछ दिन तक उसी को राजकाज करने के लिए कहूँगा; अमात्य राक्षस और सेनापति भागुरायण के तंत्र से वह राजकाज चलावेगा; और मैं तेरे साथ सुख के दिन बिताऊंगा। बस, अब तो ठीक है न ?" इतना कह कर उसने मुरादेवी को छाती से लगा लिया; और उसके आंसू पोंछ कर उसका समाधान किया। इसके बाद फिर वह कुछ अपने ही आप, और कुछ मुरादेवी को सम्बोधन करके बोला, "देखो, कैसा विचित्र अवसर आया। जिस समय कि मैं यह ख़याल कर रहा था कि, शीघ्र ही कोई न कोई भयंकर संकट हम पर आवेगा; और ऐसे ही भयंकर विचारों में निमग्न था, उसी समय वैसा तो कुछ हुआ नहीं, और मुझ को अपनी एक ऐसी प्रियतमा का पुनर्लाभ हुआ कि, जिसकी मैं इतने दिन से व्यर्थ के लिए उपेक्षा कर रहा था! वह मेरी चिन्ता इस समय कहां चली गई ? ऐसी ही विलक्षण मनोदशा पर विश्वास करके न जाने कितने बेचारे प्राणी धोखा खाते होंगे और जब अन्त में उनकी वह चिन्ता इसी प्रकार के आनन्द में परिणत हो जाती होगी, तब उनको भी मेरे ही समान हर्ष होता होगा। प्रिये मुरे, इस प्रकार का धोखा खाना भी बहुत ही अच्छा है—क्यों न ?"

मुरा कुछ नहीं बोली, बल्कि एक विचित्र तरह से हँसी; और एक ओर देख कर अपने कपाल पर सिकुड़े डाले।

आठवां परिच्छेद

दूसरा डग।

मुरादेवी ने अपनी परिचारिका के द्वारा सहज स्वभाव से ही राजा के पास वह पत्रिका भेज दी थी। परन्तु उसका इतना सुखदायक परिणाम होगा, इसका किसी को भी विश्वास न था। किसी की तो बात ही जाने दो—स्वयं मुरादेवी और उसकी उस परिचारिका को भी ऐसा विश्वास न था। वह परिचारिका कौन थी, जो पत्रिका ले गई थी? वह पाठकों की पूर्व परिचित वृन्दमाला ही थी। अभी दो दिन पहले यही वृन्दमाला अपनी स्वामिनी के विचारों पर चिन्तामग्न होकर वसुभूति के पास, उनकी सम्मति लेने गई थी। उस समय वसुभूति ने उससे यही कहा था कि, तू किसी न किसी प्रकार अपनी स्वामिनी से एक बार मेरी भेट करा दे, फिर मैं सब प्रवन्ध कर लूंगा। तदनुसार वृन्दमाला भी दूसरे दिन इसी विचार में लगी रही कि, वसुभूति से अपनी स्वामिनी की भेट कैसे कराई जाय। बहुत सोचविचार के बाद उसने यही निश्चित किया था कि, सोमवार को जब मुरादेवी कैलासनाथ के दर्शन को जायगी, तब हम कोई न कोई उपाय करके वसुभूति से उसे मिलावेंगी। और वसुभूति से जब एक बार उसकी भेट हो जायगी, तब वे आपही आप इसका सब प्रवन्ध कर लेंगे। वह तो अपने इस विचार में थी; परन्तु उसकी मालकिन अपने किसी दूसरे ही विचार में थी। वह यह विचार कर रही थी कि, हम को अपना

बदला लेने का कार्य ठीक ठीक सिद्ध करने के लिये कौन सा उपाय करना चाहिए; और उस उपाय का उपक्रम किस प्रकार करना चाहिए। इसके लिए अवश्य ही पहले उसने यह सोचा कि, राजा से हमारी भेंट और सम्भाषण किसी न किसी प्रकार होना चाहिए, परन्तु यह हो कैसे? हम यदि स्वयं एक दिन उठ कर चली जावें; और राजा के सामने जाकर खड़ी हो जायँ, तो पहले तो यह बात सम्भव नहीं; क्योंकि एक तो हम सारी लज्जा छोड़ कर राजसभा में, अथवा जहां कहीं महाराज बैठे हों, वहां एकदम चली कैसे जावें? अच्छा, मान लो कि, हम चली भी गईं; पर इस बात का क्या भरोसा कि, उस दशा में हमारा अपमान न होगा? और यदि हमारा अपमान हुआ, तो फिर आगे क्या होगा? सम्भव है, महाराज अब हमारा अपमान न करें; पर सपत्नी जनों की ओर से, अथवा उनके पक्ष के लोगों की ओर से अपमान अवश्य ही होगा। इसलिए अपना स्थान छोड़ कर जाने से हमारा काम कभी नहीं बनेगा। अच्छा, जब हम अपनी जगह से ही नहीं हिलना चाहतीं हैं, तब फिर दूसरा एक उपाय यह भी हो सकता है कि, अचानक हम कहीं महाराज को दिखाई दे जायँ; पर वर्तमान परिस्थिति में यह भी सम्भव नहीं। अन्य सब सपत्नीजनों ने हमको बहिष्कृत कर दिया है; ऐसी दशा में उनमें जा कर मिलना हमारे लिए बिलकुल असम्भव है। और जब तक यह नहीं हो सकता, तब तक, अकस्मात् महाराज यदि हम को कहीं देख भी लेवें, तो इससे लाभ ही क्या? इससे कुछ हमारा इष्ट उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए अपना इष्ट उद्देश्य सिद्ध करने के लिए तीसरा सब से बड़ा उपाय यही है कि, साहस करके, स्वयं महाराज को ही एक पत्र लिखा जाय; और उस पत्र को अपनी परिचारिका के द्वारा भेज कर ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि,

जिससे वह ठीक महाराज के ही हाथ में पहुँचे। इस प्रकार का पत्र जाने से ही हमारे उद्देश्य के सिद्ध होने की कुछ सम्भावना हो सकती है, अन्यथा नहीं हो सकती। इस सम्भावना के अनुसार यदि कुछ हो जाय, तब तो उत्तम ही है, अन्यथा गत सत्रह वर्ष तक हमारी जो हालत रही है, उससे बुरी हालत और क्या हो सकती है ? बस, यही सब सोच करके मुरादेवी ने वृन्दमाला को वह पत्र दिया था; और चुपके से स्वयं महाराज के ही हाथ में देने के लिए उसको सावधान कर दिया था। उसने वृन्दमाला से यह भी कह दिया था कि, तू एकदम यह किसी से न बतलाना कि, मैं कौन हूं: और कहां से आई हूं; बल्कि प्रतीहारी, वेत्रवती और कञ्चुकी इत्यादि से मुगहम तौर पर यही कहना कि. "मैं देवी की परिचारिका हूं" और "देवी ने महाराज को जो पत्र दिया है, वह लेकर आई हूं।" इसमें उसका उद्देश्य यही था कि, "देवी" के दुटप्पू शब्द से महाराज के मन में "मुरादेवी" का भाव आ ही नहीं सकता। इस शब्द से महाराज को सुमाल्य की माता का बोध होगा; और महाराज अवश्य ही बड़ी उत्सुकता के साथ पत्र को खोल कर पढ़ेंगे। महाराज पत्र को जब पढ़ लेंगे, तब उनको अवश्य ही मालूम होगा कि, यह "मुरादेवी" का पत्र है: और फिर जैसा हमारे नसीब में बदा होगा, वैसा होगा। इस प्रकार बहुत दूर तक विचार करके उसने वृन्दमाला को खूब सिखा-पढ़ा कर उसके हाथ से उक्त पत्र भेजा था। उसने यह भी सोचा कि, वृन्दमाला कहीं यह समझ कर पत्र को बीच ही में गायब न कर दे कि, इसमें न जाने क्या अंडबंड लिखा होगा: और इसी लिए उसने उस पत्र को खुल्लमखुल्ला पढ़ कर वृन्दमाला को पहले ही सुना दिया था। इसके साथ ही उसने वृन्दमाला से यह भी प्रकट कर दिया था कि. अब हम को अपनी पिछली बातों पर पश्चात्ताप हो रहा है; और इसी लिए महा-

राज को अपने यहां बुला कर हम उनसे क्षमा मांगना चाहती हैं। साथ ही उसने वृन्दमाला से यह भी जतलाया कि, हमारे मन में जो अंडबंड विचार पहले आये थे, वे अब बिलकुल दूर हो गये, और अब हम को अपने उन विचारों पर बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है।

वृन्दमाला को इस बात का विश्वास नहीं था कि, मुरादेवी के इस पत्र से कोई अच्छा नतीजा निकलेगा; परन्तु उसका यह भी ख़याल नहीं था कि, इसमें कोई कपट-नाटक है—हां, उसने इतना ही सोचा था कि, यदि इससे कुछ अच्छा नतीजा न होगा, तो बुरा भी नहीं होगा—हां, यदि कुछ होगा, तो अच्छा ही होगा। बस, यही ख़याल करके वृन्दमाला ने उस पत्र को महाराज के हाथ में पहुँचा दिया। इसके बाद उस पत्र से क्या परिणाम निकला, सो पाठकों को मालूम ही है। वृन्दमाला ने राजमहल में पहुँच कर अपना नाम नहीं बतलाया; किन्तु अपने को सिर्फ़ "देवी की परिचारिका" बतला कर ही अपना कार्य कर लिया। उसका यह ख़याल कभी नहीं था कि, इस पत्र से महाराज की चित्तवृत्ति में इतना अन्तर पड़ जायगा; और वे एकदम मुरादेवी के महलों में आजायँगे। अवश्य ही जिस बात को हम असम्भव मानते हों; और वही बात होती हुई हम प्रत्यक्ष अपनी आंखों देखें, तो इससे हम को सचमुच ही बड़ा आश्चर्य होगा! यही स्थिति बेचारी वृन्दमाला की हुई। अतएव सब जगह उसने ढिँढोरा पीट दिया कि, आज राजा धनानन्द मुरादेवी के महलों में गये—यही नहीं, बल्कि आज रात को भोजन इत्यादि सर्व विधि भी आप वहीं करेंगे; और फिर कुछ दिन आप उसी के महलों में बने रहेंगे। यह समाचार पाते ही सारे अन्तःपुर में आश्चर्य, खेद और द्वेष, इन्हीं विकारों का साम्राज्य छा गया। सुमाल्य को लगा कर राजा के कुल आठ पुत्र थे; और वे सब

एक ही स्त्री के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुए थे। इसलिए उन सभी की माताओं को आज इस बात पर महा आश्चर्य हुआ कि, मुरादेवी का भाग्य आज अचानक इतना प्रबल कैसे होगया! इसके बाद जब उन्होंने यह सुना कि, इतने दिन तक महाराज ने जिसका नाम तक भी नहीं लिया था, उसी के महल में जाकर अब आप कुछ दिन निवास करेंगे, तब उनको बहुत ही खेद हुआ; और फिर जब यह बात उनके मन में आई कि, दुष्ट मुरा ने अवश्य ही इसके लिए कोई न कोई मांत्रिक उपाय किये होंगे; और यदि ऐसे ही उपाय हम इसको करने देंगी, तो यह मौका पाकर हम सभी का उच्चाटन कर देगी, तब उन सब को बड़ा त्वेष आया। एक तो मुरादेवी के विषय में पहले ही से सब राजमहिलाओं के मन में मत्सर बस रहा था; और उसमें भी अब उनको यह मालूम हुआ कि, उसने इस समय हम सब को ही राजा के प्रेम से वंचित कर दिया; और अकेले ही उसके मन पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। ऐसी दशा में अब उनके मत्सर की सीमा न रही। यह सब कैसे हुआ? चारों ओर चौकसी शुरू हो गई। सब ने समझा कि, शायद कंचुकी, वेत्रवती और प्रतीहारी ने ही भीतर ही भीतर कुछ कपट किया होगा, इसलिए सब राजमहिलाएं उन्हीं तीनों को बुरी बुरी गालियां बकने लगीं। इस पर उन तीनों ने यही कहा कि, हमने महाराज के पास जो पत्रिका पहुँचने दी, उसको सिर्फ इसी ख़याल से पहुँचने दिया कि वह पत्रिका मुख्य देवी के पास से आई होगी; परन्तु उनका यह कथन किसी को भी सत्य नहीं जान पड़ा। सब को यही विश्वास हुआ कि, मुरादेवी ने कपट करके वह पत्रिका भेजी, और उसके कपट में भीतर ही भीतर सम्मिलित हो कर उक्त तीनों व्यक्तियों ने उस पत्रिका के पहुँचने में मदद दी। बस, फिर क्या था—अन्तःपुर में चारों ओर

क्रोध और परिताप के भाव छा गये; और उक्त तीनों कर्मचारियों पर सब रानियां बहुत ही रुष्ट हुईं । बेचारी वृन्दमाला यह सब देख कर बड़े चक्कर में पड़ी । अब उसकी यही समझ में न आने लगा कि, वह अपनी स्वामिनी के इस अचानक आये हुए सौभाग्य पर आनन्द मनावे, अथवा अन्य राजपत्नियां जो उसकी स्वामिनी पर और भी अधिक जलने लगीं, उस पर वह दुःख मनावे ! वह क्या करे, कुछ उसकी समझ में नहीं आया; फिर भी अन्त में अपनी स्वामिनी को सुख में देख कर उसको आनन्द ही हुआ । उसने सोचा कि, हमारी स्वामिनी की सपत्निजनों का यह रोष अब बहुत दिन तक नहीं टिक सकेगा—चार दिन में ये सब इन बातों को भूल जायँगी; और यह समझने लगेंगी कि, जैसे अन्य सब राजमहिषी हैं, वैसे ही यह भी एक है । यह बिचार करके उस समय उसने अपने मन का समाधान किया ।

कुछ मनुष्यों का स्वभाव होता है कि, ज्यों ज्यों उनको चिढ़ाया जाता है, त्यों त्यों उनका तेज और भी अधिकाधिक प्रज्वलित होता जाता है; उनके स्वीकृत कार्य में ज्यों ज्यों विघ्न उपस्थित होते जाते हैं, त्यों त्यों, उन विघ्नों को दूर हटा कर अपने कार्य को आगे बढ़ाने के लिए, उनका उत्साह अधिकाधिक बढ़ता जाता है । मुरादेवी भी कुछ इसी प्रकार की स्त्री थी ; अथवा यों कहिये कि, सत्रह वर्ष वन्दिवास में रहने के कारण उसके मन की अब ऐसी ही कुछ अवस्था होगई थी । अपने पति का मन अपने वश में कर लेने के लिए उसने जो प्रयत्न किया, उसमें उसको आशातीत सफलता प्राप्त हुई; और निस्सन्देह इससे उसको आनन्द भी हुआ; पर जब उसने देखा कि, हमारी इस सफलता को देख कर हमारी सपत्निजनों की जलन और भी अधिक बढ़ गई है; और अब वे हम से और भी अधिक

मत्सर करने लग गई हैं, तब उसे अपने कार्य के विषय में और भी अधिक उत्साह बढ़ा, और उसने सोचा कि, हमारी सौतों का यह मत्सर हमारे कार्यसाधन में सहायता ही करेगा। अतएव उसको बड़ा आनन्द हुआ, पर उस आनन्द में वह फूल नहीं गई। उसने अपना मस्तक पूर्णतया शान्त रखा। क्योंकि वह जानती थी कि, आज जिस अनपेक्षित रूप से हम को यह आनन्द प्राप्त हुआ है, उसी अनपेक्षित रूप से यह आनन्द हम से छीना भी जा सकता है। यह अवसर हम को मिला अवश्य है; पर यदि अपने अविचार से इसको हम योंही नष्ट कर देंगी, तो फिर हमको मुख दिखलाने का भी मौका न रहेगा। हमारी सपत्नियाँ हम को धूल में ही मिला कर रहेंगी। इसलिए इस समय हम को यही प्रयत्न करना चाहिए कि, जिससे महाराज के मन पर इस समय हमारा जो साम्राज्य हो गया है, वह क्षण क्षण पर दृढ़ ही होता जाय। चुप बैठने से लाभ नहीं होगा।

अब रातदिन वह यही ताड़ती रहती कि राजा धनानन्द को क्या मर्जी है, और जैसी उसकी मर्जी होती, उसी के मुताबिक वह सब काम करती थी। उसे जो कुछ कहना होता, राजा के मन की प्रवृत्ति देख कर कहती थी। जब कभी वह देखती कि, राजा को हमारा यह कथन पसन्द नहीं आ रहा है, तब तुरन्त ही फिर वह अपने उस कथन को बन्द कर देती। यही नहीं, बल्कि मौके मौके पर वह राजा को खुश करने के लिए अपनी रुचि के विरुद्ध भी बातचीत कर दिया करती थी। राजा के सामने वह प्रत्येक प्रकार से यह प्रकट करती कि, देखो, अन्य सपत्नियां हमसे कितना द्वेष रखतीं हैं; परन्तु हम उनके विषय में कुछ भी विरुद्ध नहीं बोलतीं। एक बार तो उसने बड़ी ही चतुरता-पूर्ण रचना की।

राजा धनानन्द पलंग पर पड़ा हुआ था; और आप उसकी चरणसेवा कर रही थी। यह बात उसको अच्छी तरह मालूम थी कि, राजा को अभी नींद नहीं आई है। और यह जानकर ही उसने एक दासी से ऐसा कह रखा था कि, तू इसी समय हमारे पास कोई बात कहने के लिए आना। वह दासी उसी समय उसके पास आकर खड़ी हुई; उसे देखते ही मुरादेवी बहुत धीरे से, परन्तु कुछ त्रस्त सी होकर, उसकी ओर मुड़ कर कहती है, "क्यों री मूर्ख, क्या तू नहीं जानती कि, महाराज की अब कहीं जा कर कुछ कुछ आंख लगने लगी है, और तू इतने ही में छुम छुम करती आ गई। ऐसी कौन सी बात मुझ से कहनी थी? बस, यही शिकायत करेगी कि, आज अमुक देवी ने ऐसा किया, अमुक की परिचारिका ने ऐसा ऐसा कहा! कहा होगा—जा इस समय,—यह समय शिकायत सुनने का नहीं है; और न मुझे ऐसी शिकायतें भाती हैं। उन्होंने मुझे बन्दीगृह में डलवा दिया था; और अब महाराज ने हमारा अंगीकार किया है—यह बात भला उन्हें कैसे अच्छी लग सकती है? वे अवश्य ही मेरा अहित चिन्तन करेंगी—किया करें—पर मैं तो क्षण भर भी उनके अहित की बात मन में नहीं लाती हूँ। पति के त्याग कर देने पर पतिव्रताओं की क्या दशा हो जाती है, इसका अनुभव उनको भले ही न हो; पर मुझे भली भांति इसका अनुभव है। मैं कभी भी नहीं चाहती कि, ऐसा ही मौका उन पर भी आवे। बल्कि इसके विरुद्ध, कुछ दिन बाद, मैं स्वयं महाराज से प्रार्थना करूंगी कि, "महाराज, मुझे सुख देने के लिए आप मेरी अन्य सपत्नियों को असुखी न करें।" जा—अब तू यहां से चली जा। मैं तेरी कुछ भी नहीं सुनना चाहती। पगली कहीं की! क्या तू समझती है कि, अपनी सपत्नियों के द्वेष

से मैं क्रुद्ध होऊंगी; और व्यर्थ के लिए अपने मन को दुःख पहुँचाऊंगी ?"

फिर भी वह दासी मुरा से बिलकुल धीमी आवाज़ में कहती है, "देवी, मैं इसलिए आप से कुछ कहने को नहीं आई कि, आपको व्यर्थ के लिए क्रोधित करूं; पर सच तो यह है कि. कुछ बातें ऐसी हैं कि, जिनकी ओर यदि ध्यान न दिया जायगा, तो कोई न कोई भयंकर परिणाम होने की सम्भावना है; और ऐसी कुछ बातें मैंने इस समय सुनी भी हैं; और इसी लिए जल्दी जल्दी से मैं उन को बतलाने के लिए आप के पास आई हूँ—महाराज सो रहे हैं, यह भी एक अच्छा ही है।"

यह सुनते ही मुरा अत्यन्त उत्सुक स्वर से कहती है, "ऐसी तूने कौन सी बात सुनी है? शीघ्रतापूर्वक बतला! अरी ऐसी कौन सी बात हो सकती है, जो महाराज के सुनने योग्य न हो?"

"देवी" वह दासी आगे कहती है, "महाराज के कानों मे न पड़े, ऐसी ही कोई बात है। बहुत भयंकर है। आप पर अन्य सब देवियों का रोष है और इसी लिए महाराज के प्राणों को भी हानि पहुँचाने का उनका उद्देश्य दिखाई देता है; परन्तु देवी, महाराज सचमुच ही नींद में हैं न? नहीं तो और का और हो जाय?"

"नहीं, नहीं—कुछ नहीं होगा। महाराज गहरी नींद में हैं। तू बतला। किन्तु मैं तो यह समझती हूँ. कि चाहे जो हो जाय, महाराज जब तक मेरे महल में हैं, तब तक मैं उनका बाल भी बाँका नहीं होने दूँगी। हाँ, मेरा फिर से त्याग करके जब वे दूसरी ओर चले ही जायँगे, तब फिर मैं क्या कर सकती हूँ? अच्छा, बतला, वह बात कौन सी है? तेरे इस गोलमाल कथन से मैं भाई बहुत घबड़ा रही हूँ!"

इतना सम्भाषण होने के बाद वह दासी मुरादेवी के बिलकुल समीप चली गई; और उसके कान में कुछ खुसपुसाई। उसे सुनते ही मुरादेवी ने बड़ी बुरी तरह से अपना मुँह बनाया और एकदम बड़े ज़ोर से बोली, जैसे उसे इस बात का भान ही न रहा हो कि महाराज सोये हुए हैं—"अरी दुष्टे, तू यह क्या कह रही है! अरे मेरे विषय में क्या उन सब स्त्रियों का यहाँ तक मत्सर भड़क उठा है। नष्टे, चल—यहाँ से जा—न जाने तू क्या क्या आकर मुझ से कहा करती है? अब तू यहाँ से चली ही जा—क्षण भर भी यहाँ खड़ी मत हो। ऐसी पगली है—न जाने क्या क्या सुन कर मुझ से आकर कहती रहती है। यह यदि सच है, तो अब महाराज के जितने भोजन के पदार्थ उधर से आवेंगे, मैं पहले स्वयं खाये बिना कभी उनको खाने नहीं दूँगी; और जहाँ तक हो सकेगा, अब सभी पदार्थ मैं स्वयं अपने हाथ से बना कर उनको खिलाया करूँगी। छिः छिः! मत्सर की यहाँ तक सीमा पहुँच जायगी, कभी मेरे स्वप्न में भी नहीं था! अरी, अब क्या करूँ?"

इतना कह कर उसने शरीर को इस प्रकार हिलाया, जैसे रोमांच हो आया हो; और एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर चुप बैठ रही। ऐसा जान पड़ा कि, मानों अब उसे महाराज को उक्त भयंकर संकट से बचाने की कोई बड़ी भारी चिन्ता हो रही हो; और उसी चिन्ता में वह निमग्न हो गई हो!

धनानन्द वास्तव में निद्रा में नहीं था। सो पाठकों ने ताड ही लिया होगा। उस दासी के साथ मुरादेवी का जो सम्भाषण हुआ, उसे उसने अथ से लेकर इति तक सुना। पहले पहल जब दासी अन्दर आई, और बोली कि, "महाराज सो रहे हैं, यह भी एक अच्छा हुआ," तब उसकी यह बात सुन कर राजा ने सोचा कि, लाओ, अब हम उठ कर बैठ जायँ, अथवा कम से कम यही

प्रकट कर दें कि हम जग रहे हैं; पर तुरन्त ही फिर उसने यह विचार किया कि, अभी सोने का ही बहाना किये रहो, इनकी सब बातें सुन लो, जिससे यह भी मालूम हो जाय कि ऐसी कौन सी बात उसमें है कि जो हमारे सुनने लायक नहीं है; और यही विचार करके उसने और भी ऐसा ही प्रकट करने का बहाना किया कि जैसे सचमुच ही उसे बड़ी गहरी नींद लग रही हो। मुरादेवी बड़ी चतुर थी, उसने तुरन्त ही यह ताड़ लिया; और इससे उसे आनन्द भी बहुत हुआ। उसने सोचा कि, वाह! हमारे व्यूह की रचना बहुत ही अच्छी हुई और इसमें अब पूरी सफलता मिलेगी। जो हो, राजा ने उन दोनों का वार्तालाप अच्छी तरह सुन लिया। परन्तु, हाँ दासी, सुमतिका ने मुरादेवी के कान में क्या कहा, सो वह नहीं सुन पाया। और इससे उसकी उत्सुकता बहुत बढ़ गई। फिर मुरादेवी ने आवेश के साथ सुमतिका से जो भाषण किया, उससे तो उसकी वह उत्सुकता हद दरजे तक पहुँच गई। सुमतिका वहाँ से चली गई; और अब मुरादेवी रोमांचित सी होकर और एक लम्बी साँस छोड़ कर चुप बैठी ही थी कि, इतने में राजा एकदम उठ कर बैठ गया। और मुरादेवी को अपने वक्षस्थल में चिपटा कर बोला, "प्रिये मुरे, सुमतिका के साथ तेरा जो सम्वाद हुआ, उसको मैंने पूरा पूरा सुन लिया है; पर उसने तेरे कान में क्या कहा, सो नहीं सुन पाया। अतएव अब तू वह मुझे बता।"

अब मुरादेवी एकदम घबड़ा सी गई; और थर थर काँपने लगी—उसने ऐसा दिखलाया कि, जैसे वह इस बात पर बहुत डर सी रही हो कि, "देखो—महाराज के कानों में जो बात पड़नी नहीं चाहिए थी, वह बात महाराज ने सुन ली—अब न जाने क्या हो?" इसलिए वह घबड़ाई हुई दशा में ही काँपती हुई आवाज़ में महाराज से बोली—

"आर्यपुत्र, अच्छा होगा कि, आप वह बात मुझ से नहीं पूछें; और न मैं बतलाऊँ।"

"क्यों भला? जब कि वह बात मेरे ही विषय में है, तब उसके सुनने से भला होगा या बुरा?"

"कौन जाने क्या होगा? उसके सुनने पर यदि आपका चित्त शान्त रहा; और जो कुछ करना होगा, वह यदि शान्ति से आपने किया, तब तो अच्छा होगा, अन्यथा बहुत ही भयंकर प्रसंग उपस्थित होगा। जो भी कुछ हो, मैं अपने मुँह से वह बात कभी नहीं कहूँगी। मान लीजिए, यदि वह बिलकुल झूठी बात है, तो व्यर्थ के लिए मुझ पर दूषण लगेगा—आप ही बतलाइये, लगेगा या नहीं?"

"कुछ नहीं लगेगा। तुझ पर क्या दूषण लगेगा? कुछ तू बना कर तो कह ही नहीं रही है।"

"यह सच है; पर मुझे भय तो लगता है?"

"कोई भय की बात नहीं। बतला, क्या बात है?"

"आपकी आज्ञा ही है, तो बतलाती हूं।"

"हां, हां—मेरी आज्ञा ही समझ कर तू बतला। कोई हर्ज नहीं।"

"अच्छा, बतलाये देती हूं। मेरी उसमें क्या हानि है?"

यह कह कर उसने वह बात बतला दी।

धनानन्द की आँखें अंगारे की तरह सुर्ख होगईं।

नवाँ परिच्छेद

पत्र-वाचन ।

चाणक्य और वसुभूति का परिचय घनिष्ठ होता गया। वृन्दमाला प्रतिदिन रात को कम से कम एक दो दिन के अन्तर से तो अवश्य ही वसुभूति के पास आकर अपनी स्वामिनी का वृत्तान्त बतलाया करती थी। चाणक्य भी वहीं पास बैठ कर उस वृत्तान्त को सुनने का मौका कभी भी हाथ से जाने नहीं देते थे। वृन्दमाला का तो चाणक्य पर बहुत ही प्रेम होगया था; और वसुभूति भी उनका बहुत आदर करते थे। उन्होंने चाणक्य से कहा था कि, किसी श्रेष्ठी के द्वारा हम राजदरबार में आपका प्रवेश करा देंगे, परन्तु चाणक्य ने उनसे यही कहा कि, आप अभी इस झगड़े में न पड़ें। क्योंकि उन्होंने यह सोचा कि, यदि हम राज-दरबार में जायँगे, तो सम्भव है कि, कोई हमें पहचान ले; और फिर उस दशा में हमारा उद्देश्य तो एक ओर रह जायगा; बल्कि और का और ही हो रहेगा। इसलिए इस समय हमको दूर ही रह कर सब काम करना चाहिए; और फिर आगे चल कर जैसा मौका होगा, देखा जायगा। सच तो यह था कि, राजसभा में प्रवेश करने की उनकी बिलकुल ही इच्छा नहीं थी। कहना नहीं होगा कि, राज-सभा में प्रवेश करके अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करने और राजाश्रय के प्राप्त करने के उद्देश्य से वे इस समय पाटलिपुत्र में नहीं आये थे। अब तो उनका उद्देश्य यही था कि, किसी न किसी प्रकार मुरादेवी से मिल कर उसको अपने वश

में कर लिया जाय। इसके सिवाय आज की परिस्थिति देख कर उनको यह पूर्ण विश्वास भी होगया था कि, परमेश्वर हमारी प्रतिज्ञा पूर्ण करके हमको सफलता अवश्य ही देगा। इसमें सन्देह नहीं। बस, इसी विश्वास से उन्होंने कम से कम वर्तमान समय के कार्य-क्रम का अपने मन में निश्चय कर लिया। उन्होंने सोचा कि, राजा और उसके कुल का उत्खात करके उसकी जगह चन्द्रगुप्त को स्थापित करने के लिए हम को जो जो उपाय करने हैं, उनमें सब से पहला उपाय यही है कि, राजगृह में भेद उत्पन्न किया जावे; और उस भेद को उत्पन्न करने के लिए ईश्वर ने हमारे सामने एक बहुत अच्छा साधन उपस्थित कर दिया है; और इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि, परमात्मा हमारे अनुकूल है; और वह हमारी सफलता चाहता है। इससे यह स्पष्ट है कि, अब हमको जो उद्योग करना है, उसको छोड़ना कभी न चाहिए। सच पूछो तो पाटलिपुत्र में आते ही हमारे सामने यह चिन्ता उपस्थित होनी चाहिए थी कि, अब हम किस मार्ग से अपने प्रयत्न का प्रारम्भ करें; परन्तु ईश्वर की कृपा से हमारी यह चिन्ता आपही आप दूर होगई; अनायास ही भोजन की थाली हमारे सामने परोसी हुई आ गई है—मुरादेवी का साधन अनायास हमारे सामने आकर उपस्थित होगया है—अब इस साधन को यदि हम भली भांति नहीं पकड़ेंगे; और इससे लाभ उठा कर यदि हम इसका पूरा पूरा उपयोग नहीं कर लेंगे, तो इसमें दोष किसका होगा? बस, यह विचार करके अब वे यह सोचने लगे कि, मुरादेवी से मिलने के लिए वास्तव में इस समय हम को किस उपाय की योजना करनी चाहिए। सिद्धार्थक ने एक बार उनसे यह सूचित किया था कि, मुरादेवी प्रति सोमवार को कैलासनाथ के दर्शन को आती है; और वहीं किसी न किसी युक्ति से उसके दर्शन हो सकते हैं। परन्तु इस प्रकार की भेट

से क्या लाभ ? हम को तो उसकी भेट अन्य ही किसी प्रकार से चाहिए। वैसी भेट जब हो, तभी हमारा कार्य हो सकता है, अन्यथा कैसे हो सकता है ? यह सोच कर चाणक्य ने कैलास-नाथ के मन्दिर में मुरादेवी से भेट करने का विचार बिलकुल रहित कर दिया। किन्तु इसके विरुद्ध अन्य ही किसी मार्ग से उन्होंने उससे भेट करने का उपाय निश्चित किया।

एक दिन रात को वृन्दमाला वसुभूति के यहां से कुछ जल्दी उठी; और अपने राजमन्दिर की ओर चली। चाणक्य भी उसके साथ ही वहां से उठे; और नित्य-नियमानुसार अपने कैलास-नाथ के मन्दिर की ओर न जाकर वृन्दमाला के साथ ही साथ बातचीत करते हुए चलने लगे। वृन्दमाला ने उनसे कहा कि, "आप हमारे साथ रात को क्यों तकलीफ़ करते हैं—हमारा परिचारक हमारे साथ मौजूद ही है !" चाणक्य ने कहा कि, "ख़ैर, कोई हर्ज नहीं, मुझ को अभी नींद नहीं लग रही है; और तुझ से कोई बात भी बतलाना है; और इसी कारण मैं तेरे साथ चल रहा हूँ।" यह कह कर वे उसके साथ चलने लगे। वृन्दमाला मन ही मन विस्मय करने लगी कि, यह ब्राह्मण इतने दिन से हम को मिल रहा है; पर आज ही ऐसी कौन सी बात है, जो मुझे यह गुप्तरूप से बतलाने चला है।

अस्तु। कुछ दूर तक चलने के बाद चाणक्य वृन्दमाला से कहते हैं, "वृन्दमाले, अभी तक तुझ को मैंने यह नहीं बतलाया कि, मैं कौन हूँ, कहां से आया हूँ; किन्तु आज मैं तुझे यह बात बतलाता हूँ—वास्तव में मैं किरातराजा के यहां से किसी कार्य के लिए आया हुआ हूं, अथवा यों कहिये कि 'आया था; क्योंकि अब ऐसा जान पड़ता है कि, उस कार्य की कोई आवश्यकता नहीं रही। फिर भी यह बात उचित दिखाई पड़ती है कि, एक बार मैं मुरादेवी से मिल अवश्य ही लूं

और उसको यह सूचित कर दूं कि, मैं कौन हूँ, क्यों आया; किरात राजा ने मुझे किस हेतु से भेजा था; और यह सब बतला कर, तब उससे बिदाई लेकर यहां से जाना मेरे लिए विशेष उचित होगा। ऐसी दशा में मैं एक पत्रिका दूंगा, उसे यदि तू मुरादेवी के पास पहुँचा दे, तो बहुत अच्छा हो। यह बात तो तुझे बतलाने की आवश्यकता ही नहीं कि, किरात राजा को अपनी भगिनी का वह कष्ट देख कर बहुत ही खेद हो रहा था, परन्तु उसने सोचा कि, धनानन्द एक बहुत बड़ा बलवान् राजा है, और वह एक मामूली राजा है, अतएव ऐसी दशा में धनानन्द से झगड़ा करने में कोई लाभ न होगा; और बस, यही सोच कर उसने मुरादेवी को कैद से छुड़ाने के लिए अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया था, पर मुरादेवी की माता मायादेवी चुप कैसे बैठ सकती थी? उसने प्रद्युम्नदेव से कहा कि, 'देखो, तुम इतने दिन से चुप बैठे हो, तुम्हारी बहन कैद में पड़ी हुई है, इसलिए अब कोई न कोई उपाय करके तुम अवश्य ही उसको उस दुष्ट राजा की कैद से छुड़ाओ, और यहां ले आओ। मैं अब बुड्ढी हो रही हूं, उसको देखने को जी चाहता है।' इसलिए प्रद्युम्नदेव ने मुझे यहां इस बात की जांच के लिए भेजा था कि मैं यहाँ की सब परिस्थति देख-कर इस बात की जानकारी प्राप्त करूं कि, मुरादेवी को छुड़ाने के लिए यदि वह प्रयत्न करे तो इसमें उसको सफलता मिल सकती है, अथवा नहीं। सुमाल्य के यौवराज्याभिषेक के लिए राजा धनानन्द ने अपने सब छोटे बड़े मांडलिक राजाओं को निमंत्रण-पत्र—निमंत्रणपत्र क्या—बल्कि यों कहना चाहिए कि आज्ञा-पत्र भेजे थे। सो किरात राजा प्रद्युम्नदेव के पास भी एक ऐसा ही पत्र गया था। उसका समाचार जब मायादेवी को मालूम हुआ, तब उसकी चित्तवृत्ति कुछ बड़ी विलक्षण सी हो

गई। उसने प्रद्युम्नदेव से बहुत ही आग्रह किया कि, अब तुम अवश्य ही, जिस प्रकार बने, मुरादेवी को छुड़ा लाओ। पर बेचारा प्रद्युम्नदेव क्या कर सकता था? वह अब केवल नाम मात्र के लिए किरात राजा बना हुआ है। इसलिए उसने सोचा कि, देखो—आज जो यौवराज्याभिषेक हमारी बहन के लड़के को होना चाहिए था, वह एक दूसरे ही को हो रहा है; ऐसी दशा में, उस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए मेरा जाना उचित नहीं होगा, और यही सोच कर वह नहीं आया—उसकी माता की भी ऐसा ही सलाह हुई। परन्तु हां, जब उन्होंने यह सुना कि, वह उत्सव अब सम्पूर्ण हो चुका, तब उन्होंने यहां का सब समाचार जानने के लिए मुझे भेजा। परन्तु किरात राजा को यह अभी स्वप्न में भी मालूम नहीं है कि, उस उत्सव के उपलक्ष्य में अन्य कैदियों के साथ ही साथ हमारी बहन भी मुक्त कर दी गई है, और राजा ने अब फिर उसको अंगीकार कर लिया है। परन्तु अब तेरे कहने से मुझे इन सब बातों का पता चला, इसलिए अब विशेष जांच पड़ताल करने की आवश्यकता ही नहीं रही। वृन्दमाले, तुझ को छोड़ कर अब मैं और जांच पड़ताल कहां करूँगा? सच पूछो, तो यह सब समाचार पाकर मुझे ऐसा ही लौट जाना चाहिए था, पर कदाचित् राजा प्रद्युम्नदेव मुझ से यह पूछेगा कि, क्या तुम मुरादेवी से प्रत्यक्ष मिले थे? उसका कुशल-समाचार उससे पूछा था? उस समय मैं उसको क्या उत्तर दूंगा? बस, इसी लिए आज तुझ से अलग मैं ये सब बातें बतला रहा हूं। अतएव अब कल मैं मुरादेवी को एक पत्रिका लिख कर तुझे दूंगा, उसको तू अपनी स्वामिनी को मेरी ओर से दे दीजियो। पत्रिका को पाकर यदि वह मुझे मिलने के लिए बुलावेगी, तो मैं नियत समय पर तेरे साथ चला चलूंगा: और उससे मिल लूंगा। प्रद्युम्नदेव और

मायादेवी के लिए यदि वह कोई सन्देशा देगी, तो उसे सुन लूंगा; और फिर अपना लौट जाऊंगा।"

चाणक्य का यह लम्बा चौड़ा भाषण वृन्दमाला चुपके से सुन रही थी। बीच बीच में उसके मन में यह बात अवश्य आई कि इस ब्राह्मण ने इतने दिन से ऐसी कोई बात मुझे क्यों नहीं बतलाई—आज ही यह सब यह क्यों कह रहा है? लेकिन यह बात उसके स्वप्न में भी नहीं आई कि, इतने दिन से चाणक्य यह सब समाचार जान रहा है; और उसी समाचार से इसने यह सब रचना की है। हाँ, उसको सिर्फ इतना आश्चर्य ज़रूर हुआ कि, इतने दिन से इस ब्राह्मण ने ये सब बातें मुझे क्यों नहीं बतलाईं? इसी आश्चर्य में आकर वह चाणक्य से कुछ कहने ही वाली थी कि, इतने में चाणक्य मानों उसके मन का सब विचार जान कर ही उससे बोले, "वृन्दमाले, देख—आज तुझ को ये सब बातें मैंने बतलाईं; पर तू भगवान् वसुभूति से ये बातें मत बतलाइयो। आज तक मैंने उनसे इसमें से एक अक्षर भी नहीं बतलाया—बतलाऊं कैसे? यह मैं कैसे बतलाऊं कि, किरात राजा की ओर से मैं इस इस प्रकार की गुप्त ख़बरें लेने को आया हूँ? तुम जानती हो कि, सब बातें एक दूसरे के मुख से तुरन्त फैल जाती हैं; और यदि उसी प्रकार हमारे इस प्रकार से आने की यह ख़बर भी राजा के अधिकारियों तक पहुँच कर किसी प्रकार महाराज के कान तक पहुँच जाती, तो फिर हमारी कुशल नहीं थी। धनानन्द न जाने क्या कर उठाता! मुझ को तो उसने मगध के बाहर निकाल ही दिया होता; पर प्रद्युम्नदेव पर भी कोई न कोई संकट आया होता; क्योंकि जब राजा यह जानता कि, वह इस प्रकार के गुप्त भेद ले लेकर हमारे विरुद्ध कार्यवाही करना चाहता है, तब अवश्य ही उसने प्रद्युम्नदेव का शासन करने के लिए भी कोई न कोई

योजना की होती। हां, तुझ को यह ख़बर बतला दी: क्योंकि मैंने जान लिया कि, तू एक स्वामिनिष्ठ सेविका है; और अपनी स्वामिनी पर तेरा बड़ा प्रेम है; इसके सिवाय मेरी भेंट भी यदि तेरी स्वामिनी से हो सकती है, तो तेरे ही द्वारा हो सकती है। बस, यही सब सोच करके आज तुझ से मैंने ये सब बातें बतलाई हैं। क्योंकि अब मैं शीघ्र ही यहाँ से जानेवाला भी हूँ। मुरादेवी बड़े आनन्द में है, इसलिए अब विशेष जांच-पड़ताल करने की आवश्यकता भी नहीं। हाँ, एक बार उससे मिल लेना आवश्यक है; उसका सुख प्रत्यक्ष देख कर और यदि कोई सन्देशा उसका हो, तो उसे भी लेकर, तब यहां से जाने का विचार है; क्योंकि अपने भाई और अपनी माता को कोई न कोई सन्देशा वह अवश्य देगी। ऐसी दशा में उससे मिले बिना यहाँ से जाना उचित न होगा। इसलिए एक पत्र मैं लिख दूँगा—उसको ले जा कर तू उसे दे देना, इससे सब काम ठीक हो जायगा। मायादेवी जब यह सुनेगी कि, उसकी कन्या अब सुख में है, तब उसे अवश्य ही आनन्द होगा। हां, इसमें सन्देह नहीं कि मुरादेवी के पुत्र का यौवराज्याभिषेक देखने का मौका उसके भाग्य में नहीं लिखा था; परन्तु अब इसके लिए क्या किया जाय?"

चाणक्य की वाणी में मोहकता की मात्रा बहुत रहती थी; और वृन्दमाला बेचारी एक बिलकुल भोलीभाली दासी थी। इसलिए उसने सोचा कि, हमारी मालकिन को जब यह सब समाचार मालूम होगा; और जब मैं उसे जाकर बताऊंगी कि, आपकी माता मायादेवी और आपके भ्राता राजा प्रद्युम्नदेव के यहां से एक ऐसा ऐसा ब्राह्मण आया है, तब उसे बड़ा आनन्द होगा; और उसके वर्तमान आनन्द में और भी विशेष वृद्धि होगी। यह सोचकर वृन्दमाला को भी बड़ा

आनन्द हुआ। उसने सोचा कि, भगवान् वसुभूति से इस ब्राह्मण ने इस विषय में अभी तक कुछ नहीं बतलाया, यह भी अच्छा ही किया। परन्तु फिर उसने चाणक्य से कहा कि, "आप भिक्षु जी को यह वृत्तान्त अवश्य बतलाइये, उनसे यदि यह सब हाल आप बतला देंगे, तो कोई हानि नहीं।" इसके बाद फिर उसने चाणक्य को यह आश्वासन दिया कि, "आप जो पत्र देवी जी के लिए देंगे, उसको ले जाकर मैं उनको अवश्य दूंगी। इसके सिवाय यह सब वृत्तान्त भी उनके कान में डाल रखूंगी। आप मुरादेवी से मिल कर जब उनको उनके भाई और माता का समाचार देंगे, तब उनको बड़ा आनन्द होगा; और इसमे भी सन्देह नहीं कि, देवी जी आप को अवश्य मिलने के लिए बुलायेंगी।" यह सुन कर चाणक्य जोर से हँसे; और वृन्दमाला से बोले, "वृन्द-माले, तेरी स्वामिनी का ही कार्य है; और तुझ से बतलाया है, अब ऐसी दशा में उसके होने में क्या सन्देह है? सचमुच ही देवी के विषय में तेरा प्रेम देख कर मुझे बहुत ही आनन्द हो रहा है। सच है, परिचारिका हो तो ऐसी हो! परमेश्वर तुझ को चिरायु करे; और अन्त तक तेरे हाथ से तेरी स्वामिनी की सेवा इसी प्रकार करावे! अब मैं तुझ से बिदा होता हूँ; और समझता हूँ कि मेरा कार्य होगया। आज तक अवश्य ही तुझ को मैंने कुछ नहीं बतलाया था कि मैं कौन हूँ, कहां से आया हूँ, इत्यादि और ऐसा भी सम्भव है कि, मैंने तुझ से और ही कुछ प्रकट किया हो; पर क्या करता? कोई उपाय नहीं था। मैं जिस काम के लिए आया था, वह काम ही ऐसा था कि, उसके विषय में बिना पूर्ण परिचय प्राप्त किये मैं किसी से कुछ बतला नहीं सकता था। अब तुझको मैं भली भाँति जान गया, इसके सिवाय यह भी देख लिया कि तेरा अपनी स्वामिनी पर कितना दृढ़ प्रेम है; फिर मेरा कोई कार्य भी अब रह नहीं गया था, इसलिए

आज तुझ से सब बातें स्पष्ट बतला दीं। अब मैं लौट जाऊंगा। मुरादेवी से एक बार भेट कर लेने के अतिरिक्त अब और कोई काम मेरा यहां नहीं रह गया। बस, इतना तू प्रबन्ध कर दे। मैं क्यों आया हूँ, कैसे आया हूँ, इत्यादि ज्यों ही तू ने उससे बतलाया कि बस तुरन्त ही वह मुझे मिलने के लिए बुलावेगी। अपने भ्राता और माता का सन्देशा ले आने वाले मनुष्य से भेट करने के लिए कौन स्त्री उत्सुक नहीं रहती? जा, अब मैं भी जाता हूं। तुझ को मैंने बहुत देरी कर दी।"

इतना कह कर चाणक्य वहाँ से सचमुच ही लौट पड़े। उन्होंने सोचा कि, अब बार बार यदि वही चर्वित चर्वण करते रहेंगे, तो शायद वृन्दमाला को सन्देह न हो जाय। फिर उन्होंने एक बार उससे ज़ोर से कहा, "वृन्दमाले, मैंने जो हाल बतलाया; और जो सन्देशा दिया, वह तू किसी दूसरे के सामने मुरादेवी को मत बतलाइयो। अन्यथा जो लोग उसका बुरा चेत रहे हैं; और उसको वर्तमान सुख-शिखर पर से खींच कर नीचे गिराना चाहते हैं, उनको एक नवीन ही शस्त्र मिल जायगा। तुझ को विशेष बतलाने की आवश्यकता ही नहीं है, तू स्वयं चतुर है; परन्तु फिर भी तेरे विषय में और तेरी स्वामिनी के विषय में मुझे बड़ी चिन्ता है, इसी लिए कहता हूँ।"

इतना कह कर चाणक्य सचमुच ही वहां से चले गये; और वृन्दमाला अपने मार्ग से चल दी। उसके मन में अब नाना प्रकार के विचार आने लगे; परन्तु यह विचार उसके मन में कभी नहीं आया कि, चाणक्य ने जो कुछ बतलाया, वह मिथ्या होगा। वास्तव में वह यह सोचने लगी कि, हम अपनी स्वामिनी से जब यह सब हाल बतलावेंगी, तब उसे बड़ा आनन्द होगा, हम पर भी वह बहुत खुश होगी। चाणक्य से वह अवश्य मिलेगी; और जब वह उससे

उसके पितृगृह का कुशल-समाचार बतलावेगा, तब उसे वह पारितोषिक भी अच्छा देगी। बस, इसी प्रकार के विचार कुछ देर तक उसके मन में आते रहे। इसके बाद फिर कुछ भय उत्पन्न करने वाले विचार भी उसके मन में आये। उसने सोचा कि, यह ब्राह्मण मुरादेवी के भाई का सन्देशा लेकर आया है. परन्तु जब महाराज को यह बात मालूम होगी कि, यह ब्राह्मण वहां से आया है, तब न जाने उनके मन में क्या आवे—कहीं वे इस ब्राह्मण का अपमान तो नहीं करेंगे? सम्भव है, इसका आदर भी करें; क्योंकि अब मुरादेवी पर उनका प्रेम फिर बढ़ रहा है। फिर उसने सोचा कि राजा धनानन्द क्षणिकबुद्धि है—न जाने कौन विचार किस समय उसके मन में आता है; और उसी विचार के वश होकर न जाने किस समय वह कौन सा कार्य कर डाले! उसका क्या ठीक? इसलिए चाणक्य के विषय में जो बात हम मुरादेवी से बतलावें, वह बिलकुल गुप्तरूप से बतलावें, नहीं तो उस ब्राह्मण पर व्यर्थ ही संकट उपस्थित होगा। हाँ, मुरादेवी फिर भले ही किसी से बतलाया करे, इसमें हमारी कोई हानि नहीं—वह सब ठीक कर लेगी, और जैसा हम से कहेगी, वैसा ही हम भी करेंगी। बस, इसी प्रकार का विचार करती हुई वह नित्य की भांति अपनी स्वामिनी के महल में, अपने स्थान पर, पहुँची।

मुरादेवी राज-सेवा में बिलकुल निमग्न हो रही थी। क्योंकि उसको यह चिन्ता थी कि, राजा पर हमने जो मोहिनी डाली है; उसका प्रभाव किसी प्रकार कम न हो जावे। उसका प्रभाव तो कम नहीं होने देना चाहिए, बल्कि दिन प्रति दिन बढ़ाते रहना चाहिए। इसके सिवाय अपनी सपत्नियों के विषय मे राजा के मन में जितना भी द्वेष उत्पन्न किया जा सके, उतना करना चाहिए। यह सोच कर उसने उपर्युक्त बातों के लिए सब

प्रकार के प्रयत्न करने का निश्चय किया था। अवश्य ही, राजा जिस समय से उसके मन्दिर में आया, उस समय से उसने इस बात की पूर्ण सावधानी रखी कि, राजा कभी अकेले न रहने पावे। प्रत्येक समय वह उसके पास मौजूद रहे। ऐसा ही उसने किया भी, और धनानन्द के समान लहरी स्वभाव के मनुष्यों को अपनी मुट्ठी में रखने के लिए जिस प्रकार के हाव-भावों और चेष्टाओं की आवश्यकता होती है, उस प्रकार के सभी हावभाव और चेष्टाएं वह बराबर किया करती थी। ऐसी दशा में अब वृन्दमाला किस समय मुरादेवी से चाणक्य की बात निकाले? उसको कोई मौका ही न मिल रहा था। फिर भी उसने एक मौका देख कर मुरादेवी से चाणक्य का सन्देश बतलाया, पर उससे कोई लाभ न हुआ। वृन्दमाला ने अनुमान किया था कि, मुरादेवी को जब यह मालूम होगा कि, उसके नैहर से ब्राह्मण आया है, तब वह तुरन्त ही उसे बुलवा कर उससे भेट करेगी; पर उसका यह अनुमान सच नहीं निकला। वृन्दमाला से वह समाचार पाते ही मुरादेवी ने एकदम अपने मस्तक पर सिकुड़े डाल लिये, और कुछ अपने ही आप और कुछ उसको सम्बोधन करते हुए कहा, "अरी, इतनी जल्दी भैया को और अम्मा को मेरी याद कैसे आई? जा, ब्राह्मण से कह दे कि, वह उनको जाकर यह समाचार देवे कि, मैं यहां कुशलपूर्वक हूँ। मुझ को ब्राह्मण से मिलने का इस समय अवकाश नहीं है।" यह उत्तर सुन कर वृन्दमाला को बड़ा आश्चर्य हुआ। और रात को जाकर जब उसने चाणक्य से यह सब समाचार बतलाया, तब चाणक्य को भी बहुत अचम्भा हुआ, परन्तु फिर भी उन्होंने मानो कुछ सोच कर, एक भोजपत्र पर लिखा हुआ पत्र वृन्दमाला के हाथ में दिया, और कहा, "वृन्दमाले कोई हर्ज नहीं। अब तू यह मेरा पत्र ले जाकर मुरादेवी के

हाथ में दे। मुझे विश्वास है कि, वह मेरा यह पत्र पढ़ कर अवश्य मुझे मिलने के लिए बुलावेगी। वृन्दमाला ने कहा कि, इससे कोई लाभ न होगा, पर जब उसने चाणक्य का बहुत आग्रह देखा, तब उसने भी वह पत्र ले जाकर मुरादेवी को देना स्वीकार कर लिया, और दूसरे दिन वह पत्र लेजा कर मुरादेवी के हाथ में दे भी दिया। मुरादेवी ने उस पत्र को बहुत ही त्रस्त होकर अपने हाथ में लिया, और यह भी गुनगुनाई कि, न जाने यह कहां का झगड़ा ले आई। परन्तु जब उसने उस पत्र को खोल कर पढ़ा तब ऐसा कुछ चमत्कार हुआ कि, उसकी चेष्टा एकदम बदल गई, और उसने वृन्दमाला से उस ब्राह्मण को ले आने के लिए कहा। कह नहीं सकते, उस पत्र में ऐसी कौन सी बात थी!

दसवाँ परिच्छेद

क्या बातचीत हुई ?

वृन्दमाला बहुत चकित हुई। क्योंकि वह जानती थी कि, इस समय हमारी मालकिन राजसेवा में इतनी निमग्न हो रही हैं कि, वह उससे अवकाश निकाल कर ऐसे एक अपरिचित ब्राह्मण से मिलना कभी न स्वीकार करेंगी। इसके सिवाय उसने जब वह पत्र मुरादेवी के हाथ में दिया था, तब भी उसने उद्विग्नता का ही भाव प्रकट किया था। परंतु पत्र को खोल कर ज्योंही उसने देखा, उसके चेहरे का वह उद्विग्नतापूर्ण भाव एकदम बदल गया, उसकी जगह चेहरा बिलकुल प्रफुल्लित हो गया; और ऐसा जान पड़ा कि, इसके मन में एक प्रकार की उत्सुकता उत्पन्न हो गई है। वृन्दमाला कुछ नहीं सोच सकी कि, चाणक्य ने इस पत्र में ऐसी कौन सी बात लिख दी कि, जिससे हमारी मालकिन के चेहरे पर इतनी प्रफुल्लता और उत्सुकता दिखाई दे रही है—वह अपनी स्वामिनी की ओर साकाँक्ष दृष्टि से देखने लगी। इसके बाद बोली, "उनको यहाँ लाने के लिए तो कहा; पर कब और कहाँ लाऊं ?" मुरादेवी ने वह पत्र फिर एक बार पढ़ा; और फिर वृन्दमाला से बोली, "वृन्दमाले, यह पत्र लिखानेवाला ब्राह्मण तुझे कहाँ और कैसे मिला ? उसने यह कैसे जाना कि तू मेरी

सखी है ? उसने तुझ से क्या कहा ? वह इस समय कहां है ? पाटलिपुत्र में वह कब आया ?"

वृन्दमाला ने समझा कि हमारी स्वामिनी के ये प्रश्न कभी ख़तम ही न होंगे ! इसके सिवाय उक्त प्रश्नों से उसे यह भी मालूम हुआ कि, उस ब्राह्मण से मिलने के लिए मानो मुरादेवी बहुत ही उत्सुक सी हो रही है । इसलिए उसने सोचा. कि अब इसके प्रश्नों की और अधिक प्रतीक्षा न करते हुए इसको तुरन्त ही उत्तर देना चाहिए ; और बस, यही सोच कर उसने कहा कि, "यह ब्राह्मण मुझे अपने गुरु के घर में मिला । वह कैलासनाथ के मन्दिर में ठहरा है । उसने जब देखा कि, आप पर मेरी बड़ी भारी भक्ति है, तब उसने यह भी सोचा कि, आप मेरा विश्वास भी वैसा ही करती होंगी; और इसी लिए अलग में मिल कर उसने मुझ से यह पत्रिका ले जाने के लिए कहा । उसने यह बात मुझ से पहले ही बतला दी थी कि, वह कौन है, कहां से आया है, इसलिए मैंने भी उसकी पत्रिका ले आने में कोई संकोच नहीं किया ।" यह सुन कर मुरादेवी को मानो सन्तोष ही सा हुआ, और वह अगले वाक्य इस तरह गुनगुनाई कि, जो वह स्वयं अपने ही आप कह रही थी; पर वृन्दमाला को भी सुनाई दिये—"ब्राह्मण से मिलना तो आवश्यक है; पर प्रश्न यह है कि, उसे कहाँ पर और किस समय बुलाया जाय—और इधर महाराज तो मुझ को क्षण भर भी अपने से दूर नहीं होने देते ।" इसके बाद वह स्पष्ट रूप से वृन्दमाला से बोली, " न हो—तू उसको यहां भोजन के लिए ही बुला—अथवा उससे कह कि, आप को ठहरने के लिए ही बुलाया है । वह यहां यज्ञशाला में आकर ठहरेगा । इससे मौका लगने पर मैं उससे मिल सकूंगी । महाराज जब सो जायँगे, तब मौका पाकर मैं उससे मिल आऊँगी । वह यदि यहीं आकर

ठहर जायगा, तब फिर समय की कठिनाई न पड़ेगी। नियमित कोई समय मैं कैसे बतला सकती हूं ?"

मुरादेवी की बात अभी ख़तम न होने पाई थी कि, सचमुच ही महाराज ने उसकी याद की, और वह जल्दी जल्दी से वहां से चली गई। परन्तु हां, चलते चलते वह इतना अवश्य वृन्द-माला से कह गई कि, "मैंने जैसा बतलाया, उस ब्राह्मण को यहीं यज्ञशाला में आकर ठहरने के लिए कह।"

अपनी स्वामिनी की इस आज्ञा को सुन कर वृन्दमाला को बड़ा आनन्द हुआ। उसने सोचा कि, इस रहस्य का भेद जानने के लिए अब मुझे अच्छा मौका मिलेगा। दूसरे दिन शीघ्र ही चाणक्य के यहां जाने का विचार करके वह उनके पास पहुँची। मार्ग में यह विचार भी उसके मन में आया कि, यह सब हाल अब मैं वसुभूति से जा कर बतलाऊँ, अथवा न बतलाऊँ। चाणक्य का कथन तो यह था कि, वसुभूति से यह बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं कि, मैं कौन हूं, कहां से आया हूँ, इत्यादि। ऐसी दशा में वह, यह सोचती हुई कि, अब क्या करना चाहिए, वसुभूति के विहार के पास गई। परन्तु फिर सोचा कि, वसुभूति जी यदि यह पूछेंगे कि, इस समय तू यहां कैसे? तो मैं क्या उत्तर दूँगी; परन्तु संयोगवश उस पर ऐसा मौका नहीं आया: क्योंकि वसुभूति अपने विहार में थे ही नहीं— वे भिक्षा के लिए कहीं नगर में गये थे; और सिद्धार्थक भी विहार में मौजूद नहीं था, अतएव वृन्दमाला के मन पर जो वह एक प्रकार का भार सा लदा हुआ था, सो दूर हुआ; और वह श्री कैलासनाथ के मन्दिर में पहुँची।

आर्य चाणक्य अभी हाल ही में अपने प्रातःकर्मों से निपट कर कुछ विचार करते हुए बैठे थे। इतने में वृन्दमाला वहां जा पहुँची; और उनसे बोली, "ब्राह्मणश्रेष्ठ, आपको मेरी स्वामिनी

ने सब सामान सहित अपने मन्दिर में आने के लिए कहा है। वहीं यज्ञशाला में रहने के लिए आपका प्रबन्ध किया जायगा; और अवकाश मिलने पर देवी जी आप से बातचीत करने और अपने पितृगृह का समाचार पूछने के लिए आवेंगी।" यह सुनते ही आर्य चाणक्य ने ऐसी चेष्टा प्रदर्शित की, कि जैसे उनको बड़ा आश्चर्य हुआ हो। वास्तव में उनको आश्चर्य-वाश्चर्य कुछ नहीं हुआ था। हां, यदि कुछ आश्चर्य हुआ भी था, तो सिर्फ इसी बात पर कि, मुरादेवी ने उनको स्वयं अपने मन्दिर में ही रहने के लिए कैसे बुला लिया? इस विषय में तो उनको ज़रा भी शंका नहीं थी कि, मुरादेवी उनसे मिलना स्वीकार करेंगी अथवा नहीं। उनको पूर्ण विश्वास था कि, उनका पत्र पाते ही मुरादेवी उनको अवश्य बुलावेंगी, और यही बात उनकी चेष्टा पर से उस समय दिखाई भी दी, पर जब उन्होंने यह सुना कि, उसने स्वयं यज्ञशाला में ही आकर ठहरने के लिए उनको बुलाया है, तब अवश्य ही उनको इस बात पर कुछ अचरज हुआ कि, जितना हमने सोचा था, उसके आगे भी यह मामला पहुँच गया; अतएव अब वे इस कठिनाई में पड़े कि, अब क्या किया जाय? उन्होंने सोचा कि, जिस राजा के कुल को विध्वंस करने की हमने प्रतिज्ञा की है, उसी राजा के मन्दिर में, उसकी यज्ञशाला में जाकर, उसी का अन्न खाकर, अब हम को उसके विरुद्ध षड्यंत्र करना पड़ेगा। यह विचार मन में आते ही उनको न जाने कैसा मालूम हुआ। इसके सिवाय उन्होंने यह भी सोचा कि, जब हम स्वयं राज-मन्दिर में जाकर यज्ञशाला में रहेंगे, तब सम्भव है कि, हमको कोई पहचान भी लेवे। अभी बहुत वर्ष नहीं हुए, जब हम स्वयं राजसभा में जाकर राजा को शाप देते हुए उठ कर चले आये थे। उस समय अवश्य ही हमारी प्रतिज्ञा और हमारे शाप की ओर किसी ने ध्यान नहीं

दिया था; परन्तु अब, जब कि हम एक अन्य ही भेष से स्वयं उसकी यज्ञशाला में जाकर रहेंगे, तब अवश्य हमारे विषय में वहां के लोगों को सन्देह हो सकता है। इसलिए उस समय चाणक्य ने यही निश्चय किया कि, स्वयं अपनी रक्षा की दृष्टि से; और जिस कार्य के लिए हम जा रहे हैं, उसकी दृष्टि से भी, ऐसा करना अनुचित होगा: अतएव राज-मन्दिर में जा कर हम को न रहना चाहिए. और राजा का अन्न ग्रहण तो कदापि न करना चाहिए। यह उन्होंने निश्चय तो किया, पर अब वे इस संकोच में पड़े कि, वृन्दमाला को इस विषय में उत्तर क्या दिया जाय। अन्त में उन्होंने उससे इतना तो अवश्य ही कहा कि, मैं इस समय तेरे साथ नहीं चलूंगा। शाम को आऊंगा। उस समय यदि देवी से भेंट हो जायगी, तो अच्छा होगा। फिर मैं सुबह वहां से चला आऊंगा। मैं वहां स्थायी रूप से रह नहीं सकूंगा। भगवान् कैलासनाथ का आश्रय लेकर अब और किसका आश्रय ग्रहण करूं? सायंसंध्या इत्यादि विधियों से अवकाश पाकर यहां से चलूंगा, और फिर लगभग सवा पहर रात जाने पर मन्दिर के द्वार पर पहुँचूंगा। उसी समय तू वहां मुझ से मिल, और जहां ले चलना हो, ले चल।"

वृन्दमाला ने समझा था कि, मुरादेवी का सन्देशा पाते ही ब्राह्मण बड़ी उत्सुकता से, दौड़ता हुआ ही, मेरे साथ चल देगा, पर ऐसा नहीं हुआ; किन्तु इसके विरुद्ध उसने ज़रा कठोरता के साथ ही अपना सन्देशा दिया। अतएव इस पर उसको बहुत ही आश्चर्य सा हुआ : पर उसने वह आश्चर्य ब्राह्मण के सामने प्रकट नहीं किया। सिर्फ इतना ही कहा कि, "अच्छा है।" और यह कह कर वह वहां से चल दी।

लौट कर जब वह महलों में पहुँची, तब मुरादेवी से उसकी भेंट नहीं हुई। उसने सोचा, कोई हर्ज नहीं—अब मेरा इतना न्थै-

काम है कि, रात्रि को जब आर्य चाणक्य आवें, तब उनको ले जाकर यज्ञशाला में बैठा दूं। यह सोच कर उसने वैसा ही प्रबन्ध भी किया। रात को नियत समय पर चाणक्य वहां पहुँचे, और वृन्दमाला ने उनको यज्ञशाला में ले जाकर, आसन इत्यादि उपचार करके, उसको बैठाया। चाणक्य मुरादेवी की प्रतीक्षा करते हुए बैठ गये। इधर वृन्दमाला ने उनके आने का समाचार किसी न किसी प्रकार मुरादेवी के कान में डाला। इससे मुरादेवी उनसे मिलने को उत्सुक हुई, और ज्यों ही उसने देखा कि, अब राजा धनानन्द की आंख लग गई है, त्यों ही, आधी रात के कुछ पहले ही, वह यज्ञशाला में आई, और चाणक्य से मिली। चाणक्य ने उससे सूचित किया कि, हम को जो कुछ कहना है, एकान्त में ही कह सकता हूं, इस प्रकार नहीं कह सकता। इस पर मुरादेवी उनको एक तरफ ले गई, और वहां बहुत देर तक उन दोनों में बातचीत होती रही। उस बातचीत में उन दोनों ने एक दूसरे से क्या कहा, और क्या सुना, सो उन्हीं को मालूम! हां, जब दोनों की बातचीत ख़तम हो गई, तब चलते समय मुरादेवी चाणक्य से बोली, "मुझे इस प्रकार की सहायता मिल जायगी, तब तो अच्छा ही है; और यदि न भी मिली, तो भी मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सब कार्य सिद्ध कर लेने को बिलकुल तैयार हूँ। मेरा उपक्रम शुरू भी हो गया है; और थोड़े ही दिनों में उसका पहला फल दृष्टि-गोचर होगा। आप जिस बात के लिए कहते हैं, वह यदि सिद्ध हो गई, तो फिर और क्या चाहिए? परन्तु अब रात को मैं यहां आऊँगी ही, इसका कुछ ठीक नहीं। इस समय तो मुझे जाना ही चाहिए। आप कल फिर यहां आइये, तब फिर मैं आपसे मिलूंगी; और इस विषय में फिर विचार करूंगी।" इतना कह कर वह वहां से तुरन्त चली गई। इस भाषण का अधिकांश

भाग—और सो भी प्रारम्भ का भाग—वृन्दमाला ने स्पष्ट रूप से सुन लिया; और उसकी आंखों के सामने एकदम प्रकाश पड़ा। अभी कुछ ही समय से उसने यह समझा था कि, महाराज धनानन्द ने अब हमारी स्वामिनी पर पूर्ववत् प्रेम प्रारम्भ किया है, इसलिए अब वह राजा-विषयक अपना सब क्रोध और द्वेष भूल गई होगी; और बहुत जल्द अब वह अपनी पूर्वावस्था पर पहुँच जायगी। परन्तु इस समय उसने अपनी स्वामिनी के मुख से जो बात सुनी, उससे उसको मालूम हुआ कि, यह सब हमारा भ्रम था। वह कह रही है—"मेरा उपक्रम शुरू भी हो गया है; थोड़े ही दिनों में उसका पहला फल दृष्टि-गोचर होगा"—इसका क्या मतलब? यह प्रश्न उसके मन में आकर उपस्थित हुआ; और वह एकदम विचार-निमग्न हो गई। वृन्दमाला बहुत ही पापभीरु, अधर्मभीरु, और भोलीभाली स्त्री थी। उसकी मालकिन को उसका यह स्वभाव मालूम था। इसलिए अपने कपटकृत्यों में वह उससे कुछ भी सहायता नहीं लेती थी। बिल्कुल सात्विक वृत्ति के काम वह उससे कराती थी, अथवा इस प्रकार के काम वह उसको बतलाती थीं कि, जिनमें उसका कोई भी बुरा भाव वृन्दमाला को मालूम न हो सके। अन्य कपटकार्यों के लिए दूसरी परिचारिकाएँ नियत थीं। क्योंकि पहले तो कोई कपट का कार्य यदि वृन्दमाला को बतलाया जाता, तो वह उनको करती ही नहीं थी; और यदि स्वामिनी के बहुत आग्रह करने पर वह ऐसे कार्यों को करती भी थी, तो इस प्रकार से करती थी कि, उन कार्यों में हजारों तरह की गलतियां हो जाया करती थीं; और कभी कभी सारा भेद फूट जाने का भी भय रहता था। सारांश यह कि वृन्दमाला एक ऐसी परिचारिका थी कि जो सदैव सरल मार्ग को ही पसन्द करती थी, और स्वामिनी पर अत्यन्त दृढ़ भक्ति रखती थी। स्वामिभक्त और सत्य-

निष्ठ सेवक की हैसियत से उसकी योग्यता बहुत बढ़ी चढ़ी थी; पर जिस प्रकार का कार्य मुरादेवी को करना था, उस प्रकार के कार्य के लिए वह बिलकुल ही निरुपयोगी थी। यही नहीं, बल्कि उसके भोलेपन के कारण से उसके कार्य में विघ्न ही उपस्थित हो सकता था। बस, यही सब समझ करके चतुर मुरादेवी उसको ऐसे कार्य नहीं बतलाया करती थी: और इसी कारण वर्तमान समय में भी उसने वृन्दमाला को यह बात पूरी पूरी नहीं मालूम होने दी थी कि, वह इस समय क्या कर रही है—किस प्रकार की कपट-रचना में निमग्न है।

ऐसी दशा में वृन्दमाला ने उपर्युक्त उद्गार सुने, इससे उसका मन एकदम बड़े ही संकट में पड़ा। उसने सोचा कि, क्या अब भी हमारी स्वामिनी अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा के अनुसार राजकुल के विध्वंस करने के उद्योग में है? जिस दिन से वह वन्दी-गृह से छूटी, अथवा जिस दिन से राजकुमार सुमाल्य का यौवराज्याभिषेक हुआ, उसी दिन से बराबर यह कहती आ रही है कि, मैं राजा का प्रेम फिर ज़बरदस्ती सम्पादन करने का प्रयत्न करूंगी; उसको अपने जाल में पूरे तौर से फँसा कर के और फिर अपने मनसूबे के अनुसार सब बातें पूरी करके मैं अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करूंगी—क्या यह बात अभी तक वह भूली नहीं? अवश्य ही, आज जो उद्गार मेरे कानों में पड़े हैं, उनसे ऐसा जान पड़ता है कि, वह उन बातों को सचमुच ही अब तक भूली नहीं है। यह सोचकर वृन्दमाला के शरीर पर रोमाँच हो आया। क्या राज-वंश पर सचमुच ही कोई भयंकर अनर्थापात होगा? क्या भगवान् वसुभूति के कथनानुसार गृह-कलह का अरिष्ट इस पाटलिपुत्र पर अवश्य ही आवेगा? ऐसे ऐसे नाना प्रकार के दुःखकारक विचार वृन्दमाला के मन में आने लगे; और वह बिलकुल स्तब्ध खड़ी रही।

ग्यारहवाँ परिच्छेद
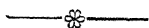
चाणक्य की कारस्तानी।

मुरादेवी ने अपने कपट-नाटक का पहला प्रवेश किया; और उस दिन से राजा ने भी यही निश्चय किया कि, अब मुरादेवी के अन्तःपुर को छोड़ कर कहीं जाना ही न चाहिए। मुरादेवी सच्चे कुलीन की कन्या दिखाई देती है। राजा ने सोचा कि, देखो—आज हम पर इसका जो इतना भारी प्रेम है, इसी कारण से अन्य रानियां इससे द्वेष कर रही हैं; और अब तो हमारे प्राण लेने तक को वे तैयार होगई हैं। इससे जान पड़ता है कि, सत्रह अठारह वर्ष पहले भी उन दुष्ट रानियों ने इस बेचारी सीधी-सादी लड़की का व्यर्थ के लिए मत्सर किया; और इसके विषय में बिना कारण हमारे मन में सन्देह उत्पन्न कर दिया—हमने भी मूर्ख की तरह व्यर्थ के सन्देह में पड़ कर इसके पुत्र की हत्या कराई; और इसको जेलखाने में डाल दिया। सचमुच ही हमने यह बड़ा बुरा काम किया। यह सोच कर बेचारे राजा को सचमुच ही बड़ा पश्चात्ताप हुआ। इसके बाद फिर उसने सोचा कि, अस्तु। कोई बात नहीं। अब हमको इसकी सच्ची कीमत मालूम हो चुकी है; और इसलिए कम से कम अब तो हमारे हाथ से इसको कोई कष्ट नहीं पहुँचना चाहिए। यह सोच कर राजा ने अपने मन में यह निश्चय किया कि, अब हम मुरादेवी को अपनी ओर से पूरा पूरा सुख देंगे।

अस्तु। राजा ने जब यह बात सुनी कि, दूसरी रानियां हमारे प्राण तक लेने को तैयार होगई हैं, तब उसको बड़ा क्रोध आया; और उसने उन सब को भारी दण्ड देने का विचार किया; पर मुरादेवी ने उसका निषेध किया। उसने कहा कि, "महाराज, एक दासी ने कहीं से कोई बात सुन कर यहां उसको बतलाया है, इसलिए इस पर पूरा पूरा विश्वास नहीं करना चाहिए। सम्भव है कि, यह बात बिलकुल झूठ हो; अथवा दासी ने और का और ही सुन कर बतलाया हो। यह तो कदापि सम्भव नहीं है कि, मेरी सुमतिका स्वयं अपनी तरफ से कोई बात बना कर कहे; पर शायद उसके सुनने में ही भूल हो गई हो! महाराज, एक बार मेरे विषय में आप से अविचार हो ही चुका है इसलिए अब मैं यह नहीं चाहती कि, ऐसा ही अविचार आप दूसरों के विषय में भी करें। मैं बिना कारण, जान बूझ कर, किसी को दण्ड दिलाने के पक्ष में नहीं हूँ। हां, आपने जो कुछ सुना है, उसका जब कोई प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाय, तब अवश्य ही आप दण्ड देने के लिए समर्थ हैं।"

मुरादेवी ने जिस समय यह सब कहा, उस समय यदि उसके हावभाव और नेत्रकटाक्ष किसी ने देखे होते, तो वह यही समझता कि, यह निष्पक्षपातित्व और दयाशीलत्व की मानो साक्षात् मूर्ति ही है। और राजा को तो उसका उक्त कथन इतना शुद्धतापूर्ण जान पड़ा कि, उसने उसकी सरलता और भोलेपन की बड़ी ही प्रशंसा की। उसने कहा, "अच्छा, जब तू ही ऐसा कह रही है, तब मैं इस समय अब कुछ भी नहीं करूंगा; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, जिन रानियों ने अनेक झूठी सच्ची बातें लगा कर मेरा मन तेरे विषय में कलुषित किया, वे अवश्य ही इस समय जल रही होंगी—उनको यह भय होगा कि, इस समय, जब कि मेरा मन तुझ पर लग रहा है, कदाचित् उनकी

थे पिछली कपट-कार्यवाहियां कहीं खुल न जावें; और इस भय में आकर वे सब कुछ कर सकती हैं, फिर भी जब तू यही कहती है, कि जब तक कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न मिल जाय, तब तक ठहरना चाहिए, इसलिए अब मैं, तेरे लिए, कुछ न करूंगा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मेरा मन तो अवश्य ही यह कह रहा है कि, सुमतिका की बतलाई हुई वह ख़बर बिलकुल सच्च है। यह कह कर राजा धनानन्द ने उसको बड़े प्रेम से आलिंगन दिया।

मुरादेवी को इससे बड़ा ही आनन्द हुआ। उसको अब पूर्ण विश्वास होगया, कि इस समय हमारे ग्रह बहुत उच्च हैं, और जिस कार्य में हम हाथ डालेंगी, वह अवश्य ही सिद्ध होगा। तथापि उसने सोचा कि, इस विचार से प्रसन्न होकर हमको अपने मन की समता न बिगड़ने देनी चाहिए। जो कुछ करना हो, पूर्ण विचार के बाद करना चाहिए। और कदम आगे इस प्रकार रखना चाहिए कि, जिससे फिर उसे पीछे हटाने की नौबत न आने पावे। यह सोच कर उसने अपनी सपत्नियों के विषय में राजा का मन कलुषित करने के लिए अन्य उपायों का विचार करना शुरू किया।

इधर चाणक्य मुरादेवी से बातचीत करने के बाद जिस समय उसके अन्तःपुर से बाहर निकले, उस समय उनके आनन्द का पारावार न रहा। उनको यह कभी विश्वास नहीं था कि, पाटलिपुत्र में पैर रखते ही, इतनी थोड़ी अवधि में, हमको अपने स्वीकृत कार्य की सफलता के लिए इतने अनुकूल साधन एक-दम प्राप्त हो जायँगे; परन्तु जब इस प्रकार के साधन सचमुच ही उनको प्राप्त होगये, तब उनको आनन्द होने में क्या आश्चर्य? अब इस बात का तो उन्हें पूर्ण विश्वास होगया कि, मुरादेवी से हमको अपने कार्य में पूरी पूरी सहायता मिलेगी। इसके

सिवाय चाणक्य ने यह भी सोचा कि, अभी एक बात हमने उसको नहीं बतलाई है; और वह बात बतला कर जब हम उसका पूरा प्रमाण उसके सामने उपस्थित कर देंगे, तब तो वह अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिए सब प्रकार का साहस करने को तैयार हो जायगी । राजा धनानन्द के कारण उसको अब तक अनेक यातनाएं भोगनी पड़ी हैं; और उन्हीं का बदला लेने के लिए वह इतने साहस के कार्य कर रही है। ऐसी दशा में जब उसे यह मालूम हो जायगा कि, हमारे लड़के को ही सिंहासन मिलेगा; और उसके सिर पर सम्राट-चक्रवर्ती के छत्रचामर रहेंगे, तब उसको कितना आनन्द होगा ? और इस महत्वाकांक्षा के लिए तो वह न जाने कौन कौन से साहसकार्य करने को तैयार हो जायगी । । ये सब बातें चाणक्य भली भांति जानते थे; और इन्हीं बातों को जान कर उन्होंने अपने अगले कार्यक्रम का निश्चय किया । पहले उन्होंने सोचा कि, हमको कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि, जिससे राजभवन में, और मौका आने पर स्वयं राजा के सामने भी, खुल्लमखुल्ला जाने-आने के लिए मार्ग खुल जाय। परन्तु ऐसा करने से यह भी सम्भव है कि, कुछ लोग समझ जाँय कि, यह वही ब्राह्मण है कि जो कुछ दिन पहले राजसभा में आया था; और अपना अपमान होने के कारण राजा को दुर्वचन कह कर चला गया था। इसलिए हमको इस बात का विचार करना चाहिए कि, उक्त लोगों के इस आक्षेप को हम किस प्रकार टाल सकेंगे । हां, यह एक मार्ग है कि, हम स्पष्ट यह प्रकट कर दें कि, उस समय हम क्रोध के आवेग में आकर वैसा कह गये थे, अब स्वयं महाराज अथवा उनके अधिकारियों और पंडितों को उस पर कुछ भी खयाल न करना चाहिए, और यह कह कर हम अपना पक्ष नीचा कर

लें; और फिर इस प्रकार लोगों की आँखों में धूल झोंक कर अपना काम निकाल लें। इसके सिवाय दूसरा मार्ग यह हो सकता है कि, हम स्पष्ट प्रकट कर दें कि, हम वे ब्राह्मण ही नहीं हैं, हम दूसरे ब्राह्मण हैं, हम तो मुरादेवी के भाई के राज्य में, हिमाचल के परिसर में, मरुद्वती के तीर आश्रम बनाकर रहने वाले ब्राह्मण हैं। वह ब्राह्मण कोई दूसरा होगा। हम अभी तक मुरादेवी के भ्राता के पुत्र को उस आश्रम में रख कर विद्याभ्यास करा रहे थे। अब उसका विद्याभ्यास पूर्ण होगया, इसलिए उसको साथ लेकर तीर्थ-यात्रा की गरज से निकले हैं। यह कह कर लोगों को चकमा दिया जाय; और अपना कार्य साधा जाय। यह एक दूसरा मार्ग है। इसके सिवाय एक तीसरा मार्ग यह है कि, उपर्युक्त बातों में से कोई भी बात न बनाई जाय; और जिस समय जैसा मौका आ जावे, उस समय वैसा ही प्रकट कर के अपना काम निकाला जाय। अब इन तीनों मार्गों में से किस मार्ग का स्वीकार करना चाहिए? इस बात का चाणक्य ने अपने मन में खूब विचार किया; और वह विचार जो कुछ किया हो, परन्तु इस समय उन्होंने इतना निश्चय अवश्य किया कि, वसुभूति को अपने विषय में अभी तक जो वृतान्त बतलाया है, वह ठीक नहीं था, इसलिए अब उनसे जाकर यह बतलाना चाहिए कि, वास्तव में हम किरात राजा की तरफ से यहां मुरादेवी का समाचार लेने के लिए आये थे, और अब उसका सब हाल हमें मालूम हो चुका है, इस लिए अब हम यहां से लौट जायँगे; और उसका सुखसमाचार जा कर उसके भाई को बतलावेंगे कि, वह अब बड़े मज़े में है, उसको कोई कष्ट नहीं है, अब उसके वे दुर्दिन बीत गये; और अब अच्छे ग्रह आये हैं। हां, यदि किरात राजा फिर हमको कभी यहां किसी

कार्य के लिए भेजेगा, तो अवश्य आवेंगे: और आप के दर्शन भी अवश्य करेंगे। यह कह कर उनसे इस बात की क्षमा मांगनी चाहिए कि, हमने उनसे अभी तक अपना सच्चा वृत्तान्त छिपा रखा। सच तो यह है कि, जब हम उनसे यह बतला देंगे कि, अपना सच्चा हाल किसी परकीय पुरुष के सामने सहसा न बतलाना चाहिए, और यही समझ कर हमने अपना हाल नहीं जतलाया था, तब उनका समाधान अवश्य हो जायगा। फिर इसके सिवाय और भी इधर उधर की बातें करके उनको हम ख़ुश कर लेंगे। क्योंकि उनको ख़ुश रखना हमको अपने लिए बहुत आवश्यक जान पड़ता है। वसुभूति के साथ हमारी जो मित्रता इस समय होगई है, उससे किसी न किसी समय हमको अवश्य ही बड़ा लाभ होगा; और उनका शिष्य सिद्धार्थक तो बड़े ही काम का आदमी जान पड़ता है। उसको मिलाये रखना बहुत ज़रूरी है। यह सोच कर चाणक्य वसुभूति के बिहार में गये; और उनसे कहा, "आप से मुझे एकान्त में कुछ कहना है" वसुभूति उनको एक ओर ले गये। वहां चाणक्य ने अपने हृदय को साफ करके दिखलाने का ख़ूब ढोंग रचा; और ऐसा दिखलाया कि जैसे वसुभूति के समान धर्मपरायण और सत्यप्रिय भिक्षु के साथ इतने समय तक प्रतारणा करने के कारण उनको बड़ा ही पश्चात्ताप हो रहा हो! इसके बाद उन्होंने अपना नवीन बनाया हुआ परिचय देकर उनसे पिछली बातों के लिए क्षमा माँगी। उनका उक्त भाषण इतना चातुर्यपूर्ण हुआ कि, वसुभूति पूर्णतया उनके चकमे में आगये; और फिर उनसे बोले, "ब्राह्मणश्रेष्ठ" आप इस बात का कुछ भी ख़याल न करें। कोई हर्ज नहीं। नवीन मनुष्य को परकीय स्थान में जा कर ऐसा ही करना चाहिए। नीति यही कहती है कि, चतुर मनुष्य को एक बिलकुल नवीन स्थान में जाकर सहसा यह न बतला देना

चाहिए कि, हम कौन हैं, कहां से आये हैं, किस लिए आये हैं, इत्यादि।" यह कह कर उन्होंने चाणक्य का समाधान किया; पर चाणक्य ने फिर भी यही दिखलाया कि, वसुभूति के समान बुद्धभिक्षु से, कि जो कभी असत्यमार्ग से नहीं जा सकता, अथवा असत्य भाषण नहीं कर सकता है, ऐसे पवित्र बुद्धभिक्षु से उन्होंने जो असत्य भाषण किया, उस पर उनको अत्यन्त ही खेद हो रहा है। उन्होंने ऐसा कुछ ढोंग उस समय रचा कि, जिसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। बेचारे वसुभूति क्या जानें कि, यह ऐसा चतुर ब्राह्मण है! उन्होंने उसकी सब बातों को सच समझा; और बार बार समाधान-कारक वचन कह कर उनके उस ख़याल को दूर करने का प्रयत्न किया। इतने में वृन्दमाला भी वहां आ पहुँची, तब तो चाणक्य के उस पश्चात्ताप की सीमा ही न रही। उन्होंने कहा, "देखिये, भिक्षुजी, जिस समय मैंने इससे बतलाया कि, हम कौन हैं, और पाटलिपुत्र में किस उद्देश्य से आये हैं, उसी समय इसने मुझे सहायता देकर अपनी स्वामिनी से मेरी भेंट करा दी। मेरा काम हो गया। अब मैं एक ऐसा समाचार लेकर जाऊंगा कि, जिसे सुन कर मुरादेवी के मायके के लोग बहुत प्रसन्न होंगे; और मुझे भी बड़ा आनन्द हो रहा है; क्योंकि मैंने स्वयं देवीजी से मिल कर उसको आनन्दवार्ता जान ली है। परन्तु वह आनन्दवार्ता मुझे कभी न मिलती, यदि मुझे आपकी यह शिष्या सहायता न करती। वृन्दमाला वास्तव में आपकी एक बहुत ही सुयोग्य शिष्या है। ज्यों ही मैंने इसको अपना सच्चा वृत्तान्त बतलाया, त्योंही इसने मुझे सहायता देने और अपनी स्वामिनी से भेंट करा देने की बात स्वीकार कर ली।" यह कह कर उन्होंने वृन्दमाला की बड़ी ही प्रशंसा की। इतनी प्रशंसा की कि, मानों वृन्दमाला उनके उस प्रशंसारूपी प्रवाह में बह कर गोता

खाने लगी, और जिस कार्य के लिए वह इस समय वसुभूति के पास आई थी, उसको भी मानों भूल सी गई। इसके बाद चाणक्य ने उन दोनों से फिर भी कहा, "अब हम अपने आश्रम को लौट जाँयगे। बहुत दिन से हम बाहर निकले हैं। आश्रम के कुलपति हम पर बहुत रुष्ट होंगे। इसके सिवाय किरात राजा भी अत्यन्त चिन्तित होंगे।" यह कह कर उन्होंने उन लोगों से बिदा माँगी। साथ ही साथ यह भी कहा कि, "किरत राजा अपने पुत्र को—अर्थात् मुरादेवी के भतीजे को—पाटलिपुत्र में कुछ दिन के लिए राजधर्म सीखने और देशपर्यटन करने के उद्देश्य से भेजने वाला है। कदाचित् वह मुझ को ही उस बालक के साथ भेजे, तो यहाँ फिर एक बार मेरे आने की सम्भावना है। यदि आ गया, तो आप से अवश्य ही मिलूंगा।"

हम ऊपर बतला चुके हैं कि, कुछ समय पहले वृन्दमाला चाणक्य के बचन सुन कर उनके प्रशंसारूपी प्रवाह में बह कर गोते खाने लगी थी, सो अब वह कुछ सम्हली, और सोचा कि, मुरादेवी के साथ चाणक्य जब बातचीत करने गये थे, उस समय देवी जी का अन्तिम कथन कुछ मैंने सुना था। उस कथन के विषय में यदि इस समय मैं चाणक्य से कुछ पूछूं, तो शायद ये हमको उस विषय में कुछ खुलासा तौर पर बतलावें। सम्भव है कि, न भी बतलावें; परन्तु कम से कम एक बार पूंछ कर तो अवश्य ही देखना चाहिए! देखें, ये क्या कहते हैं। इस प्रकार मन ही मन सोच कर वृन्दमाला चाणक्य से बोली, "ब्राह्मणश्रेष्ठ, जिस समय आप मुरादेवी के यहाँ से चले, उस समय उन्होंने आप से कुछ कहा था। उसके विषय में क्या आप मुझे कुछ बतावेंगे? मैंने कुछ अधूरा सा ही सुन पाया था: और उसी समय से इच्छा कर रही थी कि, आप से मिलने पर

कुछ खुलासा तौर पर पूछूंगी। इसलिए, इस समय, मौका मिलने पर पूंछ रही हूं।"

"मुरादेवी? मुरादेवी अपने भाई और माता के लिए सन्देशा बतला रही थी—और क्या बतलायेगी? स्त्रियाँ अपने मायके के आदमी से कैसे संदेशे बतलाती हैं, सो सब तुझे मालूम ही है। बस, उसी प्रकार का एक संदेशा वह बतला रह थी। बल्कि इस समय तो वह सारा का सारा मेरे ध्यान में भी नहीं रहा। हाँ, उसके कहने का सारा तात्पर्य यही था कि, अब मैं आजकल बड़े सुख में हूँ, किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं है। गत सत्रह अठारह वर्ष से जितने कष्ट हमने उठाये, उन सब का बदला अब मुझे मिल रहा है। इसलिए अब तुम लोगों में से भी कोई एक आदमी यहाँ आकर हमारे इन सुख के दिनों को देख जाओ। कम से कम मेरे भतीजे को तो अवश्य भेज दो। बस, इसी प्रकार के कुछ संदेशे वह बतला रही थी। स्त्रियों को, अपने मायके के लोगों के लिए, और कौन से सन्देशे हो सकते हैं?"

"अजी, नहीं, नहीं!" वृन्दमाला एकदम कहती है, "यह सन्देशे नहीं। उसने इस आशय के कोई बचन कहे थे कि, वहाँ से यदि ऐसी मदद मिल जायगी, तब तो ठीक ही है; अन्यथा मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तो सब कुछ करूंगी ही, ऐसा कुछ उसने कहा था, और वही मैं जानना चाहती हूँ। सो आप बतलाइये, आप जब वहां से बिलकुल चलने लगे थे, तभी ये शब्द मेरे कान में आये थे।"

यह सुनते ही चाणक्य कुछ चकित से हुए, परन्तु अपना वह चकित होना बाहर न प्रकट करते हुए मानो आप ही कुछ गुन-गुना कर उससे बोले, "प्रतिज्ञा! और वहां की मदद!" इस प्रकार के तो कोई शब्द मेरे ध्यान में नहीं आते—शायद उसने कहा हो—हां, ठीक है! कहा ज़रूर था—उसने यही कहा था कि,

इस समय महाराज हम पर प्रसन्न हैं; और यदि तुम चाहते हो कि, उनकी यह प्रसन्नता हम पर बनी रहे, तो तुम में से एक आदमी को आकर यहां हमारे पास ज़रूर रहना चाहिए इससे हमको सहारा मिलेगा। अन्यथा हमारी सौतों, महाराज का प्रेम हम पर देखकर, फिर हम से डाह करने लगेंगी और न जाने हमारे लिए फिर भी क्या संकट का मौका आ जाय! इस लिए हम को एक ऐसे आदमी की अपने पास आवश्यकता है कि, जिसका हमारे ऊपर मया-मोह हो। आज तक कोई नहीं आया—न सही, अब सुख के दिनों में भी यदि कोई नहीं आयेगा तो मैं फिर उन लोगों का मुंह भी नहीं देखूंगी; और यही हमारी प्रतिज्ञा है! बस ऐसा ही कुछ उसने कहा था ज़रूर! और तो कुछ नहीं कहा था! फिर जो कुछ तू ने सुना हो! मुझ से उसने इतना आग्रह अवश्य किया है कि हमारी माता जी एक बार हमको अवश्य दिखाई दे जायँ; और भतीजे को मैं कुछ दिन अपने यहां रखना चाहती हूँ। उसके देखने की भी हम को बड़ी इच्छा है, इसलिए आप उसको ज़रूर ले आवें। उसने यह भी कहा कि, हमारे इस प्रकार, आग्रहपूर्वक, बुलाने पर यदि कोई नहीं आवेगा, तो मैं फिर मायके के लोगों का नाम तक नहीं लूंगी—यही उसकी प्रतिज्ञा है; और तो कुछ नहीं!" यह सुन कर वृन्दमाला बहुत ही आश्चर्य-चकित हुई। उसने सोचा कि, हमको जो संदेह उस समय हुआ, वह क्या सच नहीं था? मुरादेवी जब से कैद से छूटी, तब से बराबर यही कह रही थी कि अब मैं नाना प्रकार के उपाय करके अपने पति का प्रेम, ज़बरदस्ती अपने ऊपर खींच लूंगी, उसके सुख को मिट्टी कर दूंगी, सारे राज्य का सत्यानाश कर दूंगी; और राजकुल का विध्वंस करके उसकी जगह पर अपने मायके के किसी व्यक्ति को सिंहासन पर बैठाऊंगी। इस प्रकार

की प्रतिज्ञाएं मुरादेवी करती थी; और हम ने समझा था कि, शायद उसने ऐसा करने के लिए ही यह पहला उपक्रम किया होगा; सो क्या झूठ है ? कुछ समझ में नहीं आता। इस प्रकार मन ही मन सोचकर वृन्दमाला बड़े चक्कर में पड़ी; परन्तु फिर उसने चाणक्य से आगे कुछ नहीं पूछा। अपने मनकी बात मन ही में रखी।

चाणक्य दूसरे दिन वहां से चले गये।

यहां तक तो सब ठीक हुआ; पर अब कैसा क्या किया जाय? अब तक तो हम को सिर्फ यही पता लगाना था कि, हमारे अनुकूल मगध की अन्तःस्थिति है, या नहीं—सो सब हमने अकेले पता लगा लिया। परन्तु अब आगे कैसा किया जाय? यह तो हम ने ठीक सोचा कि, चन्द्रगुप्त के विषय में मुरादेवी को यह बतलाया जाय कि, यह तेरा भतीजा है; और फिर चन्द्रगुप्त को एक राजकुमार की तरह, लवाजमे के साथ, मगध में लाकर, उसको इस पुष्पपुरी में अधिष्ठित किया जाय। यह युक्ति तो हम ने अच्छी सोची, और उसको मन में ठीक ठीक जमा भी लिया; पर अब इसको किया कैसे जाय? इसको अब हम कार्यरूप में परिणत कैसे करें? यही बड़ा भारी प्रश्न है। हम एक बिलकुल दरिद्री ब्राह्मण हैं, और चन्द्रगुप्त भी एक ग्वाले का पाला पोसा हुआ लड़का है। ऐसी दशा में अब हम को एक राजकुमार की तरह उसको इस मगध के समान ऐश्वर्यशाली प्रान्त में लाना है; और बड़े ठाटबाट तथा लवाजमें के साथ, उसको बिलकुल राजकुमार के वेश से लाना है, यह बात कुछ सहज नहीं है। इसमें हमको बड़ी कठिनाई पड़ेगी। अरे, हम तो एक दरिद्र पर्णकुटी में रहने वाले भिखारी ब्राह्मण, जिनके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं! और अब हमको मगध देश में कुछ दिन तक एक अच्छे नवयुवक राजकुमार को साथ लेकर रहना है।

इसलिए अब यह सम्भव नहीं कि, केवल हमारे मनोमोहक भाषणों और हमारे विलक्षण चातुर्य पर ही भूल कर कोई बड़ी भक्ति के साथ, हमारी सेवा करता रहे! अब तक हम बिलकुल अकेले थे, अतएव चाहे जिस प्रकार अपना गुज़ारा किया, परन्तु अब हमको ऐसा कार्य छेड़ना है कि, जिसमें हमको अनेक गुप्त जासूस रखने पड़ेंगे; अनेकों को अनेक प्रकार से सन्तुष्ट करके उनसे हमको अपने काम निकालने पड़ेंगे। ये सब काम निकालना और नाना प्रकार के जासूस और गुप्तचर, इत्यादि रखना—यह सब द्रव्य के बिना कैसे हो सकेगा? और द्रव्य लावेंगे कहाँ से? चाणक्य को वास्तव में अपने लिये तो एक कपर्दिका की भी ज़रूरत न थी; क्योंकि उनके समान निस्पृह और निरकाँक्ष उस समय केवल वही थे—अन्य कोई नहीं था। परन्तु जिस कार्य को करने वे चले थे, उसमें द्रव्य की बड़ी आवश्यकता थी। सो द्रव्य कहां से लाया जाय? इसी चिन्ता में चाणक्य चूर हो रहे थे। इस प्रकार द्रव्यसम्बन्धी चिन्ता करते हुए चाणक्य आज धीरे धीरे मार्ग में चले जा रहे थे। साथ ही इस बात की चिन्ता भी उनको कुछ कम न थी कि, देखो, हम अपने पीछे चन्द्रगुप्त पर ही आश्रम का सब भार डाल आये थे—जाने उसने कैसा क्या प्रबन्ध किया हो! हमारे उन भिल्ल, खास, प्राच्य, गोंड़, ओंड, इत्यादि लोगों के लड़कों से लड़भिड़ कर कहीं उसने सारे आश्रम को ही चौपट न कर दिया हो! इस प्रकार की एक चिन्ता भी चाणक्य के चित्त को चंचल कर रही थी। सच तो यह था कि, अभी तक उनको अपने आश्रम के संचालित करने में कोई बहुत परिश्रम नहीं करना पड़ता था। क्योंकि उनके उक्त नवयुवक शिष्य उनके लिए कन्द मूल लाकर उनको अर्पण करते थे; और स्वयं इधर उधर आखेट इत्यादि करके अपना निर्वाह किया करते थे। इस प्रकार वे सब शिष्य चाणक्य मुनि की सेवा

करके उनसे विद्यासम्पादन किया करते थे। इसके सिवाय भिल्ल, किरात, इत्यादि लोगों के राजा भी, कि जिनके लड़के चाणक्य के आश्रम में पढ़ा करते थे, उनके लिये यथाशक्ति कुछ द्रव्य भेज दिया करते थे। परन्तु अब आगे क्या प्रबन्ध किया जाय? क्योंकि अब जो षड्यंत्र आगे करना है, उसमें थोड़े द्रव्य से काम नहीं चलेगा। उसके लिए एक बहुत भारी रक़म की आवश्यकता होगी। अतएव चाणक्य ने अन्त में यही सोचा कि, अच्छा, देखा जायगा—कोई परवा नहीं। अब हम जा ही रहे हैं, उन अपने शिष्यों की ही विद्या का उपयोग करके हम ग्रीक यवनों को लुटवावेंगे; और इस प्रकार बहुत जल्द काफी धन एकत्र कर लेंगे। ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि जिससे बहुत ही शीघ्र कोई न कोई द्रव्य-साधन शीघ्र ही प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार मन ही मन सोचते हुए, परन्तु कुछ खिन्नचित्त होते हुए, चाणक्य अपने आश्रम की ओर चले जा रहे थे।

ज्यों ज्यों वे अपने आश्रम के निकट पहुँचने लगे, त्यों त्यों उनकी उपर्युक्त विवंचना और भी अधिक बढ़ती ही गई। किन्तु जब वे अपने आश्रम के बिलकुल ही पास पहुँच गये, तब उनकी उक्त विवंचना कुछ कम हो गई; और अब वह इस विचार में लगे कि, हमारा शिष्य जब हमको देखेगा, तब क्या कहेगा? उसको कितना आनन्द होगा? इस प्रकार के विचार उनके मन में आने लगे। अतएव कुछ चिन्ता और कुछ उत्सुकतापूर्ण हृदय से चाणक्य अब अपने आश्रम की सीमा के अन्दर आ पहुँचे। इतने में उनका मन एकदम कुछ आनन्दित सा हुआ—मानों कोई बहुत ही सुन्दर समाचार उनके कानों में आनेवाला हो; और उसी के सूचनार्थ उनको उक्त आनन्द हुआ हो! अतएव अब चाणक्य यह सोचने लगे कि, हमारे हृदय में जो यह आकस्मिक आनन्द एकदम आ गया, इसका कारण क्या होना

चाहिए ? बस, इसी प्रकार का विचार करते हुए वे अपने तपोवन में प्रविष्ट हुए। इतने में उनको ऐसा मालूम हुआ कि, दूर पर कहीं एक बहुत बड़ा शोर—आनन्द का शोर—मच रहा है। चाणक्य ने सोचा कि, हमारी शिष्य-मण्डली भी शायद उसी ओर होगी। किसी ने कोई बड़ा हरिन, कोई अरण्यमहिष, गवा, अरण्यसूकर, व्याघ्र अथवा सिंह किसी लड़के ने मारा होगा, और उसी शिकारी लड़के के अभिनन्दनार्थ यह इतना भारी हर्षामर्ष मच रहा है। ऐसी दशा में यदि हम भी अचानक वहीं जा पहुँचेंगे, तो उनके आनन्द का पारावार नहीं रहेगा। यह सोच कर चाणक्य उसी आनन्दपूर्ण कोलाहल के अनुसन्धान से आगे चले। कुछ दूर चलने के बाद क्या देखते हैं कि, सारी शिष्यमंडली एक ही जगह एकत्रित हो रही है, चन्द्रगुप्त उसके बीच में खड़ा है। इसके बाद उन्होंने देखा कि, चन्द्रगुप्त के आगे कुछ रखा हुआ है, और एक ओर दो चार यवन डोरियों से बँधे हुए, कैदी की हालत में, खड़े हैं। इसके सिवाय, सब शिष्य लोग आपस में कुछ बातचीत कर रहे हैं। यह सब देख कर चाणक्य ने सोचा कि, आओ—थोड़ी देर इस वृक्ष की ओट में खड़े होकर इनकी बातचीत सुनें, और तब आगे जावें। यह सोच कर चाणक्य उनकी ओर कान लगा कर सुनने लगे। इतने में निम्नलिखित सम्भाषण उनके कानों में पड़ाः—

"चन्द्रगुप्त, आज यदि गुरु जी यहाँ होते, तो क्या ही बहार हुई होती—वे तुम्हारा यह पराक्रम देख कर बड़ी ही प्रशंसा करते।"

"वीरव्रत, 'तुम्हारा' क्यों कहते हो? 'हम सभी का' क्यों नहीं कहते? सच तो यह है कि, इस समय जितना पराक्रम मैंने किया है, उतना ही—उतना ही क्यों? उससे भी कहीं अधिक

तुमने किया है। जो हो, किन्तु मित्रो, अब हम लोगों को यह सारा खजाना—यह सब द्रव्य—ऐसा का ऐसा ही रख छोड़ना चाहिए, और जब गुरु जी आ जाँय, तब उनके चरणों में यह गुरुदक्षिणा अर्पण करनी चाहिए। यह तुम सब लोगों का विचार दृढ़ है न ?"

"दृढ़ ? भाई चन्द्रगुप्त, इस विचार की दृढ़ता के विषय में क्या पूंछते हो ? यह सब गुरुदक्षिणा ही है ?" कह कर सब लोग एकदम चिल्लाये।

'पराक्रम', 'खजाना' और 'द्रव्य' के शब्द सुनते ही चाणक्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि, जान पडता है कि, इन लड़कों ने कहीं कोई पराक्रम करके कोई भारी खजाना प्राप्त किया है, और यदि ऐसी ही बात है, तो अवश्य ही इन्होंने एक बड़ा भारी प्रशंसनीय कार्य किया है। यह सोच कर वे एकदम आगे बढ़े। उनके मन में आया कि, इस समय हमको द्रव्य की इतनी आवश्यकता थी, इसलिए ऐसे समय में यदि ये बालवीर सचमुच ही किसी शत्रु को जीत कर द्रव्य सम्पादन करके लाये होंगे, तो इससे अधिक आनन्द की बात और क्या हो सकती है ? यह सोच कर वे क्षण भर भी फिर अपने उस गुप्त स्थान में नहीं रह सके। एकदम वे यह कहते हुए अपने शिष्यों के आगे आये—"वत्सो, तुम सब चिरायु होवो ! तुम्हारी मुझ पर जो भक्ति है, उसको देख कर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ हूं !" इतने में उन लड़कों के आगे रखी हुई वह सौवर्ण निष्क-राशि भी उनकी दृष्टि पड़ी। उसे देखते ही उनके नेत्र मानों दीप्त से हो गये। शिष्यों ने जब देखा कि, गुरुजी के विषय में वार्तालाप करते समय ही गुरु जी सामने आ उपस्थित हुए, तब उनको भी अत्यन्त आश्चर्य और आनन्द भी हुआ। वह आश्चर्य और आनन्द का आवेग जब कुछ कम हुआ, तब सब ने आगे

बढ़ कर परम भक्ति के साथ गुरु जी के चरणों की वन्दना की। एक ने आसन बिछा दिया, और बैठने के लिए प्रार्थना की। उनके आसनासीन होते ही वीरव्रत ने आगे बढ़ कर उनसे कहा, "गुरु जी, चन्द्रगुप्त ने आज पाँच सात सौ ग्रीक-यवनों पर आक्रमण करके उनका पराजय किया है। कितनों ही को मारा और कितनों ही को भागने के लिए बाध्य किया। ये चार पाँच आदमी कैद कर लिये गये हैं। गुरु जी, ये लोग किसी आर्य राजा के राज्य में घुस कर, गरीब प्रजा को सता कर, यह द्रव्य लूट लाये थे, और अपने राजा सलूकस निकत्तर के पास इसको लिये जा रहे थे। इसलिए यह द्रव्य हमने इनसे छीन लिया है। गुरु जी, चन्द्रगुप्त का पराक्रम…… …"

"गुरुजी," चन्द्रगुप्त बीच में ही बोल उठा, "मेरे अकेले का ही नाम ये व्यर्थ लेते हैं—वास्तव में, गुरु जी, इन सभी ने आज बड़ा पराक्रम दिखलाया है। किन्तु, जो कुछ भी हो—यह सारा द्रव्य गुरुदक्षिणा के तौर पर आपके चरणों में समर्पित करने और इन यवनों को आपके दासत्व में रखने का हम लोगों ने निश्चय किया है। हमारे बड़े भाग्य हैं, जो आप आज ठीक समय पर ही यहाँ आ उपस्थित हुए हैं। अब इसको स्वीकार कीजिए, और हम सबको आशीर्वाद दीजिए।" चन्द्रगुप्त का यह कथन समाप्त होते ही सब शिष्यों ने मिल कर "गुरु जी महाराज की जै हो" "आर्य चाणक्य की जय हो" कह कर एकदम जय-घोष किया।

उस जय-घोष को सुन कर चाणक्य के नेत्रों में आनन्द और प्रेम के आँसू आ गये, और उनका कंठ गद्गद् हो गया। उनके मुख से एक शब्द भी न निकलने लगा। वीरव्रत, चन्द्रगुप्त, इत्यादि शिष्य उनके पास ही थे—उनको उन्होंने बड़े प्रेम से अपने हृदय में लगाया, और उसी गद्गद् कंठ से सिर्फ इतने

वचन कहे—"वत्सो, इस द्रव्यराशि को सम्पादन करके तुम लोगों ने इतना बड़ा भारी कार्य किया है, कि जिसका कुछ कहना नहीं" इसके बाद वे एक अक्षर भी न बोल सके।

इसके एक ही दो दिन बाद चाणक्य ने अपने वीरव्रत, चन्द्रगुप्त, इत्यादि मुख्य मुख्य शिष्यों को एक ओर ले जाकर कुछ समझाया, और फिर वीरव्रत से कहा कि, तुम आश्रम में ही रहो, और यहाँ का प्रबन्ध देखो। इसके सिवाय समय समय पर हमारे जो आज्ञापत्र आवें, उनके अनुसार सब काम करो। इसके बाद फिर उन्होंने चन्द्रगुप्त को किसी राजपुत्र के समान वस्त्राभूषण पहनाये, और उसके अनुकूल ही सब लवाजमा ले कर, वे चन्द्रगुप्त के साथ पाटलिपुत्र में आ गये। यहाँ पर यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि, जो द्रव्य चन्द्रगुप्त इत्यादि उनके शिष्यों ने यवनों से छीना था, उसको भी वे अपने साथ लेते आये।

बारहवां परिच्छेद

चाणक्य का अपने मन में विचार।

पिछले परिच्छेद में हमने बतलाया ही है कि चाणक्य, अपने सच्छिष्य चन्द्रगुप्त और अन्य कुछ लोगों के साथ पटलिपुत्र में आ पहुँचे। अब की बार वे इस विचार में नहीं पड़े कि कहाँ जावें, और क्या करें; किन्तु एकदम वे मुरादेवी के महल पर ही जा पहुंचे और उसके सामने चन्द्रगुप्त को खड़ा करके कहा, "देवी, तेरे भ्राता प्रद्युम्नदेव और माता मायादेवी ने आशीर्वाद-पूर्वक तेरा कुशल प्रश्न पूछा है; और कहा है कि, तेरे आमंत्रण के अनुसार हम किसी कारणवश आ नहीं सकते: और इस बात का हमें बड़ा खेद है; परन्तु हां तेरे भतीजे को, जो हमारा प्राण ही है, चाणक्य के साथ तेरे समीप भेजा है— उसको तू अपने यहां चार छै दिन रख ले। वह हमसे कभी दूर नहीं हुआ। तुझको अभी वह पहचानता भी नहीं है, फिर भी तेरे आमंत्रण के कारण उसको तेरे पास भेज दिया है, इसलिए चार छै दिन तू उसको अच्छी तरह से अपने पास रख ले। उसको यदि तू यहां की याद नहीं आने देगी, तो वह बड़े आनन्द से तेरे पास बना रहेगा। उसको यहाँ की याद न आने देने का एक ही उपाय है; और वह यह कि तू उससे हम दोनों के विषय में, अथवा यहां की किसी बात के विषय में भी, कभी

चर्चा न निकालना। उन्होंने तुझको देने के लिए एक पत्र भी मुझको दिया है।" इतना कह कर चाणक्य ने मुरादेवी को एक पत्र दिया।

चन्द्रगुप्त को देख कर मुरादेवी की चेष्टा कुछ विचित्र सी हो गई, परन्तु वह उस समय इस विषय में कुछ भी नहीं बोली। बहुत देर तक चुप बैठी रही। फिर चाणक्य का दिया हुआ वह पत्र पढ़ कर उसने चाणक्य से कहा, "आर्य चाणक्य, इस लड़के को देखकर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ। अब मैं इसको महाराज का दर्शन कराती हूं, आप भी महाराज के दर्शन को चलें।"

मुरादेवी का यह आमंत्रण सुनते ही आर्य चाणक्य के मस्तक में सिकुड़े पड़ गये, पर उन्होंने क्षण भर भी उनको मस्तक पर टिकने नहीं दिया, और एक सुन्दर हास्य करके वे मुरादेवी से बोले—"देवी, मैं एक बिलकुल दरिद्र, परन्तु सर्वथा निरिच्छ, ब्राह्मण हूँ—मुझको राज दर्शन करके क्या करना है? इस लिये तू मुझ पर कृपा कर, और इस समय मुझे ऐसा ही जाने दे। चन्द्रगुप्त जब तक यहां रहेगा, मुझे भी पाटलिपुत्र में रहना होगा। प्रद्युम्नदेव और मायादेवी ने मुझसे यही कह दिया है कि, चार दिन जब यह वहां रह ले, तब फिर तुम इसको साथ लेकर चले आना। इसलिए अब मैं अपने स्थान को जाता हूँ।"

"अपने स्थान को? पाटलिपुत्र में आप का स्थान कहां है? आप शायद अन्य किसी स्थान की तलाश में जा रहे हों, तो ऐसा आप न करें। व्यर्थ के लिए स्थान इत्यादि ढूंढ़ने का परिश्रम क्यों करेंगे! हमारी यज्ञशाला आप के लिए खुली है, वहां आप आनन्द से ठहरें। आप के तपश्चरण अथवा अन्य धर्म-कार्यों में किसी प्रकार का भी व्यत्यय नहीं होगा। इसके सिवाय, आप यदि यहीं रहेंगे तो इस मेरे भतीजे को भी अच्छा लगेगा।

तब तक यह हम में हिलमिल जायगा। हमारी बड़ी इच्छा है कि, हमारी यज्ञशाला आप के समान मुनियों की तपःक्रियाओं से पुनीत हो। बाहर आप कहां रहेंगे ?"

"देवी मुरे" चाणक्य तत्काल उत्तर देते हैं, "तू मुझ पर इतनी भक्ति रखती है, इस पर मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है; पर मैं यहां रह नहीं सकूंगा। पाटलिपुत्र के बाहर गंगा के तट पर मैंने एक पर्णकुटी डलवा ली है। मेरे शिष्य लगभग चार दिन पहले ही यहां आ गये थे और उन्होंने यह सब तैयारी कर रखी है। देवी, मैं बिलकुल ही निरिच्छ एक गरीब ब्राह्मण हूँ। मुझे तेरे इस राज-महल के सुखों से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रद्युम्नदेव ने बड़े आग्रह के साथ प्रार्थना की कि, तुम कुमार चन्द्रगुप्त के साथ चले जाओ, और मेरा भी चन्द्रगुप्त पर बहुत प्रेम है, क्योंकि बाल्यावस्था से ही प्रद्युम्नदेव ने इसको मेरे सिपुर्द कर रक्खा है, और दो दिन भी यदि मैं इसको नहीं देखता, तो मुझे बड़ी कठिनाई होती है, बस इसी विचार से मैं इस के साथ चला आया। देवि, कुमार चन्द्रगुप्त का एक एक गुण ज्यों ज्यों तू देखती जायगी, त्यों त्यों उस पर तेरा प्रेम बढ़ता ही जायगा। और देख, मैं तुझे गुप्त रूप से यह बात बतलाये रखता हूँ कि इसके हाथ पर चक्रवर्ती होने के सब लक्षण विद्यमान हैं! भगवान कैलासनाथ इसको चिरायु करें! बेटा चन्द्रगुप्त, मैं अब जाता हूँ। तेरी यह बुआ तुझको बहुत अच्छी तरह से रखेगी। मैं प्रति दूसरे रोज़, अथवा कभी कभी प्रति दिन भी, तुझ से मिलता रहूँगा। तू कोई चिन्ता न करना।"

यह कह कर चाणक्य वहां से उठ पड़े। मुरादेवी के आग्रह का कोई उपयोग नहीं हुआ। चाणक्य पहले ही जब पाटलिपुत्र से गये थे, गंगा तट पर सचमुच ही एक शान्त, स्थिर और रम्य स्थान पर, पर्णकुटी बनाने का प्रबन्ध कर गये थे। वे सिद्धार्थक

से पहले ही कह गये थे कि, हमारे आने के पहले तुम यहां हमारी आवश्यकता का सब सामान एकत्र कर रखना। क्योंकि, वसुभूति के विहार में जब सिद्धार्थक पहले उनको मिला था, तभी से उनकी उसके साथ अच्छी गट्टी जम गई थी। इसलिए उसने भी चाणक्य को पाटलिपुत्र में आने पर सब प्रकार की सहायता करने का वचन दिया था। अतएव चाणक्य के शिष्य जब चार दिन पहले पाटलिपुत्र में आ गये, तब सिद्धार्थक ने उनको पर्णकुटी इत्यादि तैयार कराने में अच्छी सहायता दी।

अस्तु। मुरादेवी ने जब देखा कि, हमारे इतना आग्रह करने पर भी यह निरिच्छ ब्राह्मण हमारा आदरातिथ्य स्वीकार नहीं करता, तब उसे कुछ क्रोध सा आया; पर अन्त में उसने सोचा कि, सचमुच ही यह ब्राह्मण कोई अत्यन्त निस्पृह और निर्लोभ व्यक्ति है कि जो स्वयं महाराज की एक प्रेमपात्र राजमहिषी के आग्रह करने पर भी उसके आदरातिथ्य का स्वीकार नहीं करता! इसलिए अन्त में उसको भी उस ब्राह्मण के विषय में अत्यन्त भक्तिभाव उत्पन्न हुआ।

चाणक्य वहां से चल कर सचमुच ही अपनी उस गंगातट वाली पर्णकुटी में ही आ पहुँचे। वहां आकर जब उन्होंने देखा कि, सारा प्रबन्ध उनके मन के अनुकूल ही हो गया है, तब उनको बड़ा आनन्द हुआ। अतएव अब उन्होंने सोचा कि, अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए अब हमारे पास सभी अनुकूल साधन एकत्रित हो रहे हैं, इसलिए अब हम अपने चातुर्यपूर्ण प्रयोग कर के, नाना प्रकार के उपायों से, नन्दवंश का विध्वंस करेंगे। जिस दिन उन्होंने चन्द्रगुप्त को मुरादेवी के सिपुर्द किया, उसी रात को जब कि सारी शिष्य-मंडली निद्रावश हुई, और उनकी पर्णकुटी में शान्ति हो गई, तब चाणक्य वहीं एक ओर बैठकर यह विचार करने लगे कि अब आगे हमको क्या क्या

करना चाहिये; और अब तक जो कुछ हम कर चुके हैं, उसमें से कौन कौन सी बात हमारे उद्देश्यसाधन में किस किस प्रकार उपयोगी होगी"। चाणक्य की प्रतिज्ञा यह थी कि, नन्दवंश में जो नौ व्यक्ति इस समय मौजूद हैं, उन सब का नाश करके उनकी जगह पर हम एक ऐसा पुरुष स्थापित करेंगे, तो हमारे ही द्वारा अच्छी तरह तैयार किया गया होगा। अब तक हमारी प्रतिज्ञा के अनुकूल जो साधन-सामग्री प्राप्त होती गई, उसमें हमारे चातुर्य का भाग बहुत कम था। वास्तव में दैव की अनुकूलता से ही अभी तक सब बातें हमारे अनुकूल मिलती गईं। नन्द राजा ने जब हमारा अपमान किया, तब हम अत्यन्त खिन्न और क्रुध हो कर उसके वंश के विध्वंस करने की प्रतिज्ञा उसके सामने ही करके, पाटलिपुत्र से निकले; और मार्ग में यही सोचते जाते थे कि अब आगे हम कैसा क्या करेंगे, कि, इतने में हमको एक ऐसा बालक दिखाई दिया कि, जिसको हम अपने पास रख कर सब प्रकार से उसे तैयार कर सकते थे, और चक्रवर्ती के सब चिन्ह उसमें पाये जाते थे। उसको हमने उसके पिता के पास जाकर मांगा और थोड़े ही प्रयत्न से हमको यह मिल भी गया। उसको क्षत्रियोचित सब विद्याएं और कलाएं हमने सिखलाईं। किरात, व्याध, खास, इत्यादि लोगों के नव युवक लड़कों और उनके राजपुत्रों को भी हमने उसी के साथ शिक्षित कर के तैयार किया; और उन सब के मन में चन्द्रगुप्त के विषय में भक्ति उत्पन्न की। यह सब मैंने किस लिए किया? इसी लिए कि, जिससे ये सब नवयुवक आगे चल कर चन्द्रगुप्त के लिए उपयोगी हों। यह सामग्री तो सब ठीक होगई। अब, एक कदम आगे रखना चाहिए—यह सोच कर हम चन्द्रगुप्त को आश्रम में ही रखकर इधर पाटलिपुत्र का हालचाल लेने को आये। यहां भी दैवयोग से हम को पूरी सफलता प्राप्त हुई।

सब परिस्थिति हमारे अनुकूल ही मिल गई। यही नहीं, बल्कि मानो श्रीगिरिजाजी को ही हमारी प्रतिज्ञा के पूर्ण कराने का अभिमान हुआ; और उन्होंने राजा के द्वारा मुरादेवी को बन्धन-मुक्त करा उसके मन में मत्सर का संचार कराया; और हमारी प्रतिज्ञा पूर्ण कराने के लिए यह एक बहुत ही उत्तम साधन तैयार कर दिया। इसके बाद उससे मिलकर मैंने उसकी उस मत्सराग्नि को और भी प्रज्वलित किया, और अब चन्द्रगुप्त को उसके पास लाकर रख दिया है। अब वह चन्द्रगुप्त का संगोपन इसी प्रकार करेगी कि जैसे कोई व्याघ्रिणी अपने दुधमुहे छौने का बड़े यत्न के साथ संरक्षण करती है। इसमें अब किसी प्रकार का सन्देह नहीं। कोई कालसर्पिणी अपने छौने को चाहे भले ही भूल जाय: पर मुरादेवी अब चन्द्रगुप्त को नहीं भूल सकती। फिर भी हमको अभी बहुत कुछ करना है। मुरादेवी तो ज़रूर चन्द्रगुप्त की रक्षा बड़े यत्न से करेगी, पर इतने से ही हमको निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिए। किन्तु हमको भी उसके विषय में बहुत सावधानी रखनी चाहिए। क्योंकि उसी पर हमारे सारे भव्य भवन की नींव है। उसके प्राणों को यदि कहीं कुछ हो गया, तो हमारा सारा व्यूह ही ढसल पड़ेगा, इसलिए, अब हम को इस बात का विचार करना चाहिए कि, पहले हम अब क्या करें? पहले हम को यही करना चाहिए कि, म्लेच्छराजा पर्वतेश्वर का वकील जो यहां रहता है, उससे मिलकर हम यह कहें कि, देखो—पर्वतेश्वर यदि यहां इस समय चढ़ाई करके आवे तो यह मौका बहुत अच्छा है। ऐसा सुन्दर मौका फिर हाथ नहीं आयेगा। उससे हम यह भी कहें कि, इस समय यदि तुम ऐसा प्रबन्ध करोगे तो तुमको हम किरात राजा और अपने खास, भील, गोंड़, इत्यादि लोगों की भी मदद दिलाएंगे। मृत्युंजय भी कुछ कम चतुर नहीं है। उसने शायद अवश्य ही जान लिया

होगा कि, यह अवसर नन्द राजाओं का नाश करने के लिए बहुत अच्छा है। उसमें फिर यदि हम उससे यह कहें कि, हम तुम को इस इस प्रकार की मदद देंगे: और नन्द के घर में इस इस प्रकार का भेद डाल देंगे; तब वह हमारे प्रलोभन में अवश्य ही आ जायगा—उसके मुँह में अवश्य ही पानी भर आवेगा: और नन्दराजाओं ने अब तक जो उसको इतना कष्ट दिया है, उसका बदला लेने की इच्छा उसके मन में जागृत हो जायगी। एक बार उसकी इच्छा जागृत हो जाने भर की देरी है, फिर हम पर्वतेश्वर को हर प्रकार की मदद देकर नन्द को खूब छकावेंगे। परन्तु एक बात है। पर्वतेश्वर जब नन्द को पराजित करके मगध में प्रवेश करेगा, तब मगध के सिंहासन पर वह स्वयं अपना अधिकार जतावेगा और वह जब सिंहासन को ले लेगा, तब उसको उस पर से हटाने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी—कठिनाई क्या पड़ेगी—बल्कि यह कार्य एक प्रकार से असम्भव सा ही हो जायगा। ऐसी दशा में करना क्या चाहिए? अच्छा, इसको फिर देख लेंगे। पहले तो धनानन्द के जीवित रहते ही उसके युवराज सुमाल्य का वध किसी ख़ास तरीक़े से कराना चाहिए। और जब सुमाल्य का वध हो जाय, तब पर्वतेश्वर से मगध पर चढ़ाई करा कर सब नन्दों का नाश कराना चाहिए। सब नन्द जब मार डाले जायँ, तब चन्द्रगुप्त का सच्चा सच्चा हाल सब लोगों में प्रकट करा देना चाहिए। उस समय लोगों को यह मालूम हो जायगा कि, चन्द्रगुप्त ही नन्दराज का सच्चा सच्चा और पहला लड़का है, जो इस समय जीवित बचा है; और ऐसा मालूम होने पर स्वाभाविक ही लोग उसको चाहने लगेंगे। इसके सिवाय, हम भी ऐसी ऐसी तरकीबें भिड़ावेंगे कि, जिससे लोग उस पर भक्ति करने लगेंगे। इधर पर्वतेश्वर के विरुद्ध लोगों को उभा-

देंगे। अच्छा यदि ऐसा नहीं हो सकेगा, तो विश्वस्तरूप से पर्वतेश्वर का वध ही करा देंगे। उसका पुत्र मलयकेतु अभी छोटा है। इसलिए उसका कुछ प्रभाव पड़ ही नहीं सकता। लोग उसके अनुकूल नहीं हो सकेंगे। उसको हम बहका लेंगे; अथवा मौके पर उसे टाल देंगे; और चन्द्रगुप्त के नाम की डौंड़ी पिटवा देंगे। मलयकेतु के पिता पर्वतेवर के वध करवाने की यदि आवश्यकता हुई, तो उसका वध तो हम अपनी तरफ से करायेंगे; परन्तु उसका दोप नन्द के पक्षपाती राक्षस आदि लोगों पर रखायेंगे। वास्तव में काम बड़ा विकट है, बड़ी सावधानी और कौशल के साथ व्यूह की रचना होनी चाहिए। यदि हम कहें कि, सभी बातें अभी से एकदम पूर्णतया रच लेवें; और उन्हीं के अनुसार सब काम हो जाय, तो यह भी सम्भव नहीं है। अभी तो हमारे सामने तीन मुख्य बातें हैं—एक तो सुमाल्य का वध; दूसरे सेनापति भागुरायण का स्नेह-सम्पादन; और तीसरे पर्वतेश्वर के राजदूत मृत्युंजय से मिल कर उसका मन टटोलना। सुमाल्य का वध जिस युक्ति के साथ कराने का हमने संकल्प किया है, वह युक्ति यदि सफल हो गई, तो बिलकुल गुप्तरूप से काम हो जायगा। और यदि युक्ति सफल नहीं हुई, अर्थात् यदि हमारा यह कार्य प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध नहीं हुआ, तो फिर भी प्रयत्न कर सकते हैं, और सफलता भी मिल सकती है; पर इस समय इतना काम तो अवश्य ही हो जायगा कि, प्रतिपक्षियों के विषय में राजा के मन में संदेह उत्पन्न हो जायगा; और यह भी एक भारी काम है। भागुरायण की मैत्री सम्पादन करने में हमको कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। क्योंकि जहाँ तक पता लगा है, सेनापति भागुरायण राजा से बहुत प्रसन्न नहीं है। अन्य मंत्रियों ने उन पर यह अपराध लगाया ही था कि, वृषलकन्या

को क्षत्रिय-कन्या बतला कर उन्होंने उसे राजा को अर्पण किया; और उसके गर्भ से होने वाले पुत्र को नन्द के पवित्र सिंहासन पर बैठाने का उन्होंने जानबूझ कर यत्न किया। इस प्रकार का अपराध लगा कर उन्होंने भागुरायण पर राजा को ना.ख़ुश करने का प्रयत्न किया था। इससे अपने प्रतिपक्षियों को नीचा दिखलाना भागुरायण को अवश्य ही अभीष्ट होगा। भागुरायण को अनेक युक्तियों से हम अपने वश में कर लेंगे। और यदि कोई युक्ति काम न करेगी, तो चन्द्रगुप्त का ही सच्चा वृत्तान्त बतला देंगे, इससे वे अवश्य ही हमारे पक्ष में आ मिलेंगे। परन्तु इस तीर को सब से अन्त में अपने तरकस से निकालेंगे। क्योंकि जब तक अन्य सब तीर मोघ निश्चित न हो जायँ, तब तक इस अमोघ तीर को निकालने से क्या लाभ? भागुरायण जहाँ हमारे पक्ष में आ मिले, तहाँ समझो, हमारा निन्नानवे हिस्सा काम हो गया। क्योंकि उन्हीं के अधिकार में सारी सेना है। वे सेनाधिपति हैं। जहाँ एक बार भागुरायण हमारे अनुकूल हो गये; और सारी प्रजा भी जहाँ हमारे अनुकूल हो गई, कि फिर राक्षस के समान सचिव यदि अनुकूल न भी होंगे, तो कोई हानि नहीं। राक्षस के अनुकूल होने की तो आशा ही न करनी चाहिए। उन्होंने तो अपने को नन्द के अर्पण कर दिया है; और जब तक नन्दवंश का बिलकुल नाश नहीं हो जायगा—नन्दरूप मुर्गियों का एक भी बच्चा जब तक जीवित रहेगा—तब तक वे कभी अन्य पक्ष में नहीं मिलेंगे। और जब नन्दों का नाश हो जायगा, हमारी प्रतिज्ञा के अनुसार जब धरती निर्नन्द हो जायगी, नन्द का अथवा नन्दवंश का एक नख भी जब इस धरती पर नहीं रहेगा, तब फिर सचिव राक्षस नन्दवंश के विध्वंस का बदला लेने के लिए कमर कसेंगे—अपनी सारी शक्ति, सारी चतुराई और सम्पूर्ण प्रभाव का उपयोग करेंगे।

प्रजा को भी हमारे विरुद्ध उभाड़ेंगे। मौका पाकर किसी पर कीय राजा को भी मिलावेंगे; और उसी के द्वारा हमारा नाश करने का प्रयत्न करेंगे—करने दो—हम काहे को परवा करते हैं! हम उनकी एक भी नहीं चलने देंगे—वे जितनी युक्तियां हम को नीचा दिखाने के लिए नियोजित करेंगे, सब को हम काट डालेंगे। और अन्त में, यदि हो सका, तो अमात्य राक्षस को भी अपने पक्ष में मिला कर उन्हीं को चन्द्रगुप्त का प्रधान मंत्री बनावेंगे। हम को क्या! हम तो ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हैं. हमें राज्य, धन अथवा अधिकार की कुछ भी परवा नहीं। परवा है सिर्फ अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की। और अपने हाथ में लिये हुए इस बालक को मगध साम्राज्य का चक्रवर्ती बनाने की। बस, इसके सिवाय हमको और किसी बात की लालसा नहीं है। इसको यदि हम पुष्पपुरी के सिंहासन पर बैठा लेंगे, तो इसमें किसी प्रकार का अन्याय भी नहीं होगा; बल्कि और न्याय ही होगा। क्योंकि वास्तव में इसी लड़के का अधिकार सब से पहले इस सिंहासन पर है। सुमाल्य को जो यौवराज्याभिषेक किया गया, वह वास्तव में इसी का होना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसको संसार से नष्ट कर दिया—इस ख़याल से जो आज फूले नहीं समाते, उनकी आँखों में अंजन डालना चाहिए। उनकी आँखों में यदि हमने अंजन डाल दिया, तो इसमें अन्याय कैसा? जानबूझ कर उन्होंने जो अन्याय किया है, उसके लिए यदि उनको कठोर दण्ड दिया गया, तो इसमें अन्याय क्या? अरे, हमारे समान सर्वथा पवित्र, विद्वान, चतुर और राजा का सच्चा हित चाहनेवाला ब्राह्मण द्वार पर आकर आशीर्वाद देता है; और उसको पहले आश्रय देने की वाणी उच्चारण करके फिर उसी वाणी को, अपने दरबार के बुभुक्षित पंडितों की मूर्खतापूर्ण बातों में आकर, बदल देता

है ! ऐसे वचनभ्रष्ट राजा को, यदि एक तपोनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ और शापादपि—शरादपि ब्राह्मण. नाश करने के लिए तैयार हो जाय, तो इसमें अन्याय कौन सा ?

इस प्रकार नाना भाँति के विचार आर्य चाणक्य के मन में, समुद्र कल्लोल के समान उठ और नीचे गिर रहे थे। अन्त में अपने विषय का विचार जब उनके मन में आया, तब तो उनकी चित्तवृत्ति और चेष्टा, मानो अत्यन्त क्षुब्ध महासागर के समान ही दिखाई दी। जिस दिन राज-सभा में उनका अपमान हुआ था, उस दिन का वह विलक्षण दृश्य बिलकुल उनकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगा। उन्होंने देखा कि, जैसे हम बड़े उद्धतपन से राजसभा में प्रविष्ट होकर राजा को आशीर्वाद दे रहे हैं; और हमारी वह उद्धत मूर्ति देख कर सब राज-पंडित चकित, क्रुद्ध और उद्विग्न होते हुए, हमारी ओर आँखें फाड़फाड़ कर देख रहे हैं। इसके बाद राजा के द्वारा हमारा आगत-स्वागत देख कर अब उनका वह क्रोध और भी अधिक बढ़ चला। यही नहीं, बल्कि अब उस क्रोध को मत्सर का स्वरूप प्राप्त होने लगा। यह देख कर अब हम को बड़ा आनन्द हो रहा है; और राजा की गुणग्राहकता पर सन्तोष प्रकट करते हुए, अब हम उसकी ओर अत्यन्त आदरपूर्वक देख कर, उसकी हार्दिक स्तुति करनेवाले हैं कि, इतने में एक पंडित उठ कर अपनी चपट पंजरी प्रारम्भ कर देता है। उसे सुन कर हमारे हृदय में क्रोधाग्नि भड़क उठती है। इतने में उस सभा पंडित का भाषण समाप्त होता है; राजा उसके कथन पर गर्दन हिलाकर हमारा अपमान करता है। इससे हमारी क्रोधाग्नि की सीमा ही नहीं रहती। अब हमारे मुँह से जो शब्द निकल रहे हैं वे 'शब्द' नहीं हैं—भीतर जलनेवाली क्रोधाग्नि का ज्वालाएं निकल रही हैं। हम प्रति पद ऐसी उद्दाम गति से

राजसभा से जा रहे हैं कि, जैसे धरती को ही कम्पायमान कर रहे हों, और चलते चलते हमारे मुख से हमारी घोर प्रतिज्ञा के शब्द भी निकल रहे हैं—इस प्रकार का सारा विलक्षण दृश्य चाणक्य के सामने आकर उपस्थित होगया—मानों वे शीशे में ही वह सब देख रहे हों ! उनको इस बात का भान ही न रहा कि, हम इस समय कहां हैं; और क्या कर रहे हैं. अतएव वह कोपिष्ट ब्राह्मण एकदम उठ कर खड़ा हो गया; और बहुत ही उद्दाम गति से पृथ्वी पर चलते हुए बोला, "अरे मूर्ख धनानन्द, तूने हमारा अपमान नहीं किया है; किन्तु एक दीर्घद्वेषी काल-सर्प के फन पर जान बूझ कर पैर रखा है ! अब वह काल-सर्प, न सिर्फ तेरा ही, बल्कि तेरे सारे कुटुम्ब को- तेरे सारे कुनवे को, दंश करेगा; और उनका पूर्ण सत्यानाश कर डालेगा। यह विष्णुगुप्त—नहीं नहीं यह चाणक्य है—न जाने अब वह नाम मेरी जिह्वा पर क्यों आ रहा है ! मेरा जो अपमान हुआ है, अब इन नन्दों के रक्त से ही उसका परिमार्जन होगा; और तभी इस नाम का फिर इस देह के द्वारा स्वीकार होगा। बीच में इस नाम का क्या काम ?" इस प्रकार के और इसी आशय के और भी अनेक उद्गार उस समय, बहुत ही ज़ोर के साथ, चाणक्य के मुख से निकले। उस समय की जब अपनी वह ध्वनि उन्होंने सुनी; और "धम्म धम्म" उनके जो कदम उस समय पृथ्वी पर पड़ रहे थे, उनकी प्रतिध्वनि जब उनके कानों में पड़ी, तब चाणक्य आपही आप एकदम चकित हुए; और कुछ भान पर आये। इसलिए अब वे सोचने लगे कि, देखो—अभी तक हम न जाने क्या बड़बड़ाते रहे—कहीं हमारे शिष्यों में से तो किसी ने हमारी यह बड़बड़ नहीं सुन ली ? और यदि सुन ली होगी, तो वे अपने मन में क्या कहेंगे ? यही कहेंगे कि, कहीं हमारे गुरु जी का मस्तिष्क तो नहीं बिगड़ गया; ये

पागल तो नहीं हो गये, मन के अनुकूल कोई कार्य न होने के कारण कहीं इन्हें सन्ताप-वायु ने तो नहीं घेर लिया? इस लिए अब हम को शान्त रह कर कम से कम थोड़ी नींद तो ले लेनी चाहिए। परन्तु मन की ऐसी क्षुभित दशा में नींद कहां? बिलकुल अरुणोदय होगया, चाणक्य को नींद नहीं आई। इस कारण उनकी आंखें इतनी लाल होगईं कि, मानो प्रातःसूर्य ने अपना रक्त तेज ही उनके नेत्रों में उतार दिया हो! परन्तु हां, प्रातःसूर्य सौम्य होता है; और चाणक्य के नेत्र रौद्र दिखाई दिये।

तेरहवाँ परिच्छेद

सुवर्णकरंडक के अपूप ।
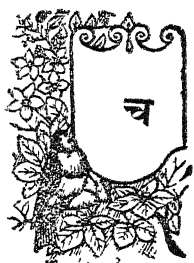
न्द्रगुप्त जब से मुरादेवी के पास रहने के लिए आया, मुरादेवी के हृदय की कुछ विलक्षण सी दशा होगई। पहले ही पहल जब उसने उस नवयुवक को देखा तब उसका चित्त कुछ आनन्दित और कुछ खिन्न सा हुआ। उसने जब यह देखा कि, मेरे भाई का लड़का इतना मदन-सुन्दर, शूर और गुणी निकला है, तब तो उसे आनन्द हुआ; और जब उसे यह स्मरण आया कि, हमारा बेटा यदि आज होता, तो वह भी ऐसा ही सुन्दर, शूर और गुणी हुआ होता, तब उसके मन को बहुत खेद हुआ। इसी प्रकार के आनन्द और खेद के विचार प्रतिदिन उसके मन में आने लगे। जिस समय चन्द्रगुप्त को उसने राजदर्शन कराया, उस समय वह राजा से बोली, "महा-राज, यह मेरे भाई प्रद्युम्नदेव का लड़का है। मेरे भाई और माता ने इसे मेरे पास चार दिन रहने के लिए भेज दिया है। आपकी अनुमति हो, तो रख लूं।" यह कहते हुए उसका कंठ भर आया और आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी, महा-राज ने जब उससे पूछा कि, "तू रोती क्यों है?" तब तो उसका शोक और भी अधिक बढ़ा; और वह बड़े जोर जोर से, फूट फूट कर, रोने लगी। धनानन्द ने बड़े आग्रह के साथ उससे

रोने का कारण पूछा ; पर वह किसी प्रकार भी बतला नहीं सकी। अन्त में राजा ने उसे अपनी छाती से लगा कर, बहुत प्यार करते हुए, उससे उसके शोक का कारण पूछा, तब मुरादेवी इस प्रकार बोली, "आर्यपुत्र, मैं कैसे बतलाऊँ ? जिस बात के लिए आपकी आज्ञा हो चुकी है, कि उसको बिलकुल भूल जाओ, उसकी कभी याद न करो, उसी बात को फिर मैं आपके सामने कैसे बतलाऊँ ? किन्तु आर्यपुत्र, आपकी आज्ञा है, इसलिए मैं उसका उच्चारण चाहे भले ही न करूं, यह बात हमारे हाथ की है; पर उसका स्मरण भी न आवे, यह बात मेरे हाथ की नहीं। पुत्र का स्मरण यदि माता को न होगा तो और फिर किसको होगा? चन्द्रगुप्त को जब से मैंने देखा, तब से रह रह कर यही बात मेरे मन में आ रही है, कि यदि मेरा बेटा भी आज होता, तो वह भी आज इतना ही... ......" इसके आगे उसके मुख से कोई शब्द ही न निकलने लगा, उसका हृदय बिलकुल भर आया—आंसू इतने वेग से बहने लगे कि, राजा, के स्कंध और उरप्रदेश पर जो उत्तरीय (वस्त्र) पड़ा हुआ था, वह बिलकुल भींग गया। उसको समझाते समझाते राजा हार गया, तब अन्त में कुछ हँसते हुए बोला, "प्रिये मुरे, चन्द्रगुप्त को देख देख कर यदि तू रोज ऐसी ही याद कर करके रोती रहेगी, तो मैं इसको रखने की अनुज्ञा नहीं दूंगा। उसको देख कर यदि तू बीती बातों को भूल जायगी; और आनन्दपूर्वक रहेगी, तभी मैं अपनी अनुज्ञा दूंगा। अन्यथा दो एक दिन रख कर तू इसे ऐसा ही वापस जाने दे। अधिक दिन रखने की आवश्यकता नहीं। मैंने निश्चय कर लिया है कि, अब आगे तुझे मैं रत्ती भर भी किसी बात का दुःख नहीं दूंगा; और तू इस प्रकार यदि बीती बातों की याद कर करके शोक करती रहेगी, तो फिर कैसे काम चलेगा ?"

"नहीं, नहीं, आर्यपुत्र," मुरादेवी शीघ्र ही महाराज के स्कंध पर से अपना मस्तक उठाकर और आंखे पोंछ कर बोली, "देखो, यह मैंने अब अपना शोक दूर किया, अब शोक नहीं करूंगी। चन्द्रगुप्त को आज पहले ही पहल देखा था, और इसी कारण इतना दुःख हुआ। अब ऐसा दुःख नहीं होगा। मेरे भैया ने उसको भेजा है, इसलिए अब आप इसको चार दिन यहां रह लेने दीजिए। यही महाराज से प्रार्थना है।"

"चार दिन?" धनानन्द शीघ्र ही उससे बोला, "चार ही दिन क्यों? जितने दिन तेरी इच्छा हो, रख ले। चार ही दिन क्यों कहती है? आवश्यकता हो तो इसे कोई अधिकार भी दे दिया जाय, इससे मेरे सुमाल्य के साथ यह भी कुछ न कुछ राजकार्य सीख सकेगा। क्यों रे चन्द्रगुप्त, सीखेगा या नहीं?"

यह सुनते ही चन्द्रगुप्त कुछ लज्जित सा हुआ; और अत्यन्त विनयपूर्वक बोला, "महाराज की कृपा होने पर फिर उसको कौन स्वीकार नहीं करेगा? इस आर्यावर्त में ऐसा कौन है, जो महाराज की कृपा का अभिलाषी न हो?" यह उत्तर, और इस उत्तर के उच्चारण करने का ढंग कुछ ऐसा निराला था कि जिसे सुन कर राजा धनानन्द चन्द्रगुप्त पर बहुत ही प्रसन्न हुआ; और वह एकदम उससे बोला, "शाबाश, तू तो बड़ा वाक्चतुर भी दिखाई देता है। मेरे सुमाल्य के लिए तू एक अच्छा साथी मिला। अब मैं उसके पास तुझे भेजता हूँ।"

"नहीं, नहीं, आर्यपुत्र" मुरादेवी बीच ही में बोल उठी. "अभी इसे न भेजिए" अभी यह नवीन ही आज आया है, इस लिए अभी इसका कहीं भेजना ठीक न होगा। सुमाल्यराज नित्यनियमानुसार कल आप की चरण-वन्दना के लिए आवेंगे, उसी समय आप उनसे इसकी भेंट करा देवें, यह विशेष उचित होगा।"

मुरादेवी जिस समय यह कह रही थी, राजा के नेत्र बराबर चन्द्रगुप्त की ही ओर लग रहे थे । उसका वह सुन्दर मुख देख कर एकदम राजा के मन में कोई विचार आया, और वह मुरादेवी से बोला, "प्रिये मुरे, मैं बड़ी देर से इसके मुख की ओर देख रहा हूँ और मेरे मन में एक विलक्षण प्रकार का वात्सल्य इसके विषय में उत्पन्न हो रहा है । प्रथम दर्शन में ही ऐसा क्यों होना चाहिए ? इस का कारण जब मैं सोचने लगा, तब वह कारण भी बहुत ही शीघ्र, और बिलकुल निकट, मेरे सामने दिखाई दे गया !"

"सो क्या ?" मुरादेवी ने बहुत ही शीघ्रतापूर्वक और उत्सुकता तथा कौतुक के साथ पूछा ।

"देख न, तेरी सूरत और इसकी सूरत में कितनी विचित्र समता है ! इसके मुख की प्रत्येक रेखा और सम्पूर्ण रंग-ढंग, ठीक तेरे ही मुख-कमल की भांति है । चन्द्रगुप्त, अरे, तुझको अभी यहाँ आये चार घड़ी भी नहीं हुई; और तू ऐसी चोरियाँ करने लगा ? देख, यदि तू ऐसा करेगा, तो एक क्षण भर भी मैं तुझको यहां रखने की अनुज्ञा नहीं दूंगा ।" मुरादेवी समझ गई कि, महाराज यह एक प्रकार से विनोद कर रहे हैं; पर तो भी, ऐसा दिखलाते हुए कि, जैसे वह कुछ भी न समझी हो, उसने पहले कुछ घबड़ाहट सी दिखलाई; और चन्द्रगुप्त की ओर मुड़कर बोली, "चन्द्रगुप्त, क्यों रे, तू ने क्या किया ? किसका क्या चुराया ?" इसके बाद फिर तुरन्त ही वैसी ही घबड़ाहट के साथ, और कुछ दीनताप्रदर्शक स्वर से महाराज से कहती है, "महाराज, इसने किसका क्या चुराया ? मैं नहीं समझती कि, यह ऐसा कुछ........"

धनानन्द एकदम, बीच में ही, चन्द्रगुप्त की ओर आँखें मटका कर, परन्तु मुरा की ओर गम्भीरतापूर्वक देखकर, बोला,

"नहीं क्यों? तू ही देख ले, इसने ऐसी एक चीज़ चुराई है कि जिसका मैं स्वयं स्वामी हूँ; और चुराई ही नहीं है; बल्कि उसको खुल्लमखुल्ला लेकर मेरे सामने आया है। इसलिए अब इसको भारी दण्ड देना चाहिए। तेरा भतीजा समझ कर इसको क्षमा नहीं करना चाहिए। और न मैं करूंगा। वाह चन्द्रगुप्त, तू ऐसा ही करेगा!"

अब तक भी मुरादेवी उसको विनोद ही समझ रही थी और अब उसे और भी विश्वास होगया कि, वह सचमुच ही विनोद है; पर जितना उसे अब विश्वास होगया, उतनी ही उसने और भी अधिक घबड़ाहट प्रकट की; और बिलकुल चौकन्नी होकर खड़ी होगई; तथा कुछ कुछ हाथ जोड़ कर वह राजा से बोली. "महाराज, ऐसा न कीजिए। अभी उसको आये यहाँ चार घंटे भी नहीं हुए; और इतने ही में आप उसे दण्ड देने कहते हैं। इसने यदि कोई अपराध किया हो, तो क्षमा कीजिए। इसने जो कुछ लिया होगा, वह मैं आप के चरणों के पास रखवा दूंगी; और इसको भी यहां से वापस भेज दूंगी।"

"नहीं, नहीं;" राजा धनानन्द और भी अधिक निष्ठुरता दिखलाते हुए कहता है, "इसका अपराध क्षमा करने योग्य नहीं। अन्य किसी की वस्तु यदि इसने चुराई होती, तो मैं भले ही क्षमा कर देता; पर इसने स्वयं मेरी ही वस्तु चुराई है; और मेरे ही सामने आकर खड़ा हुआ है, इससे मालूम होता है कि यह बड़ा ढीठ है, इस लिए इसको दण्ड अवश्य ही देना चाहिए। इसको यह भय भी नहीं हुआ कि, उस वस्तु को मैं तुरन्त ही पहचान लूंगा? क्यों रे चन्द्रगुप्त, बोल......"

अन्त में राजा ने चन्द्रगुप्त को जिस आवाज़ में बुलाया, वह अत्यन्त कठोर थी। इसलिए उसे सुनकर चन्द्रगुप्त भी

चौकन्ना हुआ, उसकी भौंहें ऊपर को चढ़ गईं, आखें कुछ आश्चर्य और कुछ क्रोध के कारण विस्फारित हो गईं; और वह इस प्रकार से खड़ा होगया, जैसे कोई युद्ध के लिए खड़ा हो जाय। इधर मुरादेवी ने तो पहले से भी अधिक घबड़ाहट का भाव प्रकट किया और एकदम बोली, "नहीं महाराज, ऐसा मत कीजिए—ऐसा मत कीजिए?" ये वचन उसने बहुत ही दीनतापूर्ण स्वर में कहे। उन दोनों की वह दशा देखकर राजा धनानन्द को एकदम बड़ी हँसी आई और वह अपनी प्रिय पत्नी से बोला, "अरी पगली देख तो! तू एक शीशा लाकर देख। तू अपने मुखकी ओर देख; और फिर इसके मुख की ओर देख। इससे तुझे यह मालूम हो जायगा कि इसने मेरी किसी वस्तु की चोरी की है; अथवा नहीं—और वह उसको अपने चेहरे पर लेकर आया है अथवा नहीं! देख, तेरा अलौकिक सौन्दर्य इसने चुराया है या नहीं? और उस तेरे सौन्दर्य का स्वामी कौन है? फिर इसने मेरी वस्तु चुराई या नहीं? बतला। चोरी और सीने-ज़ोरी इसी को तो कहते हैं? अब इसकी चोरी सिद्ध करने के लिए और क्या प्रमाण चाहिए? क्यों रे चोर, तू अपना अपराध स्वीकार करता है या नहीं? तू ने अपनी फूफी का सौन्दर्य चुराया है या नहीं? यह सुनते ही मुरादेवी एकदम खिलखिला कर हँस पड़ी और जैसे उसके ऊपर का कोई बड़ा भारी अरिष्ट टल गया हो—इस प्रकार का एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोली:—

"अजी, मैं कितना घबड़ा गई! मैंने सचमुच ही समझा कि शायद इसने—पर यह मेरे भैया का लड़का है, कभी ऐसा कर नहीं सकता, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। परन्तु, फिर भी जब आप इतनी गम्भीरता के साथ कहने लगे तब तो मेरा हृदय ही काँप उठा। मैंने समझा कि, देखो अभी मेरे भतीजे को आते

देर भी नहीं हुई और इतने ही में यह क्या बला आ उपस्थित हुई ...."

"परन्तु देख तो, जो कुछ मैं कह रहा हूँ, ठीक है अथवा नहीं? प्रिये मुरे, यह लड़का है: इस लिए कुछ न कुछ अन्तर तो होना ही चाहिए: परन्तु जब तू इसी की अवस्था की पहले पहल यहां आई, तब तू बिलकुल ऐसी ही दिखाई देती थी। मुझ को तेरे उसी रूप की याद आगई—तेरे और इसके चेहरे में बहुत ही समानता है! इसके सिवाय, इसके सामुद्रिक लक्षणों से ऐसा भी दिखाई देता है कि, यह छोकरा बड़ा भाग्यशाली निकलेगा।"

"संकट—बला टले, और यह मेरे ही समान भाग्यशाली न निकले! इसी में मुझे सन्तोष है ....."।

"क्यों भला, तेरा भाग्य क्यों बुरा है?" राजा बीच ही में उससे बोल उठा, और उसकी ओर देख कर हँसने लगा।

"आर्यपुत्र, आप यदि नाराज न हों, तो मैं बतलाऊं—आप के इस हँसने में ही आपके प्रश्न का उत्तर मौजूद है!"

इसी प्रकार और कुछ देर तक विनोदात्मक तथा अन्य अन्य प्रकार का भाषण होता रहा। राजा के साथ चन्द्रगुप्त की प्रथम भेट हो गई, और राजा ने उसे अपनी फूफी के साथ रहने की आज्ञा दी।

मुरादेवी ने देखा कि, प्रथम भेट का समारम्भ तो बहुत ही अच्छा हुआ—जैसा मैं चाहती थी, उससे भी अच्छा हुआ, और मेरे बिलकुल अनुकूल हुआ। अतएव उसको बहुत ही आनन्द हुआ। शाम को उसने चन्द्रगुप्त पर राई-लोण उतार कर दीपक जलाया। फिर उसने अपने ही महल में चन्द्रगुप्त के रहने का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर दिया। हां, उसके भोजन के विषय में उसने बहुत सावधानी रखी; और स्वयं ही देखभाल करने लगी। चन्द्रगुप्त को उसने चितावनी दे दी कि तुम को यदि

एक घूंट भर भी पानी पीना हो, तो मुझ को दिखलाये बिना कभी मत पीजियो। अथवा, चाहे जो कोई, कुछ खाने को दे, उसे कभी मत खाइयो। पाटलिपुत्र की दशा बड़ी खराब है। यहां कब क्या होता है, इसका कुछ ठीक नहीं। चन्द्रगुप्त कुछ नहीं समझ सका कि, उसकी बुआ उससे ऐसा क्यों कह रही है; पर चाणक्य ने चूंकि उसको आज्ञापालन की उत्तम शिक्षा दे रखी थी, अतएव उसने उस पर कुछ भी पूछ-तांछ न करते हुए आज्ञापालन करने का वचन दिया। अस्तु। इस प्रकार नन्द के राज्य में, पाटलिपुत्र में, राजा की प्रिय महिषी के मन्दिर में, चन्द्रगुप्त की स्थापना होगई।

इस घटना को हुए लगभग पांच दिन होगये। एक दिन रानी मुरा महाराज के पास बैठी थी, इतने में एक दासी ने आकर उससे कहा, "देवी, पट्टमहिषी सुनन्दादेवी के यहां से एक परिचारिका महाराज के लिए एक सुवर्ण-करण्डक और एक पत्रिका लेकर आई है। हमने कहा कि तू हम को दे दे, हम पहुँचा देंगी; पर उसने कहा कि, महादेवी जी ने हमको यही आज्ञा दी है कि, तू स्वयं महाराज के सामने लेजाकर रख, नहीं तो वैसी ही लौट आ। वह बाहर खड़ी है। जैसी आप की आज्ञा हो।"

यह सुन कर मुरादेवी एकदम उसकी ओर घुड़क कर कहती है, "जा मूर्ख, उसको रोक रखने के लिए तुझ से किसने कहा? उसको अभी ले आ, तुम सब से मैंने लाख बार कहा होगा कि, अन्य रानियों के यहां से यदि कोई दास-दासी कुछ लेकर आया करे, तो तुम लोग कभी उनको मत रोको। उनको धड़क भीतर आने दो। मैं नहीं चाहती कि, मेरे समान उनको भी कोई दुःख—कम से कम मेरी ओर से—कभी हो। जैसी मैं महाराज की पत्नी हूँ, वैसी वे भी हैं। जा, उससे कह दे कि,

जो कुछ वह लाई हो, बेधड़क यहां लाकर महाराज के अर्पण करे। उसको कोई मना नहीं करेगा। जा, मुँह क्या देखती है? उसको ले आ।"

यह सुनकर राजा धनानन्द उससे कहता है, "परन्तु उस दासी के भीतर आने की क्या आवश्यकता? वह जो कुछ लाई हो, उसे ले आ, बस होगया।" इस पर मुरादेवी फिर राजा से बोली, "महाराज, ऐसा क्यों करते हैं? उसकी स्वामिनी ने जब कि, यह आज्ञा दी है कि, महाराज के चरणों के ही निकट वह पत्रिका और करंडक ले जाकर रखा जाय, तब फिर हम क्यों उसको ऐसा करने से मना करें? आपके चरणों के पास रख कर चली जायगी, इसमें क्या हर्ज़? जा। जा। उससे कह दे कि, जो कुछ लाई हो, यहां ले आवे। महाराज प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

दासी बाहर गई, और कुछ ही देर बाद एक दूसरी दासी को लेकर भीतर आई। इस दासी के हाथ में एक सोने का डब्बा और एक पत्रिका थी। दासी भीतर आई, और महाराज के चरणों के पास उन वस्तुओं को रख कर प्रार्थना की—"महाराज, रानी सुनन्दादेवी ने अनेक प्रणतिपूर्वक श्रीमान् से प्रार्थना की है कि, महाराज यह पत्रिका पढ़ें, और इस सुवर्ण-करण्डक के उपायन का ग्रहण करें। महाराज यदि कोई उत्तर देना चाहें, तो देवी जी ने मुझ से प्रतीक्षा करने के लिए भी कहा है—फिर जैसी महाराज की आज्ञा!"

"परिचारिके, तू यह पत्रिका और यह करण्डक, दोनों चीज़ें लौटा ले जा। अभी चार दिन हुए हैं, मैं उनकी भेट को नहीं गया हूँ, और इतने ही में ये पत्रिकाएं और ये उपायने आने लगीं। तुम दासियों को भी और कोई काम नहीं है जान पड़ता है? जा। एक क्षण भर भी यहाँ खड़ी मत हो। उनसे कह दे

कि, जिस दिन मैं तुम्हारी भेट को आऊंगा, उसी दिन इस पत्रिका और इस उपायन का भी ग्रहण कर लूंगा। स्त्रियां भी क्या ही मत्सर पूर्ण होती हैं!"

"महाराज," मुरादेवी बीच में ही बोल उठी, "पट्टमहिषी सुनन्दादेवी का व्यर्थ में आप इतना अपमान क्यों कर रहे हैं? पत्रिका को रख लीजिए, और एक बार उसको पढ़ तो लीजिए। कोई बड़े प्रेम के साथ यदि कोई चीज़ भेजे, और जिसके पास उसने भेजी हो, वह उसे झिड़क कर वापस कर दे, तो इससे उसका कितना अपमान होगा? उसको कितना खेद होगा? इस लिए मेरी हाथ जोड़ कर प्रार्थना है कि, महादेवी जी की पत्रिका और उनके भेजे हुए इस उपायन का आप ऐसा अनादर न करें। मैं इस पत्रिका को खोल कर आप को पढ़ सुनाती हूँ।"

"प्रिये मुरे, तू ही इतनी निर्मत्सर और निर्द्वेष क्यों है? और उसमें भी सौतियों के प्रति निर्मत्सरता। तुझ से तो वे इतना मत्सर रखती हैं; और तू—जिस दिन से मैं तेरे रंगमहल में आया, उसी दिन से मैं देख रहा हूँ—उनका पत्त लेकर इस प्रकार झगड़ती रहती है! मेरी कुछ समझ में नहीं आता। तुझ को तो उनका बड़ा मत्सर करना चाहिए—रात दिन उनका बुरा ही चेतना चाहिए, पर तू ऐसा कुछ भी नहीं करती, इसका कारण क्या है?"

यह सुन कर मुरादेवी कुछ हँसी और फिर बोली, "महाराज, जब अपराध के बिना पति स्त्री का परित्याग कर देता है, तब उस स्त्री के मन को कैसा दुःख होता है, और उसका चित्त कितना उद्विग्न होता है, इसका मुझे भली भांति अनुभव है। और इसी कारण मैं सदा अपने मन में सोचती रहती हूँ कि, परमात्मा करे, ऐसा मौका मेरे स्वप्न में भी किसी पर—मेरे शत्रु पर भी—न आवे। फिर आपही सोचिये, सुनन्दादेवी के समान

सती साध्वी स्त्री के विषय में मेरे मन में मत्सर कैसे उत्पन्न हो सकता है? कभी नहीं उत्पन्न हो सकता! यह मेरा व्रत ही नहीं है। और क्या कहूं?"

मुरादेवी जब कि इस प्रकार कह रही थी, वह सुनन्दादेवी की परिचारिका बहुत ही चकित होकर उसकी सब बातें सुन रही थी। महाराज भी मुरादेवी के मुख की ओर कुछ आश्चर्य, और अधिकांश में आदरभाव के साथ—इन दोनों मनोभावों की मिश्रित चेष्टा से—देख रहे थे। इसके सिवाय, मुरादेवी ने जब उपर्युक्त भाषण में अपनी अन्तिम बात कही, तब तो एक बड़ा भारी काम हो गया। धनानन्द ने अच्छी तरह समझ लिया कि मुरा के समान अत्यन्त सुशील, सुचरित, शुद्ध और निष्कपट दूसरी स्त्री ही नहीं है। ऐसी कोई स्त्री संसार में मिल ही नहीं सकती। अस्तु। मुरादेवी का भाषण जब समाप्त हो चुका, तब राजा कुछ देर तक स्तब्ध दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। और फिर इसके बाद सुनन्दादेवी की उस परिचारिका की ओर मुड़ कर बोला, "परिचारिके, तू अपनी स्वामिनी से जाकर कह कि महाराज तो पत्रिका और करण्डक वापस ही किये देते थे, पर मुरादेवी ने तुम्हारे लिए बहुत विनती की। जिस मुरादेवी के साथ तुम सब ने इतना द्वेष रखा, उसको व्यर्थ के लिए इस संसार से उठा देने के लिए भी प्रयत्न किया—उसी मुरादेवी ने तुम्हारे लिए शिफारिश की; और इसी कारण महाराज ने वह पत्रिका और करण्डक रख लिया। जा। इस पत्रिका का इतना ही उत्तर है; और किसी उत्तर की आवश्यकता नहीं।"

महाराज के ये वचन सुनते ही परिचारिका ने वह पत्रिका और वह सोने का डब्बा महाराज के चरणों के निकट रख दिया; और वहां से चल दी। परन्तु हां, वहां से चलते समय उसने मुरादेवी की ओर बहुत ही चमत्कृत दृष्टि से देखा।

इधर मुरादेवी ने वह पत्रिका अपने हाथ में ली और महाराज की ओर देखते हुए कहा, "आर्यपुत्र, यह पत्रिका आप अपने हाथ में लेकर पढ़ेंगे, अथवा मैं ही पढ़ कर सुना दूं ? मेरी पत्रिका को यदि आपने बिना पढ़े वैसा ही वापस कर दिया होता, तो मुझे कितना बुरा मालूम हुआ होता ? बस, ऐसा ही उनका भी हाल समझिये। इसी लिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि, आप ऐसा कभी न करें। अच्छा, अब मैं इस पत्रिका को पढ़ कर सुनाती हूँ।"

यह कह कर मुरादेवी ने उस पत्रिका को खोलना चाहा, पर इतने में धनानन्द ने उसके हाथ से वह पत्रिका छीन ली; और उससे कहा, "नहीं, नहीं—तू इसको खोल कर मत पढ़। शायद उन्होंने तेरे विरुद्ध ही कुछ लिख कर मेरे मन को तुझ से कलुषित करने का प्रयत्न किया हो! कौन कह सकता है कि, वे ऐसा प्रयत्न नहीं करेंगी? क्योंकि मैं स्वयं देख रहा हूँ!"

"अच्छा, तब तक मैं इस सुवर्ण-करण्डक को ही खोल कर देखती हूँ कि, इसमें क्या है।" यह कह कर मुरादेवी ने उस करण्डक को खोला। उसके अन्दर अपूप—बहुत सुन्दर रीति से बनाये हुए अपूप—भरे हुए थे। महाराज उधर पत्रिका पढ़ने में लगे थे। पत्रिका में कुछ बहुत वृत्तान्त नहीं था। बहुत जल्द महाराज ने उसको पढ़ लिया, और बोले; "और कुछ नहीं। कल महादेवी ने कैलासनाथ के किसी व्रत का उद्यापन किया था, और उसी के प्रसाद के कुछ पुवे उन्होंने भेजे हैं। ये अपूप स्वयं उन्होंने अपने हाथ से बनाये हैं, और प्रार्थना की है कि, मैं इनमें से, कम से कम, एक टुकड़े का तो सेवन अवश्य ही कर लूं। ठीक है। प्रिये मुरे, यह कैलासनाथ जी का प्रसाद है, इसका अनादर करना उचित न होगा, इसलिए आ, तू और मैं दोनों इसमें से एक एक टुकड़ा खावें।"

यह कह कर महाराज ने करण्डक में हाथ डाल कर उसमें से एक अपूप उठाया और उसका एक टुकड़ा तोड़ कर उन्होंने मुरादेवी के हाथ पर रखा। और दूसरा अपने मुख में डालने लगे। इतने में मुरादेवी ने बिलकुल घबड़ाई हुई आवाज से यह कह कर कि, "महाराज, धोखा है! कुछ न कुछ धोखा है. आप इसे न खावें," उनका हाथ नीचे खींच लिया।

राजा चकित हो कर उससे पूछने लगा कि, "क्या बात है? क्या कहती है? कैसा धोखा?" इस पर मुरादेवी खूब हांफती हुई और वैसी ही घबडाई हुई आवाज़ से कहती है, "आपकी जान को धोखा—और कैसा धोखा! इन अपूपों में कोई न कोई विष है। मैं अपना कथन प्रमाणित करके दिखला दूंगी।"

यह कह कर उसने अपनी एक दासी से अपनी श्वेनास्य नामक बिल्ली को ले आने के लिए कहा।

चौदहवां परिच्छेद

मार्जारी की मृत्यु।
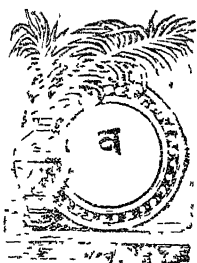
ह दासी जब तक श्वेताम्बरी को नहीं ले आई, तब तक मुरादेवी की चेष्टा कुछ इस प्रकार की बनी रही कि जो देखने ही योग्य थी। जैसे कोई दयालु माता, बहुत ही सावधानी के साथ, अपने वत्स का पालन कर रही हो; और अकस्मात ही कोई भयंकर संकट उस बच्चे पर आजाय; और उस समय जिस प्रकार वह माता उस बच्चे की रक्षा के लिए चिन्तातुर होकर विचार में पड़ जाती है, उसी प्रकार मुरादेवी भी मानों राजा की रक्षा के लिए चिन्तातुर हो रही थी। जैसे किसी व्याघ्रिणी के बच्चों पर कोई संकट आजाय; और वह उस संकट को निवारण करने के लिए, अपने बच्चों को अपने पीछे करके, स्वयं ही आगे आजाय, और क्रूर रूप से उस संकट को टालने के लिए चिन्तातुर दृष्टि से देखने लगे, उसी प्रकार मुरादेवी भी इस समय देख रही थी। अपूपकरण्डक और राजा के बीच में वह स्वयं आ बैठी, और उस करण्डक को ढांक कर रख दिया। मानो उसको ऐसा भय हो रहा था कि, कहीं राजा इसमें से कोई टुकड़ा निकाल कर खा न लेवे।

उसकी वह विलक्षण चेष्टा देख कर राजा भी बहुत ही

चकित हुआ। वह विस्मित होकर देखने लगा। पहले पहल तो उसकी समझ ही में न आया कि, यह "धोखा धोखा" कह कर क्या चिल्ला रही है: और इसने अपनी श्वेताम्बरी बिल्ली को लाने के लिए क्यों कहा है। उसने मुरादेवी से "क्या है? क्या है?" कह कर कई बार पूछा; पर किसी अत्यन्त भ्रान्तचित्त मनुष्य की भांति उसने राजा के किसी प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया: और उस करण्डक तथा राजा के बीच में अपना हाथ लगा कर, आंखें फाड़ फाड़ कर, उन अपूपों की ओर देखती रही। इतने में वह दासी श्वेताम्बरी को ले आई। उसे देखते ही मुरादेवी ने पहले हास्यपूर्वक यही कहा कि, "अच्छा, ठीक है—खूब लाई!" इसके बाद फिर उसने उस बिल्ली को अपने पास बिठला लिया, और अत्यन्त खेदयुक्त स्वर से बोली, "वत्से श्वेताम्बरी, आज तक मेरे इन्हीं हाथों ने तुझे दूध पिला कर पाला पोसा; परन्तु देख, अब आज मैं इन्हीं हाथों से तुझे विष देकर मैं तेरे प्राण लूंगी। अच्छा, आ—अब ऐसा किये बिना इस बात का विश्वास नहीं होगा कि, इन अपूपों में विष है। इसका विश्वास आज अवश्य हो जाना चाहिए, इससे आगे विशेष सावधानी से रहने में सुविधा हो जायगी।" यह भाषण अधिकांश में उसने अपने ही आप किया। परन्तु यह नहीं कि, उसने उपर्युक्त वचन अपने मन ही मन में कहे हों—नहीं, उसने खूब ज़ोर ज़ोर से ये शब्द कहे। राजा ने भी उसका उपर्युक्त कथन अच्छी तरह से सुना। इतने में उसने वह अपूप का टुकड़ा, जो उसके हाथ में था, उस बिल्ली के सामने किया। बिल्ली उस टुकड़े को सिर्फ सूंघ कर ही दूर हट गई—उसने खाया नहीं। यह देख कर मुरादेवी कहती है—"हां, जान पड़ता है, तू भी समझ गई कि, इसमें विष है? पर इतने ही से मुझे विश्वास न होगा। यह टुकड़ा मैं तुझे जबरदस्ती, तेरा मुंह खोल कर,

तुझको खिलाऊँगी; और यदि तू उसे उगलने लगेगी, तो मैं वैसा ही तेरा मुह दावे रहूँगी; और कम से कम एक कौर तो अवश्य ही तेरे पेट में जाने दूंगी, इसी से सब पता चल जायगा।" यह कह कर सचमुच ही उसने उस के मुह में वह टुकड़ा ठूंस दिया। बिल्ली ने अपने नख निकाल लिये; और पीठ का कूबड़ निकाल कर बड़े क्रोध से वह अपनी पूंछ पटकने लगी। परन्तु मुरादेवी एक बड़ा दृढ़ स्त्री थी, उसने बिल्ली की उन चेष्टाओं को कुछ भी परवा नहीं की। वह उसका मुंह बड़े ज़ोर से दबाये रही। बिल्ली ने उसके हाथ को खरोंच लिया। उसके कोमल हाथों से रक्त बहने लगा; पर उसने किसी प्रकार भी बिल्ली का मुंह नहीं छोडा। राजा ने बहुतेरा मना किया कि, "तू यह क्या करती है? उसको छोड़ दे," परन्तु मुरा ने बिल्ली को नहीं छोड़ा। वह बराबर उसका मुंह दबाये रही। एक ओर बिल्ली अपने पिछले और अगले पैरों के तीक्ष्ण नखों से खुरचने का काम कर ही रही थी! कुहनी से लेकर पहुँचे तक मुरादेवी के दोनों हाथ लोहूलुहान होगये; परन्तु उसने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसके बाद जब उसने भली भांति समझ लिया कि, बिल्ली ने उस अपूप के टुकड़े के कारण छुटी हुई राल के दो घूंट अपने अन्दर निगल लिये, तब उसने उस बिल्ली को छोड़ा। बिल्ली ने छूटते ही पहले वह पुवे का टुकडा उगला; और फिर भगने लगी। वह अभी पन्द्रह बीस हाथ मुशकिल से भगी होगी कि, इतने में वह एकदम गाफ़िल होकर चकराने लगी। मुरादेवी ने यही समझा था कि, इसने सिर्फ दो घूंट निगले हैं, पर नहीं, जितनी देर उसने उसका मुंह दबाया, उतनी देर में वह अपनी राल के कई घूंट निगल गई थी; और अब विष का प्रभाव उस पर काफी तौर से हो आया था। अस्तु, जब वह बिल्ली उपर्युक्त रीति से गाफिल हो कर

चक्कर खाने लगी, तब मुरादेवी धनानन्द से बोली, "देखिये, देखिये, महाराज, वह अब कैसी चक्कर खा रही है। अब एक घड़ी में ही उसका प्राण जाता है, इसमें सन्देह नहीं। आप सिर्फ बैठे बैठे तमाशा देखिये। इस प्रकार का हलाहल विष इन अपूपों में मिला कर, उनको सुवर्ण-करण्डक में रख कर आपके खाने के लिए भेजा गया है—इन लोगों का साहस तो देखिये, और उनको यह मूर्खता देखिये! मैं तो पहले ही जानती थी कि, ऐसा कुछ न कुछ कपट किया जायगा, और इसी लिए यह मुरादेवी आंखों में तेल डाल कर महाराज की जीवरक्षा के लिए बिलकुल सावधान बैठी थी! परन्तु उन मूर्खों को यह क्या मालूम? अन्यथा वे ऐसा कैसे कर सकतीं? मैं यदि इस प्रकार सावधान न होती, तो अब तक कभी का उनका उद्देश्य सिद्ध हो गया होता—देखिये महाराज, आपके लिए बड़े प्रेम से आपकी पट्टाभिषिक्त आद्यमहिषी ने ये अपूप भेजे हैं कि, जिनके एक टुकड़े से मेरी श्वेताम्बरी की यह दशा हुई! देखिये, कितना हलाहल विष है! उसका सारा शरीर काला पड़ गया। आँखें भी कितनी भयंकर दिखाई दे रही हैं। और देखिये, अब उसको ये अन्त की हुचकी आ रही हैं—अब उसकी क्या दशा हो रही है, देख लीजिए! अवश्य ही इस अपूप-प्रसाद का सेवन करने वाले की ऐसी ही दशा होती! ठीक है। राज्यलोभ, अधिकारलोभ और सौतीमत्सर से ये न जाने क्या क्या पाप करने को तत्पर होंगी—कुछ कहा नहीं जा सकता!" इतना कह कर मुरादेवी अत्यन्त उद्विग्न दृष्टि से महाराज की ओर देखने लगी। इतने में उस बिल्ली ने प्राण छोड़ दिया। उसकी फटी हुई आंखें अत्यन्त भयंकर दिखाई दे रही थीं; और उसका सारा मुँह—होंठ भी कोयले के समान काले पड़ गये थे। यह सब देखते ही धनानन्द बहुत क्रुद्ध हुआ, और बोला, "अरी चांडालिन, अन्त में तू मेरे

प्राणों पर ही आ टूटी ? वायन के मिष से अपूप बना कर उनमें ऐसा भयंकर विष मिलाया, और मुझको नष्ट कर डालने की दुष्ट इच्छा से उनको सुवर्ण-करण्डक में भर कर मेरे पास भेजा ! साथ ही अपने निज के हाथ का लिखा हुआ पत्र भी ! वाह ! वाह ! तू ने खूब किया ! अब देख, क्या तुझे क्षण भर भी तेरे इस ऐश्वर्यपूर्ण पद पर मैं रख सकता हूँ ? तुझे अभी, तेरे ही अन्तःपुर में, गधे पर उलटा बैठा कर तेरी दुर्दशा करता हूँ, तुझे स्यारों और कुत्तों से नुचवा कर मारे डालता हूँ। आह ! तू मेरे सुमाल्य की माता है; इसलिए एक बार तो मन में आता है कि, तुझको ऐसा कठोर दण्ड न दूं, पर नहीं—तू ने स्वयं मेरे ही प्राण लेने चाहे हैं; इस लिए तुझे क्षमा नहीं करूंगा ! सम्भव है, तू कल, अपना कार्य साधने के लिए, अपने बच्चे के प्राणों पर भी ऐसी ही आ जावे ! तेरा क्या ठीक है ? कुछ नहीं—तुझे ऐसा ही दण्ड देना चाहिए......"

इतने में मुरादेवी बीच में ही उससे बोल उठी, "महाराज, आप इस प्रकार एकदम क्षुब्ध न हो जावें। क्योंकि यह कहने के लिए हमारे पास क्या प्रमाण है कि, महादेवी ने ही यह सारा भयंकर षड्यंत्र किया होगा ? उन्होंने ही यह विषप्रयोग किया, इसका हमारे पास क्या आधार है ?" मुरादेवी जिस समय यह कह रही थी, उसकी चेष्टा देखने योग्य थी, जैसे किसी मनुष्य का मन पहले ही से विषपूर्ण हो; और फिर उसकी उस विष-पूर्णता को बढ़ाने के लिए कोई दुष्ट मनुष्य, बाहरी दिखावा दिखला कर, विरुद्ध पक्ष से कोई बात कहे, उसी प्रकार मुरादेवी ने अपनी सपत्नी का पक्ष लेकर उपर्युक्त बात कही, परन्तु राजा इसका कुछ भी आशय नहीं समझ सका; और वह इस प्रकार बोला, "क्या आधार है ? इसी करण्डक के अपूप का टुकड़ा खाकर—टुकड़ा भी नहीं, केवल उस टुकड़े से निकली हुई

मुंह की राल के घूंट से ही जब यह बिल्ली मर गई; और और उसको स्वयं मैंने अपनी आंखों से देखा, तब और क्या आधार चाहिए? क्या मैं स्वयं खाकर और मर कर इसका आधार देखूं?" यह सुन कर मुरादेवी अत्यन्त शान्ति और दृढ़ता के साथ बोली, "महाराज, आप क्रोध से इस प्रकार उतावले न हो जावें। उतावली से कोई भी काम नहीं बन सकता। मेरे विषय में आपने उतावली की थी, पर उससे क्या लाभ हुआ? हमारा एक ऐसा पुत्र चला गया, जो आज युवराज बना होता और राजकाज में आज आपको पूरी पूरी सहायता देता होता। निस्सन्देह हमारे प्राणों को लेने का किसी ने प्रयत्न किया, पर उसका वह प्रयत्न सफल तो नहीं हुआ? मैं किसी कृष्णा सर्पिणी के समान सचेष्ट बैठी हुई हूँ, अतएव मैं क्या कभी किसी का ऐसा भयंकर प्रयत्न सफल होने दे सकती हूँ? इसलिए जब ऐसी कोई बात ही नहीं हुई; तब फिर इतनी उतावली करने की क्या ज़रूरत? शान्तचित्त से विचार कीजिये, पता लगाइये, और जब पूरा पूरा विश्वास हो जाय; तब अवश्य यदि किसी को दण्ड देने की आवश्यकता जान पड़े, तो दीजिये, इसके लिये आप सर्वथा समर्थ हैं।"

धनानन्द हँस कर उससे कहता है, "तू तो मुझे ऐसी ही दिखाई देती है कि जैसे कोई कहे कि, दूध का जला हुआ मठा को भी फूंक फूंक कर पीता है। पगली कहीं की! कहती है कि, विचार करो, पता लगाओ—कहां का विचार और कहां का पता! मेरे देखते उसकी दासी पत्रिका और सुवर्ण-करण्डक उसके पास से लेकर आयी है। मैंने वह पत्रिका पढ़ी है। उसमें यह लिखा है कि, अपूप खास तौर पर आपके लिए बना कर भेजे जाते हैं—खास तौर पर मेरे लिए भेजे ही नहीं जाते; बल्कि मेरे ही लिए बनाये भी गये हैं!—उन्ही अपूपों

में से एक टुकड़ा मैंने तेरे हाथ में दिया। तूने उसी को बिल्ली को खिलाया। बिल्ली तड़फड़ा कर मर गई मैंने स्वयं अपनी आंखों देखा—अब और किस बात का पता लगाऊँ और किस बात का विचार करूँ ?"

मुरादेवी राजा का यह कथन सुन कर हँसी और बोली। "महाराज, शायद आप समझते होंगे कि, जिन सपत्नियों ने आज तक मुझ से मत्सर रख कर सर्वथा मेरा सत्यानाश किया, उन्हीं सपत्नियों में से बिलकुल मुख्य सपत्नी का कौटिल्य जब आज खुल गया है और आप उस पर इतने रुष्ट हो रहे हैं, तब मुझे यह सब देख कर आनन्द होना चाहिए ; पर क्या बतलाऊँ महाराज, मुझे इस पर बिलकुल आनन्द नहीं हो रहा है—मेरा मन तो मुझ से यही कहता है कि, वे वास्तव में बिलकुल निरपराध होंगी। और सचमुच ही यदि वे निरपराध हैं, तो ऐसी दशा में उनको एकदम दण्ड देने से कितना भारी अन्याय होगा ? और इसीलिए मैं आप से यह प्रार्थना कर रही हूँ कि, पहले आप पता लगा लें, और जब विश्वास हो जाय, तब चाहे जो करें, जिससे अपने अविचार पर पीछे से मन को पछतावा न हो।"

"किन्तु—प्रिये मुरे, अब इसमें शंका क्या रह गई, जिसका पता लगाया जाय ? बतला तो सही।"

"क्यों भला, शंका क्यों नहीं महाराज ?" मुरादेवी कपट-दृष्टि का एक कटाक्ष फेंक कर कहती है, "देखिये कितनी शंकाएं हैं—क्या महादेवी ने आज किसी व्रत का उद्यापन किया ? यदि किया, तो क्या उस समय वायन-दान के लिए अपूप ही बनाये या और कुछ ? यदि अपूप बनाये, तो क्या स्वयं उन्हीं ने बनाये ? और फिर सुवर्ण-करण्डक में क्या उन्हींने भरे ? करण्डक के साथ जो पत्रिका आई, उसको भी क्या उन्होंने

लिखा ? इसके सिवाय इसी का क्या प्रमाण कि, किसी ने करण्डक के असली अपूप निकाल कर उनकी जगह पर ये विषैले अपूप रास्ते में नहीं भर दिये? शायद देवी के नाम पर उनके किसी शत्रु ने ही यह कपट-रचना की हो! कौन कह सकता है कि न की होगी? इस प्रकार की एक दो नहीं—हजारों शंकाएं निकल सकती हैं कि, जिनका विचार करना आवश्यक है। यही नहीं, बल्कि आपको एक ऐसी भी शंका निकालनी चाहिए कि, शायद उस बिल्ली को मैंने ही पहले से कोई विषैला पदार्थ खिला रखा हो, और फिर आपके सामने अपूप खिलाने का बहाना दिखलाया हो! सारांश यह कि, आप बारीक से बारीक शंका निकाल कर पहले उसका निरसन कर लें, तब जो कुछ करना हो, करें। और यदि आप बिना किसी प्रकार की जाँच किये ही पट्टमहिषी—महादेवी, युवराजमाता—को दण्ड देंगे, तो लोग यही कहेंगे कि, मैंने ही आपका चित्त भ्राँन करके यह सब आपके हाथ से कराया। आपको कोई कुछ न कह सकेगा। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि, चार दिन, जब तक आप की मुझ पर कृपा है, तब तक मेरा कोई कुछ नहीं कर सकेगा। पर कालान्तर में यदि आपकी कृपादृष्टि मुझ से फिर दूर हो गई, तो फिर मेरे प्राणों पर ही आफत आ जायगी, और यही भय मुझे सता रहा है। आप अपनी संरक्षा करने को सर्वथा समर्थ हैं।" इतना कह कर, मुरादेवी एकदम विषण्णवदन करके राजा की ओर देखने लगी।

राजा धनानन्द उसके वचन सुन कर बड़े ज़ोर से हँसा और बोला, "प्रिये मुरे, सचमुच ही तू बड़ी डरपोंक बन गई। क्या सचमुच ही तू ऐसा समझती है कि, तुझ पर मेरा जो यह प्रेम है, वह फिर किसी दूसरे पर चला जायगा? नहीं, कदापि नहीं—ऐसा त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। और देख

तो लूँ—तेरे नख को कौन धक्का लगाने का साहस कर सकता है? सो कुछ नहीं। मैं अब उस दुष्ट चाँडालिन को जो दंड देना है, उसकी आज्ञा भेजे देता हूँ। तू कुछ भी मत बोल। ऐसे न्यायकार्य में कभी विलम्ब करना उचित नहीं। सम्पूर्ण प्रजा जनों को मेरी यह न्यायनिष्ठुरता मालूम हो जानी चाहिए कि, मैं अपनी पत्नी—युवराजमाता—को भी क्षमा करनेवाला मनुष्य नहीं हूँ। यदि इस समय मैं ऐसा न करके चुप बैठ रहूँगा, तो उचित न होगा।"

"महाराज," मुरादेवी बहुत ही दीनतापूर्वक प्रार्थना करती हुई हाथ जोड़ कर कहती है—"नहीं, ऐसा न कीजिए। आज तक आपने मेरी सब बातें मानी हैं, उसी प्रकार इस बात को भी मानिये। इससे आप को इसका सच्चा सच्चा रहस्य सहज ही मालूम हो जायगा। मेरा मन कह रहा है कि इस कार्य में महादेवी का हाथ नहीं है। इसकी तह में और ही कोई रहस्य है। यह कार्य किसी दूसरे ही का जान पड़ता है।"

"सो कौन?" धनानन्द ने बड़े आश्चर्य और उत्सुकता के साथ पूछा। इस पर मुरादेवी फिर बोली, "वह कौन है, सो मैं भी अभी नहीं बतला सकती। पर आप यदि इस मामले को अब यहीं तक रख कर दो दिन चुप बैठेंगे, तो सम्भव है कि, सारा रहस्य बहुत जल्द खुल जाय। यह ऐसे ही लोगों का काम है कि, जिनके लिए मैं अप्रिय हो रही हूँ। आप मेरे महल में रहते ही हैं। ऐसी दशा में, मान लीजिए, इन अपूपों के खाने से कोई अनिष्ट घटना हो गई होती, तो ये लोग यही प्रकट करते कि, मैंने ही यह सब किया। फिर क्या कहना है? मेरी बड़ी ही दुर्गति हुई होती। मैंने चाहे जितना कहा होता कि, "मैंने ऐसा नहीं किया, मैं बिलकुल निरपराध हूँ; पर मेरी कौन सुनता? और मेरा पक्ष लेने वाला भी उस समय

कौन रहता ? इसलिए जिन्होंने यह व्यूह रचा है, वे अब अपने अपने गुप्तचरों के द्वारा इस बात का पता लगाते ही होंगे कि, क्या हुआ, क्या नहीं हुआ । अब आप इतना ही कीजिए कि, ज़रा बीमार हो जाने का बहाना कर लीजिए । मैं इधर यह उड़ाये देती हूँ कि, जब से महाराज ने उन अपूपों को खाया है, तब से उनका पेट बहुत ख़राब हो रहा है, और सारे शरीर में दाह पैदा हो गई है । इससे क्या होगा कि, जिन लोगों का यह काम होगा, वे लोग ज़रा विशेष धृष्ट हो जाँयगे; और अधिकाधिक पास पास आकर जाँच करने लगेंगे । ऐसा होने पर फिर हमारी जाँच का कार्य और भी उत्तमता से हो सकेगा । यह मेरी बिल्ली मुझ को बहुत ही प्यारी थी, सो आप जानते ही हैं । इसलिए आप तो अब बीमारी का बहाना करके चुपके पड़े रहें, और मैं अपनी इस प्यारी बिल्ली को बाग में गाड़ने के बहाने से बाहर चली जाती हूँ । और इस बात का पता लगाती हूँ कि, मेरे अन्तःपुर की ख़बर जानने के लिए कौन कौन चक्कर लगा रहे हैं । राजा ने बहुत कुछ आनाकानी करने के बाद उसके इस कथन को स्वीकार कर लिया । इधर मुरादेवी ने एक दासी के हाथ से उस बिल्ली को उठवाया और वह सुवर्णकरण्डक तथा उसके अपूप स्वयं अपने हाथ में उठा लिये । महादेवी की पत्रिका उसने पहले ही उठा ली थी । बिल्ली का शव बाहर ले जाने के बाद वह उसकी ओर देख कर कहती है, "श्वेताम्बरी, तू ने आज मेरा कितना भारी काम कर दिया !"

पन्द्रहवां परिच्छेद

चाणक्य के प्रयत्न ।

णक्य ने चन्द्रगुप्त को मुरादेवी के मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दिया। इसके बाद पहला काम उन्होंने यह प्रारम्भ किया कि, पाटलिपुत्र में वे इस बात की खबरें लेने लगे कि किस का वैमनस्य किससे है; और किससे किसका वैमनस्य हो सकता है। इस बात का तो उन्हें पूर्ण विश्वास था कि, राजा धनानन्द अब पूर्णतया मुरादेवी के हाथ में आ चुका है; और वह उसे पछाड़े बिना नहीं छोड़ेगी। जैसे कोई नक्री किसी का पैर पकड़ ले और फिर उसे जल-समाधि दिये बिना वह न छोड़े, उसी प्रकार उसने राजा को पकड़ लिया है; और अब वह उसे नष्ट किये बिना छोड़ नहीं सकती। हां, चाणक्य ने इतना अवश्य सोच लिया था कि, यदि मुरादेवी कभी अपने प्रयत्नों में शिथिल होने लगेगी, अथवा हम यह देखेंगे कि, अब यहां उसके प्रयत्न काम नहीं कर रहे हैं, तब अवश्य हम उसको सहायता देंगे; और ऐसा उद्योग करेंगे कि, जिससे वह अपने प्रयत्नों को और भी दृढ़ता के साथ जारी रख सकेगी। इसके सिवाय चाणक्य के पास एक ऐसा रामबाण उपाय मौजूद ही था कि, जिससे मुरादेवी की महत्वाकांक्षा और उसकी वैरनियातनेच्छा और भी अधिकाधिक जागृत रखी जा सकती थी। इसलिए चाणक्य ने सोचा

था कि, इस रामबाण उपाय का उपयोग हम बिलकुल अन्त में करेंगे। जब तक अमात्य राक्षस राजकाज देखते थे, तब तक धनानन्द का ऐसा ही निद्रित रहना एक निश्चित बात थी। क्योंकि अमात्य राक्षस के विषय में नन्दराजा का विश्वास ही ऐसा दृढ़ था। और राक्षस भी सर्वथा विश्वास योग्य मंत्री थे। नन्द-राजाओं के कल्याण के लिए पूर्ण सावधानी के साथ प्रयत्न करने वाला यदि कोई स्वामिभक्त सेवक उस राज्य में था, तो वे अकेले अमात्य राक्षस ही थे; और उनका प्रभाव भी ऐसा ही था। इस लिए चाणक्य ने जब देखा कि, स्वयं राजा धनानन्द का राक्षस पर इतना विश्वास है, सब कुछ कर्त्ता धर्त्ता वे ही हैं, अन्य किसी को राजा पूछता तक नहीं—यहाँ तक कि जब से वह मुरादेवी के महल में गया है, तब से और कोई उसके दर्शन भी नहीं कर सकता, तब चाणक्य को बड़ा आनन्द हुआ। क्योंकि राजा की ऐसी अवस्था के कारण अन्य कितने ही अधिकारियों के मन में राक्षस के विषय में मत्सर उत्पन्न होगया था। इसमें सन्देह नहीं कि, राक्षस एक सच्चे स्वामिभक्त सेवक थे, स्वार्थ की ओर उनका अणुरेणु भर भी ध्यान नहीं था। उनका सारा चित्त सदा सर्वदा राज्य और राजा के ही कल्याण में लगा रहता था; और यह बात सब को पूर्णतया स्वीकार भी थी; पर फिर भी जो काम स्वयं राजा को करना चाहिए था, वह भी अमात्य राक्षस ही करते थे; और वास्तव में वे एक प्रकार से राजा ही बन रहे थे, अतएव यह बात अनेक लोगों को अच्छी नहीं लगती थी। ऐसी दशा में उन लोगों के मन में राक्षस के विषय में एक प्रकार का मत्सर उत्पन्न होगया था। उनको यह ख़याल हुआ कि राजा अन्याय कर रहा है कि जो सब से बड़ा स्वामिभक्त सेवक राक्षस को ही समझ बैठा है—क्या हम उसके स्वामिभक्त सेवक नहीं हैं? पाटलिपुत्र के अन्य अधिकारिवर्ग की यह परिस्थिति

चाणक्य को पहले ही मालूम हो चुकी थी। वास्तव में राजा कुछ राज-काज देखता ही नहीं था; और राजपुत्र सुमाल्य अभी छोटा था; इस कारण अमात्य राक्षस को ही राजा के स्थान में सब आज्ञाएं निकालनी पड़ती थीं। इधर राक्षस की वे आज्ञाएं भागुरायण इत्यादि सेनापतियों को अच्छी नहीं लगती थीं। परन्तु वे अच्छी लगें, चाहे न अच्छी लगें—इससे लाभ क्या? आख़िर सब को उनका पालन करना ही पड़ता था; पर असन्तोष अवश्य ही, भीतर भीतर, उनमें फैल रहा था।

जब किसी राज्य में ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो जाती है, तब उस राज्य की ग्रहदशा अच्छी नहीं समझी जाती। वास्तव में अमात्य चाहे जितना अच्छा हो, और सब के लिए आदरणीय और सन्माननीय हो; पर जब उसी के हाथ में सारी सत्ता रहेगी, राजा कुछ भी देख-भाल नहीं करेगा, तब यह बात अन्य अधिकारिवर्ग को कभी पसन्द नहीं आवेगी। क्योंकि ऐसी दशा में उनका खयाल यही हो जाता है कि, अब हमको कोई नहीं पूछेगा; और न कोई हमारे गुणों की कदर करेगा—अब हम ऐसे ही मक्खियां मारते हुए बैठे रहें। ऐसा ख़याल अधिकारियों के मन में उत्पन्न हो जाना अच्छा नहीं है, इससे उनके अन्दर असन्तोष ही बढ़ताजाता है; पर जहां राजा स्वयं ही राज-काज देखता है, वहां अधिकारियों के मन में कम से कम यह आशा तो अवश्य रहती है कि भाई आज नहीं तो कल अवश्य ही हमारी सेवा राजा की नज़र में आवेगी; और हमारी सेवा की कदर उसके द्वारा होगी। परन्तु मगधराज्य के अधिकारियों की यह आशा इस समय बिलकुल विनष्ट सी हो रही थी; और इसी कारण भागुराण इत्यादि अधिकारियों के मन असन्तोष और असूया इत्यादि के विकारों से ग्रस्त हो रहे थे। चाणक्य ने यह सब दशा तुरन्त ही ताड़ ली। और एक दिन वे

सेनापति भागुरायण के यहां गये; और यह प्रकट किया कि, हम प्रद्युम्नदेव के लड़के के उपाध्याय हैं, और उस लड़के के साथ यहां आये हैं। सेनापति भागुरायण ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया; और चाणक्य के भाषण से तो वे बहुत ही सन्तुष्ट हुए। यहां तक कि जब चाणक्य उनके यहाँ से उठकर चलने लगे, तब भागुरायण उनको पहुँचाने के लिए उनकी पर्णकुटी तक गये। भागुरायण ने वहां जा कर जब उनकी दरिद्रतापूर्ण कुटी को देखा, तब उन्होंने चाणक्य से कुछ दक्षिणा लेने के लिए भी आग्रह किया, परन्तु चाणक्य ने स्पष्ट उत्तर दिया कि, "हम किसी से एक कार्षापण भी दक्षिणा में लेने की इच्छा नहीं रखते, और न किसी से किसी प्रकार की भी सहायता लेना चहते हैं।" चाणक्य की यह निस्पृहता देख कर तो भागुरायण के मन में उनके विषय में बहुत ही आदरभाव उत्पन्न हुआ। किसी मनुष्य का भी भाव अत्यन्त निस्पृह देख कर उसके विषय में लोगों के मन में विशेष आदरभाव उत्पन्न होता ही है; और जब इस प्रकार का आदरभाव उत्पन्न हो जाता है, तब पीछे से उस निर्लोभ मनुष्य के विषय में बड़ी श्रद्धा और भक्ति भी उत्पन्न हो जाया करती है; और ऐसी ही अवस्था उस समय भागुरायण की भी हुई। चाणक्य के विषय में उनको यह भावना हो गई कि, ये कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं; किन्तु एक बड़ी भारी विभूति के समान हैं—प्राचीन काल में जिस प्रकार वसिष्ठ, वामदेव इत्यादि हो गये हैं, उसी प्रकार वर्तमान समय में ये भी एक महर्षि ही हैं। इस प्रकार जब चाणक्य पर भागुरायण की विलक्षण भक्ति हो गई, तब चाणक्य का दर्शन किये बिना उन्हें एक दिन भी चैन न आने लगा। प्रतिदिन नियमित समय पर वे चाणक्य की पर्णकुटिका में जाने लगे। इस प्रकार जब सेनापति भागुरायण चाणक्य के बिलकुल भक्त ही बन गये,

तब फिर चाणक्य को और क्या चाहिए? उनको बहुत ही आनन्द हुआ। राजा के मुख्यांग दो होते हैं—एक सेनापति और दूसरा अमात्य। इनमें से कभी कभी सेनापति का महत्व अमात्य अर्थात् सचिव से भी विशेष प्रबल हो जाया करता है। क्योंकि राज्य की मुख्य शक्ति सेना समझी जाती है, और सेना जब उसके हाथ में हैं, तब मानो एक प्रकार से सारा राज्य ही उसके हाथ में है। सेनापति भागुरायण ही व्याध राजा पर चढ़ाई करके मुरादेवी को हरण कर लाये थे, और उसको राजा के समर्पण किया था। इसके बाद जब राजा से मुरादेवी के पेट से पुत्र उत्पन्न हुआ, तब उन्हें बड़ा ही आनन्द हुआ। राजा से उन्होंने अनेक बार यह बात जतला रखी थी कि, व्याधराजा वास्तव में क्षत्रिय ही है; और मुरा क्षत्रिय-कन्या है। परन्तु उनकी किसी ने सुनी नहीं। इस पर उनको बड़ा खेद हुआ; परन्तु राजा के चित्त को अन्यान्य अमात्यों ने भ्रान्त कर रखा था, अतएव भागुरायण की उस समय एक भी न चली। यही नहीं, बल्कि कुछ अधिकारियों ने तो यहां तक कह डाला कि, भागुरायण भी इस विषय में दोषी हैं—इन्हीं ने मुरादेवी को यहां लाकर राजा के अर्पण किया है: और इसी कारण ये मुरादेवी का पक्ष भी लेते हैं, इनकी एक भी सुनना चाहिए। यह कह कर उन्होंने भागुरायण की भी बड़ी अवहेलना की। किसी किसी ने तो इससे भी अधिक यहां तक कहा कि, मुरादेवी का महत्व ये इसी कारण चाहते हैं कि, उसका महत्व बढ़ने से इनका भी महत्व बढ़ेगा—ये बड़े स्वार्थ-परायण हैं, बस, इन्हीं सब कारणों से भागुरायण का मन उसी समय से बहुत खिन्न हो रहा था। परन्तु इस समय जब उन्होंने देखा कि, मुरादेवी के फिर सुख के दिन आये हैं; तब उनको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने सोचा कि, हमने राजा को पहले ही समझाया था; पर उस समय

राजा ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, किन्तु हां, अब राजा को मुरादेवी की सत्यता के विषय में विश्वास होगया; और वह एक प्रकार से सचेत हो गया है, यह अच्छा ही हुआ। मुरादेवी को उसने फिर अपनी कृपा में ले लिया, इससे सुन्दर और कौन सी बात हो सकती है। इस प्रकार सोचकर भागुरायण को सचमुच ही बड़ी प्रसन्नता हुई।

एक दिन सायंकाल को भागुरायण और चाणक्य संगम के निकट एकान्त में बैठे हुए गंगाकणवाही रमणीय और शीतल वायु का आनन्द लूट रहे थे। इतने में स्वाभाविक ही मुरादेवी की बात निकली; और भागुरायण ने यह सब कथा चाणक्य को बतलाई कि, किस प्रकार उन्होंने मुरादेवी को प्राप्त करके उसको राजा के अर्पण किया। इसके बाद यह भी बतलाया कि, आगे चलकर जब मुरा के पुत्र उत्पन्न हुआ, तब किस प्रकार उसकी अन्य सपत्नियों तथा अमात्यों ने मिलकर उस पर और उसके पुत्र पर अत्याचार किया, और हमने जब उसका पक्ष लिया, तब किसी ने हमारी एक भी न चलने दी। यह सब बतलाने के बाद भागुरायण ने चाणक्य से यह भी कहा कि, "हमने उस लड़के को देखा था। उसके हाथ पर चक्रवर्ती राजा के सब लक्षण विद्यमान थे। वह यदि आज जीवित होता, तो सुमाल्य से वह अधिक अवस्था का होता। राजा ने बहुत ही अविचार का काम किया; और ऐसे मामले में दूसरों की बात पर विश्वास करके अपने पुत्र की हत्या करा डाली। क्या किया जाय? इस बात का अब तक हमको बड़ा ही खेद बना रहता है।" भागुरायण का यह कथन सुन कर चाणक्य कुछ देर तक बिलकुल चुप बैठे रहे; और जब देखा कि, हमारे बोलने का यह अच्छा अवसर है, तब इस प्रकार बोलना शुरू किया, "सेनापते भागुरायण, सत्यपक्ष के विषय में आपका यह आग्रह देख कर मुझ को

बहुत ही आनन्द हो रहा है। राक्षस की स्वामिभक्ति के विषय में मैं बहुत कुछ सुन रहा हूँ, पर मैं यह नहीं कह सकता कि, सत्य के विषय में उनको कितनी भक्ति है। आप की सत्यनिष्ठा का आप को शीघ्र ही फल मिलेगा—आप चिन्ता न करें। आप जिस विश्वास से मुझको ये सब पिछली बातें बतला रहे हैं, उसी विश्वास से मैं भी आपको एक दो बातें बतलाना चाहता हूँ। पर इसके पहले मैं आपसे एक प्रश्न करूंगा, आप इसका उत्तर मुझे देवें। मैं कहता हूँ कि, मान लो वह पुत्र अभी मरा नहीं; ऐसा ही समझ लो कि, अभी जीवित है, और यह भी समझ लो कि, उसके विषय में आप को किसी ने आकर पूरा पूरा विश्वास भी करा दिया। यही नहीं, बल्कि मान लो कि किसी ने उसको लाकर आपके सन्मुख उपस्थित ही कर दिया, अब बतलाइये कि, आप उसके लिए कहां तक करने को तैयार हैं—इससे आप यह न समझें कि वह लड़का सचमुच ही जीवित है, अथवा मैं उसको लाकर सचमुच ही आपके सन्मुख उपस्थित करने वाला हूँ—ऐसी कोई बात नहीं है. पर मैं आप से सिर्फ पूछना भर चाहता हूँ—केवल विनोद के लिए—देखता हूँ कि, आप इस विषय में क्या सम्मति रखते हैं!"

"ब्राह्मणश्रेष्ठ, आप मुझ से विनोद के लिए पूछते हैं, तो मैं भी विनोद ही के लिए उत्तर भी देता हूँ कि, वह लड़का यदि सचमुच ही मेरी दृष्टि में पड़ जाय, तो मैं उसको युवराज पद दिलाऊंगा, और उसको दिलाते समय यदि ऐसा ही कोई अवसर आ पड़े, तो मैं उसको यह सारा राज्य भी दिला कर ही रहूँगा। मुझ को पूर्ण विश्वास होगया था कि, उस बालक को यदि राक्षस आदि लोगों ने मरवा न डाला होता, तो वह एक बड़ा महाराजाधिराज होता; और एक बड़ा भारी साम्राज्य उसने स्थापित किया होता। उसके जन्मस्थ ग्रह ही ऐसे थे; और

सामुद्रिक चिन्हों से भी ऐसा ही प्रकट हो रहा था। पर कह नहीं सकते—ऐसा क्या बिगड़ गया था—उसके ग्रहों की ऐसी कौन सी दशा बिगड़ गई थी कि, जिससे वह मार ही डाला गया—आज संसार में उसका नाम-निशान तक नहीं रह गया !"

"आप राज्य तो उसे दिलाने कहते हैं, पर सेना तुम्हारी बात सुनेगी या राजा और सचिव की बात मानेगी? इसमें सन्देह नहीं कि, सारी सेना है तो आप ही के हाथ में—पर राजा के विरुद्ध और सचिव के विरुद्ध वह आपकी बात कैसे सुन सकती है? मेरा तो ऐसा ख्याल है कि, आप केवल सेना पर ही अवलम्बित नहीं रह सकते। मुझे राजनीति से बड़ा प्रेम है; और इसी लिए घड़ी भर विनोद के तौर पर मैं आप से इस विषय पर वाद-विवाद कर रहा हूं। मान लीजिए कि, अपनी इच्छा के अनुसार उक्त काम करने के लिए आप तैयार हो गये; और वह काम राजा धनानन्द और अमात्य राक्षस के बिलकुल विपरीत है, अब बतलाइये, सेना बिलकुल हृदय से आपके पक्ष में कैसे मिली रहेगी? और आप के अधिकार की सेना यदि कहीं आपके विरुद्ध हो गई, तो पीछे से फिर आपकी बड़ी दुर्दशा होगी, अब ऐसे मौके पर आप किस युक्ति से अपना काम बना ले जायँगे ?"

ब्राह्मणश्रेष्ठ चाणक्यमुने, इस प्रकार के शुष्क वादविवाद से क्या लाभ? मुझ को तो ऐसा पूर्ण विश्वास है कि, सेना बिलकुल मेरे हाथ में है। मैं जो कुछ आज्ञा दूंगा, उसके बाहर एक पदाति भी नहीं जा सकता। और तो विशेष क्या कहूँ—इन बातों की प्रतीति प्राप्त करके देखने की मुझे इच्छा नहीं है; पर मैं इतना कह सकता हूँ कि, यदि कभी ऐसा मौका आ जावे, तो मैं इसको अक्षरशः सत्य कर के दिखला सकता हूँ।"

"कौन कह सकता है कि, आपके कथन में सत्यता नहीं है? मैं तो कहता हूँ कि, आप के कथन पर जो अविश्वास करे, अथवा आप के कथन पर जो सन्देह-वचन निकाले, उसकी जिह्वा शतधा विदीर्ण हो जाय—मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि, आप अत्यन्त सत्यनिष्ठ पुरुष हैं; परन्तु सेनापति महाराज, सत्य की रक्षा के लिए केवल सत्यनिष्ठा ही काम नहीं देती, उस में कुछ कुछ दण्डनीति का भी उपयोग करना पड़ता है। नीति-शास्त्र के महागुरु कणिक ने भी कहा है कि, शत्रु को नीचे पटक कर मार डालना चाहिए; परन्तु जब तक इसके लिए अच्छा अवसर न प्राप्त हो जावे, तब तक उसको कन्धे पर बिठला कर ले चलने की भी नौबत आवे, तो भी कोई हानि नहीं—ऐसा भी करना चाहिए; परन्तु ज्यों ही घात लग जाय, त्यों ही उसको तुरन्त ही नीचे पटक कर नाश कर देना चाहिये। बस, मैं इसी नीति के अनुसार आप से बातचीत कर रहा हूँ—सत्य ही क्यों न हो—फिर भी कुछ समय तक उसका गोपन कर के बाहर से असत्य का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। ऐसा यदि आप नहीं करेंगे, तो आपकी उस सत्यनिष्ठा का कुछ भी उपयोग नहीं होगा। मेरे कथन पर आप पूरा पूरा विचार करें। नीतिशास्त्र का यह एक पाठ ही है।"

भागुरायण बोले, "ब्रह्मन्, आपका कथन बिलकुल सत्य है। और मौका आ जावे, तो मैं ऐसा भी कर सकता हूँ, पर अब इन बातों में धरा क्या है? इन काल्पनिक बातों को विचार में लेकर उन पर वादविवाद करने से क्या लाभ? इन को अब छोड़ देना ही अच्छा होगा। वह लड़का अब उत्पन्न हो नहीं सकता; और मैं भी ऐसा काहे को करने जाता हूँ?"

"हां, ठीक है।" चाणक्य किंचित् विचारपूर्वक कहते हैं, "परन्तु आपके समान राजपुरुष और राजकार्यधुरंधर पुरुष से

मिलने पर यदि मैं ऐसी नीति की बातों पर वादविवाद नहीं करूंगा, तो फिर और करूंगा किसके सामने? मैं एक युक्ति इस पर सुझाता हूँ—आप सोच देखें। देखें आपको कैसी पसन्द आती है। पर्वतेश्वर का राज्य इस पाटलिपुत्र से पास ही है। मान लो कि, राक्षस के नाम से किसी ने उसके पास एक ऐसा सन्देशा भेजा कि, तुम आकर पाटलिपुत्र को घेर लो। मैं भीतर से तुम को सहायता देकर तुम को राज्य दिला दूंगा। अवश्य ही पर्वतेश्वर जब यह देखेगा कि स्वयं राक्षस हमारे अनुकूल हो गया, तब उसको बड़ा आनन्द होगा; क्योंकि पाटलिपुत्र पर पर्वतेश्वर पहले ही घात लगाये हुए है। राक्षस की तरफ से जो सन्देशे भेजे जायँगे, उनके विषय में पर्वतेश्वर को यह नहीं मालूम होने दिया जायगा कि, राक्षस के ये सन्देशे नहीं हैं; और बल्कि राक्षस ही की तरफ से यह भी सन्देश भिजवाया जायगा कि, कि "बाहर से मैं अपनी राजभक्ति का ढोंग दिखला कर तुम से विरोध भी प्रकट करूंगा, इससे धनानन्द को भी मेरे विषय में बिलकुल संन्देह न होगा। और भीतर से तुमको इस प्रकार की सहायता दूंगा कि जिससे धनानन्द का तुम्हारे द्वारा पूर्ण नाश हो जायगा, और राज्य सहज ही में तुम्हारे हाथ आ जायगा."। यह युक्ति यदि सफल हो जायगी, तो पर्वतेश्वर अवश्य ही लोभाशा में पड़ कर अपनी सेना लेकर आवेगा। वह जब सेना लेकर आ जाय; तब हम चारों ओर ऐसी गप उड़ा दें कि, देखो, राक्षस के ही आमंत्रण से पर्वतेश्वर ने पाटलिपुत्र पर धावा किया है। उस समय पर्वतेश्वर की ओर से अवश्य ही हमारे कथन को आधार मिलेगा। इसके बाद जब तक नन्दों का नाश न हो जाय, आप और आप की सेवा बिलकुल चुप रहे। नन्दों का जब नाश हो जाय, तब उस पुत्र को आगे किया जाय; और आपकी सेना नन्द की ओर से पर्वतेश्वर से युद्ध करे।

इससे क्या होगा कि, लोगों का चित्त आपके पक्ष में आ जायगा। आपकी स्वामिभक्ति कायम रहेगी; और उस लड़के के विषय में लोगों के मन में—यह समझ कर कि अब नन्दवंश में इतना ही एक अंकुर शेष रह गया—प्रेम उत्पन्न होगा। देखो—मैं ये सब बातें कल्पना से ही रच कर कह रहा हूँ—जैसे लोग शतरंज का खेल खेलते हैं, वैसे ही मैं भी नीतिशास्त्र का यह एक दाँव आपके सामने रख रहा हूँ—देखता हूँ, आप इस खेल में कितने चतुर हैं! और कोई बात नहीं। समझ लो कि, हम लोगों की इस समय यही गपशप है।"

"मैं तो समझता हूँ कि, आपका यह दाँव बहुत ही उत्तम है; पर जब सध जावे;— और यदि नहीं सधा, तो फिर जान जाने की ही नौबत आवेगी। हां, यदि सध गया, तो फिर कहना ही क्या है? राक्षस पूर्ण रूप से नीचा देखेगा। उसका सारा अभिमान चूर चूर हो जायगा। उसको अपनी राजनीतिज्ञता का बड़ा घमंड है! पर ऐसा घमंड सदा नहीं रहा करता!"

इस पर चाणक्य फिर कहते हैं, "किन्तु आपको इस दावँ के साधने में क्या अशक्यता मालूम होती है? शायद आप यह सोचते होंगे कि, पर्वतेश्वर यह ख़याल करके किसी दूत पर विश्वास न करेगा कि, राक्षस ऐसा स्वामिद्रोही कैसे हो सकता है—वह स्वामिघात का सन्देशा कैसे भेजेगा; पर मैं समझता हूँ कि, यह बात बिलकुल असम्भव नहीं है—पर्वतेश्वर ऐसा विश्वास कर सकता है। आप कहेंगे, कैसे? पर मैं कहता हूँ कि, मान लो, राक्षस की ओर से ऐसा कहलाया गया कि, राजा धनानन्द इस समय मुरा की धुन में पड़ा हुआ है; और उसकी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो रही है कि, मुझे राजकाज करने में बड़ा कष्ट होता है—न जाने उस शूद्री के कहने में आकर वह किस समय क्या कर डाले! और इसी लिए मैं तुमको पहले ही से

ऐसी सलाह दे रहा हूँ—इस प्रकार की बातें यदि राक्षस की ओर से पर्वतेश्वर के पास पहुँचाई जायँगी, तो पर्वतेश्वर अवश्य पाटलिपुत्र पर धावा कर देगा; क्योंकि मगध राज्य को प्राप्त करने के लोभ से पर्वतेश्वर बिलकुल अन्धा हो रहा है—वह फिर अधिक और कुछ नहीं सोच सकेगा—तुरन्त ही आकर पाटलिपुत्र को घेर लेगा। इसके बाद फिर जब यह बात लोगों में फैल जायगी कि, राक्षस ने अपनी ओर से आमंत्रण देकर पर्वतेश्वर को बुलाया है, तब फिर और क्या चाहिए? बड़ी बहार आवेगी। हां, आप अपनी सेना को अपनी जगह से न हिलने दें—बस, फिर आप का दावँ सिद्ध हो जायगा। क्यों? कहिये, मेरा कथन ठीक है न?"

"आर्य चाणक्य, मैं भली भांति जानता हूँ कि, वह राजपुत्र अब इस संसार में नहीं है—वह सर्वथा नष्ट हो चुका है; और यदि यह बात मुझे मालूम न होती, तो मैं अवश्य ही कहता कि, आप उसे बिलकुल जीवित समझ कर ही यह सब कह रहे हैं; क्योंकि आप जो रचना मुझे सुझा रहे हैं, वह बिलकुल ऐसी है कि जैसे अभी हम को वैसी ही रचना प्रत्यक्ष रूप से रचनी हो!"

"सेनापते, बुद्धिमानों को उचित है कि, गपशप करते समय भी ऐसी ही बातें निकालें कि, जिनसे कुछ चातुरी बढ़े। मैंने अभी आप से कहा ही है कि, मुझे नीतिशास्त्र का—और फिर उसमें भी कुटिल नीतिशास्त्र का—बड़ा शौक है; और इसी कारण नाना प्रकार की ऐसी ऐसी रचनाएं रच कर मैं अपना मनो-विनोद किया करता हूँ। इस समय जब मैंने देखा कि, सपत्नियों के द्वारा मुरादेवी के पुत्र का वध कराये जाने के कारण आपको बहुत दुःख हुआ है, तब मैं ने आपके सामने यह चर्चा छेड़ दी कि, मान लो, वह पुत्र नहीं मरा; और कोई उसे लाकर आपके सामने खड़ा कर दे, अब ऐसी दशा में आप क्या करेंगे—बस,

यही जानने के लिए मैंने आपसे इस प्रकार के प्रश्न किये हैं। और मेरा कोई मतलब नहीं था। अब मुझे मालूम होगया कि, इस प्रकार की रचना यदि की जाय, तो इसमें आप को किसी प्रकार की बुराई नहीं मालूम होती—उसमें सफलता प्राप्त हो सकती है। ठीक है। होगया। अब चलिये।"

भागुरायण और चाणक्य के उपर्युक्त वार्तालाप में बहुत सा समय हो गया। इस लिए अन्त में चाणक्य वहाँ से उठकर अपनी पर्णकुटी की ओर और भागुरायण अपने महल की ओर चल दिये। भागुरायण अपने मार्ग से चले जा रहे थे कि, इतने में उनको ऐसी शंका आई कि, जैसे उन पर कोई नज़र रख रहा हो, कोई गुप्तचर सा उनके पीछे पीछे आ रहा हो। भागुरायण ने समझा कि, शायद यह राक्षस का कोई जासूस होगा, जो हमारे पीछे पीछे घूम रहा है। अतएव उनको बहुत खेद हुआ, और साथ ही साथ कुछ क्रोध भी आया, परन्तु फिर उन्होंने सोचा कि "नीतिशास्त्र का मामला ही ऐसा है" और यह सोच कर उन्होंने अपने मन का समाधान कर लिया। भागुरायण अभी अपने घर पहुँच कर सायं-संध्यादि कर्मों से निवृत्त हो कर भोजन के लिए बैठे ही थे कि इतने में राक्षस के पास से उनको इस प्रकार का आमंत्रण आया कि, आप जैसे हों, वैसे ही—तुरन्त—चले आइये। यह आमंत्रण सुनते ही राक्षस को कुछ अधिक क्रोध आया, फिर भी भागुरायण ने अपना वह क्रोध वहीं दाब दिया, और भोजन इत्यादि न करते हुए वैसे ही राक्षस के पास चले आये। राक्षस ने उनको देखते ही यह प्रश्न किया:—

"आप जिस ब्राह्मण के पास आजकल बहुत आते जाते रहते हैं, वह ब्राह्मण कौन है—बतला सकते हैं?"

यह प्रश्न सुनते ही भागुरायण के मस्तक में बल पड़ गये!

सोलहवां परिच्छेद

सेनापति भागुरायण।

अमात्य राक्षस का प्रश्न सुनते ही भागुरायण की त्योरी चढ़ गई; और वे बड़े क्रोधित हुए। अमात्य के विषय में उनके मन में बड़ा आदर भाव था। क्योंकि यह बात उनको भली भांति मालूम थी कि, अमात्य राक्षस के समान स्वामिभक्त पुरुष और दूसरा नहीं मिल सकता। इसके सिवाय यह बात भी उनको अविदित नहीं थी कि, उस स्वामिभक्ति के कारण ही अमात्य राक्षस सब के ऊपर कड़ी निगाह रखते हैं। परन्तु जब उन्होंने देखा कि, हमारे समान आदमी के कार्यों पर भी अमात्य महाशय निगहबानी रखने के लिए गुप्तचर नियत करते हैं; और उनके द्वारा हमारी भी सब खबरें मँगा कर हमसे भी इस प्रकार का जवाब तलब करते हैं, तब उनको बहुत क्रोध आया; और उनको ऐसा क्रोध आना एक प्रकार से स्वाभाविक ही था; क्योंकि वे भी अपने राजा की. सच्चाई के साथ, सेवा करने में कोई कसर नहीं करते थे। अस्तु। सेनापति भागुरायण को राक्षस का उपर्युक्त प्रश्न सुन कर इतना क्रोध आया कि, जिसको रोकना उनके लिए बहुत कठिन होगया; परन्तु फिर भी, जितना आत्मसंयमन उनसे हो सका, उतना आत्मसंयम करते हुए उन्होंने अमात्य से कहा, "अमात्यराज, क्या आप कृपा कर के मुझे यह बतलायेंगे

कि, आप इस समय मुझे यहां बुला कर ऐसा प्रश्न क्यों कर रहे हैं ?"

राक्षस तुरन्त ही ताड़ गये कि, उनके प्रश्न को सुनकर सेनापति महाशय अवश्य ही क्रुद्ध हुए हैं, तथापि अपने इस भाव को प्रकट न करते हुए उन्होंने बड़ी शान्ति के साथ भागुरायण से कहा, "सेनापति महाशय, उस ब्राह्मण के विषय में मुझे कुछ सन्देह हो रहा है; और अपने चारों (गुप्तचरों) के द्वारा जब हमने इस बात की चौकसी की, तब मेरे इस सन्देह को पुष्टि भी मिली है। इसके सिवाय अपने उन्हीं चारों के द्वारा मुझे यह भी पता मिला है कि, आप उस ब्राह्मण के यहां बहुत आया-जाया करते हैं, इस लिए मेरे मन में आया कि, मैं एक बार आप से मिल कर इस विषय में पूछूँ। ऐसा विचार कई दिनों से मेरे मन में आ रहा है; और इस बीच में दो एक बार आप से मुलाकात भी हुई; पर मैं पूछना भूल गया। आज इस समय फिर स्मरण आगया; और मैंने सोचा कि, शायद मैं फिर न भूल जाऊं; और इसी कारण तुरन्त ही आपके पास सन्देशा भेजा। इसके सिवाय और कुछ भी मेरे इस प्रश्न का कारण नहीं है। और कारण हो ही क्या सकता है ?" इतना कह कर अमात्यराज राक्षस भागुरायण की चेष्टा की ओर देखने लगे। भागुरायण यह अच्छी तरह समझ गये कि, अमात्यराज का यह कथन कि, "इस समय फिर स्मरण आगया" बिलकुल बनावटी है। उन्होंने सोचा कि वास्तव में अमात्य को यह भली भांति मालूम है कि, मैं उनके पास जाता हूँ, बहुत देर तक बैठता हूँ, नाना प्रकार की बातें करता हूँ; और यह सब मालूम होने पर ही आज इन्होंने बुलाया भी है; परन्तु अपने इस भाव को अमात्यराज इस समय जरूर छिपा रहे हैं। फिर भी भागुरायण ने, अपने इस भाव को राक्षस के सामने प्रकट करना उचित न समझ कर, सिर्फ इतना

ही कहा, "मैं उस ब्राह्मण के विषय में कुछ भी नहीं जानता। वह एक बार मेरे पास आया, और मुझसे बोला कि, हम एक परदेशी ब्राह्मण हैं, कुछ दिन के लिए गंगातट पर निवास करने के लिए आगये हैं। आपके समान पुरुषों की भेट से मुझे बड़ा आनन्द होता है। उसकी बातचीत से मुझे ऐसा मालूम हुआ कि, ब्राह्मण बड़ा विद्वान् है, उसकी विद्वत्ता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं। और इसी कारण मैंने उससे परिचय बढ़ाया। इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मण विद्वान तो है ही, साथ ही साथ बहुत निस्पृह है। उसे किसी प्रकार की इच्छा नहीं है। इसी कारण मेरी उस पर बड़ी भक्ति हो गई है, और मैं उसके पास सत्संग के लिए कभी कभी चला जाता हूँ। बस, इसके सिवाय और मैं कुछ नहीं जानता ?" इतना कह कर भागुरायण ने अमात्य की चेष्टा की ओर देखा; और तत्काल ही उनको मालूम हो गया कि, हमारे इस कथन से अमात्य का समाधान नहीं हुआ। परन्तु फिर भी अमात्य के प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा करते हुए वे चुप बैठे रहे। राक्षस भी कुछ देर तक चुप रहने के बाद फिर बोलेः—

"सेनापते, यह ब्राह्मण मुरादेवी के भ्राता के यहां से उसके लड़के के साथ आया है, और आपके कथन से ऐसा मालूम होता है कि, आपको यह बात मालूम नहीं है।"

अमात्य के शब्दों से भागुरायण को तत्काल मालूम होगया कि, अमात्य का उपर्युक्त वचन छद्मपूर्ण है, और उन्होंने यह भी सोचा कि, देखो इतनी बात हमने इनसे नहीं बतलाई, और इसी कारण ये ऐसा कह रहे हैं। इस लिए भागुरायण ने उनसे फिर कहा कि, "हां, मैं भी ऐसा ही सुनता हूँ।"

"तो फिर इससे ऐसा मालूम होता है कि, आपको इस

विषय में पक्का कुछ भी मालूम नहीं है ?" अमात्य ने फिर पूछा।

"पक्का कैसे मालूम हो सकता है ; मैं किसी के पीछे जासूस लगा कर ख़बरें थोड़े ही लेता रहता हूँ ; और इसी कारण मुझे कोई भी बात पक्के तौर पर मालूम नहीं है।"

इस पर राक्षस ने, यह प्रकट करते हुए कि जैसे उपर्युक्त उनकी कथन उनकी समझ में बिलकुल आया ही न हो, भागुरायण ने कहा, "किन्तु मैंने जासूसों के द्वारा यह भली भांति मालूम कर लिया है कि, वह ब्राह्मण अपने को जैसा प्रकट करता है, वैसा कदापि नहीं है—उससे वह बिलकुल भिन्न है। आपको शायद मालूम न होगा और हमको यह भी भय है कि, आप कहीं उसकी बातों में आकर धोखा न खा जायँ, और इसी लिए आज बुला कर मैंने आपसे यह निवेदन किया है। यह ब्राह्मण कहता है कि, हम मुरादेवी के मायके से आये हैं, पर मुझे तो उसके इस कथन में भी आशंका है। इसके सिवाय जिस लड़के को वह अपने साथ लाया है, उसके विषय में भी मुझे इस बात की पूरी पूरी शंका है कि, यह मुरादेवी का भतीजा भी है अथवा नहीं। मैं इस विषय की तहकीक़ात करवा रहा हूँ, और आप भी यदि इस विषय की जांच रखेंगे, तो अच्छा होगा। मैं तो आज यही चाहता हूँ कि, यह ब्राह्मण एक ही दो दिन के अन्दर पाटलिपुत्र से निकाल दिया जाय—इसको मगध की सीमा से बाहर कर दिया जाय। क्योंकि कौन कह सकता है कि, यह ब्राह्मण यवनों का ही गुप्तचर बन कर न आया होगा ? यह बात तो आपको मालूम ही है कि, सलूक्षस हमारे राज्य में घुसना चाहता है। इस लिए एक ऐसे ब्राह्मण को, कि जिसके विषय में हमको कुछ भी ज्ञान नहीं है, राज्य के अन्दर रखना बहुत ही ख़तरनाक है। अतएव मेरी तो ऐसी ही सम्मति है कि, या तो इसको यहां से

निकाल दिया जाय, अथवा इसको यहीं कैद कर रखा जाय। आपकी इस विषय में क्या सम्मति है? आपका और उसका दोस्ताना बहुत होगया है, इसी लिए कहता हूँ।"

अमात्य के अन्तिम कथन पर भागुरायण को बहुत क्रोध आया। उन्होंने समझा कि, अमात्य राक्षस अपने को तो अत्यन्त चतुर और स्वामि-हित-परायण समझते हैं, और हमको बिलकुल मूर्ख तथा स्वामिहित के विषय में लापरवाह, ख़याल कर रहे हैं। इसलिए भागुरायण तुरन्त ही उनसे बोले, "अमात्य महाशय, आप पाटलिपुत्र में सब कुछ कर सकते हैं: आपको सब कुछ सामर्थ्य है, पर मेरी राय है कि व्यर्थ के लिए सन्देह निकाल कर किसी पवित्र ब्राह्मण का अपमान करना अच्छा नहीं है। आप सब प्रकार के नीतिशास्त्र में बड़े विशारद हैं, इसलिए आपको अधिक कुछ बतलाने की आवश्यकता है ही नहीं। परन्तु हाँ, इतना मैं आप को अवश्य सूचित करूंगा कि आप पहले अपने जासूसों के द्वारा भली भाँति उस ब्राह्मण के विषय में जानकारी प्राप्त कर लें: और जब यह निश्चित विश्वास हो जाय कि, आर्य चाणक्य सचमुच ही यवनों का गुप्तचर है: तब भलेही जो आप की इच्छा हो, सो करें; पर इतने थोड़े दिनों में मुझे जहाँ तक उस ब्राह्मण का परिचय मिला है, वहाँ तो मुझे ऐसा हो मालूम होता है कि, वह ब्राह्मण बहुत ही शुद्ध है: और स्वाभाविक रीति से हमारे पाटलिपुत्र में आगया है। मुरादेवी ने उससे बहुत आग्रह किया था कि, वह उनकी यज्ञशाला में ही आकर रहे: पर उस निरिच्छ ब्राह्मण ने उनके इस आमंत्रण को भी स्वीकार नहीं किया। इस लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि, वह किसी का गुप्तचर इत्यादि बन कर आया होगा, फिर भी आप पता लगा सकते हैं; और पता लगाने के बाद जैसा कुछ निश्चित हो, उसके अनुसार कार्य कर सकते हैं। आप अत्यन्त शान्त और

विचारवान् पुरुष हैं, इस लिए आप को अधिक कुछ बतलाने की आवश्यकता है ही नहीं। मेरा सिर्फ तात्पर्य इतना ही है कि एक गरीब ब्राह्मण का व्यर्थ के लिए अपमान न होने पावे। ब्राह्मण अच्छा ब्रह्मनिष्ठ और पंडित है।"

भागुरायण और अमात्य राक्षस का इस प्रकार वार्तालाप हो जाने के बाद भागुरायण अपने महल की ओर चल दिये। परन्तु हां, अमात्य के विषय में आज उनका भाव अवश्य बदल गया। उन्होंने सोचा कि, देखो अमात्य हमारे विषय में भी सन्देह कर रहे हैं; और गुप्तचरों द्वारा हमारी भी निगरानी रखते हैं। ऐसे अमात्य के अधिकार में रहना मानों अपने ही आप अपना अपमान कराना है। सच पूछिये तो अमात्य और सेनापति दोनों ही समानाधिकारी होने चाहिए; अच्छा, यदि इतना न हो, तो कम से कम सेनाधिपति के विषय में अमात्य को ऐसा सन्देहपूर्ण बर्ताव तो नहीं करना चाहिए; परन्तु अमात्य को इस बात का कुछ भी ख़याल नहीं है; और वे हमारे कार्यों को भी सन्दिग्ध दृष्टि से देखते हैं। ऐसी दशा में, वास्तव में अमात्य राक्षस जब तक इस राज्य में हैं, तब तक हमको यहां न रहना चाहिए, कहीं दूसरी जगह चले जाना चाहिए, यहां तक भागुरायण के विचारों की नौबत पहुँच गई। आप जानते हो कि, जब एक बार मनुष्य के मन में कोई विचार आने लगते हैं, तब उनकी परम्परा का कुछ ठिकाना ही नहीं रहता, मनुष्य न जाने क्या क्या सोचने लगता है। इसी नियम के अनुसार भागुरायण के मन में भी विलक्षण प्रकार के विचार आने लगे। और अब उनके मन में यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि, देखो, हम इतनी अच्छी तरह से बर्ताव करते हैं, फिर भी सचिव के मन में हम पर सन्देह हो हो जाता है, इसका कारण क्या है? इस प्रश्न के उपस्थितहोते ही फिर उनके मन में आया कि, शायद अमात्य

राक्षस अब भी हमारे विषय में वही पहले का द्वेष और मत्सर रखते होंगे—हमने मुरादेवी को लाकर महाराज के अर्पण किया था, तभी से अनेक ऐसी घटनाएं होती गईं कि, जिनसे अमात्य हमारे विषय में दुर्भाव रखने लगे; और वही दुर्भाव शायद अब भी बना होगा। मतलब यह कि आज तक जैसी जैसी बातें सेनापति के मन में कभी नहीं आती थीं, वैसी बातें आज उनके मन में राक्षस के विषय में आने लगीं। अतएव अन्त में उन्होंने यह भी सोचा कि, जब अमात्य के भाव हमारे विषय में अच्छे नहीं हैं, तब यह भी सम्भव है कि, किसी क्षुद्र कारण को ही मन में रख कर वे हमको पाटलिपुत्र से अलग भी कर दें। मौका पाकर ऐसा भी वे कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। ऐसी दशा में फिर हमको पाटलिपुत्र में ही क्यों पड़े रहना चाहिए? राजा धनानन्द तो कुछ देखता-भालता नहीं। इस कारण जितना कुछ राज-काज है, सब एक इसी पुरुष के हाथ में आ रहा है, अतएव यह भी अपने को राजा ही समझ कर सब राज्य-व्यवस्था करता है। ख़ैर, व्यवस्था करें, इससे हमको क्या? परन्तु अन्य अधिकारियों—अपनी बराबरी के अन्य अधिकारियों—की प्रतिष्ठा का तो कुछ ख़याल इसको रखना चाहिए? अब, इसने जिन गुप्तचरों को हमारे ऊपर नियत किया होगा, उन गुप्तचरों की दृष्टि में हमारी क्या इज्ज़त रह गई? पुष्पपुर का एक चोर और हम अब दोनों बराबर ही तो हो गये? फिर, जिसके विषय में देखिए उसी के विषय में संदेह! संदेह का भी कुछ ठिकाना है? आर्य चाणक्य कितना गरीब आदमी है: और कितना उत्तम मनुष्य है। फिर उसके विषय में भी सन्देह! वह एक बहुत ही ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् ब्राह्मण है। उसको, कहता है, देश से निकाल देंगे! वाह! इसी लिए तो कि, वह मुरादेवी के भाई के यहां से आया है? शाबाश अमात्य राक्षस, शाबाश! इस प्रकार के संदेह

मन में लाकर यदि तुम राजकाज चलाओगे, तो मेरे समान मानी पुरुष एक क्षण भर भी इस पाटलिपुत्र में नहीं रहेगा। आर्य चाणक्य ने आज शाम को विनोदपूर्वक बातें करते करते जिस प्रश्न को उपस्थित किया था, उस प्रश्न के अनुसार यदि सचमुच ही वह बालक जीवित होता, तो उसका पक्ष लेकर हमने अमात्य को खूब ही छकाया होता; पर क्या कहें, ऐसी कोई सम्भावना ही नहीं! बधिकों के द्वारा जो बालक हिमालय के जंगलों में लेजाकर मार डाला गया, उसके जीवित रहने की क्या सम्भावना? पर यदि सचमुच ही वह जीवित हो, तो? फिर क्या कहना है! मैं इस अमात्य को खूब ही नीचा दिखाऊंगा! राजा धनानन्द की तो बात ही क्या कहना है! वह राजकाज में कुछ मन लगाता ही नहीं—उसकी जगह तो सुमाल्य अथवा और कोई दूसरा—दोनों बराबर ही हैं। मैं तो कहता हूँ कि, उसकी जगह यदि उस बालक को ही मिले, तो विशेष न्याय्य होगा; क्योंकि राज्य का, अथवा युवराजपद का सच्चा सच्चा अधिकारी वही है। बस, इसी प्रकार के अनेक—परन्तु एक ही प्रकार के—विचार मनही मन लाते हुए सेनापति भागुरायण अपने महल की ओर चले जा रहे थे। कुछ देर बाद वे अपने मन्दिर में जा पहुँचे। उनकी भूख अब बिलकुल मर चुकी थी। और उपर्युक्त विचारों के अतिरेक के कारण उनको उस रात में नींद भी नहीं आई। उन्होंने सोचा कि, अब चाणक्य को भी हमें इस विषय में सावधान कर देना चाहिए। अमात्य के मन में उनके विषय में सन्देह हो ही चुका है, ऐसी दशा में न जाने किस समय वे क्या कर डालें। इतने में शायद और कोई आकर चाणक्य के विषय में अन्य कुछ कह दे; इससे अमात्य अविचार में आकर चाहे जो अनर्थ कर सकते हैं। व्यर्थ के लिए उनका अपमान करके

उनका देशनिकाला ही कर देंगे। यह बात ठीक नहीं है। इस लिए उस ब्राह्मण को समय पर सावधान कर देना अच्छा होगा। यह विचार मन में आते ही अब वे इस आतुरता में पड़े कि कब यह रात बीते; और कब कल की शाम आवे कि, हम चाणक्य के पास जाकर उन को सावधान कर दें।

अस्तु। वह रात बीती, सुबह हुआ; और शाम का समय आया। भागुरायण चाणक्य के पास गये। पिछले दिन उनको यह बात मालूम ही हो चुकी थी कि, हमारे पीछे जासूस लगे रहते हैं। इस लिए आज उन्होंने अपने चारों ओर बड़े ध्यान से देखा, तो मालूम हुआ कि, आज भी गुप्तचर उनके आसपास मौजूद हैं। यह देख कर उन को बहुत ही परिताप हुआ। उन्होंने सोचा कि, जिस नगरी में रहने से हमारा इतना अपमान होता है, उस नगरी में अब हमको रहना ही क्यों चाहिए? दूसरे किसी राज्य में जाकर क्या अपने उदर का पालन करने की शक्ति हम में नहीं है? इस प्रकार के प्रश्न उनके मन में आये। भागुरायण यदि चाहते, तो उन गुप्तचरों को, जो उनके पीछे थे, पकड़वा कर अपने सामने बुला सकते थे; और उनसे यह पूछ सकते थे कि तुम किसके हुक्म से हम पर निगरानी रखते हो? अपने एक सिपाही को हुक्म देने भर की देरी थी; परन्तु अपनी यह इच्छा भागुरायण ने मन ही मन में दाब रखी; और वैसे ही चाणक्य के आश्रम की ओर चले। चलते चलते उनके मन में न जाने क्या विचार आया कि, उन्होंने अपने साथ के आदमियों को वापस जाने की आज्ञा दी। एक भी सिपाही साथ में नहीं रखा। सिपाहियों ने जब उनकी वह आज्ञा सुनी, तब उनको बड़ा आश्चर्य हुआ; परन्तु स्वामी की आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त वे कर ही क्या सकते थे? बेचारे सब के सब चले गये। भागुरायण अकेले ही गंगाकण-

वाही शीतल वायु से अपने संतप्त मस्तक को शान्त करते हुए आर्य चाणक्य की पर्णकुटी में आ पहुँचे।

आर्य चाणक्य वास्तव में आज उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे, पर अपने मन का वह भाव न प्रकट करते हुए उन्होंने भागुरायण से यही कहा :—

"सेनापते, आज आप इधर आवेंगे—इस बात की मुझे बिलकुल ही आशा नहीं थी, क्योंकि आप कल आ ही चुके थे। परन्तु आप आ गये, यह देख कर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ, क्योंकि आपके सत्संग से मुझे बहुत ही प्रसन्नता होती है।"

"और आपके दर्शन तथा सम्भाषण से मुझे भी बड़ी प्रसन्नता होती है। मैं तो आपको अब अपना गुरु समझने लगा हूँ। जो हो, किन्तु, आर्य चाणक्य, आज मैं आपके पास कोई विशेष बात बतलाने और पूछने भी आया हूं। इस लिए जो कुछ मैं पूछूं अथवा बतलाऊं, उसके विषय में आप क्रोध अथवा विषाद न लावें।" भागुरायण ने कहा।

"मुझ को क्रोध और विषाद! सेनापते, दरिद्री ब्राह्मणों के पास लाज, क्रोध और विषाद का क्या काम? ये तीनों तो उनके पास से सदैव ही दूर रहते हैं। इस लिए मेरे पास इनका कहां ठिकाना? जो कुछ पूछना हो, आप निस्सन्देह पूछिये, और जो कुछ बतलाना हो, आप खुशी से बतलाइये। मैं उत्तर देने और सुनने के लिए सर्वथा तैयार हूँ।"

चाणक्य का यह भाषण सुन कर सेनापति कुछ देर के लिए स्तब्ध होगये; और फिर बोलेः—"आपने मुझ से अपना जो वृत्तान्त बतलाया है, उससे क्या वह कुछ भिन्न है? यदि ऐसा हो, तो आप मुझे बतला दें, यही प्रार्थना है, इस बात का उत्तर जब मुझको मिल जायगा, तब मैं आप को जो कुछ बतलाना है, सो

यह सुनकर चाणक्य हँसे; और फिर बोले—"सेनापते, ऐसा जान पड़ता है कि, कल रात को जब आप यहां से गये हैं, तब किसी ने शायद मेरे विषय में आप से कुछ कहा है। इसके बिना ऐसा प्रश्न नहीं हो सकता था। इस लिए जिन्होंने आप से मेरे विषय में कुछ कह कर आपके लिए ऐसा प्रश्न करने की आवश्यकता उत्पन्न कर दी, उन्हीं से यदि आपने मेरे विषय में कुछ और अधिक पूछा होता, तो आज मेरे पास आकर इस विषय में कुछ प्रश्न करने का कारण ही उपस्थित न हुआ होता। जो वृत्तान्त आपको बतलाया, उसके विषय में अब मैं और अधिक क्या कहूं; और जो भिन्न वृत्तान्त किसी ने आपको सुनाया, उसके लिए मैं क्या कहूँ? सच तो यह है कि, हम गरीब ब्राह्मणों का ऐसा वृत्तान्त हो ही क्या सकता है? हाँ, जो कुछ था, सो मैंने आपको बतला ही दिया है। उससे भिन्न किसी ने और कुछ आपको बतलाया हो, तो आप उसको मुझे बतलावें, इससे उसमें जो कुछ सच झूठ अंश होगा, वह मैं आप से प्रकट कर दूंगा। इसके सिवाय, मैं यह जानता हूँ कि, आप से किसने क्या कहा है। इस विषय में मैंने पूरा पूरा अनुमान कर लिया है। सेनापते, नीतिशास्त्र का यह एक सिद्धान्त ही है कि, अपने राज्य में यदि कोई नवीन मनुष्य आ जाय, तो उस पर गुप्तचर नियत करके उसके विषय में सदैव इस बात की जाँच करते रहे कि, वह क्या करता है, कहां जाता है, किससे बात करता है, इत्यादि। इसी नीति के अनुसार अमात्य राक्षस ने मेरे ऊपर गुप्तचर नियत किये होंगे; और इस बात को मैं जानता हूं। राजा चारचक्षु होता है—गुप्तचर लोग उसकी आँखें हैं। और इस समय अमात्य राक्षस राजा के ही स्थान पर हैं; इसलिए उनका चारचक्षु होना एक स्वाभाविक बात है, इसमें कोई

आश्चर्य नहीं! किन्तु मेरे आचरण में कोई छिपाने योग्य बात ही नहीं है। ऐसी दशा में उनको मैं क्यों डरूँ? परन्तु सेनापते, जो सच्चा नीति-शास्त्रज्ञ है, वह केवल अपने चारों पर ही विश्वास नहीं रखता। चार लोग जो ख़बरें लाते हैं, उनका जब तक वह स्वयं अनुभव नहीं कर लेता है, तब तक वह उनकी लाई हुई उन ख़बरों पर विश्वास नहीं करता। इसलिए मेरे विषय में यदि आप से किसी ने कुछ पूछा होगा, तो अमात्य राक्षस ने ही पूछा होगा। क्योंकि मेरी तरह आप पर भी निगहबानी रखनेवाले उनके चार अवश्य होंगे। आप यहाँ आते हैं, यह बात भी उनको मालूम हो गई होगी; और उन्हीं ने आप से मेरे विषय में भी पूछा होगा। कहिये, मैं जो कुछ कहता हूं, वह सच है न? मेरा अनुमान ठीक है न?"

चाणक्य जिस समय उपर्युक्त सब बातें कर रहे थे, भागुरायण बड़े चकित हो रहे थे। उनको इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि, चाणक्य का अनुमान इतना सत्य कैसे निकला। यह तो सम्भव है ही नहीं कि, राक्षस की भाँति इनके भी जासूस हमारे पीछे हों, अथवा जगह जगह इनके जासूस लगे हों—इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि, यह अत्यन्त चतुर और नीति-शास्त्रज्ञ ब्राह्मण है; और इसी कारण इसने अपनी बुद्धि से उपर्युक्त सब बातों का ठीक ठीक अनुमान भी कर लिया होगा। इस प्रकार सोच कर भागुरायण बहुत ही आश्चर्य-चकित दिखाई दिये। इतने में चाणक्य फिर हँसते हँसते उनसे बोले, "अच्छा, आप जो कुछ पूछने वाले थे, सो तो हो गया, अब आप बतलाने वाले क्या हैं, सो कहिये। उसको सुनने के लिए मैं बड़ा उत्सुक हूँ।"

यह बात सुन कर भागुरायण, जो अभी तक आश्चर्य से चकित हो रहे थे, कुछ होश में आये; और बोले, "अच्छा बत-

लाता हूँ। इतना कह कर उन्होंने चाणक्य को पिछले दिन की वे सब बातें बतलाईं, जो चाणक्य की पर्णकुटी से जाने के बाद हुई थीं। उनको सुन कर चाणक्य को बहुत ही क्रोध आया; परन्तु उन्होंने अपना वह क्रोध बाहर बिलकुल प्रकट नहीं होने दिया। हाँ, मन ही मन इतना अवश्य कहा, "अमात्य राक्षस, ठहर जाओ, अब तो हमारा और तुम्हारा युद्ध ही होनेवाला है। देखते हैं, उस युद्ध में कौन जीतता है; और कौन देश से निकाला जाता है।" इतना मन ही मन कहने के बाद फिर उन्होंने प्रकट रूप में भागुरायण से कहा, "सेनापते, आपने जिस प्रकार का वृत्तान्त बतलाया, उसी प्रकार का कुछ वृत्तान्त मुझे भी आप से बतलाना है; परन्तु वह बहुत ही गुप्त रूप से बतलाना है, इस-लिए आइये, हम लोग नदी के उस पार चलें; और वहीं बतलावें।"

परन्तु उस वृत्तान्त को बतलाने और सुनने के लिए अब हम उनको तो यहीं छोड़ दें; और अपने अन्य पात्रों की ओर ध्यान दें।

सत्रहवां परिच्छेद

अमात्य राक्षस।

पिछले परिच्छेदमें हमने जो वृत्तान्त बतलाया, उसके दूसरे दिन की बात है—मध्यान्ह का समय हो चुका है। अमात्य राक्षस अपने महल में—बिलकुल अन्तर्गृह में—अकेले बैठे हुए कुछ सोच रहे हैं। बात यह थी कि, अमात्य राक्षस के मन में जब यह आता कि, इस समय किसी को भी आकर हमें कष्ट न देना चाहिए, तब वे इसी अपने अन्तर्गृह में आकर बैठ जाते थे; और अपने प्रतीहारी को सख़्त ताकीद कर देते थे कि, इस समय हमारे पास किसी को भी मत ले आना, और न किसी के आने की ख़बर पहुँचाना। हाँ, यदि अमुक अमुक चार आ जावें, तो उनका समाचार अन्दर आकर तुम दे सकते हो। बस, प्रतीहारी को इसी प्रकार का हुक्म देकर अमात्यराज आज उस अपने अन्तर्गृह में बैठे हुए कुछ विचार कर रहे थे।

अमात्य राक्षस एक बड़े तेजस्वी और हृष्ट-पुष्ट मनुष्य थे, डीलडौल उनका खूब ऊँचा पूरा था। उनकी सम्पूर्ण चेष्टा और उनके शरीर को देख कर प्रत्येक मनुष्य के मन में यही आता कि, यह कोई बड़ा प्रभावशाली पुरुष है। उनकी आंखें तेज से भरी हुई और सर्वग्राहिणी दिखाई देती थीं। मस्तक उच्च तथा विस्तीर्ण और उर प्रदेश खूब विशाल था। इन सब बातों के अतिरिक्त उनका चरित्र तथा बर्ताव भी बहुत

अच्छा था, इस कारण सब पर उनका काफी दबाव था। अमात्यराज यदि किसी बात के लिए आज्ञा देते, तो उसके बाहर जाने को किसी का भी साहस न होता। परन्तु उनके इस आतंक का प्रभाव सब पर बराबर ही पड़ता था; और इसी कारण उनको जितना लोकप्रिय होना चाहिए था, उतने लोकप्रिय वे नहीं थे। उनकी प्रवृत्ति ऐसी कुछ थी कि, जितना आतंक वे किसी नौकर अथवा कायस्थ (कारकुन) पर रखते थे, उतना ही अपने साथ के अन्यान्य मंत्रियों पर भी रखते थे, और यही कारण था कि, अन्य मंत्रिगण उनको हृदय से उतना नहीं चाहते थे। वे एक राजप्रतिनिधि थे, सच्चे स्वामि-हित-दर्शी थे; न्यायनिष्ठ थे; और साथ ही साथ स्वहित-निरपेक्ष भी थे—अपने स्वार्थ की वे कोई परवा नहीं रखते थे। बस, अपने इन्हीं गुणों के कारण उनका चारों ओर यश छाया हुआ था; और लोगों को वे प्रिय भी थे। इसके सिवाय गुप्तचरों के द्वारा चारों ओर का सब पता रखने में भी वे बड़े सुदक्ष थे, और इस कारण सभी लोग यह समझते रहते कि, हम अमात्य से कोई भी बात छिपा कर नहीं रख सकते; और इस लिए सारी प्रजा सदैव उनसे डरती भी थी। परन्तु जिस तराजू पर वे अन्य सर्वसाधारण लोगों को तौलते थे, उसी तराजू पर बड़े बड़े अधिकारिवर्ग भी उनकी दृष्टि में तौले जाते थे, और इसी कारण मंत्रिमंडल उनसे विशेष सन्तुष्ट न था। वे लोग समझते कि देखो अमात्य का हम पर भी पूरा पूरा विश्वास नहीं; और इसी कारण वे सब बेचारे बड़े उदासीन रहते थे; परन्तु राक्षस को उनकी यह मनोदशा मालूम नहीं होती थी। जो हो, इस समय तो हम को राक्षस के वर्तमान विचारों की ओर ध्यान देना चाहिए।

ऊपर हमने बतलाया ही है कि, राक्षस इस समय बिलकुल

एकान्त में बैठे हुए किसी गूढ़ विचार में निमग्न हो रहे थे। उनके विचार का विषय इस समय राज्य की तात्कालिक दशा थी, और उसमें मुरादेवी, उसका भतीजा और आर्य चाणक्य, यह त्रिकूट विशेष रूप से उनके सामने उपस्थित था। मुरादेवी जिस दिन से बन्धमुक्त की गई, उसी दिन से उसने राजा पर एकदम अपना प्रभाव जमा लिया है—यहां तक कि हम को भी, आवश्यकता पड़ने पर, राजा से मिलने में कठिनाई हो रही है—यह सब कैसे हुआ? इसी बात पर उनको आश्चर्य हो रहा था, उन्होंने अपनी सारी चतुराई को एकत्र कर के उस बात पर विचार किया, पर कुछ लाभ न हुआ, बल्कि उनका आश्चर्य और भी बढ़ने लगा। यहां तक कि, उन्होंने सोचा कि, यदि मुरादेवी के पंजे से राजा न छूट सका, तो न जाने किस समय क्या हो जाय, परन्तु वे इस बात को नहीं सोच सके कि, राजा को मुरादेवी के पंजे से छुड़ाने के लिए प्रयत्न क्या किया जाय—मुरा ने राजा के मन पर जो इतना स्वामित्व सम्पादित कर लिया है, उस स्वामित्व को दूर कर के राजा को फिर पूर्वावस्था पर लाने के लिए क्या प्रयत्न किया जाय। कुछ उनकी समझ में नहीं आया। मुरादेवी क्षण भर भी राजा के पास से नहीं दूर होती, और यदि दूर भी होती है, तो ऐसे मौके पर कि, जिस समय राजा के पास और कोई पहुँच ही नहीं सकता। और यदि ज़रा भी उसको मालूम हुआ कि, इस समय राजा के पास कोई आने वाला है कि, फिर वह वहीं आकर उपस्थित हो जाती है। ऐसी दशा में राक्षस ने यह सोचा कि, हमने जिस तरह अन्य अन्य स्थानों में अपने चार नियत कर रखे हैं, उसी तरह अब हम को मुरादेवी के मन्दिर में भी कोई न कोई चार नियत करना चाहिए—अब ऐसी कोई व्यक्ति ढूंढ़ निकालनी चाहिए कि, जो मुरादेवी के महल में भी रह कर वहां के सब

गुप्त समाचार ला ला कर हमको बतलाया करे। इसके बाद उन्होंने सोचा कि, अब हमको अपने अन्तःपुर की किसी परिचारिका के द्वारा मुरादेवी के मन्दिर की किसी परिचारिका को फोड़ना चाहिए। यह सोच कर राक्षस ने वैसा ही उपक्रम भी किया। यह बात उनको मालूम ही थी कि, मुरादेवी की अत्यन्त प्यारी और उसकी अत्यन्त विश्वासपात्र दासी यदि कोई है, तो वह वृन्दमाला है। इस लिए उसी को यदि इस समय फोड़ कर हम अपने अनुकूल कर लें, तो बड़ा काम हो जायगा। यह सोच कर राक्षस ने एक बार इस बात का प्रयत्न किया कि, वृन्दमाला को अपने यहां बुलवा कर एक बार उससे बातचीत की जाय। वृन्दमाला के समान दासी यदि हमारे पक्ष में आ जायगी, तो बहुत ही अच्छा होगा। उसके द्वारा मुरादेवी की सब बातों का हम को ठीक ठीक पता चलता रहेगा, और ऐसा होने पर फिर हम राजा को बहुत जल्द उसकी पूर्वदशा पर ला सकेंगे। उन्होंने सोचा कि, जहां एक बार वृन्दमाला हम से आ कर मिलेगी कि फिर बस, बात की बात में उसको हम अपने अनुकूल कर लेंगे; क्योंकि वह कोई साधारण जनों से भिन्न व्यक्ति तो है ही नहीं। यह सोच कर उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि, जिससे एक ही दो दिन में यह कार्य सिद्ध हो जाय।

इस कारण मुरादेवी-विषयक अपना विचार तो उन्होंने थोड़ी ही देर बाद अपने ध्यान से हटा दिया, और वे चन्द्रगुप्त के विषय में विचार करने लगे। चन्द्रगुप्त को राक्षस ने जिस दिन से देखा था, उसी दिन से उनकी कुछ विचित्र हालत हो रही थी। जैसे किसी अत्यन्त तेजस्वी, अत्यन्त चंचल और खूब पीले नाग के छौने को देख कर पहले पहल कुछ भय तो मालूम होता है, पर पीछे से थोड़ा सा कौतूहल भी होता है, और

उसकी चपलता देख कर मन मोहित होता है, परन्तु फिर तुरन्त ही यह बात भी मन में आती है कि, इससे हमारे प्राणों को भय है, इस लिए इसको पास न रखना चाहिए, दूर कर देना चाहिए, इसको मार डालना चाहिए; और इस कारण उसको मारने के लिए हम किसी साधन का भी तलाश करने लगने हैं,—बस, अमात्य राक्षस के मन की भी ऐसी ही कुछ दशा चन्द्रगुप्त को देखने से हुई थी। लड़का बहुत ही सुन्दर, तेजस्वी, चतुर, सब कलाओं में पारंगत, और बहुत ही साहसी है—इस बात का उन्हें पूर्ण विश्वास हो चुका था, और अपने इसी विश्वास के अनुसार उनको उसके विषय में अनुभव भी प्राप्त हो चुका था। परन्तु उसकी चेष्टा में ही ऐसी कोई बात थी कि, जिसके कारण राक्षस ने सोचा था कि, इस लड़के का मुरादेवी के सम्बन्ध से पाटलिपुत्र में आना कोई अच्छी बात नहीं हुई—वास्तव में इसको यहां टिकने ही न देना चाहिए; और यदि हम इस को यहां टिकने देंगे, तो न जाने कौन सा संकट किस समय आकर उपस्थित हो जाय। इसके साथ ही साथ राक्षस ने यह भी विचार किया कि, मुरादेवी आज कल राजा की, एक प्रकार से, श्वासोच्छ्वास ही बन रही है। इस लिए यदि राजा को कहीं यह बात मालूम हो गई कि, हम उसके भतीजे के विषय में कुछ अनिष्टचिन्तन कर रहे हैं, तो राजा की भी हम पर अप्रसन्नता होने की सम्भावना है। इस लिए इस लड़के के विषय में हमको जो कुछ करना हो, बहुत ही युक्ति के साथ करना चाहिए। अतएव राक्षस ने सोचा कि, पहले इसी बात का पता क्यों न लगाया जाय कि, मुरादेवी के भाई के कोई पुत्र है भी, या नहीं। यह सोचने के बाद उन्होंने इस बात का विचार किया कि, पहले उपर्युक्त विषय की जांच करने के लिए एकचार हिमाचल प्रान्त में प्रद्युम्नदेव के राज्य में भेजा

जाय—वह गुप्तचर वहां जाकर इस बात का पता लगावे कि प्रद्युम्नदेव के कोई पुत्र है अथवा नहीं। उन्होंने सोचा कि इस काम को आज ही कर डालना ठीक होगा, इस लिए तुरन्त ही उन्होंने अपने प्रतीहारी को भीतर बुलाया। उसके आते ही राक्षस ने उससे कहा, "देखो, प्रतीहारी, तुम हिरण्यगुप्त को बुला लाओ।" प्रतीहारी "जो आज्ञा" कह कर वैसा ही खड़ा रहा। यह देख कर अमात्य ने उससे पूछा, "क्यों? तुम खड़े क्यों हो? हमने जो काम बतलाया, उसके लिए जाते क्यों नहीं?" प्रतीहारी हाथ जोड़ कर बोला, "अमात्यराज, हिमाचल प्रान्त से कोई एक भिल्लदूत अपने राजा के यहां से एक पत्रिका लेकर आया है, और आपके चरणों में एक पत्रिका के देने की प्रतीक्षा कर रहा है।"

यह सुनते ही राक्षस आश्चर्य-चकित हुए, और अपने मन में ही बोले, "भिल्ल? और अपने राजा के यहां से पत्रिका लाया है? इसका क्या अर्थ? हिमाचल प्रान्त का राजा, प्रद्युम्न-देव के अतिरिक्त और कौन हो सकता है; उसी ने शायद पत्रिका भेजी होगी। खैर। जो बात प्रत्यक्ष है, उसके लिये इतना विचार करने की क्या जरूरत? उसको बुलाकर पत्रिका पढ़नी चाहिए, सब मालूम हो जायगा।" इतना मन ही मन कहने के बाद राक्षस फिर उस प्रतीहारी से बोले, "अच्छा, उस भिल्ल को भीतर ले आओ।"

प्रतीहारी बाहर जाकर उस भिल्ल को भीतर ले आया। भिल्ल बहुत ही काला-कलूटा था; और बहुत दूर से चले आने के कारण बिलकुल धूल-धूसरित दिखाई दे रहा था; ऐसा जान पड़ता था कि, जैसे बिलकुल काला मेघ हो; और अस्तमानके समय समुद्र में निमग्न हो जानेवाले सूर्य की धूसर कान्ति की छाया उस पर फैल रही हो! भीतर आते ही उसने राक्षस

के सामने दण्डवत् प्रणाम किया; और फिर उठ कर खड़ा हो गया, तथा उनके सामने एक थैली रख कर हाथ जोड़कर बोला, "महाराज, हमारे महाराज ने कुशलप्रश्नपूर्वक श्रीमान की सेवा में यह पत्रिका भेजी है। कोई उत्तर हो, तो उसे ले जाने के लिए सेवक प्रस्तुत है।" भिल्ल इस प्रकार कह रहा था; और इधर राक्षस उस थैली को उठा कर, इधर उधर देख रहे थे। थैली को ध्यानपूर्वक देखने के बाद फिर उन्होंने उसे खोल कर भीतर से भूर्जपत्र पर लिखी हुई पत्रिका निकाली और उसको पढ़ा। पत्रिका इस प्रकार थी:—

"स्वस्ति। श्रीमत्सकलसामन्तमुकुटमणिरंजित चरणनखर-महाराजधनानन्दामात्यवर राक्षसवर्म के प्रति। हिमाचलान्तर्गत निषादखासप्राच्याधिपति महाराज प्रद्युम्नदेवकृत अनेक कुशल-प्रश्न। उपरि लेखनकारण। सांप्रत महाराज प्रद्युम्नदेव की भगिनी श्रीमन्महादेवी मुरा की विज्ञप्ति से महाराज ने अपने पुत्र युवराज चन्द्रगुप्त को पाटलिपुत्र में चारदिन रहने के लिए और वहां की राज्यव्यवस्था से परिचय पाने के लिए भेजा है। युवराज महाशय जब यहां से गये थे, उसी समय श्रीमान् को भी पत्रिका देने का विचार था। पर लिखी हुई पत्रिका किसी कारण दृग्भ्रम होने से वैसी ही रह गई। इस लिए अब स्मरण आने पर श्रीमान् की सेवा में एक बहुत ही शीघ्रगामी दूत भेज कर उसके द्वारा यह पत्रिका भेजी जाती है। हमारी भगिनी मुरादेवी पर अब महाराज की फिर पूर्ववत् पूर्ण कृपा हो गई है, यह जान कर हमको तथा माता जी को भी अत्यन्त आनन्द हुआ है। इसके सिवाय यह भी सुना गया है कि, आपका भी अब हमारी भगिनी पर कोई रोष अथवा सन्देह नहीं रहा है, इससे हम लोगों को और भी सविशेष प्रसन्नता हुई है; और इसी लिए भगिनी के आमंत्रण से हमने अपने यहां

के एक ऋषितुल्य पंडित के साथ युवराज को भेज दिया है। उद्देश्य यह है कि, युवराज को देशाटन का लाभ हो; और आपके समान चतुर तथा राजनीतिज्ञ अमात्यवर का दर्शन हो, और आपके सदृश सुदक्ष पुरुष के द्वारा जो राज्यप्रबन्ध उधर हो रहा है, उसका भी कुछ कुछ ज्ञान युवराज को हो जाय। बस, इसी हेतु से उनको आपके पास भेजा है। युवराज महाशय जब तक वहां पर रहेंगे, आपके निरीक्षण में रहेंगे—आप सब प्रकार उनकी देखभाल रखेंगे; और इस कारण हम बिलकुल निश्चिन्त हैं। आपके समान अमात्य सभी राजाओं को कहां से मिल सकते हैं? अतएव आपके समान पुरुष के दर्शन, और आप के समान पुरुष से शिक्षण भी सर्वत्र नहीं मिल सकता। सो कुमार चन्द्रगुप्त को प्राप्त होगा, और इसी विचार से उनको आपकी सेवा में भेजा गया है। उनके साथ जो ब्राह्मण भेजा गया है, उसका नाम आर्य चाणक्य है—वह अत्यन्त निरपेक्ष और निस्पृह है। अपनी तरफ से वह कहीं नहीं जाता। इस लिए चन्द्रगुप्त को लेकर वह आपके पास नहीं आवेगा। अतएव यह पत्रिका आपकी सेवा में भेजी है। चन्द्रगुप्त आप ही का है, और यही समझ कर आप उस पर कृपादृष्टि रखें। इति शम्। लेखनमर्यादा।"

यह पत्रिका पढ़कर अमात्य राक्षस अत्यन्त चकित हुए; उनको स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि, प्रद्युम्नदेव उनको इस प्रकार का आदरपूर्ण पत्र लिखेंगे। उन्होंने अभी क्षण ही भर पहले सोचा था कि, चन्द्रगुप्त का ठीक ठीक पता लगाने के लिए हिमाचल प्रान्त में एक जासूस भेजा जाय; पर अब जासूस भेजने की आवश्यकता ही क्या रह गई? यह धूल-धूसरित भिक्षु ही जब उनके पास से पत्रिका लेकर हमारे पास आ उपस्थित हुआ है, तब अब इस विषय में विशेष शंका ही क्या रह गई?

चन्द्रगुप्त और मुरादेवी के रूप में जो समता दृष्टिगोचर हो रही है, सो भी ठीक है। अब इस विषय में कोई आश्चर्य का कारण नहीं रहा। अस्तु, प्रद्युम्नदेव हम को इतने आदर के साथ लिख रहे हैं; और तिस पर यदि हम उनका कुछ भी ख्याल न करें, तो यह उचित नहीं होगा। कुछ भी हो; आखिर वे भी एक राजा हैं, इतनी नम्रता के साथ हमको पत्र लिखा है, इस लिए हम को भी अब उनके लिखने का ख्याल करना चाहिये; और उनके पुत्र को अच्छी तरह रखना चाहिए। अब तक जो शंका हमारे मन में आती थी, वह भी अब दूर हो गई। इस लिए अब इस विषय में विचार करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रही। यह सोच कर उन्हों ने उस पत्र का उत्तर बहुत ही नम्रता और विनयपूर्ण शब्दों में लिखा: और अपने नौकरों को हुक्म दिया कि, अब इस भिल्ल को भोजन इत्यादि करा कर बिदा कर दो। भिल्ल उनका पत्र लेकर वहां से चला गया।

कुछ ही देर बाद हिरण्यगुप्त उनके पास आकर उपस्थित हुआ। हिरण्यगुप्त अमात्य राक्षस के अत्यन्त विश्वासपात्र सेवकों में से था। जितने चार राक्षस की आज्ञा में भेद लेने का कार्य करते थे, उन सब का ठीकठाक परिचय केवल हिरण्य-गुप्त को ही था। अर्थात् राक्षस के चार-विभाग का मुखिया यदि उसको कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। अस्तु: हिरण्यगुप्त के भीतर आते ही, दरवाजा बन्द कर लेने के लिए आज्ञा देकर, अमात्य राक्षस उससे बोले, "हिरण्यगुप्त जिस एक विशेष कार्य के लिए इस समय तुम को बुलाया था, वह कार्य अब होगया; इसलिए उस विषय में अब तुम से कुछ नहीं कहना है; परन्तु वृन्दमाला के विषय में तुमने क्या प्रबन्ध किया?"

"स्वामिन्" हिरण्यगुप्त उत्तर देता है, "वृन्दमाला से मैं

स्वयं मिला; और उससे कहा कि, अमात्य ने तुझ को बुलाया है; पर यह सुनते ही वह बहुत डरी हुई सी दिखाई दी, फिर उसमें भी जब हम ने यह कहा कि, अमात्यराज तुझ से बिलकुल गुप्तरूप से मिलना चाहते हैं, तब तो वह बहुत ही घबड़ाई। परन्तु जब मैंने बहुत समझा-बुझा कर उससे यह बतलाया कि, आमात्यराज ने तुझ को एक ऐसे ही उद्देश्य से बुलाया है कि, जिससे तेरा स्वयं और तेरी स्वामिनी का कल्याण ही होगा, तब उसने आज आने के लिए स्वीकार किया है।" हिरण्यगुप्त का कथन सुनते ही राक्षस ने असन्तोष सा प्रकट करते हुए कहा, "हिरण्यगुप्त, तुम इतने वर्ष से हमारे यहां काम कर रहे हो; पर अभी तक, ऐसा जान पड़ता है, कि तुम को काम करने का ठीक ठीक तरीका मालूम नहीं हुआ। तुब बड़े ही पागल हो, तुम को पहले अपनी पत्नी के द्वारा वृन्दमाला से यहां आने के लिये बातचीत करवाना चाहिए था; पर ऐसा न करते हुए तुम ने और का और ही किया। क्योंकि अब यदि मुरादेवी को यह मालूम हो जायगा कि, हिरण्यगुप्त वृन्दमाला से मिला था, तो फिर उसको सन्देह हो जायगा; और वृन्दमाला पर फिर वह आगे विश्वास भी नहीं करेगी। और यदि मुरादेवी का वृन्दमाला पर से विश्वास ही उठ जायगा, तो फिर हम वृन्दमाला से क्या लाभ उठा सकेंगे? अस्तु, वृन्दमाला यदि आज यहां आ गई, तब तो लाचारी ही है, अन्यथा तुम्हारी पत्नी को उसके पास जाकर उसको तुम्हारी स्वामिनी (राक्षसपत्नी) के पास लाना चाहिये; और जब इस निमित्त से वह यहां आ जायगी, तब फिर मैं उससे मिल लूंगा। ऐसा करने से फिर इस बात के सन्देह का कोई कारण ही न रहेगा कि, वह हमारे यहां क्यों आई, कैसे आई, इत्यादि। अस्तु। हिरण्यगुप्त, तुम आगे से इस बात का ख़याल रखो। अब ऐसा

कभी मत करना। ऐसी बातों में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है।" हिरण्यगुप्त चुपके सुन रहा था। राक्षस का कथन समाप्त होने पर वह बोला, "मुझे ऐसा सूझा ही नहीं, आज शायद वह अवश्य यहां आवेगी। न आई, तो फिर आपकी आज्ञा के अनुसार ही सब प्रबन्ध करूंगा।" परन्तु हिरण्यगुप्त अभी यह कह ही रहा था कि, इतने में प्रतीहारी ने भीतर आकर प्रार्थना की कि, "स्वामिन्, कोई एक दासी आकर बाहर खड़ी है; और कह रही है कि आपके बुलाने से आई है। मैंने उससे पूछा कि, तू कौन है, कहां से आई? पर वह इतना ही कहती है कि, अमात्यराज को सब मालूम है, मैं उन्हीं के बुलाने से आई हूं। इसके सिवा और कुछ नहीं बतलाती। फिर जैसी स्वामी की आज्ञा हो!"

यह सुनकर राक्षस बोले, "देखा! हिरण्यगुप्त, शायद वही होगी, पर बड़ी चतुर दिखाई देती है! अन्यथा तुरन्त ही बतला देती कि, मैं अमुक की दासी हूँ, और अमुक मेरा नाम है। अच्छा, उससे कह दो कि, भीतर चली आवे। प्रतीहारी, तुम उसको भीतर लाकर पहुँचा जाओ; और फिर जब तक वह लौट न जावे, इधर मत आओ।"

प्रतीहारी "जो आज्ञा स्वामिन्" कह कर वहां से चला गया। शीघ्र ही वह दासी भीतर आ उपस्थित हुई। अमात्य राक्षस ने उसको बिलकुल अभ्युत्थापन देकर कहा, "आओ वृन्दमालाबाई, तुम कुशल से तो हो?" दासी कुछ हँसी और बोली, "अमात्यराज, मुझ क्षुद्र दासी के लिए इतने आदर-सत्कार की क्या आवश्यकता? जो आज्ञा हो, दासी उसके लिए तैयार है!"

"वृन्दमाला बाई, दासी ही क्यों न हो—उसको यदि अपने काम के लिए बुलाया है, तो उसका समुचित आदरसत्कार

करना हमारा कर्तव्य है । अस्तु । कहो, तुम्हारी स्वामिनी तो कुशल से हैं ? चाहे तुम हो, और चाहे हम हों, अपने स्वामी और स्वामिनी के ही कुशल से हम सभी का कुशल है—अन्यथा हम लोगों के कुशल की क्या बात है ? कहो, ठीक है न ? यही बात तो है ? " यह कह कर अमात्यराज ने हँस कर उस दासी की ओर देखा ।

दासी कुछ मुसकाती और लजाती हुई कहती है, " यह कैसा अमात्यराज ? आपकी और हमारी कौन सी समता ! हम तो एक क्षुद्र दासी हैं, अमात्यराज यदि आज्ञा करें तो......"

" वृन्दमालाबाई, आज्ञा कैसी ! महाराज आजकल तुम्हारी स्वामिनी के ही मंदिर में रहते हैं, उनका कुशलसमाचार भी हम को ठीक ठीक नहीं मिलता । बस, इसी लिए तुम को यहां बुलाया था कि, जो कोई विशेष समाचार होगा, तुम से मालूम हो जायगा । इसके सिवाय, यह भी सुना कि, तुम्हारी अपनी स्वामिनी पर बड़ी भक्ति है, और स्वामिभक्त सेवक हमको कितने प्रिय हैं, सो तुमको मालूम ही है, इसी लिए सोचा कि, तुम्हारे इस सद्गुण पर तुम को कुछ पारितोषिक भी देवें । तुम बहुत चतुर हो !"

"यह क्या कहते हैं अमात्यराज ! हम तो आप लोगों की दासी हैं, आप ही के दिये हुए अन्नवस्त्र से पलती हैं । हमारी स्वामिभक्ति की ऐसी कौन सी बात है ? और मुझ गरीब दासी के लिए पारितोषिक की भी क्या आवश्यकता ? "

"हम अपनी ही इच्छा से जब दे रहे हैं, तब तुमको लेने में क्या हानि है ? ले लो ।" कह कर उन्होंने अपने आसन के नीचे से दो सुवर्ण-कंकण निकाले, और उसके हाथ पर रख दिये । उसने भी कुछ हां हूँ करते हुए उनको स्वीकार कर लिया ।

इसके बाद अमात्य राक्षस उससे बोले, "वृन्दमालाबाई,

तुम बिलकुल संकोच मत करो। हम इतना ही चाहते हैं कि, तुम्हारे यहाँ का सब समाचार हमको समय समय पर मिलता रहे। तुमको स्वयं यहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह हिरण्यगुप्त तुम्हारे यहां आता रहेगा। बस, इसी से तुम वहां का जो कोई विशेष समाचार हुआ करे, बतला दिया करो। हमको मालूम हो जाया करेगा। हाँ, जब स्वयं तुम्हारे ही आने की आवश्यकता हमको मालूम हुआ करेगी; तब हम तुमको सन्देशा भेज दिया करेंगे। अथवा हिरण्यगुप्त के द्वारा तुम ही हमको सन्देशा भेज दिया करो कि, हम अमुक समय पर आयेंगी। इससे हम तुमको भीतर बुलवा लिया करेंगे। तुम्हारा सिर्फ इतना ही काम होगा कि, प्रति दिन जो कुछ वहाँ हुआ करे, हमारे पास पहुँचाती रहो। बस, इसके सिवाय और कुछ नहीं। फिर उसमें चाहे कुछ महत्व का हो, चाहे न हो............"

"मैं बतलाती रहूँगी, मुझे इससे क्या हानि? मैं प्रति दिन का सब वृत्तान्त इनसे बतलाती रहूँगी, और जब श्रीमान् बुलाया करेंगे; मैं हाजिर हो जाया करूंगी। मुझ को दासी को क्या? जैसी आप की आज्ञा होगी, वैसा ही करूंगी।"

"किन्तु वृन्दमालाबाई, यह बात किसी को मालूम न होनी चाहिए कि, मैं तुमको इस प्रकार बुलाकर कुछ पूछता रहता हूँ, अथवा तुम्हारे पास प्रति दिन हमारा कोई आदमी जा कर सब हाल ले आता है।"

"ठीक है; नहीं मालूम होने पावेगा। किन्तु श्रीमान् जी, मैं आप से कुछ कहने वाली थी, पर अभी तक अवसर ही नहीं मिला। आप के मुख से वृन्दमाला का शब्द सुन कर मैं कुछ कहना चाहती हूँ—जीभ पर बात आती है—पर फिर आप की बातों में कहने नहीं पाती। वास्तव में मैं वृन्दमाला नहीं हूँ। हां, वृन्द-

माला के साथ ही अपनी स्वामिनी की सेवा करनेवाली, वृन्द-माला की प्राणप्यारी सखी हूँ। वृन्दमाला अपनी स्वामिनी के पास से एक क्षण भर के लिए भी दूर नहीं हो सकती: इसी लिए उसने मुझ से कहा, 'सखे सुमतिके, अमात्यराज के यहां से इस प्रकार मेरे यहाँ बुलावा आया है—मैं जा नहीं सकती। किन्तु तू और मैं कोई दो नहीं हैं, इस लिए मेरी जगह तू ही चली जा: और अमात्यराज से कह कि, इस कारण से मेरा आना नहीं हुआ" अतएव मुझ को (सुमतिका को) भेज दिया है। वह और मैं एक ही हूँ। इसलिए जो आज्ञा मुझे देनी हो, इसी से कह दी जाय, मुझे मालूम हो जायगी,— मैं आते ही अमात्य के चरणों में यह कहने वाली थी, पर कहने को मौका ही न मिला, मैं क्या करूँ? इसलिए अब श्रीमान् से प्रकट किया।"

अमात्य यह सुन कर बहुत ही चमत्कृत हुए; और हिरण्यगुप्त की ओर कुछ चमत्कृत दृष्टि से देखा भी, पर विशेष कुछ न कहते हुए उस दासी से कहा, "अच्छा सुमतिके, कोई हानि नहीं। तू और वह, दोनों जब एक ही हैं, तब क्या हर्ज है? वह तेरी सखी है, अतएव उसने यदि तुझको ही भेज दिया, तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं। हमारा काम होना चाहिए—चाहे तू कर, और चाहे वह करे—इसमें हमे कोई आपत्ति नहीं।"

"हाँ, हाँ,—करूंगी, इसमें क्या सन्देह? अच्छा, अब आज्ञा हो।"

अमात्य ने उसको आज्ञा दी; परन्तु वह वहाँ से चल कर मुरादेवी के मन्दिर की ओर न जाते हुए गंगा तट की ओर गई।

अठारहवाँ परिच्छेद

अपराधी कौन ?

मात्य ने जब देखा कि हमको दोनों कार्यों में इच्छानुसार ही सफलता प्राप्त हुई, तब उनको बहुत सन्तोष हुआ । चन्द्रगुप्त के विषय में हमको जो सन्देह था, वह भी दूर हो गया, और मुरादेवी के अन्तःपुर में अभी तक हमारा कोई चार नहीं था, वहां का हमको कुछ हाल ही नहीं मालूम होता था कि, क्या हो रहा है, और क्या नहीं हो रहा—सो सब अब ठीक ठीक मालूम होते रहने के लिए एक अच्छा साधन मिल गया । मुरादेवी के समीप रात दिन रहनेवाली दासी ही अब हमारे बिलकुल अनुकूल हो गई—अब और विशेष क्या चाहिए ? इसके सिवाय चन्द्रगुप्त के पिता ने हमको नम्रतापूर्वक उसकी देख-भाल रखने के लिए लिख ही दिया है; इसलिए अब इस निमित्त से चन्द्रगुप्त पर भी हम अच्छी निगरानी रख सकेंगे । अब सब बातें बिलकुल ठीक होंगी । इस प्रकार राक्षस अपने मन में विचार कर रहे थे कि, इतने में उनके चोपदार ने उनसे आकर कहा कि, "स्वमिन्, बाहर एक राजपुत्र आया हुआ है, और उसका प्रतीहारी कहता है कि, 'किरातराज प्रद्युम्नराय के पुत्र कुमार चन्द्रगुप्त अमात्य से मिलने आये हैं, इसलिए अमात्य को खबर

कर दो'। तदनुसार मैं आया हूं। यह सुनते ही अमात्य जल्दी जल्दी से उठे, और चन्द्रगुप्त के स्वागत को आगे बढ़ कर, उसको उच्चस्थान में लाकर बैठाया। इसके बाद कुशलप्रश्न करके पूछा कि, आज इतने दिन बाद इधर कैसे आना हुआ? कुमार चन्द्रगुप्त ने कहा, "अमात्यराज, तात प्रद्युम्नदेव की कल ही एक पत्रिका मुझे मिली है, जिसमें उन्होंने मुझको यह आज्ञा दी है कि मैं आप की सेवा में आकर उपस्थित होऊँ और आप की ही अनुमति से यहाँ रहूँ। इसी लिए आज आया हूँ।" यह सुनते ही अमात्यराज भी कुछ सन्तुष्ट होकर कहते हैं, "कुमार, प्रद्युम्नदेव का आज्ञापत्र मेरे पास भी आया है। आप जब तक यहाँ रहें, मेरे योग्य जो सेवा हो, अवश्य मुझसे प्रकट करें, मैं सब प्रकार से आप के लिए प्रस्तुत हूँ। प्रद्युम्नदेव के यहां से पत्र आने की प्रतीक्षा ही आप ने क्यों की? आप पहले ही मुझे आज्ञा कर सकते थे, मैं सब प्रकार से तैयार था। आप के यहां सब कुशल तो है?"

कुमार चन्द्रगुप्त ने कहा, "हां, पिताजी के पत्र में सब का कुशल लिखा है।" इतना कह कर थोड़ी देर के बाद चन्द्रगुप्त वहां से राक्षस की आज्ञा लेकर चले गये। राक्षस मन ही मन बड़े सन्तुष्ट हुए।

परन्तु चन्द्रगुप्त को देखने से फिर भी उनके मन पर कुछ बिलक्षण ही प्रभाव हुआ। मुरादेवी और कुमार के चेहरे की विलक्षण समता देख कर वे बड़े अचम्भे में पड़े; परन्तु फिर सोचा कि, प्रद्युम्नराय मुरादेवी के सगे भाई हैं, ऐसी दशा में यदि मुरादेवी और उसके भतीजे की सूरत में इतनी समता है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? लड़का पितृमुखी होगा। यह सोच कर फिर उन्होंने अपने मन का एक बार समाधान किया।

इस प्रकार उस दिन सभी बातें राक्षस के मन के योग्य हो

हुईं, और उनके कुछ संशय दूर हुए, तथा वे बिलकुल निश्चिन्त होगये। अब उनको सिर्फ एक चिन्ता रह गई; और वह यह कि, राजा धनानन्द जो राजकाज में बिलकुल मन नहीं लगा रहा है, यह बात कुछ अच्छी नहीं है। कौनसा उपाय किया जाय कि जिस से उसका मन मुरादेवी की ओर से हट कर राजकाज में लगने लगे? जब तक ऐसा न किया जायगा, काम नहीं चल सकता; और इधर कुछ दिनों से हमारा उसके पास तक जाना भी नहीं हो सकता। बड़ी कठिनाई है। परन्तु हां, अब मुरा की दासी ही जब हम में आ मिली है; और हमारी गुप्तचर बन गई है, तब अवश्य ही अब कोई न कोई युक्ति निकलेगी; और राजा का चित्त भी राजकाज की ओर खींचा जा सकेगा, सिर्फ एक बार राजा से भेट हो जाने से ही यह काम हो जायगा। इस लिए अब इस विषय में भी कोई विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं। यह कह कर राक्षस वहां से उठे; और अपने अन्य कार्यों के प्रबन्ध में लगे।

हिरण्यगुप्त उनकी आज्ञा के अनुसार प्रतिदिन सुमतिका से मिलने जाया करता था। सुमतिका भी उससे मनमाना हाल बतला दिया करती थी। हिरण्यगुप्त उससे जो कुछ पूछता, वह तो सुमतिका बतला ही देती। उसके सिवाय और भी, जो कुछ उसके मन में आता, सो भी बतला दिया करती थी। इधर हिरण्यगुप्त वह सब वृत्तान्त राक्षस के पास आकर बतलाया करता था। उस सब वृत्तान्त में मुरादेवी के विरुद्ध बहुत सी बातें रहती थीं। एक दिन तो सुमतिका ने अमात्यवर को यह सन्देश भेजा कि, मैं आप से स्वयं आकर मिलना चाहती हूँ। तदनुसार नियत समय पर सुमतिका अमात्य के घर पहुँची, और एकान्त में जाकर उनसे यह बतलाया कि मुरादेवी कोई न कोई बहुत बड़ा कृष्णकृत्य करना चाहती है, पर वह कृष्णकृत्य

कौन सा है, सो वह नहीं बतला सकी। हां, इतना अवश्य कहा कि, अब मैं विशेष दृष्टि रखूंगी; और जो कुछ नवीन बात होगी, तुरन्त ही आकर बतलाऊंगी। इसके सिवाय अमात्य से उसने यह भी प्रार्थना की कि, इस समय मैं ने जो यह बात आपको बतलाई, इसके विषय में आप और किसी से चर्चा न करें। सुमतिका ने यह नहीं बतलाया कि, मुरादेवी कौन सा भयंकर कार्य करना चाहती है; क्योंकि इस विषय में सिर्फ उसने इतना ही कहा कि, अभी वह भयंकर कार्य मुझे ठीक ठीक मालूम नहीं हुआ है। हां, उसने अपना संशय भर अमात्य से प्रकट कर दिया। अमात्य ने उससे बहुत कुछ पूछा, पर उसने सिर्फ इतना ही कहा कि, मैं अभी निश्चितरूप से कुछ भी नहीं बतला सकती कि, क्या बात होगी; परन्तु हां, पता लगते ही मैं तुरन्त आप से आकर बतलाऊंगी, आप बिलकुल बेफिकर रहिये। इस पर राक्षस ने अन्त में यही सोचा कि, अब इसको विशेष तंग नहीं करना चाहिए—इसकी मर्जी के अनुसार ही इससे काम लेना चाहिए; और यही सोचकर उस समय उन्होंने उसको जाने दिया। सच तो यह है कि, यदि राक्षस के अन्य किसी गुप्तचर ने आकर इस प्रकार गोलमाल बात बतलाई होती, और अपने संशय का ठीक ठीक कारण न प्रकट किया होता, तो राक्षस ने उसे तत्काल ही दण्ड दिया होता। पर सुमतिका से अभी उनको बहुत सा काम लेना था; और उसको दण्ड देना उनके हाथ में भी नहीं था। इस लिए ऐसी दशा में उसको दण्ड देने की बात तो एक ओर रही, उससे नाराज होना भी अमात्य को अभीष्ट नहीं था। इस लिए उन्होंने उस समय सुमतिका को शान्ति ही के साथ जाने दिया। परन्तु हां, हिरण्य-गुप्त को अवश्य ही ताकीद कर दी कि, तू इस पर पूरी पूरी नज़र रख; और प्रति दिन नियमित रूप से इससे मिल कर सब

हाल मुझसे बतला जाया कर। सुमतिका के चले जाने पर राक्षस बड़ी चिन्ता में पड़े, सो बतलाने की आवश्यकता ही नहीं।

मुरादेवी ऐसा भयंकर कार्य कौन सा करने वाली है? क्या वह किसी को विष देने का विचार तो नहीं कर रही है? और किसको विष देगी—स्वयं राजा धनानन्द को ही तो विष नहीं देनेवाली है? एकदम यही संशय राक्षस के मन में आया; और इस संशय के आते ही उनका मन विशेष चिन्तामय हो गया। अच्छा, यदि हमारा यह सन्देह सत्य है—राक्षस ने सोचा कि और मुरादेवी इसके सिवाय कर ही क्या सकती है—तो इस भयंकर कृत्य को टालने के लिए फिर हमको उपाय क्या करना चाहिए? कुछ भी राक्षस स्थिर नहीं कर सके। हां, एक उपाय अवश्य उनके ध्यान में आया; और वह यही था कि, हम स्वयं राजा से मिलने का यत्न करें; और उससे यह सब समाचार कह कर समय पर ही उसको सावधान कर दें। परन्तु मिलने का उपाय क्या किया जाय? हां, यह कहला भेजें कि, कोई महत्व-पूर्ण राजकाज आन पड़ा है; और इसी लिए हम महाराज से मिलना चाहते हैं। बस, इसी सन्देशे से महाराज तक हमारी खबर पहुँच जायगी; और हम उनसे मिल कर उनको सचेत कर सकेंगे। अन्यथा न जाने राजा पर कौन सा संकट आ जाय। पर महत्व का राजकाज कौन सा बतलावें कि, जिससे महाराज तुरन्त ही हमको मिलने के लिए बुलावें? यह तो हमको मालूम ही हो चुका है कि, अब महाराज के प्राणों पर संकट आनेवाला है, इस लिए ऐसी दशा में उनको सावधान कर देना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है; और यदि हमारे सावधान करने पर भी उनको कुछ ख़याल न हो, तो भी किसी न किसी प्रकार से उनको ऐसे संकट से बचाना हमारा कर्त्तव्य है। यह सोच कर के अमात्य

ने अनेक युक्तियों पर अपने मन में विचार किया; परन्तु कोई भी युक्ति उनको रामबाण के तुल्य नहीं जान पड़ी। क्योंकि राक्षस चाहे जितना महत्वपूर्ण कोई राजकाज महाराज के पास कहला भेजते, उनके यहां से सदैव यही उत्तर आता रहता था कि, तुम स्वयं ही इस कार्य को देख लो, तुमको पूरा अधिकार है। इस लिए इस समय राक्षस को सब से उत्तम और अमोघ युक्ति एक ही सुझाई दी; और वह यह थी कि, राजा के पास एक ऐसा सन्देशा भेजा जाय कि, जासूसों ने हमको एक ऐसा समाचार लाकर दिया है कि, जिससे मालूम होता है कि, कोई शत्रु अपने राज्य पर चढ़ाई करना चाहता है। अब ऐसी दशा में क्या किया जाय? इसी विषय में प्रत्यक्ष महाराज से मिलकर हम उनकी सम्मति लेना चाहते हैं। सम्भव है कि, इस सन्देशे से राजा कुछ जागृत हो जाय; और हमसे मिलना भी स्वीकार कर ले; अन्यथा और कोई उपाय नहीं हो सकता! अच्छा, यह युक्ति तो ठीक जान पड़ती है; पर इसको किया कैसे जाय? किस प्रकार से, किसके द्वारा सन्देशा भेजा जाय? अथवा यदि कोई पत्र लिख कर भेजें, तो किसके हाथ से भेजें? हमारे नवीन गुप्तचर के अतिरिक्त और यह काम किसी से हो भी नहीं सकता। यह सोच कर अमात्यराज ने हिरण्यगुप्त के द्वारा सुमतिका को बुलवाने का प्रबन्ध किया। सुमतिका नियत समय पर वहां आपहुँची, तब राक्षस ने उससे कहा, "अब एक बड़े महत्व का कार्य तुझ को करना है; उसको यदि तू ठीक ठीक करेगी, तो तुझको बहुत ही मूल्यवान् पारितोषिक दिया जायगा।"

"आप जो आज्ञा देंगे, मैं सब कुछ करने को तैयार हूं। मुझे पारितोषिक इत्यादि की भी कोई आवश्यकता नहीं है। आपके समान स्वामिभक्त अमात्यवर की आज्ञा को शिरोधार्य करके उसके पालन करने से जो मुझे सन्तोष होगा, वही मेरा सब से

बड़ा पारितोषिक है।" इस प्रकार अत्यन्त युक्तिपूर्ण और चातुर्य-पूर्ण उत्तर सुन कर राक्षस बहुत ही प्रसन्न हुए। किन्तु फिर भी उन्होंने सुमतिका को एक बड़े भारी पारितोषिक की आशा दिखला कर कहा, "काम कोई विशेष नहीं है। यह एक पत्र अत्यन्त गुप्तरूप से—किसी को भी न मालूम होने देते हुए—स्वयं मुरादेवी को भी न मालूम होने देते हुए—महाराज के हाथ में जाकर देना है। यह काम यदि तू ने मेरा कर दिया; और महाराज ने इस पत्र को पढ़ कर मुझे मिलने के लिए बुलाया, तो फिर बस तुझे तुरन्त ही पारितोषिक मिल जायगा। इसमें ज़रा भी फ़र्क न पड़ेगा। काम भी कुछ बहुत कठिन नहीं है। तू सहज ही में कर सकती है......"

"अमात्यराज, मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि, आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है। इस लिए उसका पालन करने के लिए मैं अपने प्राण तक देने को तैयार हूँ। परन्तु यह कार्य, जो आप मुझे बतला रहे हैं, उतना सहज नहीं है कि, जितना आप समझते हैं। इस बात को आप खूब समझ लें। मुरादेवी महाराज के पास से—एक घड़ी भर तो क्या—पल भर के लिए भी दूर नहीं होती। और यदि हम कहें कि, उससे छिप कर हम महाराज से कोई बात कर लें, तो यह कदापि सम्भव नहीं। एक तो ऐसा कोई समय ही नहीं कि, जब मुरादेवी महाराज के पास न रहे; और यदि ऐसा कोई समय आता भी है, तो उसकी अन्य दासियां उस समय भी महाराज के पास उपस्थित ही रहती हैं। अच्छा, इतने पर भी यदि किसी ने कोई मौका पाकर महाराज से कोई बात कही भी, तो महाराज स्वयं ही, मुरादेवी के आने पर, उससे वह बात तुरन्त ही बतला, देते हैं! मैं आप से यह सब इस लिए बतलाती हूँ कि, आप इन कार्यों को जितना सहज समझते हैं, उतने सहज ये कदापि नहीं हैं। हां,

प्रयत्न करके देखना हमारा काम है; और उसमें सिद्धि प्राप्त होना उस कैलासनाथ के हाथ है।"

इतना कह कर सुमतिका चुप हो गई। अमात्य राक्षस ने इस पर उससे इतना ही कहा कि, "तू चाहे जो कर, यह पत्रिका महाराज के हाथ में पहुँचा दे। फिर आगे जो कुछ होगा, मैं देख लूंगा।" इतना कह कर उन्होंने उसे विदा किया।

उस पत्रिका को लेकर सुमतिका राक्षस के महल से निकली; परन्तु वहां से वह सीधे मुरादेवी के महल की ही ओर नहीं गई। और कहीं गई; वहां थोड़ी देर बैठी; और फिर वहां से उठ कर मुरादेवी के मन्दिर की ओर गई। मार्ग में उसे हिरण्यगुप्त मिला। हिरण्यगुप्त ने उससे स्वाभाविक ही पूछा कि, अमात्य ने जो पत्रिका तुझ को दी, उसको लेकर तू अपनी स्वामिनी के मन्दिर की ओर न जाकर अन्य किस जगह गई थी ? इस पर सुमतिका ने हँसते हँसते उत्तर दिया कि, "हिरण्यगुप्त, तुम अपने को अमात्य का मुख्य गुप्तचर बतलाते हो; और फिर मुझ से ऐसा प्रश्न करते हो; बड़े आश्चर्य की बात है! अजी, अमात्य के घर से निकल कर यदि एकदम मैं मुरादेवी के रंगमहल को जाऊंगी, तो किसी को भी सहज ही में यह शंका हो सकती है कि अमात्य के यहां ही मेरा कोई गुप्त कार्य था और उस कार्य को करके मैं छिप कर वहां जा रही हूँ; पर यदि अमात्य के घर से चुपके से निकल कर सीधे वहां नहीं जाऊंगी; बल्कि एक दो जगह और बैठती-उठती हुई जाऊंगी—कैलासनाथ के मन्दिर में ही चला जाऊंगी—तो लोग यही समझेंगे कि, होगा कोई काम—घूमती होगी कहीं इधर उधर—फिर उनको कोई विशेष शंका नहीं होगी कि, मैं अमात्य के घर से ही कोई ख़बर लेकर जा रही हूँ। देखो—मैं कहां जाती हूँ, क्या करती हूँ, सो तुम

सब देखते ही रहते हो ; पर यह बात मैं नहीं चाहती हूँ । यदि तुम ऐसा करोगे, तो मैं फिर कभी तुम्हारे यहां नहीं आऊंगी, मुझे गरज नहीं । अमात्य पर मेरी बड़ी भक्ति है, उनका मैं बहुत आदर करती हूँ, और मुझे यह मालूम है कि, वे जो कुछ करेंगे, महाराज और युवराज के कल्याण के लिए ही करेंगे; और इसी लिए मैंने उनकी जासूसी स्वीकार की है, अन्यथा मुझे कौन सी गरज पड़ी थी ? कोई भी काम हो, विश्वास से हुआ करता है; और तुम्हारा यदि मुझ पर विश्वास नहीं है, तो लो यह अपनी पत्रिका—और अमात्य के पास ले जाकर दे दो ।" यह कह कर उसने वह पत्रिका निकाल कर हिरण्यगुप्त के सामने रख दी । इस समय उसने ऐसा कुछ क्रोध का आविर्भाव दिखलाया कि, हिरण्यगुप्त बेचारा बहुत ही चकराया, और फिर उसने बड़े दिलासे के साथ उसको समझा कर राजी किया । सुमतिका वहां से चल दी, और जब तक हिरण्यगुप्त की दृष्टि से ओट न होगई, अपनी चेष्टा वैसी ही क्रोधयुक्त बनी रखी । इसके बाद जब इसकी दृष्टि से वह कुछ अलग हुई, तब आपही आप कुछ हँसी, और पीछे की ओर देखती हुई अपनी स्वामिनी के मन्दिर की ओर चली गई । कह नहीं सकते, उसने क्या युक्ति की, परन्तु उसके दूसरे दिन महाराज धनानन्द की ओर से अमात्य के पास ऐसा आमंत्रण गया कि, आपको महाराज ने अमुक समय पर मिलने के लिए बुलाया है । इस सन्देश के पाते ही आमात्य ने सोचा कि, वाह ! सुमतिका तो बहुत ही चतुर दिखाई देती है, उसने अपना कार्य बहुत ही ठीक तौर से निबाहा, और हमारे पास महाराज का सन्देशा हमारे अनुकूल ही आया । वाह ! सुमतिका तो हमको मुरादेवी के मन्दिर में एक बहुत ही सहायक रूप व्यक्ति मिल गई, इससे हमको अपने उद्योग में बहुत ही सहायता मिलेगी । इस प्रकार

सोच कर अमात्यराज को मन ही मन अत्यन्त प्रसन्नता हुई, और अब वे इस विचार में लगे कि, कल महाराज से मिल कर अब हम उनसे क्या क्या बातें करें, और उनके प्राणों पर जो संकट आनेवाला है, उसके विषय में उनको किस प्रकार सचेत करें।

अस्तु। दूसरे दिन नियत समय पर महाराज ने अमात्य से भेंट की। उस समय पहले पहल महाराज ने अमात्य से यही प्रश्न किया कि, "आपने किसी शत्रु की चढ़ाई का भय करके हमारे पास पत्र भेजा है, परन्तु ऐसा भय आपको कहां से उत्पन्न हुआ? किसकी मृत्यु इतने निकट आ गई है कि, उसको मगध देश की ओर वक्र दृष्टि से देखने की दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई?"

अमात्य ने पहले ही से निश्चित कर लिया था कि, महाराज के पास जब हम जायँगे, तब वे अवश्य ही हम से ऐसा प्रश्न करेंगे; और वास्तव में ऐसी बात तो बतलाने के लिए हमारे पास कोई मसाला है ही नहीं—हम बतलावेंगे क्या? ऐसा तो उनसे कह ही नहीं सकते कि, केवल आप से मिलने के लिए हमने यह युक्ति निकाली। इसलिए राक्षस ने महाराज के इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर पहले ही सोच लिया था; और तद्नुसार उन्होंने महाराज का उपर्युक्त प्रश्न सुनते ही तुरन्त यह उत्तर दिया—"महाराज, इस भारतवर्ष में मगधदेश की ओर वक्र दृष्टि से देखने वाला और कौन हो सकता है? हाँ, म्लेच्छाधिपति पर्वतेश्वर अवश्य ही सदैव पुष्पपुरी पर चढ़ाई करने के लिए बड़बड़ाया करता है—और इधर कुछ दिनों से तो उसकी यह बड़बड़ और भी अधिक भयंकर रूप धारण कर रही है। वह इसके लिए कुछ कुछ तैयारी भी कर रहा है। इस बात का समाचार मेरे कानों तक आया है। मेरे गुप्तचरों ने यह समा-

चार मेरे पास पहुँचाया; और मैंने सोचा कि, महाराज के कानों तक भी मैं इस समाचार को पहुँचा दूँ, तो अच्छा ही होगा। इसलिए मैंने पत्र लिख कर भेजा। जो हो, इसमें सन्देह नहीं, पर्वतेश्वर को एक बार नीचा दिखाना अवश्य पड़ेगा। वह दिन पर दिन अधिकाधिक उद्दण्ड हो रहा है। इस वर्ष के करभार के समय, ऐसा जान पड़ता है, वह अवश्य कुछ न कुछ गड़बड़ करेगा। पर महाराज, इस समय मैं विशेषतः शत्रु की चढ़ाई इत्यादि के विषय में वार्तालाप करने के लिए आप की सेवा में नहीं आया हूँ। किन्तु इस समय तो मैं अन्तःशत्रु के विषय में बातचीत करने आया हूँ।"

"अन्तःशत्रु! अन्तःशत्रु हमारे लिए कौन उत्पन्न हुआ है?" महाराज ने हँसते हँसते पूछा।

"इस समय तो मैं नहीं बतला सकता कि, वह ऐसा अन्तःशत्रु कौन है; परन्तु आपको अत्यन्त सावधानी के साथ रहना बहुत आवश्यक है।"

"हाँ, मुझको भी इस बात की कुछ न कुछ आवश्यकता मालूम होने लगी है; और मैं सावधान भी हूँ।"

"महाराज जब सावधान हैं, तब फिर क्या चाहिए? फिर तो भय का कोई कारण ही नहीं रहा।"

"मैं पूरा पूरा सावधान हूं। और मेरे साथ, मेरे ही लिए, और भी कई लोग सावधान हैं। मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव ही हो चुका है, अब शंका कौन सी रह गई?"

"क्या? महाराज को अनुभव हो चुका; और फिर भी महाराज ने क्षमा कर दी?"

"हां, इसलिए कि, चोर को चोरी की वस्तु के साथ ही पकड़ना चाहिए!"

"किन्तु महाराज, शत्रु बिलकुल ही निकट का है, इसलिए

उसे तत्काल ही दूर कर देना चाहिए। ऐसा न करके यदि उसको क्षमा कर दी जायगी; और उसकी ओर से आँखें बन्द कर ली जाँयगी, तो अचानक घात होगा, इसीलिए कहता हूँ कि, उसे क्षमा न करना चाहिए।"

"आँखें बन्द करने पर ही तो घात होगा ? परन्तु यदि दो की जगह चार आँखें खुली रहें, तब घात कैसे होगा ?"

"अच्छा, तो महाराज को यह भी विदित है कि, शत्रु बिलकुल निकट का है ?"

"हाँ, हाँ—अच्छी तरह विदित है या नहीं—सो तुम को तुरन्त ही मालूम भी हो जायगा।"

"परन्तु महाराज को इतनी भी प्रतीक्षा क्यों करनी चाहिए ? संशय तो हो ही चुका है—अब इस संशय पर से ही उस व्यक्ति को क्यों न दूर कर देना चाहिए ?"

"किन्तु यह भी तो अनुभव हो चुका है कि केवल संशय पर से ही दूर कर देने का परिणाम अच्छा नहीं होता। इसलिए मेरी बड़ी इच्छा है कि, एक बार जो प्रमाद हो चुका, वह फिर से न होने पावे। इसके सिवाय जिन लोगों को अपराधियों को दण्ड देने के लिए जल्दी करनी चाहिए, वही लोग इस बार जल्दी न करने के लिए आग्रह कर रहे हैं।"

"महाराज यदि आज्ञा दें, तो यह सेवक तत्काल ही अपराधी को दूर कर देने के लिए तैयार है।"

"किन्तु वे लोग ऐसे नहीं हैं, जो आपके हाथ से दूर हो सकें। अस्तु। अमात्यराज, प्रिय मुरा से अब मैं बड़ी देर से वियुक्त हो रहा हूं; इसलिए अब यदि और कोई कार्य न हो, तो आप बिदा लीजिए। मुझे मालूम हो गया कि, यह ख़बर आपको भी लग गई है कि, मेरा घात करने के लिए कुछ निकट के लोग तत्पर हो रहे हैं; और यह बात जब प्रिय मुरा के कानों

तक पहुँचेगी, तब उसको भी बहुत ही समाधान होगा। क्योंकि उसका यही बड़ा आग्रह है कि, जब तक सब को पूर्ण विश्वास न हो जाय, तब तक ऐसे निकट के बड़े अपराधी को दण्ड न देना चाहिए, और इसी कारण मैंने भी इस विषय में उतावली नहीं की। अमात्यराज, हमने एक व्यर्थ के संशय में पड़ कर नवरत्नों की माला को काँच की माला समझ कर दूर फेंक दिया था, पर उसका सच्चा मूल्य अब मालूम हुआ। शिव शिव! हमारे हाथ से कभी कभी कितने बड़े प्रमाद हो जाते हैं! मेरे हाथ से जो प्रमाद हो गया था, उसको सुधारने का मुझे अब फिर मौका मिला है; और इसके लिए परमेश्वर का मैं जितना उपकार मानूं, थोड़ा ही है। सच पूछिये तो, जो कार्य मेरे हाथ से हुआ था, उसका बहुत ही बड़ा प्रायश्चित परमेश्वर की ओर से मुझे मिलना चाहिए था; पर वैसा नहीं हुआ; और उलटे मुझे उसने सुख ही दिया। और चमत्कार तो देखिये! जिनको हम अब तक नवरत्नों की माला समझते रहे, वे अन्त में काँच की लड़ियाँ मात्र सिद्ध हुईं! उन्होंने मेरे हाथ से बालहत्या कराई। अपने निज के पुत्र की हत्या मेरे हाथ से हुई; और स्त्री-हत्या—सन्तति-हत्या कराने का भी अवसर ला दिया। और अब कहीं जाकर मैं अपने कृत कर्मों पर पश्चात्ताप करके कुछ सुधार करने चला कि, इतने में उन्होंने मेरी भी हत्या करने का प्रयत्न किया!"

यह सुन कर अमात्य राक्षस अत्यन्त चकित हुए; और पागल की भाँति महाराज की ओर देखने लगे।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

उपक्रम ।

नापति और चाणक्य में बातचीत हुई, और सेनापति को चाणक्य से क्या नवीन बात मालूम हुई, सो कुछ बतलाया नहीं जा सकता; परन्तु हां, इतना अवश्य हुआ कि, जब से संगम के उस पार जाकर उन दोनों में गुप्त बातचीत हुई, तब से भागुरायण की चित्तवृत्ति कुछ बहुत ही विचित्र सी होगई; और ऐसा जान पड़ा कि, अब चाणक्य के विषय में उनका आदरभाव पहले से दसगुना अधिक बढ़ गया। चाणक्य ने एक बार भागुरायण से बातचीत करते समय स्वाभाविक ही कह दिया था कि, राक्षस स्वामिभक्त तो जरूर हैं, परन्तु वे सत्यभक्त भी हैं अथवा नहीं, इसमें आशंका है। सो अब ऐसा जान पड़ा कि जैसे चाणक्य का यह कथन भागुरायण को बार बार याद आ रहा हो। क्योंकि उन्होंने कई बार चाणक्य के समक्ष ये वचन निकाले कि, "आप का कथन मुझे अक्षरशः सत्य जान पड़ता है। अमात्य स्वामिनिष्ठ है, पर सत्यनिष्ठ नहीं, और जो सत्यनिष्ठ नहीं वह सन्निष्ठ भी नहीं। ऐसी दशा में सत्पक्ष के लिए यदि उससे कपट किया जाय, तो इसमें कोई दोष नहीं।"

भागुरायण जब कभी ऐसा वचन निकालते, तभी चाणक्य को बड़ा आनन्द हुआ करता था। इसलिए अब उन्होंने सोचा कि, भागुरायण हमारे हाथ में अब पूरे पूरे आगये, यह एक बड़ा भारी अधार हमको मिल गया। हमको जिस नीवँ पर अपना अगला व्यूह रचना है, वह नीवँ खूब मज़बूत हो गई। अब और क्या चाहिए? परन्तु हाँ, जब उन्होंने देखा कि, अगला उपक्रम हमको जितनी जल्दी शुरू कर देना चाहिए, उतनी जल्दी भागु-रायण शुरू नहीं कर रहे हैं, तब उनको अवश्य ही कुछ खेद हुआ। राजनीति का सिद्धान्त ही है कि, जो बातें धृष्टतापूर्वक, कुठार-प्रहार से, करनी हों, उनमें विलम्ब नहीं होने देना चाहिए। क्योंकि हमारा गुप्त षड्यंत्र न जाने कितने दिन तक गुप्त रह सके और कितने दिन तक गुप्त न रह सके, इसका क्या ठीक? और जब तक उसका स्फोट नहीं होता है, तभी तक उसमें सिद्धि प्राप्त होने की सम्भावना रहती है। जहां एक बार षड्-यंत्र का स्फोट होगया और शत्रु उसके विषय में सावधान हो गया, कि फिर उसमें रह ही क्या जाता है? उस दशा में फिर सिद्धि प्राप्त होने की आधी आशा छोड़ देनी पड़ती है। ये सब विचार चाणक्य ने भागुरायण से प्रकट भी कर दिये; पर भागु-रायण को अभी इस बात में पूरी पूरी शंका थी कि, कपट-रचना से भी एक शत्रु को अपने राज्य में बुलाना ठीक होगा; अथवा नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि, एक शत्रु की शक्ति से, इस प्रकार की कपट-रचना के द्वारा, लाभ उठाया जा सकता है, परन्तु शत्रु यदि यहाँ आकर अपने ही पैर जमाने लगे, तो फिर क्या किया जायगा? अवश्य ही उस दशा में हम प्रयत्न करेंगे; परन्तु हमारे वे प्रयत्न यदि विफल हुए, तो फिर क्या बात रह गई? सारी कारस्तानी ही प्रतिकूल दिशा की ओर चली जायगी। इसके अतिरिक्त एक बात और थी। भागुरायण ने यद्यपि चाण-

क्य से पहले एक बार यह अवश्य प्रकट किया था कि, चन्द्रगुप्त को राज्य दिलाने में यदि धनानन्द को दूर करने का भी मौका आ जायगा, तो मैं ऐसा भी कर सकता हूँ, तथापि अपने हृदय से वे यह नहीं चाहते थे कि ऐसा काम उनके हाथ से हो। बस, भागुरायण इन्हीं दो बातों के चक्कर में थे ; और इसी कारण कोई बात निश्चित रूप से करने के लिए वे एकदम तैयार नहीं हो रहे थे। परन्तु चाणक्य को उनके मन की यह दशा पसन्द नहीं थी। क्योंकि वे अब बहुत शीघ्र अपने कार्य का उपक्रम प्रारम्भ कर देना चाहते थे। परन्तु चाणक्य यह भी भली भाँति जानते थे कि, जिसके हाथ से हमको बहुत सा कार्य कराना है. उसके पीछे यदि बहुत उतावली के साथ हम लग जायँगे. तो सम्भव है कि, किसी दिन त्रस्त वह होकर स्पष्ट उत्तर दे दे कि, "हमको इस झंझट में नहीं पड़ना है। जो दशा आज है, वही बहुत अच्छी है।" और इसी लिए चाणक्य भागुरायण के मन के अनुसार ही उनसे धीरे धीरे काम लेना चाहते थे। परन्तु हां, दूसरे प्रयत्न, जो सर्वथा उनके हाथ में थे, उनको वे बराबर किये जा रहे थे। सच तो यह है कि सिर्फ धनानन्द को राज-सिंहासन से दूर हटाने की ही नहीं, किन्तु उसके साथ ही उसके अन्य सब पुत्रों को भी नष्ट कर डालने की जिस पुरुष को उत्कट इच्छा थी; और जिसने बड़ी दृढ़ता के साथ यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि, इन सभी नन्दों का नाश करके हम चन्द्रगुप्त को उनकी जगह मगध के राजसिंहासन पर बैठावेंगे, उसके सामने कोई भी कार्य, अथवा कोई भी उपाय अयोग्य अथवा अनुचित न था। उसके लिए तो सब प्रकार के उचित और अनुचित उपाय, तथा कार्य, ग्राह्य ही थे। वास्तव में चाणक्य का तो यह दृढ़ विश्वास था कि, जहाँ योग्य अवसर और योग्य साधन हमारे सामने आगये कि

फिर हमारे उद्देश्य के सिद्ध होने में कुछ भी विलम्ब नहीं लगेगा। इधर भागुरायण एक ऐसे पुरुष थे कि जो अब तक धनानन्द को अपना राजा मानते आये थे, उसको अपना स्वामी समझते थे। कुछ भी हो, उनके मन में भी राजभक्ति और स्वामिभक्ति अब तक बहुत कुछ बनी हुई थी। ऐसी दशा में एकदम धनानन्द को नाश कर के चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठाने की बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी, और वे बराबर इस विषय पर अपने मन में विचार किया करते थे।

एक दिन तो उनके मन में एक नवीन ही विचार आया; और उन्होंने सोचा कि, यह विचार यदि हम चाणक्य से जाकर बतलावेंगे, तो उनको भी बहुत पसन्द आवेगा। यह सोच कर वे चाणक्य के पास आये; और उनसे बोले, "मुने चाणक्य, मुझे आज एक बहुत अच्छा विचार सूझ पड़ा है। वह विचार यदि आपको पसन्द हो जायगा, तो हम लोगों का उद्देश निःसन्देह बहुत ही जल्द पूरा हो जायगा। और मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि, वह विचार आप को अवश्य ही स्वीकार होगा। क्योंकि मेरी सम्मति में उस विचार के अनुसार कार्य करने से सब कुछ सिद्ध हो जायगा।"

"सेनापते", चाणक्य मुसकरा कर बोले, "मुझे पूरा पूरा विश्वास है कि, आपके मन में जो विचार आवेंगे, अवश्य ही शीघ्र फलदायी होंगे। मुझे इस बात पूरा अनुभव है। इसलिए अवश्य बतलाइये—कौन सा वह विचार है—मैं उसको सुनने के लिए बड़ा उत्सुक हो रहा हूँ।"

भागुरायण चाणक्य का यह कथन सुन कर तुरन्त ही बोले, "और कुछ नहीं—विचार केवल इतना ही है कि, आपने मुझे जो गौप्य बतलाया, वह महाराज के कानों में भी डाल

दिया जाय। यह बात तो जगत्‌विख्यात ही है कि, आज कल महा-राज का प्रेम-सर्वस्व मुरादेवी पर ही है। ऐसी दशा में ज्यों ही वे चन्द्रगुप्त का सब सच्चा सच्चा वृत्तान्त जान पावेंगे, त्यों ही उनको बड़ा आनन्द होगा; और सुमाल्य को युवराजपद से हटा कर वे तत्काल ही चन्द्रगुप्त को यौवराज्याभिषेक करेंगे। ऐसा करने से फिर हम लोगों को पर्वतेश्वर इत्यादि परकीय लोगों को मगध में लाने की आवश्यकता ही न रहेगी; और उनसे उस दशा में हमको जो भय हो सकता है, वह भय भी न रहेगा।"

भागुरायण जिस समय यह कह रहे थे, चाणक्य के मस्तक पर सिकुड़े पड़े, उनकी भौंहें संकुचित हुईं; और नेत्रों को कुछ थोड़ा सा संकुचित करके उन्होंने एक ओर देखा। परन्तु यह सब इतने थोड़े अवकाश में होगया कि, भागुरायण इसको कुछ भी नहीं समझ सके—वे अपनी बातों में लगे थे; और अपने विचार की ख़ूबी पर आप ही आप प्रसन्न होते हुए चाणक्य से उपर्युक्त भाषण कर रहे थे—ऐसी दशा में चाणक्य की उपर्युक्त क्षणिक चेष्टा उनके ध्यान में नहीं आई। इधर चाणक्य ने भी उनके कथन के समाप्त होते ही प्रसन्नवदन करके आनन्द-दर्शक ताली बजा कर कहा—"वाह वा! सेनापते, आपने भी क्या ही नीति की बात बतलाई है! आप अत्यन्त नीति-विशारद हैं। तभी तो मेरे मन में बार बार आता है कि, राक्षस के स्थान में आप ही की योजना होनी चाहिए थी! आपका विचार बहुत ही उत्तम है। परन्तु हां, इसको कार्यरूप में परिणत करने में सावधानी की बड़ी आवश्यकता है, सो आप जानते ही हैं। सावधानी यदि नहीं रखी जायगी, तो और का और ही हो रहेगा। किन्तु सेनापते, क्या आपका ऐसा ख़याल है कि, अमात्य राक्षस की तरफ़ से आप के इस विचार के पूर्ण करने में कोई विघ्न नहीं डाला जायगा? आप यह जानते ही हैं कि,

सुमाल्य पर राक्षस की कितनी भक्ति है; और ऐसी दशा में उसको हटा कर "महाराज जब चन्द्रगुप्त को—राक्षस की दृष्टि से वृषल को—सिंहासन पर बैठावेंगे, तब क्या राक्षस शान्ति-पूर्वक और सन्तोष के साथ उनकी सेवा करते रहेंगे? यह यदि सम्भव होता, तो पहले ही राक्षस चन्द्रगुप्त को इस संसार से नष्ट कर देने का प्रबन्ध क्यों करते? इसके सिवाय एक और भी कारण है कि जिससे राक्षस चन्द्रगुप्त के पक्ष में नहीं आ सकते। चन्द्रगुप्त सुमाल्य की तरह सीधा और मूर्ख नहीं है। इस लिए राक्षस को क्या यह भय नहीं होगा कि, चन्द्रगुप्त उनकी राय से राजकाज नहीं करेगा? और राजा का जब उस पर प्रेम होगा, तब राजा भी चन्द्रगुप्त का ही पक्ष करेगा: और राक्षस इस बात को क्या अपना अपमान नहीं समझेंगे? राक्षस स्वामिभक्त हैं सही: परन्तु जब यह देखेंगे कि, हमारी कुछ चलती ही नहीं, तब उनकी वह स्वामिभक्ति न जाने कहां चली जायगी। मेरी राय में यह सम्भावना नहीं है कि, उनकी स्वामिभक्ति चन्द्रगुप्त के समय में भी वैसी ही बनी रहेगी, जैसी कि आजकल है। हम को तो मुख्य बात यही सिद्ध करनी है कि, जिससे राक्षस का वर्तमान महत्व कम हो, और इसके लिए हमको महाराज के मन में, और यदि हो सके, तो प्रजा के मन में भी, राक्षस के विषय में अप्रीति उत्पन्न करनी होगी; और यह अप्रीति जब तक हम उत्पन्न न कर सकेंगे, हमारे सारे प्रयत्न व्यर्थ जायँगे। हां, अन्त में हम राक्षस को भी अपने पक्ष में लावेंगे; पर पहले उनको यह मालूम हो जाना चाहिए कि, सेनापति भागुरायण भी हमारी ही तरह पूरे पूरे नीतिशास्त्रज्ञ और स्वामिभक्त हैं। यह जब तक उनको नहीं मालूम हो जायगा, तब तक वे हमारे वश नहीं होंगे। अपने नीतिपाटव की थोड़ी सी झलक उनको भी तो दिख जाने दीजिए।"

चाणक्य का यह कथन सुनकर भागुरायण बिलकुल चुप हो गये। चाणक्य ने अब तक कई बार भागुरायण से कहा था कि, राक्षस हमारा विचार सिद्ध नहीं होने देंगे। हमारे षड्यंत्र का पता चलते ही वे उसको नष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। इस लिए जब तक उनको कुछ पता नहीं चला है, तब तक हमको कोई न कोई प्रयत्न कर के उनको चकित करना चाहिए। जब तक उनकी आंखें नहीं खुली हैं, तब तक उनके इस अन्धेपन से ही लाभ उठा कर हमको अपना कार्य साध लेना चाहिए। इस आशय का उपदेश आज तक कई बार चाणक्य ने भागुरायण को दिया था। और भागुरायण के मन पर इसका प्रभाव भी अच्छा ही पड़ा था। परन्तु भागुरायण का हृदय बड़ा कोमल था, इस कारण प्रायः उनके मन में यही बात आ जाती कि, हमारा यह कार्य राजद्रोहात्मक तो न होगा! और इसी कारण वे अपने कार्य के विषय में सदैव किसी भिन्न दृष्टि से विचार किया करते थे। ऊपर जिस विचार का उल्लेख किया गया, वह विचार भी उनका ऐसा ही कुछ था। अस्तु। चाणक्य ने जब यह देखा कि, हमारा कथन सुनकर भागुरायण बिलकुल चुप और सचिन्त हो रहे हैं, तब उन्होंने और भी अनेक प्रकार की बातें उनसे बतलाईं और उनको इस बात का विश्वास करा दिया कि, जब तक राक्षस के विषय में महाराज तथा अन्य लोगों के मन में अप्रीति-कम से कम शंका—उत्पन्न न कर दी जाय, तब तक हमारा कोई भी कार्य निर्विघ्नरूप से पूरा नहीं हो सकता। हमारा कार्य जब एक बार पूरा हो जायगा, तब फिर राक्षस को भी हम अपने पक्ष में मिला सकेंगे—कम से कम उनको निराश कर के चुप तो अवश्य बैठा सकेंगे। इसमें फिर हमको कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। चाणक्य के समझाने का ढंग ऐसा था कि, जिससे भागुरायण को यह नहीं मालूम हो सकता था कि, चाणक्य हम

को अपने पक्ष में लाने के लिए इस प्रकार समझा रहे हैं; बल्कि वे यही समझते थे कि, चाणक्य का सचमुच हार्दिक भाव ही ऐसा है; और वही हमसे वे साधारण तौर पर बतला रहे हैं। जो भी कुछ हो, उस दिन चाणक्य ने भागुरायण को ऐसी कुछ पट्टी पढ़ाई कि, जिससे भागुरायण को इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया कि, अपना कार्य सिद्ध करने के लिए हमें राक्षस को अवश्य ही चकमे में डालना चाहिए; और ऐसा करके हम को महाराज तथा अन्य प्रजाजनों के मन में उनके विषय में संशय उत्पन्न कराना भी बहुत आवश्यक है। यह बात जब भागुरायण के मन में पूरे तौर पर जम गई, तब चाणक्य ने सोचा कि अब भागुरायण के हाथ से कोई न कोई कार्य बहुत जल्द कराये बिना काम नहीं चलेगा। इनको यदि चुप बैठने देंगे, तो शायद कल इनके मन में कोई दूसरा ही विचार उत्पन्न हो जाय, और उससे इनका मन अस्थिर हो जाय। इस लिए इनसे जो कुछ कराना हो, उसका पहला प्रस्ताव तुरन्त कर देना चाहिए, उसको जब ये अंगीकार कर लेंगे, तब फिर ये उससे पीछे न हट सकेंगे। यह सोच कर चाणक्य ने यह निश्चय किया कि, अब भागुरायण के द्वारा बहुत जल्द कोई न कोई कार्यारम्भ करा देना चाहिए। अतएव उन्होंने तत्काल ही भागुरायण से कहा :—

"सेनापते, यों तो हम को देखने में ऐसा हो जान पड़ता है कि, यह दिन, जो जा रहा है; एक ही जा रहा है; परन्तु इसी तरह एक एक करके न जाने कितने दिन बीतते चले जा रहे हैं; और जब हम इस बात पर विचार करते हैं, तब हमारी आंखें खुल जाती हैं। इसके सिवाय हम जिस अवसर की तलाश में रहते हैं, उस अवसर के भी हाथ से चले जाने की सम्भावना रहती है; आपके समान बुद्धिमान पुरुषों के लिए विचारों की तो कोई बात ही नहीं है—घड़ी घड़ी पर विचार सूझेंगे; और उन

विचारों में फिर नाना प्रकार की शाखाएं और उपशाखाएं भी सूझेंगी, परन्तु कार्यकर्ता पुरुष को चाहिए कि, वह उन विचारों की कोई मर्यादा निश्चित करके अपने कार्य का प्रारम्भ कर दे। इसलिए यदि आपकी अनुमति हो, तो मैं आज ही कार्यारम्भ का मुहूर्त कर दूं। अमात्य का अत्यन्त विश्वासपात्र सेवक हिरण्यगुप्त है—वह उनके सब गुप्तचरों का मुखिया है; पर वह भी अब उनसे फूट कर हम में आ मिला है।"

"क्या? हिरण्यगुप्त फूट गया है?" भागुरायण बड़े आश्चर्य में आकर बीच ही में बोल उठे, "हिरण्यगुप्त यदि फूट गया है, तब तो कहना चाहिए कि, एक बहुत ही विलक्षण बात हो गई। वह अमात्य का परम विश्वासपात्र गुप्तचर है। वह फूट गया? और उसे आपने फाड़ लिया?"

"सेनापते, इन निम्न श्रेणी के मनुष्यों को फोड़ने के लिए वैसे ही साधनों की भी आवश्यकता होती है; उन साधनों की योजना करने से तत्काल कार्य हो जाता है। मुरादेवी के अन्तर्गृह की ख़बरें जानने के लिए अमात्य ने सुमतिका को फोड़ने का प्रयत्न किया था; परन्तु सुमतिका तो फूटी नहीं; किन्तु उलटे उसने हिरण्यगुप्त को ही फोड़ लिया। वह अब सुमतिका का पूरा पूरा भक्त हो गया है; और सुमतिका के कारण मेरा भी भक्त हो गया है! मैं जो कुछ कहूँगा, सब सुमतिका उसके द्वारा करा देगी। कनक और कान्ता चाहे जिस मनुष्य के हाथ से चाहे जो काम करा सकती है। हिरण्यगुप्त को सुमतिका ने ऐसा कुछ लुब्ध कर लिया है कि, कुछ पूछिये मत! वह कुत्ते के समान उसी के पीछे लगा रहता है! राक्षस के सब पत्र वही लिखा करता है, और उनकी मुद्रा भी उसी के पास रहा करती है। राक्षस के नाम से पर्वतेश्वर के लिए एक पत्र मैं उससे लिखा लूंगा; और उसके

नीचे राक्षस की मुद्रा भी वह लगा देगा। यह काम मैंने अपने ऊपर लिया। इसके सिवाय मैं गुप्तरूप से पर्वतेश्वर के पास उस पत्र को पहुँचाने का प्रबन्ध भी कर दूंगा। अब सिर्फ आप की अनुमति मिलने का ही अवकाश है। सेनापते, हिरण्यगुप्त के समान मनुष्य जब तक हमारे अनुकूल हैं, तभी तक हमारे लिए ऐसी बातें सम्भव हैं; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि, ये लोग सदैव हमारे अनुकूल ही बने रहेंगे। इस लिए जो कुछ करना हो, तुरन्त ही करना अच्छा होगा। इसके सिवाय सुमतिका के द्वारा मैंने एक दूसरा व्यूह भी रचाया है कि, जिसके कारण राक्षस बिलकुल अंधे हो गये हैं। अब उनको रात-दिन यही सूझ रहा है कि, महाराज पर कोई न कोई संकट आनेवाला है; और उस काल्पनिक संकट के निवारण करने का बहुत जल्द कोई न कोई उपाय करना चाहिए—बस, इस विचार के अतिरिक्त अब उनको और कुछ सूझ ही नहीं रहा है। इस लिए अब हमको सावधान रहना चाहिए; और अपने इस षड्यंत्र का ज़रा भी पता राक्षस को न लगने देना चाहिए, क्योंकि यदि हमारे इस षड्यंत्र का कुछ भी पता राक्षस को लग गया, तो फिर हमारी कारस्तानी मिट्टी में मिल जायगी। मतलब यह है कि, जब तक राक्षस अंधे हो रहे हैं; तभी तक हमको अपने कार्य की सिद्धि का जो प्रयत्न करना है, कर लेना चाहिए। हिरण्यगुप्त तो इस समय इस कदर हमारे हाथ में है, कि हम जो कुछ कहेंगे, वह तुरन्त कर देगा। हम जैसा पत्र लिखने को उससे कहेंगे, वैसा ही पत्र वह लिख देगा; और उस पर राक्षस के नाम की मुद्रा भी लगा देगा। उस मुद्रा से युक्त पत्रिका जब पर्वतेश्वर के हाथ में जायगी, तब वह बिलकुल आनन्द में ही निमग्न हो जायगा। कहिये, सब प्रबन्ध आज करें? आपकी अनुमति

चाहिए, आपने सत्पक्ष का अभिमान धारण किया है, वह यदि वैसा ही जागृत हो, तो मैं अगला सब उपक्रम करने को तैयार हूँ! नहीं तो मुझ को क्या करना है—मैं तो एक निरपेक्ष ब्राह्मण हूँ! शान्ति के साथ अपने आश्रम में बैठा रहूँगा; और अपना शंकर का भजन करूंगा। परन्तु मैं क्या चाहता हूँ कि, राक्षस, जो अपनी राजनीतिज्ञता के ही घमंड में हर समय चूर रहते हैं, उनको एक बार नीचा अवश्य दिखाया जाय; और आप के लिए भी अपनी स्वामिनिष्ठा, सत्यनिष्ठा और सत्पक्षपात दिखलाने का यह एक अच्छा अवसर है……"

"आर्य चाणक्य, आपका कथन ठीक है। आप जो चाहते हैं, वही मैं भी चाहता हूँ। आपको मालूम ही है कि, मैं आपका शिष्य बन चुका हूं; और जिस दिन आपने मुझे नदी के उस पार ले जा कर चन्द्रगुप्त का हाल बतलाया, उसी दिन मैं आपसे निवेदन कर चुका हूँ कि, आप जो कुछ कहेंगे, वही मैं अब आज से करूंगा। हां, इतना अवश्य है कि, मन में नाना प्रकार के विचार आते रहते हैं, और वे सब जब मैं आपके पास आकर बतला देता हूँ, तब मेरा मन कुछ हलका हो जाता है; और इसी लिए आज भी आपसे बतलाया कि, महाराज से यदि चन्द्रगुप्त का सब सच्चा सच्चा हाल बतला कर उनको वश में कर लिया जाय, तो ठीक होगा। परन्तु आपने मेरे इस विचार में कुछ विघ्न बतलाये हैं, और मैं समझता हूँ कि वे विघ्न ठीक हैं। ऐसे विघ्न राक्षस की ओर से अवश्य उपस्थित हो सकते हैं। अस्तु। अब हम उस विचार ही को छोड़ दें। आप जो कुछ करना चाहते हों, कीजिए—मैं आपके विचार से अणुमात्र भी बाहर नहीं हूं।"

भागुरायण ने यह सब बहुत ही आतुरता के साथ और हृदयपूर्वक कहा। इसलिए आर्य चाणक्य को उनकी उपयुक्त बात सुन कर बहुत आनन्द हुआ; और उन्होंने सोचा कि, अब

भागुरायण की इस मनोदशा से बहुत जल्द लाभ उठा लेना चाहिए; क्योंकि एक बार जब ये इस कार्य में कदम रख कर फँस जायँगे, तब फिर ये बाहर नहीं जा सकेंगे। यह सोच कर चाणक्य ने उसी दिन हिरण्यगुप्त को बुलाया, और भागुरायण के सामने ही उससे राक्षस के नाम पर पर्वतेश्वर के लिए एक पत्र लिखवा लिया। इसके बाद उन्होंने उस पत्र को अपने एक बड़े विश्वासपात्र मित्र के द्वारा—सिद्धार्थक के ही द्वारा—पर्वतेश्वर के पास भेज दिया।

पत्र भेजने के बाद अब चाणक्य और भागुरायण दोनों इस विचार में लगे कि, देखें, अब आगे क्या होता है—पर्वतेश्वर राक्षस को क्या उत्तर देता है; और आगे क्या क्या गुल खिलते हैं। पत्र में राक्षस की तरफ से और तो सब वृत्तान्त लिख ही दिया था, उसके सिवाय इतना और लिख दिया था कि, "इस पत्र का जो कुछ उत्तर आपको देना हो, वह इसी दूत के द्वारा, जो आप के पास पत्र ले कर आता है, भेज दीजिएगा। अलग आप का गुप्तचर आने की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि, यह बात बिलकुल ही किसी पर प्रकट न होनी चाहिए कि, आपके यहां से हमारे यहां कोई गुप्तचर इत्यादि आते हैं। ये बातें कितनी नाज़ुक होती हैं, सो आप जानते ही हैं। मैं यह पत्र ख़ास तौर पर एक श्रमणक के द्वारा भेज रहा हूँ, सो इसी लिए कि, ये बौद्धभिक्षु लोग सब जगह बराबर आते जाते रहते हैं, इनका राजनीति से कोई विशेष सम्बन्ध भी नहीं रहता, अतएव इनके विषय में गुप्तचर होने का किसी को सन्देह नहीं हो सकता।—इसलिए आप इस सिद्धार्थक के ही द्वारा अपना उत्तर भेजिएगा, अन्यथा कोई कार्य सिद्ध न होगा। सिद्धार्थक अत्यन्त विश्वासपात्र मनुष्य है, इसलिए आप इसके विषय में कोई आशंका न लाइयेगा......"

यह सब वृत्तान्त उस पत्र में पहले ही लिख दिया था; फिर इसके बाद और जो कुछ मतलब की बात लिखनी थी, सो लिखी गई थी। पत्र जाने के बाद भागुरायण प्रति दिन चाणक्य के पास आकर यही बातें निकालते कि, अब क्या हमारा पत्र पर्वतेश्वर के पास पहुँच गया होगा? और यदि पहुँच गया होगा, तो पर्वतेश्वर उसके विषय में क्या कहता होगा? उसको पत्र में लिखी हुई बातें क्या सत्य ही मालूम होंगी? और यदि वे सत्य मालूम होंगी, तो वह अब लड़ने के लिये आवेगा या नहीं? अच्छा मान लो, कि यदि वह पाटलिपुत्र पर चढ़ाई करने को आ ही गया, तो हम राक्षस का नाम ले कर चारों ओर उसी पर इसका दोष प्रकट कर सकेंगे अथवा नहीं? बस, इसी प्रकार के प्रश्न उठा उठा कर भागुरायण नित्यप्रति चाणक्य से वार्तालाप किया करते थे। इसके सिवाय भागुरायण ने यह भी सोच लिया था कि, अब हमने एक बार जहाज को समुद्र में छोड़ तो दिया है; परन्तु अब इसे किनारे लगाना चाहिए; और अपना कार्य इस प्रकार कर लेना चाहिए कि, जिससे हम को हानि भी न पहुँचने पावे। यह सोच कर अब उनको अपने कार्य के विषय में कुछ कुछ अभिमान भी होने लगा था। चाणक्य के तो वे अब एक प्रकार से शिष्य ही बन गये थे।

परन्तु चाणक्य को केवल एक यही उद्देश्य सिद्ध नहीं करना था। मुरादेवी के द्वारा उसकी प्रतिज्ञा—नन्द राजा को मारने की—पूर्ण करानी थी; और राक्षस को सदैव किसी न किसी चिन्ता में निमग्न रखना था। क्योंकि राक्षस को यदि एक बार भी यह मालूम हो जाता कि, उनको कोई धोखा दे रहा है, तो वे जागृत हो जाते, और चाणक्य का सारा व्यूह ही ढह पड़ता; इसलिए राक्षस का मन सदा किसी न किसी चिन्ता में निमग्न रखना और उसके अन्दर विश्वास भी बना रखना चाणक्य के

लिए बहुत आवश्यक था। मुरादेवी की प्रतिज्ञा अभी तक चाणक्य ने भागुरायण पर प्रकट नहीं होने दी थी। इसके सिवाय उन्होंने अपना भी सच्चा सच्चा परिचय नहीं दिया था कि, हम कौन हैं, और यहां वास्तव में किस उद्देश्य से आये हैं। हां, यह बात उन्होंने भागुरायण को अवश्य बतला दी थी कि, चन्द्रगुप्त वास्तव में कौन है; और हम इसे यहां क्यों ले आये हैं; और यह बात यदि उन्होंने भागुरायण को न बतलाई होती, तो वे भागुरायण को अपने पक्ष में भी नहीं ला सकते थे। चाणक्य यह भली भांति जानते थे कि, मगधराज के सेनापति या अमात्य इन दोनों में से जब तक एक कोई हमारे पक्ष में नहीं आ जायगा, तब तक हम अपने व्यूह की नीवँ ठीक ठीक नहीं जमा सकेंगे। नन्दों का नाश करने के लिए अमात्य कभी तैयार हो ही नहीं सकते। क्योंकि वे बड़े स्वामिभक्त हैं। इसलिए उनको अपने पक्ष में लाकर अपने उद्देश्य को सिद्ध करने की आशा रखना मानो मृगजल को प्राप्त करके उससे अपनी प्यास बुझाना है। इसलिए चाणक्य ने यह विचार ही अपने मन में नहीं आने दिया। उन्होंने सोचा कि, दो अधिकारियों में स्पर्धा का प्रादुर्भाव करके एक अधिकारी को दूसरे के विरुद्ध उभाड़ना एक सहज और अमोघ साधन है, इसलिए इसी साधन को सिद्ध करना चाहिए। इस के सिवाय उन्होंने यह भी विचार किया कि, मुरादेवी के पुत्र का पक्ष यदि कोई ले सकता है, तो वह सेनापति ही है, इसलिए सेनापति भागुरायण को ही वश में करने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने इसी विचार के अनुसार उन्होंने भागुरायण को वश में करने का प्रयत्न किया, और इस प्रयत्न में उनको कहां तक सफलता प्राप्त हुई, सो पाठकों को मालूम ही है।

बीसवां परिच्छेद

अमात्य को पता भी नहीं !

बेचारे अमात्य को इस बात का कुछ भी पता नहीं था कि, उनके विरुद्ध एक कितना बड़ा भारी षड्यंत्र रचा जा रहा है। इसमें संदेह नहीं कि, अमात्य राक्षस एक बड़े दूरदर्शी और चतुर मनुष्य थे: और सावधान भी सदैव रहा करते थे; परन्तु जब किसी मनुष्य पर बहुत दिन से कोई संकट नहीं आता, तब उसमें कुछ गाफिलपन अवश्य ही आ जाता है; और इसी नियम के अनुसार राक्षस में भी बिलकुल स्वाभाविक ही, उनको न मालूम होते हुए, थोड़ा बहुत गाफिलपन आ गया था। इधर कुछ दिनों से उन्हें सिर्फ एक ही चिन्ता हो रही थी: और वह चिन्ता थी राजा धनानन्द के विषय में। धनानन्द राज-काज बिलकुल नहीं देखता था: परन्तु राक्षस को इस विषय में कोई चिन्ता नहीं थी। उनको चिन्ता थी राजा के आचरण की; क्योंकि आजकल राजा रात-दिन मुरादेवी के मन्दिर में ऐश-आराम और विलासिता में ही चूर रहता था। यह बात उनको बिलकुल पसन्द नहीं थी। अस्तु, उनको इस बात का तो कुछ खयाल ही नहीं था कि इस समय यदि पाटलिपुत्र पर कोई शत्रु धावा कर देगा, तो क्या हालत होगी; क्योंकि उनको पूर्ण विश्वास था कि, जब तक हम स्वयं कुसुमपुर में मौजूद हैं,

तब तक किसी भी शत्रु को इस बात का साहस नहीं हो सकता कि, वह इस नगर की ओर तिरछी नज़र से देख जावे। इसके सिवाय हमारे सावधान रहते हुए स्वयं नगर में, अथवा राज्य में भी, कहीं कोई सिर नहीं उठा सकता। और यदि कहें कि, राजमहल में कोई गड़बड़ी मच सकती है, तो यह भी सम्भव नहीं, क्योंकि हम सदैव उधर से भी चौकन्ने रहते हैं। इस प्रकार अमात्य राक्षस को कोई भी विशेष चिन्ता नहीं थी, परन्तु उसी समय के लगभग जब एक दिन सुमतिका ने जाकर बिलकुल गोल माल तौर से, उनके कान में यह बतलाया कि, मुरादेवी की ओर से राजा के प्राणहरण करने का कोई न कोई उपाय हो रहा है, तब उनकी चित्तवृत्ति एकदम कैसी उद्बुद्ध हो गई होगी, इसकी कल्पना पाठक स्वयं कर सकते हैं। इसके बाद जब वे स्वयं राजा से मिलने गये और राजा से बातचीत हुई, तब उनके मन को अचानक एक बहुत बड़ा धक्का लगा; और वे विशेष सावधान हो गये। उन्होंने जब यह देखा कि, हम तो राजा को मुरादेवी के विषय में सावधान कर रहे हैं; और राजा दूसरे ही लोगों पर आशंका कर रहा है, तब उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि शायद यह मुरादेवी का ही कार्य है कि, जो राजा को इस प्रकार धोखा और अज्ञान में डाले हुए है। शायद वही ऐसा प्रयत्न कर रही है कि, जिससे राजा उसके विषय में तो शंका कर न सके; और दूसरों पर शंका करके उनके विषय में घृणा करने लगे। और यदि यही बात है, तब तो यही कहना चाहिए कि, मुरादेवी अपने प्रयत्न में बहुत ही सफलता प्राप्त कर रही है। यह सोच कर अमात्य राक्षस ने अब मुरादेवी के कार्यों की ही ओर विशेष ध्यान रखने का प्रबन्ध किया। और किसी ओर ध्यान देने की उनको चिन्ता ही न थी। चन्द्रगुप्त के विषय में पहले उनको जो शंका हुई थी,

उसका निराकरण हो ही गया था। इस लिए उसके विषय में अब उन्होंने यही निश्चय किया कि, चन्द्रगुप्त के यहां रहने से कोई हानि नहीं। यह तो एक प्रकार से राजकुमार सुमाल्य के लिए एक अच्छा साथी मिल गया। इसके पिता किराताधिपति ने हमको इतनी नम्रता के साथ पत्र लिखा है, इस लिए अब इसको यहाँ से हटाने की कोई आवश्यकता नहीं। इसको यहीं रहने दिया जाय। इसके विषय में अब विशेष जाँच करने अथवा उस पर कोई निगरानी रखने की भी आवश्यकता नहीं। यह सोचकर उन्होंने चन्द्रगुप्त की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। किन्तु इसके विरुद्ध यह अवश्य सोचा कि, चन्द्रगुप्त यदि यहाँ बना रहेगा; और सुमाल्य से यदि इसकी अच्छी मित्रता हो जायगी, तो आगे चल कर म्लेच्छ लोगों को दण्ड देने में भी इससे सहायता ही मिलेगी। यह सोच कर अमात्य ने उस राजपुत्र की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इधर किसी शत्रु के आक्रमण का भय अमात्य के स्वप्न में भी नहीं था। आसपास के राजाओं में ऐसा कौन साहस कर सकता था कि, जो कुसुमपुर की ओर केवल बुभुक्षित नेत्रों से देख भी जाता? इस लिए अब अमात्य को केवल एक यही चिन्ता रह गई कि, मुरादेवी के हाथ से राजा को छुड़ाने के लिए क्या उपाय करना चाहिए। और उसी उपाय की योजना का विचार अब वे करने लगे।

यह सोच लेना तो सहज है कि, अमुक अपाय पर अमुक उपाय की योजना करनी चाहिए; परन्तु उस उपाय को ठीक ठीक अपने मन में बैठा कर, और उसको फिर कार्यरूप में परिणत करना बड़ा कठिन कार्य है। राजा का अनिष्ट चेतनेवाली यदि कोई व्यक्ति बाहर की—अर्थात् प्रजाजनों में से—होती, तो राक्षस को ऐसी कठिनाई न पड़ती। तत्काल ही उसको पकड़ मँगवाते; और उसको दण्ड दे सकते थे, अथवा उसको कारागार

में डाल सकते थे। परन्तु यह ऐसा मौका था कि उपर्युक्त कोई भी उपाय काम नहीं दे सकता था। इस कारण राक्षस बड़ी चिन्ता में पड़े। राजा मुरा के पीछे कितना पागल हो रहा था, सो वे प्रत्यक्ष ही देख आये थे। इसलिए अब वे इसी विचार में थे कि, मुरा ने जो मोहनी मंत्र राजा पर चलाया है, उसको दूर करने के लिए कोई बहुत अच्छा पचातुर्गी तलाश करना चाहिए। इतने में उनके पास यह खबर आई कि सुमतिका आप से मिलना चाहती है। अमात्य ने सोचा कि, इसको अपनी मुट्ठी में रखना हमारा पहला काम है, अतएव उन्होंने तत्काल ही उसे भीतर बुला लिया। राक्षस ने सोचा था कि, अवश्य ही यह आज कोई न कोई नवीन समाचार लाई होगी, और उनका ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था। अस्तु। सुमतिका भीतर आई; और नियमानुसार राक्षस को वन्दना इत्यादि न करते हुए, एकदम घबड़ाई हुई आवाज़ से बोली. "आर्यश्रेष्ठ, मेरी रक्षा करो—अब मेरी कुशल नहीं।"

अमात्य राक्षस सुमतिका के घबड़ाने और उसके उन भयपूर्ण दृष्टिक्षेपों का कुछ भी तात्पर्य नहीं समझ सके। सुमतिका की दशा इस समय ठीक ऐसी ही हो रही थी कि, जैसे व्याघ्र से पीछा की हुई कोई हरिणी भागती हुई किसी झाड़ी में घुस जावे; और बहुत ही भयपूर्ण दृष्टि से चौकन्नी होकर इधर उधर देखती हो; और ज़ोर ज़ोर से हाँफती जाती हो! राक्षस ने उसकी यह दशा देख कर तुरन्त ही कहा, "सुमतिकाबाई, घबड़ाओ मत! बतलाओ तो, तुमको क्या हुआ? राक्षस के घर में अब तुम अपने को बिलकुल सुरक्षित समझो।" इस प्रकार आश्वासनयुक्त वचन कह कर अमात्य ने उसकी ओर देखा। फिर भी सुमतिका की घबड़ाहट दूर नहीं हुई, वह थर थर काँप रही थी; और घबड़ाहट के मारे उसके मुँह से बोल नहीं

निकल रहा था। यह देख कर राक्षस ने सोचा कि, अब जब तक थोड़ी देर तक हम इसको शान्त नहीं रहने देंगे, तब तक यह कुछ भी उत्तर नहीं देगी। इसलिए वे सिर्फ उसके मुँह की ओर देखते भर रहे। परन्तु इस बात की उनको कुछ भी कल्पना नहीं हो सकी कि, यह इतनी घबड़ाहट क्यों दिखला रही है; और किससे रक्षा के लिए हम से प्रार्थना कर रही है। कुछ समय व्यतीत हुआ। सुमतिका अब कुछ शान्त हुई, और बोली, "आर्यश्रेष्ठ, मेरी कुशल नहीं दिखाई देती। मेरी स्वामिनी को मालूम हो गया कि, मैं उसके महल की खबरें आप के पास आकर बतलाया करती हूँ। कह नहीं सकती, उसको यह खबर किसने दी। केवल हिरण्यगुप्त को ही मेरे विषय में यह बात मालूम है; और मैंने किसी से इस विषय में कुछ कहा ही नहीं। और हिरण्यगुप्त आपका बिलकुल विश्वासपात्र नौकर है—वह इस बात को किसी से बतला ही नहीं सकता। इसके सिवाय मुरादेवी से तो उसकी कभी भेट ही नहीं हुई। फिर यह बात देवी के कानों तक कैसे पहुँची, और सो भी ऐसे समय में पहुँची कि, जिस समय उनको मेरे विषय में ऐसा संशय नहीं होना चाहिए था। यह समय एक बहुत ही महत्व का समय था। देवी ने महाराज का घात करने की जो योजना की है, वह अब मुझे बिलकुल मालूम ही होनेवाली थी; और ऐसे ही समय में यह विघ्न आ गया। अब मैं क्या करूं? मैं बाहर जाकर—आप के यहाँ आकर उनके महल की सब खबरें बतलाया करती हूँ—यह बात उनको मालूम हो गई है; और वे अब मुझको इसके लिए कठोर दण्ड देना चाहती हैं; और वह दण्ड आज ही देने का उन्होंने निश्चय किया है, यह भी मैंने सुना है—यही नहीं, बल्कि मुझे जिस जाल में फँसाने के लिए उन्होंने विचार किया है, उसका

भी मुझे पता चल गया है। इसीलिए मैं प्राण बचाने को भाग आई हूँ। महाराज के प्राणों पर यह राक्षसी किस प्रकार हाथ चलाना चाहती है, इसका पता अब मुझे पूरा पूरा लगने ही वाला था; और मैं उससे मीठी मीठी बातें करके उसके पेट में पैठने ही वाली थी कि इतने में यह विघ्न आ उपस्थित हुआ! अब क्या करूँ? एक स्वामी से द्रोह करके दूसरे की प्रसन्नता प्राप्त करनेवाले को ऐसा दण्ड मिलना ही चाहिए। मैं यदि आपके बुलाने से न आई होती, अपनी स्वामिनी की चुगली करने का नीच काम स्वीकार न किया होता, तो आज मेरे ऊपर ऐसी नौबत क्यों आती? अब वह मुरादेवी अपने नाम की है! वह कभी मानने की नहीं! तीनों लोक में चाहे जहां मैं जाऊंगी, वह मुझे ढूँढ़ कर मेरा प्राण अवश्य लेगी; फिर भी मैंने आपकी सेवा स्वीकार की है, इस लिए स्वाभाविक ही मेरे मन में आया कि, आप ही के चरणों में जाकर शरण लूं।"

"अच्छा, अब तुझको अपने प्राणों का भय न करना चाहिए: तू निर्भय होकर यहां रह। किन्तु सुमतिके, महाराज के प्राणों पर ऐसा कौन सा संकट आने वाला है? उसको तो ज़रा बतला। तुझको इस विषय में क्या मालूम हुआ है? सुमतिके, अब महाराज के प्राण बचाने का तो अवश्य ही कोई न कोई उपाय हमको करना पड़ेगा। तुझ को जितना कुछ इस विषय में मालूम हुआ है, उतना ही तू मुझ को बतला। फिर मैं इस विषय में कोई दूसरा प्रबन्ध करूंगा!"

"अमात्यराज, महाराज के प्राणों के लिए फिर क्या मैं ही अपने प्राणों को धोखे में नहीं डालूंगी? क्या उनके प्राणों की अपेक्षा मुझे अपने प्राण अधिक प्यारे हैं? उनके ही जीवन से तो हम सब प्रजाजनों का गुज़ारा है। मुझ

को अब भी इतना उत्साह है कि, मैं फिर से अपनी स्वामिनी का क्रोध शान्त करके उसकी कृपा को फिर से सम्पादन कर लूंगी। परन्तु क्या बतलाऊं? ऐसे ऐसे विघ्नों के कारण ही जान आफत में आ रही है! आप कहते हैं कि, दूसरा प्रबन्ध करेंगे; पर इस के लिए जब आपको समय मिलेगा, तभी तो? मेरा ख़याल है—ख़याल ही नहीं है, बल्कि विश्वास है कि, एक ही दो दिन में प्रायः—" इतना कह कर सुमतिका बीच ही में ठहर गई; और बिलकुल स्पष्ट रूप से शरीर पर रोंगटे खड़े होने का आविर्भाव दिखलाया।

राक्षस ने उसकी वह चेष्टा देख कर अत्यन्त चिन्तातुर होकर पूछा, "क्या? क्या? एक ही दो दिन में क्या?"

"क्या बताऊं आर्यश्रेष्ठ, मुरादेवी अपने वैधव्य के लिए मानो उत्सुक सी हो रही है। कोई कुमारिका विवाह के लिए भी इतनी उत्सुक न होती होगी, जितनी वह वैधव्य के लिए उत्सुक दिखाई दे रही है।"

"अरी, तू कहती क्या है? स्पष्ट क्यों नहीं बतलाती? सुमतिके, ऐसी गोलमाल बातें मत कर।"

"अमात्यराज, स्पष्ट क्या बतलाऊं? अभी मुझे पूरी पूरी बात मालूम भी नहीं होने पाई कि बीच में यह विघ्न आगया: इस लिए स्पष्ट मैं क्या बतलाऊं?"

"सुमतिके, महाराज पर यदि सचमुच ही तेरी सच्ची भक्ति है, तो तू फिर भी वहां जाकर एक बार फिर अपनी स्वमिनी को प्रसन्न कर; उसके क्रोध की शान्ति करके उसकी कृपा सम्पादन कर। उसके विश्वास में फिर से प्रविष्ट होकर, जो कुछ भयंकर कार्य वह करना चाहती हो, उसका पूरा पूरा समाचार लाकर मुझको बहुत जल्द बतला।"

सुमतिका फिर घबड़ाई हुई आवाज़ से कहती है, "आर्य, आपकी आज्ञा के अनुसार मैं जाऊंगी सही; पर अब इतना सब करने के लिए अवकाश कहां है? वह भयंकर कार्य तो दो ही तीन दिन में होनेवाला है। मैं यदि फिर जाऊंगी, तो मुरा-देवी यही समझेगी कि, फिर यह चुगली करने का काम करने को आगई; और यह समझ कर वह तत्काल ही मुझे कारागार में डलवा देगी, कभी छोड़ नहीं सकती। हमको यदि कोई उपाय करना है, तो तत्काल ही करना चाहिए; और इसी लिए मैं आप के पास आई। यह बात मैं पहले ही एक बार आपको बतला गई थी कि, ऐसा कोई न कोई भयंकर कार्य होनेवाला है; और अब आपको यह सूचित करने आई हूँ कि, वह भयंकर कार्य अब बहुत जल्द होनेवाला है। इस समय मैं आप के पास तक यह ख़बर पहुँचाने को आ सकी, यही बड़े सौभाग्य की बात है।"

राक्षस कुछ भी नहीं समझ सके कि, यह इस प्रकार की गोलमाल बातें क्यों करती है। उन्होंने सोचा कि, पहले तो यह "रक्षा करो, रक्षा करो" कह कर चिल्लाती हुई, बड़ी घबड़ाहट के साथ, यहां आई। फिर इसने यह जतलाया कि, हिरण्यगुप्त के ही कारण मेरे गुप्तचर होने की बात फूटी होगी। इसके बाद इसने यह भी कहा कि, मैं फिर लौट जाऊंगी; और अपने प्राणों को भी धोखे में डालकर आपका काम करूंगी; और अब हम, जब कहते हैं कि, तू जा, तब यह जाने में भी आनाकानी करती है—यह बात क्या है? राक्षस बड़े विचार में पड़े।

इक्कीसवां परिच्छेद

अमात्य ने क्या किया !

स प्रकार सुमतिका राक्षस के मन को चंचल करने का प्रयत्न कर रही थी। राक्षस ने सोचा कि, राजा के प्राणों पर कोई न कोई भयंकर संकट अवश्य आनेवाला है; और वह संकट मुरादेवी ही ला रही है। इसके सिवाय वह संकट अब बहुत जल्द, एक ही दो दिन में, आनेवाला है; पर केवल इतना ही मालूम होने से क्या लाभ ? कोई न कोई मज़बूत ख़बर चाहिए—गोलमाल खबरों से क्या अर्थ ? यह सोच कर राक्षस बराबर सुमतिका से उस विषय में प्रश्न कर रहे थे ; और सुमतिका भी चकराती और घबड़ाती हुई सी उन प्रश्नों के मनमाने उत्तर दे रही थी। उन उत्तरों से राक्षस का कुछ भी समाधान न हुआ; और उन्होंने सोचा कि, बड़े आश्चर्य की बात है, हम इतने दूरदर्शी और भारी राजनीतिज्ञ होने पर भी इस कार्य में सफलता नहीं प्राप्त कर सके। दुनियाँ भर की खबरें मँगवा कर हम इतने बड़े साम्राज्य का इतना भारी प्रबन्ध किया करते हैं; पर आज हमारे ही राजा की जान पर नौबत आ रही है; और हम अभी तक इस विषय में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं कर सके—इतनी थोड़ी बात के लिए हम इतने भारी असमर्थ हो रहे हैं ! यह सोच कर राक्षस को मन ही मन बड़ा विषाद हुआ। उनको कुछ सूझने ही न लगा। इसलिए

अन्त में अत्यन्त निराश हो कर उन्होंने सुमतिका से कहा, "सुमतिके, कुछ भी हो, अब तू अपने स्वामी के प्राणों के लिए अपने प्राणों की भी परवा मत कर। चाहे जो कर; पर मुरादेवी के सारे कपट का वृत्तान्त लाकर मुझको बतला। वह क्या भयंकर कार्य किस प्रकार करना चाहती है, सो पूरा पूरा बहुत जल्द मालूम करके मुझको बतला। इस समय तू बिलकुल निर्भय हो कर अपना कार्य कर। तेरे प्राणों की रक्षा होगी, मैं इसकी जिम्मेदारी लेता हूँ। जा, अब तू सब समाचार पूरे पूरे ले आ।"

"अमात्यराज, आप आज्ञा दे रहे हैं, तो मैं अवश्य जाऊंगी; पर यह मैं विश्वास नहीं दिला सकती कि, मैं अब कोई समाचार बतलाने के लिए आपके पास तक आ सकूंगी। मुरादेवी को मेरे ऊपर पूरा पूरा सन्देह हो गया है। अवश्य ही उस सन्देह को अब वह शब्दों द्वारा प्रकट नहीं करेगी; किन्तु जहां मैं उसके सामने गई कि, वह मुझे जान से मार डालेगी; अथवा कारागार में ही डलवा देगी। कह नहीं सकती कि, वह क्या करेगी; और और क्या न करेगी। इस लिए आप मेरी एक बात सुनें, तो बहुत अच्छा हो। आप यह तो अवश्य ही ख़याल करेंगे कि, मैं एक क्षुद्र दासी हूँ—आपको क्या बतलाऊंगी! "छोटे मुँह बड़ी बात" वाली कहावत है; पर क्या करूं—और कोई उपाय ही नहीं है, इस लिए बतलाती हूँ। हां, आप एक काम करें कि, किसी न किसी निमित्त से आप एक बार फिर महाराज से मिलें; और उनसे स्पष्ट कह कर, अथवा और कोई उपाय कर के, आप उनको उस महल से निकाल लावें। परन्तु यह काम भी यदि आप आज का आज ही कर लें—अथवा बहुत हो, तो कल शाम तक कर लें—तभी ठीक होगा। ऐसा करने से महाराज के प्राण बच सकते हैं। परन्तु कल सायंकाल तक यदि आपने कोई प्रबन्ध नहीं कर पाया, तो फिर अपने हाथ में कुछ न रहेगा;

इस बात को आप पूरा ध्यान में रख लें। महाराज यदि मुरादेवी के महल से बाहर आ जायँगे, तभी उनके प्राण बचने की कुछ सम्भावना हो सकती है, अन्यथा हमारे इस पाटलिपुत्र को अनाथ होने की ही नौबत आ जायगी। इसमें बिलकुल सन्देह नहीं। अब इस से अधिक आप से मैं क्या कहूँ? आप आज्ञा ही देते हैं, तो मैं फिर एक बार जाती हूँ; और देखती हूं, यदि कुछ खबर लगे! किन्तु मुझे यह तो आशा बिलकुल ही नहीं है कि, अब मैं फिर आपके पास तक कुछ बतलाने के लिए आ सकूंगी। इसके आगे जो कुछ दैव ने रचा हो!"

सुमतिका यह सब कह रही थी; पर राक्षस का ध्यान, ऐसा जान पड़ता था कि, उसकी ओर पूरा पूरा नहीं है। वह उपर्युक्त भाषण करने के बाद फिर वहां नहीं ठहरी; और एकदम चली गई। अमात्य से उसने यह भी नहीं कहा कि, अब मैं जाती हूँ। इधर राक्षस का मन कुछ कुछ अपने विचार में और कुछ सुमतिका के भाषण की ओर था। इस लिए थोड़ी देर तक तो उनके यह भी ध्यान में न आया कि, सुमतिका यहां से चली गई। जब अपने विचारों से उनका ध्यान टूटा, तब उनको मालूम हुआ कि, सुमतिका चली गई; और उस समय सुमतिका की इस हरकत पर उनको बड़ा आश्चर्य भी हुआ कि, देखो, हमसे बिना पूछे-बिचारे ही वह यहां से अचानक कैसे चली गई। जो हो, उन्होंने एकदम द्वारपाल को पुकारा; और पूछा कि, क्या सुमतिका चली गई। द्वारपाल ने कहा, "हां, स्वामिन, वह तो चली गई।" यह उत्तर पाते ही राक्षस ने फिर और कुछ नहीं कहा; और अपने विचारों में ही पूरे पूरे निमग्न होगये।

अचानक उनके मन में यह भाव उठा कि, अब हमारे इस मगधराज्य पर कि, जो इतने दिन से अपनी सुख-समृद्धि के लिए

विख्यात हो रहा है, अवश्य ही कोई न कोई संकट आनेवाला है। इस ख़याल से, कि नन्दवंश उत्तम प्रकार से रहे, हमने शूद्री—वृषली—को राजमहिषी नहीं होने दिया। राजा के, उसके उदर से, पुत्र उत्पन्न हुआ, उसके भी नाश करा डालने का हमने प्रबन्ध किया, जिससे वह अशुद्ध लड़का कहीं आगे-पीछे इस शुद्ध वंश की गद्दी पर न बैठ जावे। यह सब कुछ हमने किया; किन्तु आज उसी लड़के की माता—वही वृषली—राजा का बिलकुल निःश्वास ही बन बैठो है; और हम भी आज उसके लिए हैरान हो रहे हैं। राजा से बहुत देर तक बातचीत करने की तो बात ही जाने दो—उसका दर्शन तक उसने हमारे लिए दुर्लभ कर रखा है; और फिर भी हम अब तक इसका कोई भी प्रबन्ध नहीं कर सकें, यह और भी बिलक्षण बात है। किन्तु करें क्या? उस दिन तो हमने शत्रु की चढ़ाई होने के बहाने से किसी प्रकार महाराज से भेंट भी कर ली; किन्तु अब की बार कौन सा बहाना निकालें कि, जिससे महाराज की भेंट हो। भेंट हो जाने पर तो हम महाराज को इस बार पूरा पूरा सावधान कर देंगे, किन्तु भेंट कैसे हो? मुख्य अमात्य और राजा की ही भेंट में जिस राज्य के अन्दर इतनी कठिनाई उपस्थित होने लगी, उस राज्य का कल्याण अब नहीं हो सकता। अस्तु। हमारे हाथ से अब भी जो कुछ हो सकेगा, वह हम अवश्य ही करेंगे। यह सोच कर राक्षस एकदम वहां से उठे; और महाराज के नाम एक पत्र लिख कर उसको अपने एक अत्यन्त विश्वासपात्र मनुष्य के द्वारा मुरादेवी के महल में भेज दिया।

कह नहीं सकते, क्या विचित्रता हुई; किन्तु राक्षस का वह पत्र ज्यों ही मुरादेवी के महल पर पहुँचा, त्यों ही उसको महाराज के हाथ तक पहुँचाने का सारा प्रबन्ध होगया—जैसे पहले ही से लोग उस प्रबन्ध के लिए तैयार हों! बात की बात में वह

चाहिए, आपने सत्पक्ष का अभिमान धारण किया है, वह यदि वैसा ही जागृत हो, तो मैं अगला सब उपक्रम करने को तैयार हूँ! नहीं तो मुझ को क्या करना है—मैं तो एक निरपेक्ष ब्राह्मण हूँ! शान्ति के साथ अपने आश्रम में बैठा रहूँगा; और अपना शंकर का भजन करूंगा। परन्तु मैं क्या चाहता हूँ कि, राक्षस, जो अपनी राजनीतिज्ञता के ही घमंड में हर समय चूर रहते हैं, उनको एक वार नीचा अवश्य दिखाया जाय; और आप के लिए भी अपनी स्वामिनिष्ठा, सत्यनिष्ठा और सत्पक्षपात दिखलाने का यह एक अच्छा अवसर है······"

"आर्य चाणक्य, आपका कथन ठीक है। आप जो चाहते हैं, वही मैं भी चाहता हूँ। आपको मालूम ही है कि, मैं आपका शिष्य बन चुका हूं; और जिस दिन आपने मुझे नदी के उस पार ले जा कर चन्द्रगुप्त का हाल बतलाया, उसी दिन मैं आपसे निवेदन कर चुका हूँ कि, आप जो कुछ कहेंगे, वही मैं अब आज से करूंगा। हां, इतना अवश्य है कि, मन में नाना प्रकार के विचार आते रहते हैं, और वे सब जब मैं आपके पास आकर बतला देता हूँ, तब मेरा मन कुछ हलका हो जाता है; और इसी लिए आज भी आपसे बतलाया कि, महाराज से यदि चन्द्रगुप्त का सब सच्चा सच्चा हाल बतला कर उनको वश में कर लिया जाय, तो ठीक होगा। परन्तु आपने मेरे इस विचार में कुछ विघ्न बतलाये हैं, और मैं समझता हूँ कि वे विघ्न ठीक हैं। ऐसे विघ्न राक्षस की ओर से अवश्य उपस्थित हो सकते हैं। अस्तु। अब हम उस विचार ही को छोड़ दें। आप जो कुछ करना चाहते हों, कीजिए—मैं आपके विचार से अणुमात्र भी बाहर नहीं हूं!"

भागुरायण ने यह सब बहुत ही आतुरता के साथ और हृदयपूर्वक कहा। इसलिए आर्य चाणक्य को उनकी उपयुक्त बात सुन कर बहुत आनन्द हुआ; और उन्होंने सोचा कि, अब

भागुरायण की इस मनोदशा से बहुत जल्द लाभ उठा लेना चाहिए; क्योंकि एक बार जब ये इस कार्य में कदम रख कर फँस जायँगे, तब फिर ये बाहर नहीं जा सकेंगे। यह सोच कर चाणक्य ने उसी दिन हिरण्यगुप्त को बुलाया, और भागुरायण के सामने ही उससे राक्षस के नाम पर पर्वतेश्वर के लिए एक पत्र लिखवा लिया। इसके बाद उन्होंने उस पत्र को अपने एक बड़े विश्वासपात्र मित्र के द्वारा—सिद्धार्थक के ही द्वारा—पर्वतेश्वर के पास भेज दिया।

पत्र भेजने के बाद अब चाणक्य और भागुरायण दोनों इस विचार में लगे कि, देखें, अब आगे क्या होता है—पर्वतेश्वर राक्षस को क्या उत्तर देता है; और आगे क्या क्या गुल खिलते हैं। पत्र में राक्षस की तरफ से और तो सब वृत्तान्त लिख ही दिया था, उसके सिवाय इतना और लिख दिया था कि, "इस पत्र का जो कुछ उत्तर आपको देना हो, वह इसी दूत के द्वारा, जो आप के पास पत्र ले कर आता है, भेज दीजिएगा। अलग आप का गुप्तचर आने की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि, यह बात बिलकुल ही किसी पर प्रकट न होनी चाहिए कि, आपके यहां से हमारे यहां कोई गुप्तचर इत्यादि आते हैं। ये बातें कितनी नाज़ुक होती हैं, सो आप जानते ही हैं। मैं यह पत्र ख़ास तौर पर एक श्रमणक के द्वारा भेज रहा हूँ, सो इसी लिए कि, ये बौद्धभिक्षु लोग सब जगह बराबर आते जाते रहते हैं, इनका राजनीति से कोई विशेष सम्बन्ध भी नहीं रहता, अतएव इनके विषय में गुप्तचर होने का किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इसलिए आप इस सिद्धार्थक के ही द्वारा अपना उत्तर भेजिएगा, अन्यथा कोई कार्य सिद्ध न होगा। सिद्धार्थक अत्यन्त विश्वासपात्र मनुष्य है, इसलिए आप इसके विषय में कोई आशंका न लाइयेगा ......"

यह सब वृत्तान्त उस पत्र में पहले ही लिख दिया था; फिर इसके बाद और जो कुछ मतलब की बात लिखनी थी, सो लिखी गई थी। पत्र जाने के बाद भागुरायण प्रति दिन चाणक्य के पास आकर यही बातें निकालते कि, अब क्या हमारा पत्र पर्वतेश्वर के पास पहुँच गया होगा? और यदि पहुँच गया होगा, तो पर्वतेश्वर उसके विषय में क्या कहता होगा? उसको पत्र में लिखी हुई बातें क्या सत्य ही मालूम होंगी? और यदि वे सत्य मालूम होंगी, तो वह अब लड़ने के लिये आवेगा या नहीं? अच्छा मान लो, कि यदि वह पाटलिपुत्र पर चढ़ाई करने को आ ही गया, तो हम राक्षस का नाम ले कर चारों ओर उसी पर इसका दोष प्रकट कर सकेंगे अथवा नहीं? बस, इसी प्रकार के प्रश्न उठा उठा कर भागुरायण नित्यप्रति चाणक्य से वार्तालाप किया करते थे। इसके सिवाय भागुरायण ने यह भी सोच लिया था कि, अब हमने एक बार जहाज को समुद्र में छोड़ तो दिया है; परन्तु अब इसे किनारे लगाना चाहिए; और अपना कार्य इस प्रकार कर लेना चाहिए कि, जिससे हम को हानि भी न पहुँचने पावे। यह सोच कर अब उनको अपने कार्य के विषय में कुछ कुछ अभिमान भी होने लगा था। चाणक्य के तो वे अब एक प्रकार से शिष्य ही बन गये थे।

परन्तु चाणक्य को केवल एक यही उद्देश्य सिद्ध नहीं करना था। मुरादेवी के द्वारा उसकी प्रतिज्ञा—नन्द राजा को मारने की—पूर्ण करानी थी; और राक्षस को सदैव किसी न किसी चिन्ता में निमग्न रखना था। क्योंकि राक्षस को यदि एक बार भी यह मालूम हो जाता कि, उनको कोई धोखा दे रहा है, तो वे जागृत हो जाते, और चाणक्य का सारा व्यूह ही ढह पड़ता; इसलिए राक्षस का मन सदा किसी न किसी चिन्ता में निमग्न रखना और उसके अन्दर विश्वास भी बना रखना चाणक्य के

लिए बहुत आवश्यक था। मुरादेवी की प्रतिज्ञा अभी तक चाणक्य ने भागुरायण पर प्रकट नहीं होने दी थी । इसके सिवाय उन्होंने अपना भी सच्चा सच्चा परिचय नहीं दिया था कि, हम कौन हैं, और यहां वास्तव में किस उद्देश्य से आये हैं। हां, यह बात उन्होंने भागुरायण को अवश्य बतला दी थी कि, चन्द्रगुप्त वास्तव में कौन है; और हम इसे यहां क्यों ले आये हैं; और यह बात यदि उन्होंने भागुरायण को न बतलाई होती, तो वे भागुरायण को अपने पक्ष में भी नहीं ला सकते थे। चाणक्य यह भली भांति जानते थे कि, मगधराज के सेनापति या अमात्य इन दोनों में से जब तक एक कोई हमारे पक्ष में नहीं आ जायगा, तब तक हम अपने व्यूह की नीवँ ठीक ठीक नहीं जमा सकेंगे । नन्दों का नाश करने के लिए अमात्य कभी तैयार हो ही नहीं सकते। क्योंकि वे बड़े स्वामिभक्त हैं। इसलिए उनको अपने पक्ष में लाकर अपने उद्देश्य को सिद्ध करने की आशा रखना मानो मृगजल को प्राप्त करके उससे अपनी प्यास बुझाना है । इसलिए चाणक्य ने यह विचार ही अपने मन में नहीं आने दिया । उन्होंने सोचा कि, दो अधिकारियों में स्पर्धा का प्रादुर्भाव करके एक अधिकारी को दूसरे के विरुद्ध उभाड़ना एक सहज और अमोघ साधन है, इस लिए इसी साधन को सिद्ध करना चाहिए। इस के सिवाय उन्हों ने यह भी विचार किया कि, मुरादेवी के पुत्र का पक्ष यदि कोई ले सकता है, तो वह सेनापति ही है, इसलिए सेनापति भागुरायण को ही वश में करने का प्रयत्न करना चाहिए । अपने इसी विचार के अनुसार उन्होंने भागुरायण को वश में करने का प्रयत्न किया, और इस प्रयत्न में उनको कहां तक सफलता प्राप्त हुई, सो पाठकों को मालूम ही है ।

बीसवां परिच्छेद

अमात्य को पता भी नहीं !

बेचारे अमात्य को इस बात का कुछ भी प
नहीं था कि, उनके विरुद्ध एक कित .
बड़ा भारी षड्यंत्र रचा जा रहा है। इसमें
संदेह नहीं कि, अमात्य राक्षस एक बड़े
दूरदर्शी और चतुर मनुष्य थे: और सावधान
भी सदैव रहा करते थे: परन्तु जब किसी
मनुष्य पर बहुत दिन से कोई संकट नहीं
आता, तब उसमें कुछ गाफिलपन अवश्य ही आ जाता है; और
इसी नियम के अनुसार राक्षस में भी बिलकुल स्वाभाविक ही,
उनको न मालूम होते हुए, थोड़ा बहुत गाफिलपन आ गया
था। इधर कुछ दिनों से उन्हें सिर्फ एक ही चिन्ता हो रही थी;
और वह चिन्ता थी राजा धनानन्द के विषय में। धनानन्द राज-
काज बिलकुल नहीं देखता था: परन्तु राक्षस को इस विषय में
कोई चिन्ता नहीं थी। उनको चिन्ता थी राजा के आचरण की:
क्योंकि आजकल राजा रात-दिन मुरादेवी के मन्दिर में ऐश-
आराम और विलासिता में ही चूर रहता था। यह बात उनको
बिलकुल पसन्द नहीं थी। अस्तु, उनको इस बाद का तो कुछ
खयाल ही नहीं था कि इस समय यदि पाटलिपुत्र पर कोई
शत्रु धावा कर देगा, तो क्या हालत होगी; क्योंकि उनको पूर्ण
विश्वास था कि, जब तक हम स्वयं कुसुमपुर में मौजूद हैं,

तब तक किसी भी शत्रु को इस बात का साहस नहीं हो सकता कि, वह इस नगर की ओर तिरछी नज़र से देख जावे । इसके सिवाय हमारे सावधान रहते हुए स्वयं नगर में, अथवा राज्य में भी, कहीं कोई सिर नहीं उठा सकता। और यदि कहें कि, राजमहल में कोई गड़बड़ी मच सकती है, तो यह भी सम्भव नहीं, क्योंकि हम सदैव उधर से भी चौकन्ने रहते हैं। इस प्रकार अमात्य राक्षस को कोई भी विशेष चिन्ता नहीं थी, परन्तु उसी समय के लगभग जब एक दिन सुमतिका ने जाकर बिलकुल गोल माल तौर से, उनके कान में यह बतलाया कि, मुरादेवी की ओर से राजा के प्राणहरण करने का कोई न कोई उपाय हो रहा है, तब उनकी चित्तवृत्ति एकदम कैसी उद्बुद्ध हो गई होगी, इसकी कल्पना पाठक स्वयं कर सकते हैं। इसके बाद जब वे स्वयं राजा से मिलने गये और राजा से बातचीत हुई, तब उनके मन को अचानक एक बहुत बड़ा धक्का लगा; और वे विशेष सावधान हो गये। उन्होंने जब यह देखा कि, हम तो राजा को मुरादेवी के विषय में सावधान कर रहे हैं; और राजा दूसरे ही लोगों पर आशंका कर रहा है, तब उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि शायद यह मुरादेवी का ही कार्य है कि, जो राजा को इस प्रकार धोखा और अज्ञान में डाले हुए है। शायद वही ऐसा प्रयत्न कर रही है कि, जिससे राजा उसके विषय में तो शंका कर न सके; और दूसरों पर शंका करके उनके विषय में घृणा करने लगे । और यदि यही बात है, तब तो यही कहना चाहिए कि, मुरादेवी अपने प्रयत्न में बहुत ही सफलता प्राप्त कर रही है। यह सोच कर अमात्य राक्षस ने अब मुरादेवी के कार्यों की ही ओर विशेष ध्यान रखने का प्रबन्ध किया। और किसी ओर ध्यान देने की उनको चिन्ता ही न थी। चन्द्रगुप्त के विषय में पहले उनको जो शंका हुई थी,

उसका निराकरण हो ही गया था। इस लिए उसके विषय में अब उन्होंने यही निश्चय किया कि, चन्द्रगुप्त के यहां रहने से कोई हानि नहीं। यह तो एक प्रकार से राजकुमार सुमाल्य के लिए एक अच्छा साथी मिल गया। इसके पिता किराताधिपति ने हमको इतनी नम्रता के साथ पत्र लिखा है, इस लिए अब इसको यहाँ से हटाने की कोई आवश्यकता नहीं। इसको यहीं रहने दिया जाय। इसके विषय में अब विशेष जाँच करने अथवा उस पर कोई निगरानी रखने की भी आवश्यकता नहीं। यह सोचकर उन्होंने चन्द्रगुप्त की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। किन्तु इसके विरुद्ध यह अवश्य सोचा कि, चन्द्रगुप्त यदि यहाँ बना रहेगा; और सुमाल्य से यदि इसकी अच्छी मित्रता हो जायगी, तो आगे चल कर म्लेच्छ लोगों को दण्ड देने में भी इससे सहायता ही मिलेगी। यह सोच कर अमात्य ने उस राज पुत्र की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इधर किसी शत्रु के आक्रमण का भय अमात्य के स्वप्न में भी नहीं था। आसपास के राजाओं में ऐसा कौन साहस कर सकता था कि, जो कुसुमपुर की ओर केवल बुभुक्षित नेत्रों से देख भी जाता? इस लिए अब अमात्य को केवल एक यही चिन्ता रह गई कि, मुरादेवी के हाथ से राजा को छुड़ाने के लिए क्या उपाय करना चाहिए। और उसी उपाय की योजना का विचार अब वे करने लगे।

यह सोच लेना तो सहज है कि, अमुक अपाय पर अमुक उपाय की योजना करनी चाहिए; परन्तु उस उपाय को ठीक ठीक अपने मन में बैठा कर, और उसको फिर कार्यरूप में परिणत करना बड़ा कठिन कार्य है। राजा का अनिष्ट चेतनेवाली यदि कोई व्यक्ति बाहर की—अर्थात् प्रजाजनों में से—होती, तो राक्षस को ऐसी कठिनाई न पड़ती। तत्काल ही उसको पकड़ मँगवाते; और उसको दण्ड दे सकते थे, अथवा उसको कारागार

में डाल सकते थे। परन्तु यह ऐसा मौका था कि उपर्युक्त कोई भी उपाय काम नहीं दे सकता था। इस कारण राक्षस बड़ी चिन्ता में पड़े। राजा मुरा के पीछे कितना पागल हो रहा था, सो वे प्रत्यक्ष ही देख आये थे। इसलिए अब वे इसी विचार में थे कि, मुरा ने जो मोहनी मंत्र राजा पर चलाया है, उसको दूर करने के लिए कोई बहुत अच्छा पचाक्षरी तलाश करना चाहिए। इतने में उनके पास यह खबर आई कि सुमतिका आप से मिलना चाहती है। अमात्य ने सोचा कि, इसको अपनी मुट्ठी में रखना हमारा पहला काम है, अतएव उन्होंने तत्काल ही उसे भीतर बुला लिया। राक्षस ने सोचा था कि, अवश्य ही यह आज कोई न कोई नवीन समाचार लाई होगी, और उनका ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था। अस्तु। सुमतिका भीतर आई; और नियमानुसार राक्षस को वन्दना इत्यादि न करते हुए, एकदम घबड़ाई हुई आवाज़ से बोली, "आर्यश्रेष्ठ, मेरी रक्षा करो—अब मेरी कुशल नहीं।"

अमात्य राक्षस सुमतिका के घबड़ाने और उसके उन भयपूर्ण दृष्टिक्षेपों का कुछ भी तात्पर्य नहीं समझ सके। सुमतिका की दशा इस समय ठीक ऐसी ही हो रही थी कि, जैसे व्याघ्र से पीछा की हुई कोई हरिणी भागती हुई किसी झाड़ी में घुस जावे; और बहुत ही भयपूर्ण दृष्टि से चौकन्नी होकर इधर उधर देखती हो; और ज़ोर ज़ोर से हाँफती जाती हो! राक्षस ने उसकी यह दशा देख कर तुरन्त ही कहा, "सुमतिकाबाई, घबड़ाओ मत! बतलाओ तो, तुमको क्या हुआ? राक्षस के घर में अब तुम अपने को बिलकुल सुरक्षित समझो।" इस प्रकार आश्वासनयुक्त वचन कह कर अमात्य ने उसकी ओर देखा। फिर भी सुमतिका की घबड़ाहट दूर नहीं हुई, वह थर थर काँप रही थी; और घबड़ाहट के मारे उसके मुँह से बोल नहीं

निकल रहा था। यह देख कर राक्षस ने सोचा कि, अब जब तक थोड़ी देर तक हम इसको शान्त नहीं रहने देंगे, तब तक यह कुछ भी उत्तर नहीं देगी। इसलिए वे सिर्फ उसके मुँह की ओर देखते भर रहे। परन्तु इस बात की उनको कुछ भी कल्पना नहीं हो सकी कि, यह इतनी घबड़ाहट क्यों दिखला रही है; और किससे रक्षा के लिए हम से प्रार्थना कर रही है। कुछ समय व्यतीत हुआ। सुमतिका अब कुछ शान्त हुई, और बोली, "आर्यश्रेष्ठ, मेरी कुशल नहीं दिखाई देती। मेरी स्वामिनी को मालूम हो गया कि, मैं उसके महल की खबरें आप के पास आकर बतलाया करती हूँ। कह नहीं सकती, उसको यह खबर किसने दी। केवल हिरण्यगुप्त को ही मेरे विषय में यह बात मालूम है: और मैंने किसी से इस विषय में कुछ कहा ही नहीं। और हिरण्यगुप्त आपका बिलकुल विश्वासपात्र नौकर है—वह इस बात को किसी से बतला ही नहीं सकता। इसके सिवाय मुरादेवी से तो उसकी कभी भेट ही नहीं हुई। फिर यह बात देवी के कानों तक कैसे पहुँची, और सो भी ऐसे समय में पहुँची कि, जिस समय उनको मेरे विषय में ऐसा संशय नहीं होना चाहिए था। यह समय एक बहुत ही महत्व का समय था। देवी ने महाराज का घात करने की जो योजना की है, वह अब मुझे बिलकुल मालूम ही होनेवाली थी: और ऐसे ही समय में यह विघ्न आ गया। अब मैं क्या करूं? मैं बाहर जाकर—आप के यहाँ आकर उनके महल की सब खबरें बतलाया करती हूँ—यह बात उनको मालूम हो गई है, और वे अब मुझको इसके लिए कठोर दण्ड देना चाहती हैं: और वह दण्ड आज ही देने का उन्होंने निश्चय किया है, यह भी मैंने सुना है—यही नहीं, बल्कि मुझे जिस जाल में फँसाने के लिए उन्होंने विचार किया है, उसका

भी मुझे पता चल गया है। इसीलिए मैं प्राण बचाने को भाग आई हूँ। महाराज के प्राणों पर यह राक्षसी किस प्रकार हाथ चलाना चाहती है, इसका पता अब मुझे पूरा पूरा लगने ही वाला था; और मैं उससे मीठी मीठी बातें करके उसके पेट में पैठने ही वाली थी कि इतने में यह विघ्न आ उपस्थित हुआ! अब क्या करूँ? एक स्वामी से द्रोह करके दूसरे की प्रसन्नता प्राप्त करनेवाले को ऐसा दण्ड मिलना ही चाहिए। मैं यदि आपके बुलाने से न आई होती, अपनी स्वामिनी की चुगली करने का नीच काम स्वीकार न किया होता, तो आज मेरे ऊपर ऐसी नौबत क्यों आती? अब वह मुरादेवी अपने नाम की है! वह कभी मानने की नहीं! तीनों लोक में चाहे जहां मैं जाऊंगी, वह मुझे ढूँढ़ कर मेरा प्राण अवश्य लेगी; फिर भी मैंने आपकी सेवा स्वीकार की है, इस लिए स्वाभाविक ही मेरे मन में आया कि, आप ही के चरणों में जाकर शरण लूं।"

"अच्छा, अब तुझको अपने प्राणों का भय न करना चाहिए: तू निर्भय होकर यहां रह। किन्तु सुमतिके, महाराज के प्राणों पर ऐसा कौन सा संकट आने वाला है? उसको तो ज़रा बतला। तुझको इस विषय में क्या मालूम हुआ है? सुमतिके, अब महाराज के प्राण बचाने का तो अवश्य ही कोई न कोई उपाय हमको करना पड़ेगा। तुझ को जितना कुछ इस विषय में मालूम हुआ है, उतना ही तू मुझ को बतला। फिर मैं इस विषय में कोई दूसरा प्रबन्ध करूंगा!"

"अमात्यराज, महाराज के प्राणों के लिए फिर क्या मैं ही अपने प्राणों को धोखे में नहीं डालूंगी? क्या उनके प्राणों की अपेक्षा मुझे अपने प्राण अधिक प्यारे हैं? उनके ही जीवन से तो हम सब प्रजाजनों का गुज़ारा है। मुझ

को अब भी इतना उत्साह है कि, मैं फिर से अपनी स्वामिनी का क्रोध शान्त करके उसकी कृपा को फिर से सम्पादन कर लूंगी। परन्तु क्या बतलाऊं? ऐसे ऐसे विघ्नों के कारण ही जान आफत में आ रही है! आप कहते हैं कि, दूसरा प्रबन्ध करेंगे; पर इस के लिए जब आपको समय मिलेगा, तभी तो? मेरा खयाल है—खयाल ही नहीं है, बल्कि विश्वास है कि, एक ही दो दिन में प्रायः—" इतना कह कर सुमतिका बीच ही में ठहर गई; और बिलकुल स्पष्ट रूप से शरीर पर रोंगटे खड़े होने का आविर्भाव दिखलाया।

राक्षस ने उसकी वह चेष्टा देख कर अत्यन्त चिन्तातुर होकर पूछा, "क्या? क्या? एक ही दो दिन में क्या?"

"क्या बताऊं आर्यश्रेष्ठ, मुरादेवी अपने वैधव्य के लिए मानो उत्सुक सी हो रही है। कोई कुमारिका विवाह के लिए भी इतनी उत्सुक न होती होगी, जितनी वह वैधव्य के लिए उत्सुक दिखाई दे रही है।"

"अरी, तू कहती क्या है? स्पष्ट क्यों नहीं बतलाती? सुमतिके, ऐसी गोलमाल बातें मत कर।"

"अमात्यराज, स्पष्ट क्या बतलाऊं? अभी मुझे पूरी पूरी बात मालूम भी नहीं होने पाई कि बीच में यह विघ्न आगया; इस लिए स्पष्ट मैं क्या बतलाऊं?"

"सुमतिके, महाराज पर यदि सचमुच ही तेरी सच्ची भक्ति है, तो तू फिर भी वहां जाकर एक बार फिर अपनी स्वमिनी को प्रसन्न कर; उसके क्रोध की शान्ति करके उसकी कृपा सम्पादन कर। उसके विश्वास में फिर से प्रविष्ट होकर, जो कुछ भयंकर कार्य वह करना चाहती हो, उसका पूरा पूरा समाचार लाकर मझको बहुत जल्द बतला।"

सुमतिका फिर घबड़ाई हुई आवाज़ से कहती है, "आर्य, आपकी आज्ञा के अनुसार मैं जाऊंगी सही; पर अब इतना सब करने के लिए अवकाश कहां है? वह भयंकर कार्य तो दो ही तीन दिन में होनेवाला है। मैं यदि फिर जाऊंगी, तो मुरा-देवी यही समझेगी कि, फिर यह चुगली करने का काम करने को आगई; और यह समझ कर वह तत्काल ही मुझे कारागार में डलवा देगी, कभी छोड़ नहीं सकती। हमको यदि कोई उपाय करना है, तो तत्काल ही करना चाहिए; और इसी लिए मैं आप के पास आई। यह बात मैं पहले ही एक बार आपको बतला गई थी कि, ऐसा कोई न कोई भयंकर कार्य होनेवाला है; और अब आपको यह सूचित करने आई हूँ कि, वह भयंकर कार्य अब बहुत जल्द होनेवाला है। इस समय मैं आप के पास तक यह ख़बर पहुँचाने को आ सकी, यही बड़े सौभाग्य की बात है।"

राक्षस कुछ भी नहीं समझ सके कि, यह इस प्रकार की गोलमाल बातें क्यों करती है। उन्होंने सोचा कि, पहले तो यह "रक्षा करो, रक्षा करो" कह कर चिल्लाती हुई, बड़ी घबड़ाहट के साथ, यहां आई। फिर इसने यह जतलाया कि, हिरण्यगुप्त के ही कारण मेरे गुप्तचर होने की बात फूटी होगी। इसके बाद इसने यह भी कहा कि, मैं फिर लौट जाऊंगी; और अपने प्राणों को भी धोखे में डालकर आपका काम करूंगी; और अब हम, जब कहते हैं कि, तू जा, तब यह जाने में भी आनाकानी करती है—यह बात क्या है? राक्षस बड़े विचार में पड़े।

इक्कीसवां परिच्छेद

अमात्य ने क्या किया !

इस प्रकार सुमतिका राक्षस के मन को चंचल करने का प्रयत्न कर रही थी। राक्षस ने सोचा कि, राजा के प्राणों पर कोई न कोई भयंकर संकट अवश्य आनेवाला है; और वह संकट मुरादेवी ही ला रही है। इसके सिवाय वह संकट अब बहुत जल्द, एक ही दो दिन में, आनेवाला है; पर केवल इतना ही मालूम होने से क्या लाभ ? कोई न कोई मज़बूत ख़बर चाहिए—गोलमाल खबरों से क्या अर्थ ? यह सोच कर राक्षस बराबर सुमतिका से उस विषय में प्रश्न कर रहे थे; और सुमतिका भी चकराती और बड़-बड़ाती हुई सी उन प्रश्नों के मनमाने उत्तर दे रही थी। उन उत्तरों से राक्षस का कुछ भी समाधान न हुआ; और उन्होंने सोचा कि, बड़े आश्चर्य की बात है, हम इतने दूरदर्शी और भारी राजनीतिज्ञ होने पर भी इस कार्य में सफलता नहीं प्राप्त कर सके दुनियाँ भर की खबरें मँगवा कर हम इतने बड़े साम्राज्य का इतना भारी प्रबन्ध किया करते हैं; पर आज हमारे ही राजा की जान पर नौबत आ रही है; और हम अभी तक इस विषय में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं कर सके—इतनी थोड़ी बात के लिए हम इतने भारी असमर्थ हो रहे हैं ! यह सोच कर राक्षस को मन ही मन बड़ा विषाद हुआ। उनको कुछ सूझने ही न लगा। इसलिए

अन्त में अत्यन्त निराश हो कर उन्होंने सुमतिका से कहा, "सुमतिके, कुछ भी हो, अब तू अपने स्वामी के प्राणों के लिए अपने प्राणों की भी परवा मत कर । चाहे जो कर; पर मुरादेवी के सारे कपट का वृत्तान्त लाकर मुझको बतला । वह क्या भयंकर कार्य किस प्रकार करना चाहती है, सो पूरा पूरा बहुत जल्द मालूम करके मुझको बतला । इस समय तू बिलकुल निर्भय हो कर अपना कार्य कर । तेरे प्राणों की रक्षा होगी, मैं इसकी जिम्मेदारी लेता हूँ । जा, अब तू सब समाचार पूरे पूरे ले आ ।"

"अमात्यराज, आप आज्ञा दे रहे हैं, तो मैं अवश्य जाऊंगी; पर यह मैं विश्वास नहीं दिला सकती कि, मैं अब कोई समाचार बतलाने के लिए आपके पास तक आ सकूंगी । मुरादेवी को मेरे ऊपर पूरा पूरा सन्देह हो गया है । अवश्य ही उस सन्देह को अब वह शब्दों द्वारा प्रकट नहीं करेगी; किन्तु जहां मैं उसके सामने गई कि, वह मुझे जान से मार डालेगी; अथवा कारागार में ही डलवा देगी । कह नहीं सकती कि, वह क्या करेगी; और और क्या न करेगी । इस लिए आप मेरी एक बात सुनें, तो बहुत अच्छा हो । आप यह तो अवश्य ही ख़याल करेंगे कि, मैं एक क्षुद्र दासी हूँ—आपको क्या बतलाऊंगी ! "छोटे मुँह बड़ी बात" वाली कहावत है; पर क्या करूं—और कोई उपाय ही नहीं है, इस लिए बतलाती हूँ । हां, आप एक काम करें कि, किसी न किसी निमित्त से आप एक बार फिर महाराज से मिलें; और उनसे स्पष्ट कह कर, अथवा और कोई उपाय कर के, आप उनको उस महल से निकाल लावें । परन्तु यह काम भी यदि आप आज का आज ही कर लें—अथवा बहुत हो, तो कल शाम तक कर लें—तभी ठीक होगा । ऐसा करने से महाराज के प्राण बच सकते हैं । परन्तु कल सायंकाल तक यदि आपने कोई प्रबन्ध नहीं कर पाया, तो फिर अपने हाथ में कुछ न रहेगा;

इस बात को आप पूरा ध्यान में रख लें। महाराज यदि मुरादेवी के महल से बाहर आ जायँगे, तभी उनके प्राण बचने की कुछ सम्भावना हो सकती है, अन्यथा हमारे इस पाटलिपुत्र को अनाथ होने की ही नौबत आ जायगी। इसमें बिलकुल सन्देह नहीं। अब इस से अधिक आप से मैं क्या कहूँ? आप आज्ञा ही देते हैं, तो मैं फिर एक वार जाती हूँ; और देखती हूं, यदि कुछ खवर लगे! किन्तु मुझे यह तो आशा बिलकुल ही नहीं है कि, अब मैं फिर आपके पास तक कुछ बतलाने के लिए आ सकूंगी। इसके आगे जो कुछ दैव ने रचा हो!"

सुमतिका यह सब कह रही थी; पर राक्षस का ध्यान, ऐसा जान पड़ता था कि, उसकी ओर पूरा पूरा नहीं है। वह उपर्युक्त भाषण करने के बाद फिर वहां नहीं ठहरी; और एकदम चली गई। अमात्य से उसने यह भी नहीं कहा कि, अब मैं जाती हूँ। इधर राक्षस का मन कुछ कुछ अपने विचार में और कुछ सुमतिका के भाषण की ओर था। इस लिए थोड़ी देर तक तो उनके यह भी ध्यान में न आया कि, सुमतिका यहां से चली गई। जब अपने विचारों से उनका ध्यान टूटा, तब उनको मालूम हुआ कि, सुमतिका चली गई; और उस समय सुमतिका की इस हरकत पर उनको बड़ा आश्चर्य भी हुआ कि, देखो, हमसे बिना पूछे-विचारे ही वह यहां से अचानक कैसे चली गई। जो हो, उन्होंने एकदम द्वारपाल को पुकारा; और पूछा कि, क्या सुमतिका चली गई। द्वारपाल ने कहा, "हां, स्वामिन, वह तो चली गई।" यह उत्तर पाते ही राक्षस ने फिर और कुछ नहीं कहा; और अपने विचारों में ही पूरे पूरे निमग्न होगये।

अचानक उनके मन में यह भाव उठा कि, अब हमारे इस मगधराज्य पर कि, जो इतने दिन से अपनी सुख-समृद्धि के लिए

विध्यान हो रहा है, अवश्य ही कोई न कोई संकट आनेवाला है। इस ख़याल से, कि नन्द्वंश उत्तम प्रकार से रहे, हमने शूद्री—वृषली—को राजमहिषी नहीं होने दिया। राजा के, उसके उदर से, पुत्र उत्पन्न हुआ, उसके भी नाश करा डालने का हमने प्रबन्ध किया, जिससे वह अशुद्ध लड़का कहीं आगे-पीछे इस शुद्ध वंश की गद्दी पर न बैठ जावे। यह सब कुछ हमने किया; किन्तु आज उसी लड़के की माता—वही वृषली—राजा का बिलकुल निःश्वास ही बन बैठी है; और हम भी आज उसके लिए हैरान हो रहे हैं। राजा से बहुत देर तक बातचीत करने की तो बात ही जाने दो—उसका दर्शन तक उसने हमारे लिए दुर्लभ कर रखा है; और फिर भी हम अब तक इसका कोई भी प्रबन्ध नहीं कर सकें, यह और भी बिलक्षण बात है। किन्तु करें क्या? उस दिन तो हमने शत्रु की चढ़ाई होने के बहाने से किसी प्रकार महाराज से भेंट भी कर ली; किन्तु अब की बार कौन सा बहाना निकालें कि, जिससे महाराज की भेंट हो। भेंट हो जाने पर तो हम महाराज को इस बार पूरा पूरा सावधान कर देंगे, किन्तु भेंट कैसे हो? मुख्य अमात्य और राजा की ही भेंट में जिस राज्य के अन्दर इतनी कठिनाई उपस्थित होने लगी, उस राज्य का कल्याण अब नहीं हो सकता। अस्तु। हमारे हाथ से अब भी जो कुछ हो सकेगा, वह हम अवश्य ही करेंगे। यह सोच कर राक्षस एकदम वहां से उठे; और महाराज के नाम एक पत्र लिख कर उसको अपने एक अत्यन्त विश्वासपात्र मनुष्य के द्वारा मुरादेवी के महल में भेज दिया।

कह नहीं सकते, क्या विचित्रता हुई; किन्तु राक्षस का वह पत्र ज्यों ही मुरादेवी के महल, पर पहुँचा, त्यों ही उसको महाराज के हाथ तक पहुँचाने का सारा प्रबन्ध होगया—जैसे पहले ही से लोग उस प्रबन्ध के लिए तैयार हों! बात की बात में वह

पत्र महाराज के हाथ में पहुँच गया। मुरादेवी महाराज के पास मौजूद ही थी। महाराज ने पत्र खोला; और उसको पढ़ना शुरू किया, कि इतने मुरादेवी कहती है, "ऐसा किसका ज़रूरी पत्र आगया ?"

राजाः—और किसी का नहीं—अमात्य का है।

देवीः—अमात्यराज आजकल पत्र बहुत भेजा करते हैं! जान पड़ता है, स्वयं भेट के लिए आने में उनको कष्ट होता है! आप का प्रेम तो मुझ पर फिर हो गया है; पर उनका द्वेष अभी नहीं गया। जान पड़ता है, मेरे अन्तःपुर में आने का अवसर टालने के लिए ही उन्होंने पत्र लिखने की युक्ति निकाली है!

राजाः—शायद उनका यह तात्पर्य है कि, स्वयं आने से भेट होने में कठिनाई पड़ती है, सुनवाई नहीं होती।

देवी मुरा—अमात्य की सुनवाई नहीं होती? आने का जब मन ही नहीं होता, तब अनेक बहाने निकाले जा सकते हैं। ख़ैर, इसमें लिखा क्या है?

राजाः—इसमें यही लिखा है कि, कोई बड़ा भारी राज काज आन पड़ा है, इस लिए बिलकुल एकान्त में मिलना चाहते हैं।

देवी मुराः—पिछली ही बार की तरह इस बार भी कोई राज-काज निकाला होगा। अब की बार न जाने कौन से शत्रु का धावा होनेवाला है? वे बड़े स्वामिभक्त हैं, इस लिए आपके कुशल के विषय में, ऐसा जान पड़ता है, उनको सदैव सन्देह ही बना रहता है। कहीं उनको यह सन्देह तो नहीं होता कि, मैं आप के प्राणों को कुछ कर डालूंगी? मैं कुछ कह नहीं सकती; पर ऐसा जान पड़ता है कि, अब उनको कुछ इसी प्रकार का सन्देह होने लगा है। जो हो, मैं इस झगड़े में नहीं पड़ती। आपके चरणों के अतिरिक्त अन्य किसी बात की

ओर ध्यान देने का मुझे अवकाश ही नहीं है; और न इच्छा ही है। अन्यथा मैं भली भाँति जान लेती, कि उनके मन में क्या बात है। परन्तु मैं तो यही सोचती हूँ कि, आपका मन जब तक मेरे विषय में निष्कलंक है, तब तक मुझे किसी का भय नहीं। मैं बिलकुल निश्शंक हूँ। और कोई मेरे विषय में चाहे जो सन्देह किया करे, अथवा चाहे जो कहा करे, मुझे इसकी कोई परवा नहीं—और न ऐसी बातों की चौकसी करने का ही विचार मेरे जी में आता है। आपके चरणों—सिर्फ आप ही के चरणों—के आधार पर मैं बिलकुल निश्शंक, निर्भय और निश्चिन्त हूँ। खैर—अमात्य ने ऐसा लिखा क्या है?

राजाः—यही लिखा है कि, कोई बड़े महत्व का राजकाज आ गया है, इसलिए कृपा कर के जितनी जल्दी हो सके, एक बार दर्शनों की आज्ञा दें और जो कुछ प्रार्थना करूँ, उसको सुन लें। बस, इसके सिवाय और क्या लिखेंगे? किन्तु मुझे तो अब तेरे बिना एक क्षण भर भी चैन नहीं आता; और इनके ये रोज ही राज-काज निकल आते हैं। मैंने कह दिया है कि, सुमाल्य मौजूद ही है, उसके नाम से चाहे जो तुम करते रहो, मुझ को व्यर्थ के लिए क्यों तकलीफ देते हो? ऐसा समझ लो कि, पिता जी की तरह मैं भी वनवास को चला गया। परन्तु ये मानते ही नहीं—क्या करें?

देवी मुराः—आर्यपुत्र, प्रजा का ऐसा ख़्याल नहीं होना चाहिए कि, मेरे कारण आपके राजकाज ऐसे ही पड़े रहते हैं, अथवा मेरे कारण आप राजकाज की ओर ध्यान नहीं देते; क्योंकि यदि ऐसा ख़याल प्रजा के मन में बैठ जायगा, तो सभी हमसे द्वेष रखने लगेंगे। अभी तक तो सिर्फ अमात्य के समान कुछ ही लोग शायद मुझ से द्वेष रखते होंगे; परन्तु अब आगे किसी का भी ऐसा ख़याल न होना चाहिए कि, आप मेरी ही धुन

में पड़ कर बड़े बड़े राजकाजों के लिए भी अमात्य से नहीं मिलते हैं। ऐसा ख़याल होना ठीक नहीं है। इस लिए आप अमात्य को बुलाकर अवश्य उनसे मिलें; और जो कुछ वे कहें, उसे अच्छी तरह सुन लें।

राजा—होगी ऐसी ही कोई बात; और यदि कोई महत्व की बात होगी, तो क्या वे पत्र द्वारा नहीं प्रकट कर सकते हैं ? कोई बात नहीं—मैं उनको लिखे देता हूँ कि……"

"नहीं, नहीं, आर्यपुत्र" मुरादेवी तुरन्त ही कहती है, "आप ऐसा न करें। आप की इच्छा चाहे न हो; किन्तु मेरी प्रार्थना मान लें, आप उनसे अवश्य मिल लें: और जो कुछ वे कहें, शान्तिपूर्वक सुन लें: तथा राजकाज में ध्यान दें। क्योंकि यदि कोई बाहरी राजा यह सुन पावेगा कि, अमुक राज्य का राजा राजकाज बिलकुल ही नहीं देखता, तो सचमुच ही राज्य पर बड़ा भारी संकट आ सकता है। इसी लिए मेरी प्रार्थना है कि, आप चाहे वने यहीं रहें: किन्तु अमात्य को समय समय पर बुलवा कर उनसे सब राजकाज समझ लिया करें; उसमें पूरा ध्यान दें। मेरी बिनती सिर्फ इतनी ही है कि, आप यहां से कहीं बाहर न जावें; क्योंकि मुझे आप के जीवन की बड़ी चिन्ता है; बाहर अनेक शत्रु हैं। उस दिन के अपूप आपने देख ही लिये ! बस, इसी लिये मेरी प्रार्थना है। अपूप भेजने से यहां कोई काम नहीं बना: मैं बिलकुल सावधान थी, कभी धोखे में नहीं आ सकती थी। इसी लिए अब आप को यहां से कहीं दूसरी जगह ले जाने का प्रयत्न होगा; और यह बात बिलकुल स्पष्ट है। इसलिए इतना आप सम्हाले रहें; और मैं तो इसके लिए अपने प्राणों पर भी तुली बैठी हूँ। आर्यपुत्र, आप यदि कुशल से हैं, तो मेरा भी यह सारा ऐश्वर्य है: और यदि आप के जी को कुछ होगया, तो फिर मेरी क्या गति होगी, सो कुछ कही नहीं

जा सकती। न जाने मेरे शत्रु उस दशा में मुझे क्या करेंगे—जीता जला देंगे, या भेड़ियों से नुचवा नुचवा कर खिला देंगे—कुछ कहा नहीं जा सकता।

राजाः—देवी मुरे; यह क्या कहती है? इतना विलक्षण अनुभव हो चुका है; और फिर भी मैं कहीं जाऊंगा? मैं कभी नहीं जाऊँगा। जिन पर मुझे सन्देह है, उनको बुलवा कर अभी मैंने उनको देहान्त-दण्ड दिया होता; पर तू ही इतने कोमल हृदय की है। तू ही कहती है कि, अभी कुछ न करो, उतावली करना ठीक नहीं; इसी कारण मैं कुछ नहीं करता, अन्यथा अब तक कभी का मैंने उनको यथोचित दण्ड दे दिया होता। अस्तु। अब क्या कहती है? अमात्य को बुलवा कर उनका कथन सुन लें? अच्छा। कौन है रे उधर? अमात्य का कौन आदमी आया है? उससे कह कि, वह अमात्य से जाकर कह दे कि, आप चले आवें, मैं आप से मिलने को तैयार हूँ।

जो दूत अमात्य का पत्र ले आया था, वह महाराज की उपर्युक्त जबानी संदेशा ले कर चला गया। थोड़ी देर बाद अमात्य भी आकर उपस्थित हुए। महाराज ने उनका यथोचित स्वागत किया; और फिर पूछा, "कहिये, सब प्रबन्ध ठीक है न?" राक्षस ने भी महाराज के प्रश्न का यथोचित उत्तर दिया; और फिर धीरे से ही कहा, "महाराज, एक प्रार्थना करनी है, कृपा कर सुन लें तो......"

"हां हां राजा" धनानन्द एकदम बीच में बोल उठा, "कुछ इधर उधर न करते हुए एकदम जो कुछ आप को कहना हो, कह डालिये। संकोच क्यों करते हैं? जिस राजकाज में खास तौर पर मेरी ही आवश्यकता आ पड़ेगी, उसको सुनने के लिए मैं तैयार ही हूँ; परन्तु मेरे बिना ही जो राजकाज हो सकता है—

उसको व्यर्थ के लिए मेरे पास तक लाने की क्या आवश्यकता ? कहिये, आप को क्या कहना है ?"

"महाराज !" राक्षस कहते हैं, "प्रार्थना इतनी ही है कि, श्रीमान् राजसभा में नहीं आते, कोई राजकाज नहीं देखते, इससे मगध देश के शत्रु ऐसा समझने लगे हैं कि, इस राज्य में अब बड़ी अंधेर हो रही है। प्रजा में भी इसी प्रकार का ख़याल फैल रहा है। इस लिए कृपा करके आप प्रति दिन कम से कम एक बार तो अवश्य ही प्रजाजनों को दर्शन दे दिया करें: और उनके जो उलाहने हों. उनको सुन लिया करें। आज और कल का मुहूर्त बहुत उत्तम है। इस लिए कल अथवा आज ही यदि श्रीमान् की इच्छा हो, तो बड़ा उत्तम है—श्रीमान् राजसभा में—कम से कम सभागृह के अपने सिंहासन पर—दो घड़ी आकर बैठ जावें, तो सब काम ठीक हो जाय।"

राक्षस का अभिप्राय यह था कि, महाराज धनानन्द, चाहे जिस तरह से हो, चाहे थोड़ी ही देर के लिए क्यों न हो—किन्तु इसी एक दो दिन के बीच में मुरादेवी के रंगमहल से बाहर निकल आवें। इससे सब काम ठीक हो जायगा; और इसी कारण उन्होंने इस समय महाराज के सामने वह बहाना किया था। इसके सिवाय उन्होंने यह भी सोचा था कि, यदि हमारा यह प्रयत्न सिद्ध हो जायगा, तब तो ठीक ही है; अन्यथा दूसरी युक्ति करेंगे: परन्तु राजा को किसी न किसी प्रकार इस महल से बाहर निकाल कर राज-सभा में तो अवश्य ही ले जाना चाहिए; क्योंकि वहां पर हम स्वतंत्रतापूर्वक महाराज से सब कुछ बतला भी सकेंगे। अस्तु। राजा अमात्य का उपर्युक्त कथन सुनकर कुछ हँसा; और फिर बोला "हमने अपना राजकाज तुम पर और सुमाल्य पर छोड़ दिया है, और यहां चुपके विश्रान्ति लेने के लिए बैठे हैं; किन्तु फिर भी तुम लोग हमको सताना

नहीं छोड़ते—अब हम क्या कहें ? तुम से मैं ने पहले ही कह दिया है कि, जब कोई बहुत ही महत्वपूर्ण राजकाज आ पड़े, तब तुम मेरे पास कष्ट देने को आओ: अन्यथा, तुम वहां का वहीं अपना सारा प्रबन्ध कर लिया करो। मेरे पास आने की क्या ज़रूरत ? सच तो यह है कि, तुम्हारे कथनानुसार प्रति दिन राजसभा में आकर बैठना मुझसे नहीं हो सकेगा। मुझ को अब शान्ति चाहिए।"

"महाराज, आप को शान्ति चाहिए—यह बात आप का यह सेवक जानता है। शान्ति आप अवश्य लें; परन्तु दिन में सिर्फ दो घड़ी के लिए यदि आप राजसभा में आ जाया करेंगे, तो बहुत कुछ काम होगा। और इसी लिए मैं ने श्रीमान से निवेदन किया है। कम से कम आप कल तो अवश्य ही आवें।"

"अमात्यवर, आप का अत्यन्त आग्रह है, इस लिए मैं कल आने का विचार करूंगा; परन्तु रोज रोज आने का कष्ट अब मुझ से नहीं हो सकेगा। मैं प्रिय मुरा से पूछ कर आपको सन्देश भेज दूंगा।"

इतने में ओट में बैठी हुई मुरादेवी ज़ोर से कहती है, "राजकाज के लिए भला मैं क्यों मना करूँगी ? कल ही क्या—मैं ने तो कई बार आप से प्रार्थना की है कि, आप प्रति दिन अपना राजकाज अवश्य देखा करें।"

यह सुनकर राजा हँसा, और बोला—"अच्छा तो, है भाई अनुज्ञा—अब मैं कल अवश्य आऊंगा।"

यह सुन कर राक्षस को आनन्द हुआ; परन्तु दूसरे दिन राक्षस का वह आनन्द—वास्तव में आनन्द ही रहा, अथवा दुःख का कारण हुआ, सो आगे चलकर मालूम होगा !

बाईसवां परिच्छेद

मुरादेवी की कारस्तानी।
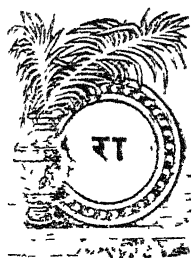
राक्षस ने जब यह देखा कि, महाराज ने हमारी प्रार्थना को मान कर कल राजसभा में आना स्वीकार किया है, तब उनको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने सोचा था कि, धनानन्द ज्यों ही एक बार मुरादेवी के अन्तरंग से बाहर निकला, त्यों ही फिर हमारा कार्य होने में कोई विलम्ब न लगेगा। मुरादेवी से अलग होकर राजा यदि क्षण भर भी हम से एकान्त में मिलेगा, तो फिर हम अपनी वक्तृत्वशक्ति का उपयोग करके उसको मना लेंगे—उसके आगे बड़े बड़े महत्वपूर्ण राजकाज रख देंगे और फिर उसको हम मुरादेवी के अन्तःपुर में जाने ही न देंगे; और जितनी देर राजा मुरादेवी से अलग रहेगा, उतनी देर में हम मुरादेवी के विरुद्ध अनेक बातें उसके मन में भर देंगे; और ऐसा भी प्रबन्ध करेंगे कि, फिर राजा मुरादेवी के रंगमहल में जा ही नहीं सकेगा। इस प्रकार राक्षस ने अनेक आशाएं अपने मन में बाँधी थीं। इसलिए जब उन्होंने देखा कि राजा ने अब राजसभा में आना स्वीकार कर लिया, तब उन्होंने समझा कि, अब आधे से अधिक हमारा कार्य हो चुका। अतएव वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने समझा कि, यह हमने एक बड़ा भारी कार्य कर लिया।

अस्तु; राक्षस जब राजा के पास से उठ कर चले गये, तब मुरादेवी बड़े प्रेम से हँसती हुई और आंखें मटकाती हुई राजा के पास आई; और बोली, "वाह! कैसी विचित्रता है! कोई अपने मन में समझेगा कि, जैसे मैं ही आपको यहाँ से बाहर जाने नहीं देती—सचमुच ही, क्या मैं आप से कहती हूँ कि, आप राजकाज करने के लिए भी न जावें? लोगों का ऐसा ख़याल हो गया है सही; और लोग ऐसा कहते भी हैं, यह बात मैंने सुनी है।"

"लोग क्या झूठ कहते हैं?" राजा ने बड़े प्रेम से उसके उस सुन्दर और केतकीवर्ण कपोल में उँगली मार कर हास्य-पूर्वक कहा।

राजा के उस प्रेम-प्रहार से आनन्दित होकर, परन्तु मिथ्या क्रोध प्रकट करके, नेत्रकटाक्ष फेंकती हुई और भौंहें आकुंचित करती हुई मुरादेवी बोली, "आप भी क्या ऐसा ही कहने लगे? तब फिर यदि लोग कहें, तो इसमें आश्चर्य क्या? क्या मैं आपसे कहती हूँ कि, आप राजसभा में न जावें? क्या मैं कहती हूँ कि, आप राजकाज न देखें? मैंने ऐसा कब कहा?"

"एक बार नहीं, दस बार कहा! एक ही बार कहा होता, तो तुरन्त बतला देता कि, अमुक समय कहा—परन्तु दस बार नहीं, असंख्य बार जो बात कही गई, उसका समय कौन सा बतलाया जाय?"

मुरादेवी ने यह सुन कर और भी विशेष अविर्भाव दिखलाते हुए कहा, "अच्छा कहा सही! मैं जानती हूँ कि, आपके बाहर जाने में बहुत ख़तरा है; और इसी कारण मैंने कहा; और जब तक मुझे अपनी श्वेताम्बरी की मृत्यु की याद न भूलेगी, तब तक मेरे मन से यह बात कभी न जायगी। अमात्यराज के मन में चाहे कुछ भी न हो; पर अन्य लोगों के विषय में तो मुझे

पूरा पूरा विश्वास है कि, वे आप के प्राण लेने का कोई न कोई उपाय अवश्य कर रहे हैं। ऐसी दशा में आपको......"

परन्तु इतना कहते कहते मुरादेवी का कंठ इतना भर आया; और आंखें इतनी भर आईं कि, आगे वह कुछ कह ही न सकी। सुमतिका वहीं पास ही एक ओर खड़ी थी। सो वह मुरादेवी की उक्त दशा को देख कर एकदम बोल उठी, "देवी जी, यह क्या आप कर रही हैं? आप जिस अवस्था में हैं, उस अवस्था में आप को रोना कदापि न चाहिए—आनन्द में ही रहना चाहिए—अभी कल ही धात्रिका ने कहा था! और आप भी तो महाराज को अपने ही मुख से वह आनन्द-समाचार सुनानेवाली थीं! उसको सुन कर महाराज को कितनी प्रसन्नता होगी!"

"सुमतिके, तुझ को भाई बीच में ही किसने बोलने को कहा? तू भाई बड़ी ढीठ है!"

"बाई साहब, जो आनन्द की बात हो चुकी है, उसको महाराज के चरणों के निकट बतलाने की याद दिला रही हूँ। इसमें ढिठाई कैसी? और यदि सचमुच ही मैं इस समय सच्ची सच्ची ढिठाई दिखलाऊं, तो महाराज कभी नाराज़ न होंगे—हाँ, इसके बदले वे मुझ ग़रीब को इनाम ही देंगे।"

"सुमतिके, चुप रह न? मैं ने कह दिया, मुझे ऐसी ढिठाई नहीं अच्छी लगती!" मुरादेवी ने छिप कर राजा की ओर नेत्र-कटाक्ष फेंकते हुए और तर्जनी को नाक पर रख कर, सुमतिका को डांटते हुए कहा। परन्तु सुमतिका फिर भी और अधिक ढिठाई दिखलाते हुए बोली, "मैं भले ही चुप बनी रहूँ; परन्तु ये क्षण क्षण पर पांडुर होनेवाले कपोलः और यह आलस्य, जो कई दिन से आप पर आ रहा है; और ये......क्या क्या

बतलाऊं—ये सब क्या महाराज से आपकी अवस्था नहीं प्रकट करेंगे ?"

"ठहर जा मुरही ! अब तेरी लप लप करनेवाली यह जीभ ही मैं काटे डालती हूँ ....." यह कह कर देवी मुरा कृत्रिम क्रोध से सुमतिका की ओर दपट कर चली । अतएव राजा ने उसको पीछे खींच कर कहा, "सुमतिके, अरी, तुम दोनों में यह कौन सा झगड़ा है ? मुझ से देवी क्या छिपाना चाहती है ?"

"महाराज," सुमतिका बहुत ही प्रेम और आनन्द का भाव प्रकट करके बोली, "हम चाहे जितना छिपावें; पर देवी वीरप्रसू होगी, यह बात आप से कैसे छिप सकती है ?"

सुमतिका का यह भाषण सुनते ही राजा को परम विस्मय और आनन्द हुआ, और वह एकदम बोला, "क्या कहती है सुमतिका ? देवी वीरप्रसू होगी ? यह तो तू ने बहुत ही उत्तम समाचार मुझ को सुनाया । अजी, इस के लिए आज इसको क्या परितोषिक दिया जाय ?" यह कह कर राजा ने मुरादेवी की ओर देखा । परन्तु मुरादेवी की दृष्टि राजा को बिलकुल अश्रु-पूर्ण दिखाई दी । अतएव वह एकदम उससे बोला, "प्रिये मुरे, तू अब वीरप्रसू होगी; और यह सुन हम को बड़ा आनन्द हुआ है; परन्तु तू आँसू बहा रही है—इसका क्या कारण है ? यह मौका उत्सव करने का है अथवा शोक करने का ?"

परन्तु मुरादेवी ने इस पर कुछ भी उत्तर नहीं दिया । उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी थी; और वह बराबर अपने अंचल से उन आंसुओं को पोंछ रही थी । उसके आंसुओं का प्रवाह ज्यों ज्यों अधिकाधिक होने लगा, त्यों त्यों राजा का चित्त और भी अधिकाधिक खिन्न होने लगा । और वह मुरादेवी का शोक शान्त करने के लिए उसको अधिकाधिक मनाने लगा । उसने कहा:—

"प्रिये, अपने वीरप्रसू होने की बात सुनते ही तू इतना रोने क्यों लगी? तुझको क्या हो गया? मुझे बतला। बिलकुल निस्संकोच होकर मुझ से बतला दे! तू जब तक यह बात नहीं बतलायेगी, मुझे चैन नहीं आयेगा। अब तू वीरप्रसू होगी—हम दोनों के इस दृढ़ प्रेम में और भी अधिक दृढ़ता आने के लिए अपत्यरूप ग्रन्थि बँधेगी; और यह सुन कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ है; परन्तु तेरी ओर देखता हूँ, तो तू इतना शोक कर रही है! आनन्दाश्रुओं की जगह पर तेरे नेत्रों से दुःखाश्रु बह रहे हैं; और मैं इतनी देर से तुझ से प्रार्थना करता हुआ इसका कारण पूछता हूँ; परन्तु तू कुछ उत्तर ही नहीं देती। यह क्या बात है? तुझ को जब मैं इस प्रकार शोक में देखता हूँ, तब मेरा मन बहुत ही उद्विग्न हो जाता है। बतला। कम से कम दो ही शब्द बतला कर तू अपने इस शोक का कारण मुझ से प्रकट कर। क्यों री सुमतिका, तेरी स्वामिनी के इस प्रकार रोने का कारण क्या है?"

"महाराज, अन्य क्या कारण होगा? देवी को यही मालूम होता है कि, जिस प्रकार······" परन्तु मुरादेवी ने सुमतिका को बीच में ही डांट कर रोक दिया:—"चुप रह सुमतिके, व्यर्थ की बड़ बड़ करके धृष्टता मत दिखला।"

यह सुनते ही सुमतिका एकदम चुप हो गई। परन्तु राजा धनानन्द देवी की ओर मुड़ कर कहता है, "वाह! स्वयं तो बतलाना नहीं, और दूसरा कोई यदि बतलावे, तो उसको भी बतलाने न देना—यह कहां का न्याय है? वह तो ठीक बतला रही थी; पर बीच में तुमने उसको मना क्यों कर दिया? सुमतिके तू बिलकुल निश्चिन्त रूप से बतला जो बात हो! बिलकुल शंका मत कर। मैं तुझे आज्ञा देता हूँ।"

"अब बड़ी मुशकिल! मैं बड़ी विचित्र दशा में पड़ गई।

इधर महाराज की आज्ञा और उधर महारानी की आज्ञा—अब मैं किसकी आज्ञा मोड़ूं और किसकी आज्ञा पालूं? तथापि, महाराज, मैं आपकी आज्ञा उल्लंघन करने में बिलकुल असमर्थ हूँ। महारानी का यह ख़याल है कि, वीरप्रसू होने से ही क्या लाभ? आख़िर बच्चा तो जंगल में भेज कर मरवा ही डाला जायगा!……"

परन्तु सुमतिका आगे कुछ भी नहीं कह सकी; क्योंकि इतने में महारानी का शोक अत्यधिक बढ़ गया: और वह ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। यह देख कर महाराज का हृदय बहुत ही व्याकुल हुआ। उन्होंने एकदम उसको अपनी छाती से लगा लिया; और अत्यन्त प्रेम से कहा, "प्रिये मुरे, यह क्या बात है? तेरे साथ मेरी यही बात तो तै हुई थी कि, जो हो गया, उसका अब ख़याल नहीं करेंगे, परन्तु फिर तूने यह क्या शुरू कर दिया? बिना कारण इतना शोक क्यों?"

"आर्यपुत्र, 'बिना कारण' आप क्यों कहते हैं? जो हालत पिछली बार हुई, वही आज भी दिखाई दे रही है। आप कल यहां से जायँगे। अमात्य राक्षस का कौटिल्य क्या मैं जानती नहीं? उनका विचार यही मालूम होता है कि, एक बार किसी न किसी प्रकार आप को यहां से ले जावें और फिर आपको समझा बुझाकर इधर आने ही न दें, यहां पर आप से मिलने जब वे आते हैं, तब मैं कुछ दूर पर तो रहती ही नहीं, यहीं चार हाथ के अन्तर पर बनी रहती हूँ; और इसी कारण वे आप से अपने मन की बात नहीं कह सकते; परन्तु जब आप एक बार मुझ से दूर चले जायँगे, तब फिर कुछ पूछिये ही मत। फिर तो वे मन माने तौर पर चाहे जिस ओर आपको झुका सकेंगे। उस दशा में फिर वे चाहे जो कह कर मेरे विषय में आपका मन कलुषित करने के लिए स्वतंत्र हो जायँगे—!

ऐसी दशा में यदि मुझे रुलाई न आवे, तो और क्या आवे ? आप यदि एक बार यहां से चले जायँगे, तो मेरी क्या दुर्गति होगी, सो कुछ कह नहीं सकती ! सोलह वर्ष पहले का सारा दृश्य बिलकुल मूर्तिमान मेरी आंखों के सामने आकर खड़ा हो जाता है ! आह ! हे ईश्वर, तूने मुझे क्यों जन्म दिया ? और मेरे दुर्भाग्य से ये बालहत्याएं भी हो रही हैं !"

यह कह कर मुरादेवी अपरम्पार शोक करने लगी। राजा को समाधान के वचन कहने का अवकाश ही न मिलने लगा। परन्तु अन्त में वह उससे इस प्रकार बोला, "अच्छा, लो—मैं जाऊंगा ही नहीं—अब तो होगया ? जो कुछ काम करना होगा, यहीं सभा करके कर लूंगा—बस, यही निश्चय रहा !"

"नहीं, नहीं," मुरादेवी आंखें पोंछ कर और शोक को रोकती हुई कहती है, "ऐसा क्यों करना चाहिए ? आप राजसभा में जावें तो अवश्य; किन्तु यहां लौटने की सावधानी रखें; पर मुझे तो बार बार यही खयाल में आजाता है कि, कहीं अमात्य आप को बन्दी न बना लें, और यही सोच कर मेरा हृदय कांप उठता है !"

"मुझे बन्दी बना लेगा ? क्या तू पगली तो नहीं होगई ?" धनानन्द ने हँस कर कहा।"

"इसका क्या ठीक ? आपके प्राणों पर प्रयोग हो ही चुका है, फिर जब वे यह समझ लेंगे कि, एक बार आप यहां से छूट कर उनके तावे में चले गये, तब फिर आपके लिए यहां आने की मनाई करना उनके लिए कोई असम्भव बात नहीं है। परन्तु मैं यह भी नहीं कह सकती कि, आप यहां से बिलकुल जावें ही नहीं; और इधर आप जावेंगे, तो न जाने क्या हो जाय—इस बात का भी मुझे भय मालूम होता है। पिछली बार मेरे बच्चे का वध करवा कर मुझको कारागार में डाल ही दिया था,

अब इस बार क्या होता है, ईश्वर जाने ! पर मेरी इतनी आपके चरणों में प्रार्थना है कि, यदि इस बार भी कुछ वैसी ही नौबत आजावे, तो आप मेरा भी वध करवा डालें !" यह कह कर मुरा-देवी महाराज के चरणों पर लोटने लगी; और ज़ोर ज़ोर से रोना शुरू किया। राजा बड़े चक्कर में पड़ा। अब वह क्या कहे, उसे कुछ सूझने ही न लगा। परन्तु अन्त में उसने मुरा से कहा, "यदि ऐसा ही है, तो मैं जाऊंगा ही नहीं—लो, बस होगया !"

"नहीं, नहीं" मुरादेवी एकदम ऊपर सिर उठाकर कहती है, "ऐसा करने से क्या लाभ ? अमात्य से आपने स्वीकार कर ही लिया है; अब यदि आप जावेंगे नहीं, तो इसका दोष मेरे ही माथे आवेगा। उनके सामने मैं ने भी आप से जाने को कहा था; और अब यदि आप न जायँगे, तो वे मुझे भी झूठा समझेंगे—कहेंगे कि पीछे से आपका मन बदल दिया होगा; पर मैं नहीं चाहती कि, ऐसी कोई बात उनके ख़याल में आवे। आपने यदि स्वीकार किया है, तो आपको कल तो अवश्य ही सभागृह में जाना चाहिये। हां, आप मुझको इतना वचन दे दें कि, मेरे विषय में आप का जो प्रेम है, वह आप वहां जाकर भी न भूलेंगे, इतना आश्वासन आप मुझे दे दें, फिर मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मुझे और कोई चिन्ता भी नहीं है—सिर्फ़ आप के प्राणों की चिन्ता है........."

मुरादेवी इतने प्रेम का आविर्भाव कर के यह सब कह रही थी कि, राजा का हृदय भी बिलकुल प्रेम से भर आया; और उसने मुरा को एक बार दृढ़ालिंगन दिया। इसके बाद फिर उसने स्पष्ट ही कहा,—"तुम बिलकुल चिन्ता मत करो। तुम्हीं कहती हो, इस लिए मैं जाऊंगा; और घड़ी भर वहां बैठ कर फिर तुरन्त ही वापस आ जाऊंगा।"

राजा को जब से यह मालूम हुआ था कि, मुरादेवी से मुझे

पुत्र होनेवाला है, तब से उसको बड़ा आनन्द हो रहा था; और मुरा-विषयक प्रेम उसके मन में और भी विशेष रूप से बढ़ रहा था। इसलिए अब वह इसी सम्बन्ध में मुरादेवी से बातचीत करने लगा; और उसके दोहदों के सम्बन्ध में उससे बार बार प्रश्न करने लगा। वह उससे कहने लगा कि, अपनी सारी इच्छाएँ इस समय मुझ से बतला दो, मैं उनको पूर्ण करने का पूरा पूरा प्रबन्ध करूंगा। इस प्रकार अनेक वचन कह कर जब राजा उससे बहुत ही आग्रहपूर्वक पूछने लगा, तब मुरादेवी बोली, "आपका प्रेम मुझ पर बना रहे; और आपकी गोद में मेरा वह पुत्र फिर एक बार खेलने लगे, यही मेरी इच्छा है—इतना हो जाय, तो मैंने सब भर पाया—मेरी सब इच्छाएं तृप्त होगईं।" मुरादेवी का यह वचन सुन कर राजा को बड़ा आनन्द हुआ। इस प्रकार कुछ देर दोनों में वार्तालाप होता रहा। इसके बाद राजा की आंख लग गई। कह नहीं सकते, राजा की आंख उस समय स्वयं लगी, अथवा किसी मादक औषधि के कारण लगी—जो हो, राजा को नींद आ गई अवश्य।

इस प्रकार नींद आते ही मुरादेवी और सुमतिका दोनों एक दूसरे की ओर हास्यमुख करके देखने लगीं। जैसे किसी दो मनुष्यों ने किसी एक मनुष्य को कपट-जाल में फँसाने के लिए कोई प्रयत्न किया हो; और अपने उस प्रयत्न में उनको अच्छी सफलता प्राप्त हुई हो, तथा उसी सफलता के आनन्द और अभिमान में आकर वे दोनों एक दूसरे की ओर देख रहे हों! बस, इसी प्रकार मुरादेवी और सुमतिका ने भी उस समय एक दूसरे की ओर देखा। इसके बाद मुरादेवी सुमतिका से बोली, "सुमतिके, तू ने यदि मुझे इतनी सहायता न दी होती, तो मेरा सारा व्यूह ढसल पड़ा होता। वृन्दमाला बहुत ही भोलीभाली दासी है। उसको मेरा

यह कार्य पसन्द नहीं आया। पर उसकी मेरे ऊपर भक्ति वैसी ही दृढ़ है, इस कारण मेरे विषय में वह कहीं कुछ कह नहीं सकती। ऐसा जान पड़ता है, अब वह दस-पन्द्रह दिन में बिलबिलकुल बौद्ध धर्म में शामिल होकर जोगिनी बन जायगी। क्योंकि उसकी प्रवृत्ति उसी ओर विशेष झुक रही है। अस्तु। यह तो बतला कि, अब आर्य चाणक्य इधर कब आवेंगे ?"

आर्य चाणक्य का नाम अभी मुरादेवी के मुख से निकला ही था कि, इतने में एक दासी ने आकर सचमुच ही उनके आने का समाचार उसको दिया, जिससे मुरादेवी को बहुत ही आनन्द हुआ।

आर्य चाणक्य अब मुरादेवी के मुख्य उपदेष्टा—गुरुश्रेष्ठ बन गये थे। सुमतिका दोनों के सन्देश एक दूसरे के पास ले जाया करती थी। सुमतिका स्वयं भी चाणक्य की बड़ी ही दृढ़ भक्तिनी बन गई थी। आर्य चाणक्य की आज्ञा वह सर्वथा शिरोधार्य समझती थी; और उनकी आज्ञाओं को वह पूर्णतया—हृदयपूर्वक—सदैव पालन करती थी। इसमें किसी प्रकार की कोर-कसर वह नहीं किया करती थी। इस लिए चाणक्य के आने का समाचार पाकर दोनों ही को उस समय बड़ा आनन्द हुआ। चाणक्य के बैठने का जिस जगह प्रबन्ध किया गया था, वहां पहुँचते ही मुरादेवी उनसे बोली, "आर्यश्रेष्ठ, हम दोनों ही इस समय आपको मार्ग प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से कर रहीं थीं। अब आप आ गये, इस लिए हमको बड़ा आनन्द हुआ। सुमतिका सब प्रकार से हम लोगों का काम बना कर—राक्षस को चकमा देकर—एक बार फिर उनको यहां ले आई थी। राक्षस यह चाहते ही थे कि, किसी प्रकार महाराज यहां से बाहर निकलें; और इस लिए उन्होंने महाराज को बहुत समझाया-बुझाया; और कल के लिए सभागृह में आने का आग्रह किया।

पहले तो महाराज कुछ देर तक यहां से बाहर जाने में राजी नहीं हुए; क्योंकि वे मुझ को छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। परन्तु फिर मैं ने ही बीच में बोलकर महाराज से राक्षस को वचन दिलाया; और आपके पास सन्देशा भेजा। कहिये आप की ओर से आगे की सब तैयारी ठीक है न?"

"हां, हां, मेरी ओर से तैयारी की कौन सी बात? सब तैयारी बिलकुल ठीक है। राक्षस के मित्र चन्दनदास का महल राजप्रासाद से निकट ही है। उसी महल से राजप्रासाद के द्वार तक सुरंग खोद दी गई है, और दरवाजे के पास कृत्रिम तोरण भी बन गया है। दारुकर्मा नालक एक कलाकुशल व्यक्ति की इस कार्य पर योजना की गई है। दारुकर्मा से सब बातें भली भांति समझा दी हैं। इसके सिवाय उक्त तोरण के नीचे की ओर भी सब तैयारी ठीक ठीक कर रखी है। अब उसमें और कोई भी काम बाकी नहीं रह गया है। सारा प्रबन्ध जैसा चाहिए, वैसा ही हो गया है; और अब हमारा कार्य ठीक ठीक सिद्ध हो जायगा। तुम कोई चिन्ता मत करो।"

"गुरुश्रेष्ठ, मैं पहले ही से जानती हूँ कि, आप जो कुछ करेंगे, उसमें न्यूनता कभी नहीं रह सकती। मुझको इस विषय में कोई भी चिन्ता नहीं है। परन्तु हां, जिस कार्य का प्रारम्भ किया गया है, वह यदि निर्विघ्न सिद्ध हो जायगा, तो फिर सभी बातें ठीक ठीक होंगी। परन्तु यदि उसमें कोई विघ्न आ गये, और सब भंडा हो बाहर फूट गया, तो फिर हम लोगों का चकनाचूर हो जायगा, इसी लिए मैं ने पूछा।"

"वत्से मुरादेवी, तुम यह भली भांति समझ लो कि, यह चाणक्य जिस व्यूह को रचेगा उसमें निष्फलता कभी हो ही नहीं सकती। उस व्यूह के सिद्ध होने में कोई सन्देह ही नहीं।

दारुकर्मा बड़ा ही कुशल कारीगर है; और इसी लिए हमने चन्दनदास के मित्र भूरिवसु के द्वारा उसको यह कार्य सौंपा। भूरिवसु बिलकुल मेरे हाथ में है। उसीके द्वारा चन्दनदास को भी वश में किया है। चन्दनदास राक्षस का बड़ा भारी मित्र है। दारुकर्मा के द्वारा राजद्वार के पास क्या दारुण कर्म कराना है, सो चन्दनदास को बिलकुल ही मालूम नहीं होने दिया है। इस लिए उस ओर से किसी खबर के फूटने की सम्भावना ही नहीं है। सुरंग के अन्दर बारूद के दो बम्ब भर कर रख दिये गये हैं। दोनों यदि सिद्ध हो जायँगे, तो सारा नन्दवंश नष्ट हो जायगा। फिर अन्य लोगों के लिए किसी अन्य उपाय की योजना करूंगा। मतलब यह है कि कल धनानन्द अपने वंश सहित, अथवा कम से कम अकेला तो अवश्य ही, नष्ट हो जायगा। इसमें कुछ भी शंका नहीं।" यह कह कर आर्यचाणक्य बिलकुल चुप हो गये। मुरादेवी यह सुन कर कुछ चिन्तातुर हुई, और बोली, "क्यों गुरु-वर्य, क्या ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता कि, महाराज की हत्या न होने पावे; और बाकी सबका नाश हो जाय? क्योंकि मैं ख़याल करती हूँ कि, यदि महाराज का ही नाश हो गया; और वह कमबख़्त सुमाल्य न मरा, तो राक्षस उसके नाम से सब राजकाज करता ही रहेगा, और फिर महाराज की हत्या का कारण भी वह अवश्य ही ढूँढ़ेगा। ऐसी दशा में फिर हम लोगों की वह दुर्गति होगी, जिसका ठिकाना नहीं!" मुरादेवी का यह कथन सुनकर चाणक्य खिलखिला कर हँस पड़े; और उससे बोलेः—

"देवि मुरे, मैं समझता था कि, तुम बहुत ही कार्यदक्ष और नीतिनिपुण हो; पर अब देखता हूँ कि, तुम्हारी बुद्धि भी अन्य स्त्रियों के समान ही बहुत कोती है। वत्से, उस दशा में फिर क्या मैं यह लोकापवाद उठाये बिना कभी भी रहूँगा कि, धना-

नन्द का सर्वनाश राक्षस ने ही कराया, उसी ने दारुकर्मा को नियुक्त करके यह सारा षड्यंत्र रचा। इसकी भी सब तैयारी कर रक्खी है। चारों ओर यह बात उड़ा दूंगा कि, यह सारा घात राक्षस ने ही कराया; और राज्याधिकार के लोभ से इसने यह सारा उद्योग किया। राजा से खास तौर पर आग्रह करके वही उसको राजसभा में ले आया। अपने मित्र चन्दनदास के घर से सुरंग खुदवा कर राजद्वार के पास तोरण बनवाया— यह सारा उपक्रम राक्षस ने ही खास तौर पर कराया। बस, चारों ओर यही बात उड़ जायगी—तुम देखो ना—मैंने कैसा प्रबन्ध कर लिया है! अब तुम्हारा भतीजा चन्द्रगुप्त बहुत जल्द आगे आवेगा, और उसी को सिंहासन मिलेगा। इस प्रकार अब तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण होने में कुछ भी विलम्ब नहीं है। अब इस समय तुम किसी चिन्ता में मत पड़ो।" यह कथन सुनकर मुरादेवी को कुछ कुछ सामाधान हुआ; और उसने समझा कि, अब मेरी इच्छा पूर्ण होने में सिर्फ एक रात का ही अवकाश रह गया है। इसलिए उसको आनन्द ही हुआ; और उसने चाणक्य को बिदा किया।

परन्तु रात होते होते उसके मन में कुछ विचित्र ही प्रकार का परिवर्तन हुआ। आखिर वह स्त्री ही ठहरी! उसकी नैसर्गिक कोमलता उसकी इच्छा के आड़े आई!

तेरहवाँ परिच्छेद

मन की चञ्चलता।

चाणक्य के चले जाने पर पहले कुछ देर मुरा देवी को कुछ अच्छा मालूम हुआ। उसने देखा कि, आज इतने दिन से जो महत्वाकाँक्षा—नहीं, वैरनिर्यातनेच्छा—बदला लेने की इच्छा—मैंने धारण की थी, वह अब तृप्त होगी। हमारे पुत्र की हत्या करा कर जिस राजा ने केवल अन्याय से हमको कैद में डाल दिया था, उस राजा को अब अच्छा प्रायश्चित मिलेगा; और हमारे मायके के एक लड़के को यह राजगद्दी मिलेगी। इसलिए मुरादेवी को अत्यन्त आनन्द हुआ। आर्य चाणक्य ने पाटलिपुत्र में रह कर धीरे धीरे, अपनी नाना प्रकार की युक्तियों से, जिस प्रकार से अन्य अनेक मनुष्यों को अपने वश में कर लिया था, उसी प्रकार मुरादेवी का मन भी उन्होंने पूरा पूरा अपने हाथ में ले लिया था; और उसको अपनी शिष्या बना लिया था। पहले पहल वह किस निमित्त से और किस रूप से उसके पास गये थे; और फिर धीरे धीरे किस प्रकार उसको उन्होंने अपने वश में कर लिया, सो सब विस्तार के साथ बतलाने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। उनको यह तो पहले ही मालूम हो चुका था कि, जो इच्छा हम कर रहे हैं, वही इच्छा इस राजमहिषी को भी है। इतना मालूम हो जाने पर अब और

उन्हें क्या चाहिए ? चाणक्य की बातों में ही ऐसा कुछ गुण था कि, जो एक बार उनकी बातों में आ जाता था, वह फिर उनसे किसी प्रकार भी निकल नहीं सकता था। बल्कि इसके विरुद्ध और अधिकाधिक फँसता ही जाता था। यही नहीं, बल्कि उनसे निकलने की उसे कभी इच्छा ही नहीं होती थी। मुरादेवी की बदला लेने की इच्छा बहुत ही अनिवार्य थी: और चाणक्य उसकी इस इच्छा के पूर्ण होने में एक साधन स्वरूप थे, यह बात जब मुरादेवी ने भली भांति समझ ली, तब स्वाभाविक ही वह चाणक्य को चाहने लगी; और चाणक्य का भी उसके मन पर प्रभाव बढ़ने लगा। फिर उसमें भी इस समय तो चाणक्य ने उसकी इच्छा के पूर्ण होने का अवसर बिलकुल ही निकट ला दिया—अब और क्या चाहिए ? परन्तु वह अवसर ज्यों ज्यों नज़दीक आने लगा, त्यों त्यों मुरादेवी के मन में एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन होने लगा। उसका मन न जाने कैसा होने लगा। चाणक्य के चले जाने पर कुछ देर तक तो वह इधर उधर कुछ करती रही: पर फिर अपने शयनगृह में चली गई। राजा अभी,—कह नहीं सकते, किस कारण से परन्तु—बिलकुल गहरी नींद में सोया हुआ था। उसी के पास वह भी एक ओर पड़ रही। परन्तु किसी प्रकार भी उसको चैन न पड़ने लगा। आर्य चाणक्य ने राजा के वध की जो तैयारी कर रखी थी, उसी का चिन्तन अब बराबर वह कर रही थी। उसके मन में यही विचार आ रहे थे कि, देखो—हमारा लड़का यदि आज जीवित होता—इन्होंने दूसरे लोगों के कहने में आकर, मुझ पर अविश्वास करके, यदि मेरे उस दुधमुहे बच्चे का वध न कराया होता, तो आज इनके ऊपर ऐसा मौका क्यों आता ? आज सुमाल्य की जगह पर वही राजसिंहासन पर होता। बस, इसी प्रकार के

विचार बराबर मुरादेवी के मन में चक्कर मार रहे थे।

इतने में उसको ऐसा मालूम हुआ कि, जैसे राजा कुछ कह रहा हो—उसने कान लगा कर सुना—उस समय उसको ये शब्द सुनाई पड़े—"प्रिये मुरे, मैं कितनी बार तुझ से कहूँ कि, तू पिछली बातों को अब बिलकुल याद न कर? मुझे मालूम तो हो जाय कि, वह लड़का अभी जीवित है, और अमुक जगह मौजूद है—मैं तुरन्त ही उसे बुलवा कर उसे यौवराज्याभिषेक करा दूंगा। किन्तु अब तू उन बातों को बार बार याद करके मुझ पर क्रुद्ध मत हो। इससे मेरा चित्त दुखता है—अब मैं तेरी आज्ञा के बाहर एक तिल भर भी नहीं जाऊंगा। तू मुझे क्षमा कर ......" सुसंगत रूप से जो शब्द कानों में आये, वे इतने ही थे। इसके अतिरिक्त और भी कुछ शब्द उसको सुनाई दिये, पर उनका भाव वह समझ न सकी। ये शब्द, जिनको उसने सुना, राजा ने आज पहले ही पहल उच्चारण नहीं किये थे—इसके पहले भी अनेक बार उसने राजा के मुख से ऐसे ही शब्द सुने थे। पर कह नहीं सकते—क्या चमत्कार हुआ—आज राजा के इन शब्दों का उसके मन पर बहुत ही विचित्र प्रभाव पड़ा। उसने देखा कि, राजा के ध्यान में, मन में, स्वप्न में, निरन्तर मैं ही बस रही हूँ—इन्होंने अब तक अनेक बार मुझ से कहा है कि, अब तुम पिछली बातों का विचार मत करो—और आज प्रगाढ़ निद्रा में भी, स्वप्न में, ये मुझ से "क्षमा कर" ये शब्द कह कर क्षमा-याचना कर रहे रहे हैं। यह विचार मन में आते ही मुरादेवी के मन की कुछ विचित्र दशा होगई। उसने सोचा कि, हमने बन्दिशाला से बाहर निकलते ही अनेक प्रकार की युक्तियां करके राजा के चित्त को अपनी ओर खींचा, उसको विश्वास दिखलाया—यह सब तो ठीक हुआ; पर अब जो कुछ मैं करने चली हूँ—यह क्या

मेरे लिए उचित है? स्वप्न में भी जो मेरे विषय में कोई अनिष्ट-चिन्तन नहीं करता, बल्कि उलटे यही कह रहा है कि, अब तुझ को मेरी ओर से कोई तकलीफ़ न होगी, माफ कर—उसका अब क्या हम को विश्वासघात करना चाहिए? जो हम से, कायावाचामन से, प्रति दिन, कम से कम एक बार तो अवश्य ही, यह कहता है कि, "जो बातें हो गईं, उनके लिए क्षमा करो, उसको क्या हम जान-बूझ कर काल के जबड़े में दे देवें? इस प्रकार के प्रश्न मुरा के मन में उपस्थित हुए; और उसका चित्त अत्यन्त चंचल होगया, जैसा कि हमने पिछले परिच्छेद में बतलाया—उसके मन की नैसर्गिक कोमलता अब जागृत हुई: और वह एकदम बिछौने पर उठकर बैठ गई, तथा भौंचकी होकर अपने चारों ओर देखने लगी। दूसरे दिन जो भयंकर दुर्घटना होनेवाली थी, वह उसके नेत्रों के सामने मूर्तिमान दिखाई पड़ने लगी। अतएव वह बहुत ही घबड़ाई। अभी कुछ समय पहले, अगले दिन की जिस भावी दुर्घटना के विषय में उसको आनन्द और सन्तोष मालूम हो रहा था, उसी दुर्घटना को उस समय जब कि उसने अपनी कल्पना से बिलकुल अपने नेत्रों के सामने ही देखा, तब उसको सहसा अत्यन्त ही दुःख मालूम होने लगा—उसका चित्त बिलकुल अशान्त हो गया। उस समय उसके उस मन्दिर में कोई नहीं था। सिर्फ एक दीपक भर जल रहा था, जो कि बिलकुल मन्द कर रखा गया था। यही नहीं, बल्कि, इस विचार से कि उसके प्रकाश से कष्ट न हो—महाराज की निद्रा भंग न हो, उस दीपक के आगे एक झीना परदा डाल दिया गया था, अतएव उस जगह अन्धकार की कुछ विचित्र सी छायाएँ पड़ रहीं थीं। उन छायाओं का भी अब उसे भय मालूम होने लगा। मनुष्य के मन की दशा बड़ी विचित्र होती है। फिर उसमें भी स्त्रियों के मन की दशा का कहना ही क्या?

उनके मन की दशा तो और भी अधिक विचित्र होती है। आज तक जितनी उत्कटता के साथ वह यह ख़याल कर रही थी कि, राजा धनानन्द को इस पृथ्वी पर से मिटा ही देना चाहिए, उतनी ही उत्कटता के साथ अब उसके मन में यह आने लगा कि हमारा यह विचार बिलकुल पागलपन, दुष्टता और अधमता का है। बदला ही लेना है, तो फिर राजा से क्यों लेना चाहिए? जिन्होंने हमारे विषय में अनेक झूठीसच्ची बातें राजा से बतलाईं, और उसका मन हमारे विषय में कलुषित किया, उन्हीं से वास्तव में बदला लेना चाहिए था। पर ऐसा तो हमने किया नहीं; और राजा के प्राणों पर यह संकट डाला—यह कितनी बड़ी भूल हम से हुई! महाराज का इसमें क्या दोष? महाराज ने हमारा पाणिग्रहण किया, हम से पुत्र भी उत्पन्न हुआ—यह बात अन्य लोगों को अच्छी नहीं लगी—वे हम से मत्सर करने लगे; और महाराज का मन हमारे विषय में कलुषित कर दिया। हाँ, इसमें महाराज का यदि कुछ अपराध भी हो सकता है, तो इतना ही हो सकता है, कि उन्होंने ऐसे लोगों का विश्वास किया; और विशेष तहकीकात न करते हुए हम को कारागार में डाल दिया। ऐसी दशा में हम को उन पर इतना तीव्र शस्त्र क्यों उठाना चाहिए? हम को यह विचार बहुत पहले ही करना चाहिए था, सो हमने नहीं किया, यह अच्छा नहीं हुआ! ऐसा विचार यदि हमने किया होता, तो आज यह नौबत, जो इनके प्राणों पर आनेवाली है, वह न आई होती; और उसको टालने लिए जो हम ऐसी चिन्ता में पड़ी हैं, सो भी न पड़ी होती। इस प्रकार के विचार मुरादेवी के मन में आने लगे; और उसका मन सहसा बड़े चक्कर में पड़ गया। अरे! हमको स्वयं—और अपनी अनुमति के द्वारा दूसरे से—अपने पति का घात कराना चाहिए? हमको इस प्रकार स्वयं अपने हाथ से ही अपने सौ-

भाग्य को नष्ट कर लेना चाहिए ? यह अत्यन्त क्रूरतापूर्ण और अधमतायुक्त विचार ही हमारे मन में कैसे आया ? इस बात पर मानों उसको अत्यन्त आश्चर्य मालूम होने लगा। अतएव उसने सोचा कि, हम इस प्रकार का भयङ्कर आत्मघात करने तो चली हैं, पर इससे हमको लाभ ही क्या होगा ? हाँ, लाभ इतना कि, हमारे भतीजे को सिंहासन मिल जायगा; पर भतीजे को सिंहासन मिलने से हमको क्या लाभ ? हाँ, प्रत्यक्ष पति के प्राणों का घात करेंगी; और सारे संसार में पतिघ्नी कहला कर कलंक का टीका अपने मस्तक पर लगायेंगी—यही लाभ होगा। इससे अधिक हमको इससे और क्या लाभ होगा ? अतएव अब हमको ऐसा कौन सा उपाय करना चाहिए कि, जिससे कल की यह भयंकर दुर्घटना हमारे ऊपर न आने पावे ? इस प्रकार अनेक बिचार, एक के बाद एक, उसके मन में उठने लगे, जिससे उसका मन अत्यन्त अशान्ति में पड़ गया। यह तो अब उसके मन में भली भाँति जम गया, कि जिस प्रकार से हो सके, कल की यह दुर्घटना टालनी अवश्य चाहिए। अभी तक उसका यह खयाल था कि वैधव्य आ जाय, तो भी कोई परवा नहीं. मुझको उन्होंने बहुत सताया है, मेरे पुत्र की हत्या कराई है, इसका बदला अवश्य लेना चाहिए—अपनी प्रतिज्ञा हमको पूर्ण करनी चाहिए; पर अब यह भाव उसके हृदय से बिलकुल निकल गया, और वह यही सोचने लगी कि, हम स्वयं जो यह एक संकट अपने ऊपर लाई हैं, उससे अब हम अपनी रक्षा किस प्रकार करें। महाराज का प्राण किस प्रकार से बचावें ? राजहत्या और पतिहत्या हमारे हाथ से हो रही है—इससे हम कैसे बचें ? ऐसे ऐसे अनेकविध प्रश्न उसके मन में उठने लगे; और उसका मन बिलकुल व्याकुल हो उठा। यहां तक कि, अब उसको इसी बात का आश्चर्य होने लगा कि, जो विचार स्त्री के मन में कभी

नहीं आना चाहिए, अर्थात् अपने पति के विषय में अनिष्ट विचार लाना स्त्री के लिए बहुत ही अनुचित है—वही विचार अब तक हमारे मन में क्यों आता रहा? जब तक कोई दुष्टकृत्य हमसे दूर रहता है, तब तक उसको करने के लिए एक प्रकार की उत्सुकता मालूम होती रहती है; परन्तु जब वही दुष्कृत्य बिलकुल पास आ जाता है, तब वह उत्सुकता हमारे अन्दर नहीं रह जाती—फिर वह दुष्कृत्य बहुत ही भयंकर दिखाई देने लगता है—उसका स्वरूप बहुत ही विचित्र हो जाता है; और अन्त में कई लोग तो उस दुष्कृत्य को देखते ही दूर भाग जाते हैं। बस, मुरादेवी के मन की दशा भी कुछ इसी प्रकार की हो गई। अभी तक तो वह अपने पति के ख़ून करने और कराने का विचार मात्र कर रही थी; परन्तु अब उसको स्पष्ट ही दिखाई देने लगा कि, यह दुष्कृत्य अब अवश्य ही होता है—अब इसमें विलम्ब नहीं रह गया—इसलिए अब उसका मन बिलकुल बदल गया; और वह उस दुष्कृत्य को टालने के लिए युक्ति सोचने लगी। पहले-पहल तो उसके मन में यही आया कि, अभी राजा को जागृत करके सब समाचार बतला देना चाहिए; परन्तु यह उसका विचार बहुत देर तक मन में नहीं टिक सका; क्योंकि तुरन्त ही उसके मन में यह भय उत्पन्न हुआ कि, मान लो हम ने यह बात राजा को बतला दी; और उसने उसे सुनते ही हम को सूली पर चढ़ा दिया—अथवा बन्दीगृह में ही डाल दिया, तो कैसा होगा? ऐसी दशा अब मुरादेवी को अभीष्ट नहीं थी, अतएव दूसरा उपाय उसने यह सोचा कि, कल राजा को अपने महल से जाने ही न दिया जाय, और यह उपाय उसको बहुत सहज मालूम हुआ। उसने सोचा कि, राजा हम पर पूरा पूरा प्रेम रखता है, ऐसी दशा में हमारा कहना वह अवश्य ही मान लेगा। अथवा कल हम बीमारी का

ढोंग कर लेंगी; और राजा को महल से ही निकलने न देंगी। इस पर भी यदि राजा न मानेगा, तो कहेंगी कि, हमको एक बुरा स्वप्न पड़ा है, इसलिए भय में बुरी बुरी भावनाएं आ रही हैं, ऐसे अवसर पर आप बाहर न जाइये। इस प्रकार जब हम राजा से आग्रह करेंगी, तब वह अवश्य ही हमारी बात को स्वीकार कर लेगा। यह उपाय मुरादेवी को बहुत अच्छा मालूम हुआ। परन्तु फिर उसने सोचा कि मान लो, हम ने राजा को नहीं जाने दिया; और उसी धूमधाम के साथ और ही कोई राजपुरुष महल के बाहर निकल कर उस तोरण के नीचे से जाने लगा, तब भी वह दुर्घटना अवश्य होगी। ऐसी दशा में वह सारा भयंकर षड्यंत्र बाहर फूट जायगा। यह भी एक अनिष्ट ही बात होगी। इसलिए मुरादेवी ने सोचा कि, इससे तो यही अच्छा होगा कि, आर्य चाणक्य को बुला कर वह सारा सुरंग का प्रबन्ध ही मिटा दिया जावे; और राजा को सभाभवन में जाने दिया जावे। उसने सोचा कि, दारुकर्मा के द्वारा चाणक्य ने जिस घातक युक्ति की योजना कर रखी है, उस युक्ति ही का निराकरण कर दिया जाय, इससे दुर्घटना बच जायगी। राजा को सभाभवन में जाने देने में कोई हानि नहीं, परन्तु जो घातक व्यूह रच रखा गया है, उसको ज़रूर वहाँ से हटा देना चाहिए। यह बात मुरादेवी ने अपने मन में निश्चित कर ली, परन्तु उसी समय उसके मन में ये प्रश्न भी आकर उपस्थित हुए—"चाणक्य क्या हमारी बात मान जाँयगे? वे क्या अपनी की हुई तैयारी को दूर हटा देंगे? इस कुटिल नीति से क्या वे कभी अलिप्त हो सकेंगे?" ये प्रश्न उपस्थित हुए, और उसका मन फिर डावाँडोल हुआ, कोई बात उसके मन में निश्चय ही न होने लगी। चित्त की व्याकुलता बहुत ही बढ गई। इतने में रात का एक पहर उलट

गया, और महाराज की आँख अचानक खुल गई। उन्होंने देखा कि, मुरादेवी अभी जाग रही है, इसलिए उन्होंने उसको पुकारा। मुरादेवी उनकी आवाज़ का उत्तर देकर उनके चरणों की सेवा करने लगी। इतने में महाराज ने उससे पूछा कि, "तू अभी तक जग क्यों रही है?" यह प्रश्न सुनते ही मुरा को यह इच्छा हुई कि, हम सब वृत्तान्त इसी समय इनको बतला दें, तो अच्छा हो। परन्तु फिर उसने सोचा कि, ऐसा करना ठीक न होगा, क्योंकि राजा के प्राण यद्यपि हम बचा देंगी, पर यह नहीं कहा जा सकता कि राजा भी हमारे प्राणों को बचा देगा—वह हमको क्षमा कदापि न करेगा। इसलिए उस समय मुरादेवी ने राजा से सिर्फ इतना ही उत्तर दिया कि, "क्या करूं महाराज, मुझे आज किसी प्रकार भी निद्रा ही नहीं आती। मन न जाने कैसा हो रहा है!"

राजा—क्यों? मन को ऐसा क्या हो गया है? शायद इसीलिए तेरा मन अशान्त होगा कि, कल मैं तेरे महल से बाहर जानेवाला हूँ?

मुरा—हाँ, कुछ अंशों में ऐसा ही कहा जा सकता है। आप कल जानेवाले हैं, इसी से मेरा मन बहुत खिन्न हो रहा है। बहुत यत्न किया, पर नींद नहीं आई। किन्तु आपका जाना क्या बहुत आवश्यक है?

राजा—ऐसी तो कोई बात नहीं; परन्तु स्वीकार कर लिया है, इसलिए चले जायँ, तो अच्छा ही है।

मुरा—मेरा चित्त उदास हो रहा है। मन में आता है कि, आज कोई न कोई भयंकर घटना होनेवाली है।

राजा—कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि तुम्हारा मन तो उदास हो ही रहा है, और इधर मुझे भी एक बहुत ही विलक्षण स्वप्न दिखाई दिया है।

मुरा—सो क्या? आप सोते में, कुछ कह रहे थे ज़रूर, पर ठीक ठीक समझ में नहीं आया।

राजा—(हँस कर) स्वप्न में हमने एक बहुत ही विचित्र घटना देखी, और उसी के सम्बन्ध में शायद हम कुछ बड़बड़ा रहे होंगे। और तो कोई बात नहीं! किन्तु स्वप्न बड़ा ही विलक्षण था!

मुरादेवी—कौन सा ऐसा विलक्षण स्वप्न था? क्या मुझे बतलाने योग्य नहीं?

राजा—तुमको बतलावें या न बतलावें—इसी का विचार कर रहा हूँ। एक बार मन में आता है कि, बतला दूं, फिर दूसरी बार सोचता हूँ कि, न बतलाऊं। कहो क्या करूं?

मुरादेवी—बतला ही दीजिए—और क्या कीजिएगा? जो कुछ हो, बतलाइये।

राजा—किन्तु उसको सुन कर शायद तुमको बुरा लगेगा, और तुम हम पर नाराज होगी।

मुरादेवी—मैं आप पर नाराज़ होऊंगी? आप भी क्या ही विचित्र बात कहते हैं!

राजा—इसमें विचित्रता क्या? तुम उसको सुन कर नाराज़ तो अवश्य ही होओगी।

मुरादेवी—कभी नाराज़ नहीं होऊंगी—बिलकुल सच कहती हूँ—आप बतलाइये।

राजा—अच्छा तो बतलाता हूँ, सुनो। मुझ को एक बहुत ही विचित्र स्वप्न दिखाई पड़ा।

मुरा—यह तो आप पहले ही कह चुके हैं; किन्तु अब स्वप्न बतलाइये—ऐसा स्वप्न कौन सा है?

राजा—अच्छा यदि मैं न बतलाऊं; और तुम उसको न सुनो, तो क्या काम नहीं चलेगा?

मुरा—मेरा चित्त उदास बना रहेगा—और तो कुछ नहीं।

राजा—स्वप्न में मैंने देखा कि, जैसे हम दोनों ही एक घने जंगल में गये हैं, जहां चारों ओर घोर अन्धकार छा रहा है।

मुरा—घोर जंगल में? और हम दोनों?

राजा—हां, दोनों—तीसरा और कोई नहीं—बिलकुल अकेले!

मुरा—सचमुच ही बड़ा विचित्र स्वप्न है! अच्छा, फिर?

राजा—फिर क्या बतलाऊं—किन्तु तुम आग्रह ही करती हो, इस लिए बतलाता हूं; किन्तु—

मुरा—किन्तु-विन्तु कुछ नहीं—अब आप बतला ही दीजिए, शीघ्र ही बतलाइये।

राजा—अच्छा, बतलाता हूं। वहां हम दोनों खड़े हैं। इतने में तुमने हँसी ही हँसी में मेरा धनुषबाण और खड्ग मेरे हाथ से ले लिया। फिर क्या हुआ कि एक बहुत ही भयंकर व्याघ्र अपनी पूछ पटकता हुआ और ज़ोर ज़ोर से डहारता हुआ मेरी ओर दौड़ आया। कैसा उसका भयंकर स्वरूप था!

मुरादेवी ने ज्यों ही यह सुना, त्यों ही अत्यन्त घबड़ा कर महाराज के शरीर में चिपटने लगी; और बोली, "महाराज, मेरी रक्षा कीजिए। व्याघ्र का नाम सुनते ही मेरा शरीर कांप उठा है—जैसे वह बाघ अब मेरे सामने ही आना चाहता हो! अच्छा, फिर क्या हुआ? भय तो मालूम हो रहा है; पर सुनने को जी चाहता है।"

राजा—वाह! भय मालूम होता है, तो आगे बतलाने की क्या आवश्यकता?

मुरा—किन्तु मैं ने कहा न कि, सुनने को जी भी चाहता है?

राजा—अच्छा, बतलाता हूं। किन्तु आगे सुनने का आग्रह न करो, तो अच्छा।

मुरा—सो क्यों? अब तो हम को और भी अधिक उत्कंठा हो रही है। आपके पास भय कितनी देर रहेगा? वह तो आपको छूते ही भग गया। आप आगे बतलाइये।

राजा—आगे ऐसा हुआ कि, उस व्याघ्र ने मुझ पर आक्रमण किया; और मुझे......

मुरादेवी—अरे यह क्या! यह सुन कर तो मुझे मानों मूर्च्छा ही आ रही है!

राजा—घबड़ाओ मत—यह सब सत्य नहीं है—स्वप्न है।

मुरा—सचमुच ही; मैं बिलकुल भूल गई। अच्छा, आगे क्या हुआ महाराज?

राजा—परन्तु वही तो बतलाना मेरे लिए मुशकिल हो रहा है। उसको सुन कर न जाने क्या तुम्हारे मन में आवे; और इसी लिए उसको बतलाने में मैं ठिठक रहा हूँ।

मुरा—ऐसी कौन सी बात है महाराज? आप कहिये, मैं अपने मन मे कुछ भी नहीं लाऊंगी।

राजा—उस व्याघ्र ने मेरे शरीर पर आक्रमण किया। इस लिए मैं तुम से अपना खड्ग मांगने लगा; पर तुम मेरा खड्ग न देते हुए और दूर दूर भगने लगी।

मुरा—अरे यह क्या महाराज? मैं आपके प्राण बचाने को आगे बढ़ूंगी; अथवा वहां से दूर भगूंगी? स्वप्न भी क्या ही विलक्षण है! जान पड़ता है, आपके मन में ऐसा ही आता रहता होगा, वही स्वप्न में दिखाई दिया।

राजा—पगली कहीं की—अभी और आगे तो सुन ले!

मुरादेवी—अच्छा, बतला डालिये—और आगे क्या है? मेरा सुनने को बहुत जी चाहता है। आगे क्या हुआ?

राजा—ज्यों ज्यों तुम भगने लगी, त्यों त्यों मैं तुम से चिरिया-विनती करने लगा। मैंने कहा कि, "यदि तुम इस समय मेरा

खड्ग नहीं दोगी, तो मुझे यह व्याघ्र खा जायगा ।" परन्तु तुम ने ही मेरी यह प्रार्थना नहीं सुनी, और उलटे यही उत्तर दिया कि, "खा जावे व्याघ्र ! मैं क्या करूँ ? मेरे बच्चे को व्याघ्र ने किस प्रकार खाया होगा, सो तुम को अब मालूम हो जायगा । मैं चाहती ही ऐसा हूँ कि, वह तुमको खा जावे ।" यह तुम्हारा कथन सुनते ही मैं चकित होगया ।

और राजा का यह स्वप्न सुन कर मुरादेवी भी चकित हो गई—वह न सिर्फ चकित ही हो गई, बल्कि काली स्याह पड़ गई !

चौबीसवां परिच्छेद

निश्चय डगमगाया।

राजा का यह स्वप्न सुनते ही मुरादेवी का शरीर पसीने पसीने होगया। उसने समझा कि, शायद राजा को मेरे षड्यंत्र का पता चल गया है, और इसी लिए मेरी परीक्षा लेने को यह स्वप्न का बनावटी वृत्तान्त मेरे सामने बतला रहा है। यह संशय उसके मन में आया, और उसका हृदय धड़कने लगा। वह भौंचक्की होकर देखने लगी, और ऐसा जान पड़ा कि, जैसे उसका दम घुट रहा हो! उसको यह भी मालूम हुआ कि, अब मैं रोना ही चाहती हूँ। वह राजा से बिलकुल सटी हुई बैठी थी। इस लिए उसके हृदय की धड़कन राजा को भी सुनाई देने लगी, और राजा ने उसकी चेष्टा को एकदम पहचान लिया। परन्तु उसके घबड़ाने का ठीक ठीक कारण राजा की समझ में नहीं आया—उसने और ही कुछ समझा, और फिर उससे इस प्रकार बोला, "प्रिये मुरे, केवल स्वप्न की ही घटना सुन कर तू इतनी घबड़ा गई! और यदि प्रत्यक्ष तेरे देखते ही व्याघ्र मुझ पर आक्रमण करे, तो तेरी क्या गति होगी?"

राजा का यह प्रश्न सुन कर मुरादेवी को कुछ धीरज सा आया, और तुरन्त ही वह राजा से बोली है—

"ऐसा मौका यदि आ जाय, तो मेरा तत्क्षण प्राण ही चला जाय। किन्तु आर्यपुत्र, स्वप्न में आप तलवार मांगते रहे, और

मैंने दी नहीं—इससे आप मेरा त्याग तो न कर देंगे? जब से मैंने स्वप्न सुना है, तभी से न जाने क्यों मेरे मन में ऐसा भय हो रहा है।

इतना कह कर वह ज़ोर से राजा के शरीर में लिपट गई, और रोना शुरू कर दिया। राजा ने उसे छाती से लगा लिया, और फिर उससे बोला, "अरी पगली! क्या मैं इतना मूर्ख हूँ कि, स्वप्न की बातों को सत्य समझ कर तेरा त्याग कर दूंगा? अधिक तो मैं क्या कहूँ—किन्तु तेरे विषय में मेरा मन अब इतना मज़बूत हो गया है कि, यदि प्रत्यक्ष जागृत अवस्था में भी तू यदि मेरे सामने कोई ऐसी बात करे, तो वह भी मुझे सत्य नहीं मालूम होगी; किन्तु मैं यही समझूंगा कि, मैं यह सब स्वप्न में ही देख रहा हूँ—इससे अधिक अब और मैं तेरे लिए क्या कहूँ?"

"आर्यपुत्र, सच कहिये—ऐसी ही बात है न? अब तो आप बिना कारण सन्देह करके मेरा त्याग न करेंगे? एक बार मैं धोखा खा चुकी हूं, इसी लिए आपसे बारबार पूछती हूँ। और और कोई बात नहीं। मैं बिलकुल निराधार निराश्रित हूँ। आपको छोड़ कर इस ससार में मेरा और कोई नहीं। ईश्वर! ऐसा स्वप्न क्यों दिखाया?"

"प्रिये मुरे, अब इस समय व्यर्थ के लिए रोती क्यों हो? तुम से अभी बतला ही दिया कि, अब मेरे मन में प्रेम के अतिरिक्त—अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम के अतिरिक्त—अन्य कोई भाव ही नहीं है। फिर तुम व्यर्थ के लिए इतना शोक क्यों कर रही हो? किस प्रकार मैं तुमको विश्वास दिलाऊं?

मुरा एकदम उससे कहती है, "मुझको विश्वास? मुझको विश्वास दिलाने के लिए......किन्तु महाराज—आर्यपुत्र, आप कल मेरे महल से जावेंहीगे?"

"तुम्हीं ने तो अमात्य राक्षस के सामने मुझसे जाने के लिए कहा था? तुम्हारी अनुमति के बिना मैं उनको वचन नहीं दे सकता था। लेकिन तुम्हीं ने तो कहा था कि, 'मैं मना नहीं करती'; और ऐसा कह कर मेरे जाने को अनुमति दी थी?"

"ऐसा मैंने कहा अवश्य था: पर अब यदि आप न जावें, तो क्या काम न चलेगा?"

हां. चलेगा क्यों नहीं! किन्तु जाने में ही क्या हानि है?"

"हानि?" आगे मुरा कुछ न कह सकी। मानो वह मन में यह सोचने लगी कि, अब मुझे जो कुछ कहना है, वह कहूँ. अथवा न कहूं। कुछ क्षण सोचने के बाद उसने यही निश्चय किया कि, न कहूँ। अतएव वह आगे इस प्रकार बोली, "हानि इतनी ही है, कि मेरा मन वैसा नहीं कहता है। उस समय तो मैंने अनुमोदन दे दिया; पर अब मुझे ऐसा मालूम होता है कि ....."

"अच्छा, अच्छा. ठीक है!" राजा धनानन्द हँसते हँसते उससे बोला, "अब तुझे ऐसा मालूम होता है कि, एक बार जब मैं चला जाऊंगा, तब शायद फिर वापस ही न आऊं! स्त्रियां सचमुच ही बड़ी सन्दिग्ध स्वभाव की होती हैं। जान पड़ता है कि, तेरा ऐसा ख़याल है कि, जहां एक बार मैं यहां से बाहर गया कि, फिर दूसरों की ही बातों में आ जाऊंगा—अथवा शायद मेरी ही दृष्टि किसी दूसरे पर पड़ेगी: और तुझ पर जो मेरा प्रेम है, वह फिर नहीं रहेगा! क्यों ऐसी ही बात तो है?"

"बिल-कु-ल ऐसा ही तो नहीं: किन्तु" मुरा ने लड़खड़ाते हुए उत्तर दिया। क्योंकि उसी समय उसके मन में यह विचार भी आया कि, अब तक हमने जिस दुष्ट उद्देश्य से यह सारा उद्योग किया है; और एक ब्राह्मण की सहायता से इतना भारी षड्यंत्र रचा है, वह सब अब राजा को बतला देना चाहिए और

उसके चरण पकड़ कर उससे क्षमा मांगना चाहिए। यह विचार उसके मन में आये अभी कुछ ही क्षण हुए थे कि, फिर उसने सोचा कि, यदि हम अपना यह सारा कपटव्यूह राजा को बतलावेंगी, तो राजा हमको क्षमा नहीं करेगा; किन्तु कोई न कोई अत्यन्त भयंकर दण्ड देगा। यह सोच कर उसने अपना उपर्युक्त कथन उतना ही छोड़ दिया: और अब इस बात का विचार करने लगी कि, कोई ऐसी युक्ति की जाय कि, जिससे राजा कल महल से ही बाहर न निकले। इस लिए जब वह केवल यही शब्द कह कर, कि, "बिलकुल ऐसा ही तो नहीं" चुप होगई, तब राजा उससे बोला:—

"बिलकुल ऐसा ही नहीं, तो फिर कैसा ? आगे क्यों नहीं बोलती ? ठहर क्यों गई ?"

"कुछ नहीं, यों ही ! मुझसे कुछ विशेष बतलाया ही नहीं जाता। परन्तु हां, इतना अवश्य है कि, आप अब कल—कल क्यों, अबतो आज ही ! आज अब आप यहां से जावें नही !"

"क्यों, बतला क्यों नहीं सकती ? जान पड़ता है, तुझको बतलाने की इच्छा ही नहीं है। इच्छा हो, तो बतलाना क्या मुशकिल है: पर अब तू बतलावे, चाहे न बतलावे—मुझे मालूम होगया--मैं बतला दूं ?" यह प्रश्न राजा ने हँस कर, उसकी चिबुक में हाथ लगाते हुए पूँछा।

मुरा कुछ नहीं बोली। इस लिए राजा फिर आगे कहने लगा:—

"वास्तव में तू यही समझती है कि, यदि मैं एक बार यहां से चला गया, तो फिर वापस नहीं आऊंगा; और इसी बात का तुझे भय है; पर अब मैं तेरी एक भी न सुनते हुए अवश्य ही जाऊंगा; इससे तेरा यह भय तो दूर हो जायगा जब मैं एक बार जाकर फिर वापस आ जाऊंगा, तब फिर सदा के लिए

तेरा यह भय तो दूर हो जायगा। ऐसा किये बिना तेरा यह भय कैसे दूर होगा! तू बहुत दिन से ऐसा ही भय कर रही है, इस लिए अब इस मौके को साधकर तेरा यह भय बिलकुल निकाल ही डालना चाहिए। बस, अब निश्चय होगया। अब तू चाहे जो कहा कर, मैं एक भी नहीं सुनूंगा। जाने का निश्चय मैंने स्थिर कर लिया। बस, अब अधिक कुछ मत कह। अब सुबह की मीठी नींद मुझे लेने दे; और तू भी ले। अब कुछ मत बोल।"

यह कह कर राजा दूसरी करवट हो गया। कुछ ही देर बाद उसे नींद आगई। इस समय सुबह होने में दस ग्यारह घड़ी का अवकाश था। मुरादेवी को नींद बिलकुल नहीं आ रही थी। उसने बहुत कुछ प्रयत्न किया, किन्तु उसकी पलक नहीं लगी। वह बराबर यही सोच रही थी कि, अब ऐसी कौनसी युक्ति की जाय कि, जिससे राजा कल राजसभा में न जावे। उसने बहुत कुछ सोचा, पर कोई भी अच्छी युक्ति उसके ध्यान में नहीं आई। उसने सोचा कि, अब दूसरे किसी से अपना हृदय खोल कर सब बातें बतलाऊं, और फिर उसीसे इस विषय में कोई युक्ति भी पूछूं। पर पूछे किससे? उसकी सब से अधिक विश्वासपात्र और प्रिय सखियां दो थीं—एक वृन्दमाला और दूसरी सुमतिका। परन्तु वृन्दमाला के विषय में तो उसका ऐसा विचार था कि, यह हमारे सब कार्यों में और षड्यंत्रों में सहायता नहीं कर सकती—कपट-नाटक इसको बिलकुल ही अच्छा नहीं लगता, और हमारा तो सारा कर्तृत्व कपट-नाटक में ही है, ऐसी दशा में वृन्दमाला को अपने विश्वास में लेने से कोई लाभ नहीं, उससे कोई कार्य सिद्धि तो होगी नहीं—हां, कार्य-हानि अवश्य हो सकती है। बस, यही सोच कर मुरादेवी ने वृन्दमाला को अपने षड्यंत्र से बिलकुल अलग रखा था—बिलकुल अलग

हो नहीं रखा था, बल्कि और उलटे उससे यही प्रकट किया था कि, हमने अब अपने पिछले सारे विचार बदल दिये हैं—अब हम राजा के साथ सच्चे प्रेम का ही बर्ताव करती हैं—कपटप्रतिज्ञा अब हमने छोड़ दी। वृन्दमाला से तो वह ऐसा प्रकट करती थी, परन्तु सुमतिका को उसने अपने वर्तमान कार्य के लिए बहुत उपयोगी समझा था। उसके विषय में उसका ऐसा खयाल था कि, यह प्रत्येक कपट-नाटक में, नांदी से लेकर भरत-वाक्य तक, सब बातों में पूरा पूरा हमारा साथ दे सकती है, और इसी कारण सुमतिका को ही अब उसने अपने विश्वास में लिया था। चाणक्य के पास आने-जाने और सन्देशा पहुँचाने इत्यादि का सारा कार्य यही किया करती थी। उसको अब तक का सारा कपट-समारम्भ पूरा पूरा मालूम था। इस लिए मुरादेवी ने सोचा कि, अब उस समारम्भ का प्रतीकार करने के लिए भी सुमतिका की ही सहायता लेना ठीक होगा। यह सोच कर वह धीरे से हो उठी, और बाहर निकल आई। महाराज गहरी नींद में थे, यह बात मुरादेवी के लिए उस समय अनुकूल ही सिद्ध हुई। अस्तु। मुरादेवी अपने रंगमहल से निकल कर उस ओर को चली, जहां सुमतिका के सोने की जगह थी। परन्तु इतने में उसे ऐसा जान पड़ा कि, जैसे उसके दरवाजे के पास से कोई भग रहा हो—भगने वाली व्यक्ति के पैरों की आवाज़ उसके कानों में आई। इसलिए दरवाजे से बाहर निकलते ही उसने इधर-उधर देखा; पर कोई उसे दिखाई नहीं दिया। आखिर वह सुमतिका के सोने के कमरे में पहुँची। सुमतिका पूरा शरीर कपड़े से लपेटे हुए बेहोश सोती हुई दिखाई दी। मुरादेवी ने उसे कई बार पुकारा; पर फिर भी वह नहीं उठी। उसके पास एक दूसरी दासी सोई हुई थी, वह एकदम जग पड़ी, और उठ कर खड़ी हो गई। उसने अपनी स्वामिनी से पूछा कि,

"क्या आज्ञा है देवि !" मुरादेवी ने कहा कि, "सुमतिका को खूब हिला कर उठाओ—इसको कैसी राक्षसी नींद लग रही है !" यह सुन कर उस स्वर्णलता नामक दासी ने सुमतिका को खूब हिला कर उठाया। सुमतिका उस समय इस प्रकार उठी कि, जैसे कोई अत्यन्त घबड़ा कर सहसा उठ पड़े ! इसके बाद वह मुरादेवी की ओर न देखती हुए कहती है, "क्योंरी स्वर्णलते, तू किसी मनुष्य को इतना तकलीफ क्यों देती है—सोते से जगा दिया !" इतना कहने के बाद, ऐसा मालूम हुआ कि, उसकी दृष्टि अब मुरादेवी की ओर गई; और वह उससे बोली, "अरे यह क्या ? महारानी साहब, क्षमा हो। मैं इस समय एक बहुत ही आनन्ददायक स्वप्न देख रही थी, और उसी स्वप्न से इसने मुझको जगा दिया। इसीलिए" "किन्तु देवि, मैं यह क्या बक रही हूँ ? कहिये, आपकी क्या आज्ञा है ?"

"कोई बात है, जो तुझको बतलानी है। स्वर्णलते, तू इस समय बाहर चली जा; और दरवाजा बन्द करके बहुत दूर पर खड़ी हो। हमारी बातचीत मत सुन। जा। और कोई इस समय यहाँ आ ही नहीं सकता, और यदि आवे भी तो तू वहीं उसको दूर पर रोक ले। मेरे पास उसकी ख़बर भी लाकर मत दे। मेरी बातचीत जब ख़तम हो जायगी, तब मैं स्वयं तुझ को बुलाऊंगी। अच्छा, अब तू जा।"

मुरादेवी की यह आज्ञा पाते ही स्वर्णलता वहाँ से चली गई। इसके बाद मुरादेवी अब अपना हृद्गत सुमतिका से बतलाने ही वाली थी कि, इतने में उसका चित्त फिर चंचल हो उठा, और वह एकदम अपने मन में ही बोली, "सुमतिका पहले से ही हमारे कपट-नाटक के पक्ष में है। इसलिए यह कैसे कहा जा सकता है कि, इस समय वह हमारे इस परिवर्तित विचार को सुन कर प्रसन्न ही होगी; अथवा

हम को कोई उचित सलाह देगी ? सम्भव है कि, हमारा यह बदला हुआ विचार उसको बिलकुल न रुचे; और वह हमारे पूर्व-विचार को ही स्थिर करने का प्रयत्न करे। सच पूछिये, तो सुमतिका दुष्ट कार्यों के लिए ही विशेष उपयोगी है—कपटनाटक में ही इससे खूब लाभ उठाया जा सकता है; परन्तु अब हम उस कपटनाटक को तोड़कर उसकी जगह सत्कार्य की स्थापना करना चाहती हैं; इस लिए अब हम यदि यह चाहती हैं कि, महाराज को हमारा अब तक का कोई षड्यंत्र मालूम न होने पावे, और हमारा कुछ अहित भी न होने पावे, तथा साथ ही साथ महाराज के प्राण भी बच जायँ, तो अब इसको अपने मन की कोई भी बात मालूम नहीं होने देना चाहिए। इससे इस समय कोई न कोई और ही बातचीत करके इसको पहले के ही ख़याल में रहने देना चाहिए। सम्भव है, मेरे परिवर्तित विचार इसको पसन्द न आवें; और फिर स्वयं हम से ही यह कपट-नाटक करने को तैयार हो जाय!" यह सोच करके मुरादेवी ने ऐसा विचार किया कि, अब हम इस बात में सुमतिका से कोई सलाह नहीं लेंगी—वास्तव में यह नाम को तो सुमतिका है; पर काम में कुमतिका ही है। इस काम में वृन्द-माला ही बहुत अच्छी है। उसी की सलाह लेनी चाहिए। ऐसा निश्चय करके वह सुमतिका से बोली, "सुमतिके, आज रात भर मुझे जगतेही बीती—नींद का नाम तक नहीं। क्या तेरा ऐसा ख़याल है कि, हमारा यह कार्यभाग सिद्ध हो जायगा? मान लो, यदि यह सिद्ध नहीं हुआ, तो तेरी, और मेरी भी, क्या गति होगी?" सुमतिका वास्तव में बड़ी चतुर स्त्री थी। उसने तुरन्त ही ताड़ लिया कि, इस समय रानी साहब सिर्फ़ इतना ही पूछने को नहीं आई होंगी—इनके मन में और कोई बात अवश्य है। परन्तु अपने मन का यह भाव प्रकट न करते हुए

वह मुरादेवी से बोली, "देवि, आप को इस विषय में अब शंका बिलकुल ही न करनी चाहिए। आर्य चाणक्य कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। उनका रचा हुआ षड्यंत्र विफल कभी हो ही नहीं सकता। आप को आज क्या इसी विचार के कारण निद्रा नहीं आई? चाणक्य गुरु का व्यूह अवश्य सिद्ध होगा; और अब आपकी इच्छा के अनुसार आपके भतीजे को राज्य-प्राप्ति होगी।"

"चुप चुप सुमतिके," मुरादेवी एकदम उसके मुख पर हाथ लगा कर कहती है, "अरी ज़ोर से मत बोल। दीवालों के भी इस समय कान निकल आ सकते हैं। अब बहुत समय नहीं रह गया है। व्यर्थ का गोलमाल मत कर।"

इतना कहकर मुरादेवी फिर बिलकुल चुप हो गई। इसके बाद, उसके मन में फिर भी एकबार यही आया कि, हमने अब तक जो षड्यंत्र रचा है, उससे बचकर महाराज को भी बचाने की अच्छी युक्ति यदि कोई हमको बतला सकता है, तो सुमतिका ही बतला सकती है। इस लिए इसी के सामने सब विचार स्पष्ट रूप से प्रकट करने चाहिए। वृन्दमाला इस विषय में कुछ भी सलाह नहीं दे सकेगी; क्योंकि उसको अब तक इस विषय में कोई ज्ञान ही नहीं है; और अब हम उसको बतलाने चली हैं: ऐसी दशा में वह बेचारी हमको क्या सलाह देगी? इस प्रकार मुरादेवी के मन की दशा में फिर अन्तर पड़ा, और उसने सोचा कि, अब इस विषय में विचार करने के लिए फिर अवकाश नहीं मिलेगा, अतएव वह एकदम सुमतिका से बोली:—

"सुमतिके, मेरे भतीजे को राज्य मिलने से मुझ को क्या लाभ? इससे तो यही अच्छा होगा कि, हमारे महाराज चिरायु बने रहें; और मैं उनके प्रेमछत्र के नीचे सुख भोगती रहूँ! मुझ को इतने दिन तक वे जेल में सड़ाते रहे, मेरे पुत्र की हत्या

कराई, बस इसी क्रोध में आकर मैंने न जाने क्या क्या कहा, और कैसी कैसी प्रतिज्ञाएं करके कैसे कैसे षड्यंत्र रचे: पर अब मैं ऐसा चाहती हूँ कि, इस दुर्घटना को किसी न किसी प्रकार रोक लिया जाय । इस लिए तू चाणक्य गुरू के पास जाकर कह दे कि, तुम अब यह अपना सारा षड्यंत्र समेट लो: और चन्द्रगुप्त को लेकर अभी के अभी चले जाओ। मैं इस बात का पूरा पूरा प्रयत्न करनेवाली हूँ कि महाराज आज यहां से बाहर न निकलें; किन्तु फिर भी यदि महाराज मेरी कोई बात नहीं सुनेंगे, तो मैं उनके सामने अपनी सब बातें स्वीकार करके क्षमा-याचना करूंगी। वे यदि क्षमा कर देंगे, तब तो ठीक ही है, अन्यथा जो दण्ड वे मुझको देंगे, उसका भोग करूंगी, किन्तु व्यर्थ के लिए उनकी हत्या नहीं होने दूंगी। इस लिए सुमतिके, तू यदि ऐसी कोई युक्ति बतला सके कि, जिससे हमारा कपट-नाटक बाहर न प्रकट हो, और महाराज के प्राण भी बच जाँय, तो बतला; अन्यथा मैं जैसा कह चुकी हूँ, उसी के अनुसार सब काम करूंगी !"

इस प्रकार मुरादेवी ने बिलकुल स्पष्ट रूप से अपना बिचार सुमतिका के सामने प्रकट कर दिया, जिसे सुनकर सुमतिका बहुत ही आश्चर्य-चकित हुई। वह बड़े चक्कर में पड़ी कि, मैं जो कुछ सुन रही हूं, वह मुरादेवी ही बोल रही है, अथवा और कोई ? मैं यह सब जागृत अवस्था में सुन रही हूँ, अथवा स्वप्न देख रही हूं ? कुछ उसकी समझ में नहीं आया। परन्तु फिर कुछ सोच समझ कर वह मुरादेवी से कहती है, "देवि, आप का चित्त एकाएक बदल गया है; इसका कारण क्या ? हमको क्या ! हम तो आप की आज्ञा का पालन करनेवाली हैं । जैसा आप कहेंगी, वैसा ही हम करेंगी—अभी आर्यचाणक्य के पास जाकर आप का सन्देशा दिये आती हैं ।"

"अच्छा, अब तू ऐसा ही कर, और अभी आर्य चाणक्य के यहां जाकर मेरा सन्देशा पहुँचा। अब मेरा यही निश्चय बिलकुल स्थिर हो गया है। महाराज के कानों में यदि सब वृत्तान्त डाल देंगी, तो उस बेचारे ब्राह्मण पर विपत्ति आवेगी। इसलिए उसको पहले ही सब बतला कर सावधान कर देना चाहिए कि जिससे वह तुरन्त ही यहां से भाग जावे। जा, अब तू शीघ्र ही जा। यहां क्षण भर भी मत खड़ी हो। यह समय यदि निकल गया, तो फिर आगे न जाने क्या हो जाय! मेरा मन क्षण क्षण पर बदल रहा है। इस लिए तू अब जा।"

सुमतिका ने भी समझा कि, इस समय आर्य चाणक्य का यहां आ जाना ही ठीक होगा। इस लिए वह गई; और थोड़ी ही देर बाद उनको ले आई।

उस समय आर्य चाणक्य और मुरादेवी में जो सम्वाद हुआ, वह बहुत ही विलक्षण है। अगले परिच्छेद में वह सम्वाद पाठकों को मालूम होगा।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

भतीजा या लड़का ?

सुमतिका ने चाणक्य को मार्ग में ही यह सब बतला दिया कि, आपको मुरादेवी ने क्यों बुलाया है, और नवीन क्या क्या बात हुई है। इधर चाणक्य ने भी मुरादेवी के आज तक के व्यवहार से यह भली भांति ताड़ लिया था कि, मौका आने पर, सम्भव है, इसका मन बदल जाय; और कोई अनिष्ट ही घटना आ उपस्थित हो। इस कारण मुरादेवी की ओर से वे भी गाफिल नहीं थे। उन्होंने सोच लिया था कि, बहुत सम्भव है कि, मुरादेवी का मन मौका आने पर बदल जाय; क्योंकि यह भी एक स्त्री ही है—स्त्रियों के स्वभाव का क्या ठीक ? अपने दायादों से युद्ध करते समय अर्जुन तक के मन को दशा बदल गई थी। अतएव दूरदर्शी चाणक्य ने यह पहले ही से निश्चय कर लिया था कि, यदि ऐसी दशा आ जायगी, तो फिर उस समय हमको कैसा बर्ताव करना होगा। क्योंकि इस बात के तो यहां बतलाने की आवश्यकता ही नहीं है कि, चाणक्य ऐसे मनुष्यों में बिलकुल अग्रणी थे कि, जो किसी कार्य को हाथ में लेकर उसको पूरा किये बिना नहीं छोड़ते। वास्तव में सब बातों का विचार उन्होंने पहले ही से कर रखा था। इस लिए सुमतिका ने ज्यों ही मुरादेवी के नवीन विचारों का उनसे ज़िक्र

किया, त्यों ही उन्होंने मन ही मन में तुरन्त ही यह निश्चय कर लिया कि, अब हमको मुरादेवी के पास जाकर क्या क्या बातें करनी होंगी, और उसे किस प्रकार समझाना होगा। अस्तु। सुमतिका ने चाणक्य को ले जा कर यज्ञशाला में बैठा दिया। उनके आने का समाचार पाते ही मुरादेवी वहां आई। मुरादेवी अभी उनके पास तक आने भी नहीं पाई थी कि, चाणक्य पहले ही से उसके सामने जाकर खड़े हो गये; और बोले, "देवि मुरे, मुझे इतनी जल्दी क्यों बुलवाया? क्या तुझको यह शंका तो उपस्थित नहीं हुई कि, हम लोगों के उद्देश्य के सिद्ध होने में कोई विघ्न उपस्थित होगा? यदि ऐसा हो, तो तुरन्त ही मुझसे बतला। मैं बहुत जल्द उपाय करके उस विघ्न का निवारण करूंगा।"

"विप्रवर," मुरादेवी एकदम उससे बोली, "हम लोगों ने जो कार्य प्रारम्भ किया है, उसको यदि करना ही है; और यदि उसको अन्त तक पहुँचाना ही है, तो विघ्न उसमें कोई नहीं; पर अब मेरा ऐसा विचार है कि, इस प्रकार का प्राण-घातक कार्य किया ही न जाय। और इसी लिए मैंने आपको इस समय बुलवाया है। आप इस व्यूह को एकदम तोड़ डालें; और यदि ऐसा नहीं हो सकेगा, तो मैं महाराज को आज बाहर निकलने ही न दूंगी। और यदि वे बाहर जाने का आग्रह ही करेंगे, तो मैं सब बातें उनसे प्रकट कर के क्षमा याचना करूंगी; पर उनका प्राण-नाश अब नहीं होने दूंगी। और आप भी चन्द्रगुप्त को लेकर अभी चले जाइये, अन्यथा आपके प्राणों पर भी आपत्ति आवेगी।"

यह सुन कर चाणक्य हँसे; और बोले, "देवि मुरे, अपना यह सारा निश्चय बदलने के लिए तुम ने यह समय बहुत ही अच्छा निकाला! मैं ब्राह्मण हूँ, केवल यजन-याजन और पठन पाठन कर के अपना समय बिताता था—उसको व्यर्थ के लिए तुमने इस

गड़ बड़ में डाला। तुम्हारी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने ही के लिए मैं चन्द्रगुप्त को यहां ले आया। उसको राज्य मिलने की सब तैयारी भी अब हो चुकी, और इतने में—ऐन मौक़े पर—तुम ऐसा कह रही हो—अब मैं क्या कहूँ? अरे, बड़ी ही पगली हो—इस समय तुम अपना मन बदल कर......"

यह कहते समय आर्य चाणक्य की आवाज़ बहुत तेज़ हो गई। इस लिए मुरादेवी उनसे बोली, "विप्रश्रेष्ठ, आप यदि ज़ोर से बोलेंगे, तो जो संकट घड़ी भर में आनेवाला होगा, वह इसी दम आ जायगा। सच तो यह है कि, यदि आप अभी चुपके से पाटलिपुत्र के बाहर चले जायँगे, तो आपके प्राण बच जायँगे, अन्यथा यदि आप ज़ोर से बोलेंगे, तो महाराज जग पड़ेंगे, अथवा और ही कोई आपकी ये बातें सुनकर महाराज तक पहुँचा देगा, फिर उस दशा में क्या होगा और क्या नहीं—कुछ कहा नहीं जा सकता। अब आप व्यर्थ की इन बातों में न पड़ें, और किसी तरह अपने तथा चन्द्रगुप्त के प्राण बचावें—इसी में भलाई है! मैं तो अपना पक्का निश्चय कर चुकी हूँ। मैं महाराज को किसी न किसी प्रकार समझा कर उनको कल महल से बाहर जाने नहीं दूंगी, और यदि वे नहीं मानेंगे, तो अपना सारा सच्चा वृत्तान्त—यह सारा षड्यंत्र—उन पर प्रकट करके उनको सावधान कर दूंगी, किन्तु उनकी हत्या नहीं होने दूंगी।"

"अरे उनकी हत्या न होने दो, किन्तु क्या तुम अपने पेट के बच्चे की हत्या करोगी?" चाणक्य ने बिलकुल उसके सामने होकर कहा।

"मेरे पेट के बच्चे की हत्या? और मैं करूंगी? कैसा बच्चा? आप कहते क्या हैं?" मुरादेवी आश्चर्य-चकित हो कर पूछने लगी। चाणक्य के कथन का कुछ भी अर्थ वह न समझ सकी। यह देख कर चाणक्य उससे फिर बोले, "तुमने यह प्रतिज्ञा की

थी कि, हमारे पेट के बच्चे की जिसने हत्या कराई है, उसको दण्ड देंगी, और हमको वृषली बतलाया है, इस लिए अब पाटलिपुत्र के सिंहासन पर हम अपने मायके के ही किसी पुरुष को बैठावेंगी,—कहां ता तुमने ऐसी प्रतिज्ञा की थी, और अब मैं देखता हूँ कि, तुम उस प्रतिज्ञा का भंग कर के स्वयं अपने पेट के बच्चे की ही हत्या कराने चली हो—इसका क्या अर्थ है ?"

"आर्य, आपके चित्त को भ्रम तो नहीं होगया ? आप बार बार यही कह रहे हैं कि, मैं अपने पेट के बच्चे की हत्या कराने वाली हूँ—इसका अर्थ क्या है ? मैंने झूठ ही यह प्रकट किया था कि, मैं गर्भवती हूँ, और यही बात शायद आपके कानों में आई होगी,—इसी कारण तो आप ऐसा नहीं कह रहे हैं ? शायद आप सोचते होंगे कि, यदि राजा से मैं अपना अपराध स्वीकार कर लूंगी, तो राजा मुझको प्राणदण्ड देगा, और इस प्रकार मेरे हाथ से मेरे पेट के बच्चे की हत्या होगी, पर ऐसा नहीं है—मैं गर्भवती नहीं हूं। आपको यदि ऐसा भ्रम हो, तो आप उसे निकाल डालिये।"

"देवि, मैं तो भ्रम में बिलकुल नहीं हूं, पर देखता हूँ कि, तुम भ्रम में अवश्य हो। तुम अभी तक भ्रम में बनी हो, इसका मुझे आश्चर्य है। राजा ने तुम्हारे पेट के बच्चे की हत्या कराने का प्रयत्न किया था, पर वह सफल नहीं हुआ, किन्तु अब तुम अवश्य ही अपने हाथ से उसकी हत्या कराने की सारी तैयारी कर रही हो !"

यह कथन सुन कर मुरादेवी भौंचक्की सी रह गई, और आश्चर्यपूरित तथा पृच्छा-प्रेरित चेष्टा से चाणक्य की ओर देखने लगी। किन्तु उसके मुँह से कोई शब्द नहीं निकल रहा था। वह क्या कहे, सो कुछ उसे सूझ नहीं रहा था।

चाणक्य को उसकी यही दशा अभीष्ट थी। इस लिए वे

फिर बोले, "देवि, अब मैं तुमको अधिक समय तक भ्रम में नहीं रखूंगा। तुम जननी हो—तुमको अपने पुत्र का तुरन्त ही परिचय मिल जाना चाहिए था, परन्तु वह नहीं मिला, इस लिए अब मैं तुमको उसका पूरा पूरा परिचय कराता हूँ। व्यर्थ के लिए अब मैं इसमें विलम्ब नहीं करूंगा, मैं बहुत जल्द ऐसा करने ही वाला था। पर तुमने आज ही उसकी आवश्यकता उपस्थित कर दी। देवि, तुम्हारा लड़का जीवित है!"

"मेरा लड़का जीवित?" मुरादेवी ने एकदम उनके सामने होकर ज़ोर से पूछा। मानो इस बात का अब उसे कुछ भान ही नहीं रहा कि, मैं कहां हूँ, क्या करती हूँ, इत्यादि।

"हां, तुम्हारा लड़का जीवित!" आर्य चाणक्य कुछ हँस कर उससे बोले।

"आर्य, आप विनोद तो नहीं कर रहे हैं?" मुरादेवी ने पूछा।

"यह विनोद का अवसर नहीं: और न मैंने आज तक किसी से विनोद किया।"

"तो क्या फिर मेरे लड़के की उस समय हत्या नहीं हुई?"

"नहीं, हत्या नहीं हुई, वह जीवित बना रहा: और इस बात को सिद्ध करने के लिए मैं तैयार हूँ!"

मुरादेवी आश्चर्यस्तब्ध हो गई। ऐसा जान पड़ा कि, मानों चाणक्य के कथन का उसको कुछ ज्ञान ही नहीं हो रहा था। परन्तु उसने फिर भी उनसे पूछा, "तो अब इस समय वह कहां है?"

"इस घड़ी वह पाटलिपुत्र में है—तेरे बिलकुल सन्निध है। वही तेरा......"

"क्या कहते हैं? मेरा लड़का मरा नहीं? वह पाटलिपुत्र

में है ? आर्य चाणक्य, मुझको इस प्रकार सन्देह में मत रखो ! स्पष्ट बतलाओ जो कुछ बतलाना हो !"

देवि मुरे, अब और मैं क्या स्पष्ट बतलाऊं ? अब भी तुम्हारे अनुमान में नहीं आता ?"

"मेरे अनुमान में आ गया है; परन्तु उस अनुमान को सत्य कैसे समझूं ?"

"अपने अनुमान की सत्यता अथवा असत्यता की प्रतीति अपने मन से ही होती है ।"

"आज तक मेरे मन की ऐसी कोई भी प्रतीति नहीं हुई ।"

"प्रतीति होने के लिए प्रयत्न की भी आवश्यकता है, उसके बिना प्रतीति कैसे हो ?"

"तो क्या चन्द्रगुप्त को आप मेरा पुत्र बतलाते हैं ? जिसको जन्मते ही मुझे कारागार दिया गया, और जिसका नाश करने के लिए महाराज ने आज्ञा दी, वह क्या मेरा पुत्र अभी जीवित है ? यह चन्द्रगुप्त क्या वही है ? आर्य चाणक्य, आप मुझे बहका तो नहीं रहे हैं ? शायद आप चाहते हों कि, मैं आपके पक्ष में बनी रहूँ; और इसी लिए इस समय आप ये सब बातें बना कर कहते हों ! आप सच सच कहिये; क्या चन्द्रगुप्त मेरा लड़का है ?"

"हां, हां, चन्द्रगुप्त तुम्हारा लड़का है । राजा धनानन्द ने उसकी हत्या करने के लिए यदि उसको बधिकों के हाथ में न दे दिया होता, तो आज वही इस पाटलिपुत्र के यौवराज्य सुख का भोग करता होता ! वही यह तेरा पुत्र चन्द्रगुप्त है ! देवि मुरे, तुम्हारे और उसके स्वरूप में जो समता है, उसकी ओर क्या तुम्हारी दृष्टि अब तक नहीं गई ? उसको देख कर क्या तुम्हारे मन में कभी वात्सल्य-भाव उत्पन्न नहीं हुआ ? अरे, तुम को तो इससे पहले ही मुझ से इसके विषय में अनेक प्रश्न करने

चाहिए थे; पर मैं ने इसी विचार से तुमको उसे "तुम्हारा भतीजा" बतलाया कि, जिससे तुमको उक्त प्रश्न करने का अवसर ही न मिले। क्योंकि भतीजे के और तुम्हारे स्वरूप में समता होना कोई आश्चर्य की बात नहीं मानी जा सकती थी। परन्तु मेरा यह ख़याल कभी नहीं था कि, तुम मेरे इस कथन में आ जाओगी—मेरा तो ख़याल ऐसा ही था कि, तुम अपने पुत्र का परिचय अपने हार्दिक वात्सल्यभाव से ही कर लोगी। अस्तु। फिर भी मैंने इस बात का निश्चय अपने मन में अवश्य कर लिया था कि, तुम जिस दिन इस विषय में शंका उपस्थित करोगी, उसी दिन मैं तुमको उसका पूरा पूरा परिचय दे दूंगा; परन्तु आज तक ऐसा मौका ही नहीं आया।"

मुरादेवी चाणक्य का यह कथन सुन रही थी, अथवा नहीं—इसमें शंका ही है। उसका चित्त चाणक्य की बातों की ओर नहीं था। वास्तव में उस समय उसके मन में इस प्रकार की शंकाएं आ रही थीं कि, चाणक्य हमसे ऐसा बतला तो रहे हैं, पर यह सत्य है अथवा नहीं? क्या सचमुच चन्द्रगुप्त मेरा लड़का ही है? अथवा ये इसी लिए सब बातें बना रहे हैं कि, जिससे मैं अपने वर्तमान विचार को छोड़ कर इनके पक्ष में बनी रहूँ? इस प्रकार की शंकाएं मुरादेवी के मन में आईं, और वह एकदम चाणक्य से बोली, "आप इसको मेरा लड़का तो बतलाते हैं; किन्तु इसका प्रमाण क्या है?"

"प्रमाण? तुम्हारे और उसके स्वरू-प की समता ही इसका प्रमाण है।"

"यह कोई अमोघ प्रमाण नहीं है—इससे भी सबल प्रमाण यदि कोई आप के पास हो, तो बतलाइये।"

"देवि मुरे, इस प्रकार के प्रमाणों के मांगने का यह समय है?"

"समय कैसा ही हो, किन्तु इस समय मेरे मन की कुछ विचित्र ही दशा हो रही है, अतएव प्रमाण मुझे मांगना ही पड़ेगा !"

"अच्छा, यदि तुम प्रमाण ही चाहती हो, तो लो, देखो, यह क्या है ! यह उस नवजात शिशु के मणिबन्ध पर था। बच्चा हिमालय के जंगल में पड़ा हुआ था—वहीं गोपालों को वह ठीक चांदनी रात में मिला। भगवान् चन्द्र देव अपनी शीत किरणों से उस नवजात बालक का संरक्षण—गोपन कर रहे थे, और इसी कारण उन गोपों ने उसका नाम चन्द्रगुप्त रखा।"

आर्य चाणक्य ने ये वचन कह कर वह रक्षाबन्धन मुरादेवी के सामने रख दिया। उसके देखते ही मुरादेवी की ऐसी दशा हुई कि, जैसे कोई मनुष्य बिलकुल अँधेरे में भटक रहा हो; और एकदम उसे दीपक का प्रकाश दिखाई दे जाय—तथा उस दीपक के प्रकाश के दिखने से सब कुछ उसे बिलकुल स्पष्ट दिखाई देने लगे। बस, यही हालत उस समय मुरादेवी की हुई। वह इतनी देर से बिलकुल संशयतम में ग्रसित थी, परन्तु वह रक्षाबन्धन अब उसके लिए बिलकुल उज्ज्वल प्रदीप का ही काम कर गया। उसको देखते ही वह आश्चर्य, हर्ष और कुछ कुछ खेद—इन्हीं तीन विचारों के उद्वेग से बिलकुल स्तब्ध हो गई। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलने लगा। बहुत देर तक वह उसी दशा में बनी रही। चाणक्य ने भी सोचा कि, इस समय इस को इसी दशा में रखना ठीक होगा; इस लिए वे भी कुछ नहीं बोले। परन्तु फिर कुछ समय बाद मुरादेवी ही उनसे बोली:—

"आर्य, जब से आपने यह बतलाया कि, चन्द्रगुप्त मेरा लड़का है, तब से..."

" 'बतलाया' क्यों कहती हो, अब तो तुमको विश्वास ही करा दिया न ?"

"अच्छा, ऐसा ही सही; पर जब से मुझे यह मालूम हुआ, तब से मेरे मन की कुछ विचित्र दशा हो रही है। अब मैं क्या करूं ? क्या महाराज को जाने दूं ? उनकी हत्या होने दूं ? क्या करूं; और क्या न करूं—मेरी कुछ समझ ही में नहीं आता।"

"इसमें समझ में आने की कौन सी बात है ? यदि तुम चाहती हो, कि तुम्हारे लड़के को राज्य मिले, तो चुप बैठो। उस समय तुम्हारे लड़के की हत्या नहीं हुई थी; सो इस समय यदि करानी हो, तो राजा को सब बातें बतला दो। मुझ से तुम कहती हो कि, तुम इसको लेकर भाग जाओ।' पर मैं इस प्रकार भाग नहीं सकता। 'उसको मैं नन्द के सिंहासन पर बैठाऊंगा, नहीं तो अपना प्राण दे दूंगा।' यह मेरी प्रतिज्ञा है! मेरा व्यूह यदि सिद्ध हो जायगा, तो मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायगी। मेरा व्यूह यदि तुम्हारे इस ऐन मौके के डरपोकपन से खुल जायगा तो राजा मेरे प्राण लेगा; और चन्द्रगुप्त की हत्या करेगा मेरे लिए दोनों ही बराबर हैं। प्रतिज्ञा सिद्ध नहीं होगी, तो प्राण देने का मैं ने निश्चिय कर ही लिया हैं—सो राजा ले लेवे—इसमें मेरी कोई हानि नहीं! किन्तु तुम अपने लड़के के प्राणों की तो परवा करोगी ? अब जो तुम को उचित दिखाई दे, वही करो। लड़के का प्राण गवाँओ, अथवा उसको राज्य दिलाओ। चुप रहोगी, तो उसे राज्य मिलेगा ही; और षड्यंत्र को फोड़ दोगी, तो राजा उसको मार डालेगा ही। दोनों बातों को अच्छी तरह समझ लो; और मैं अब जाता हूँ—शान्तिपूर्वक विचार कर के, जो कुछ करना हो, सो करो। मैं अब ठहर नहीं सकता। मेरा समय बहुत गया।" यह कर चाणक्य सचमुच ही वहां से चल दिये।

चाणक्य के मन में यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि, इस समय हम ने जो कुछ कहा है, उसका मुरा के मन पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ेगा। अब राज्यलोभ के लिए न सही; किन्तु पुत्र के प्राणलोभ से तो यह अवश्य ही बिलकुल स्तब्ध और चुप हो जायगी। इस लिए वे अब बिलकुल निश्चिन्त हो कर वहां से चले गये। इधर मुरा का मन पूरा पूरा चिन्ताग्रस्त हो गया। उसने सोचा कि, चन्द्रगुप्त हमारा लड़का है सही, और उसको तत्काल राज्यलाभ भी होगा, किन्तु पति का प्राण बचाना भी आवश्यक है, और यदि पति का प्राण हमको बचाना है, तो उससे सारी बातें स्पष्ट स्पष्ट बतला देनी चाहिएं। और उसकी सज्जनता पर भरोसा रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं। हमको अपनी ओर से ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिए कि. जिससे महाराज बाहर न जावें, परन्तु यदि हमारा यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ. तो फिर हम क्या करेंगी? इस प्रकार मुरा पागल की भांति सोचने लगी—जैसे कोई मनुष्य बिलकुल पागल हो जाय, और नाना प्रकार के विचार उसके मस्तिष्क में भ्रमण करने लगें, उसी प्रकार मुरादेवी के मन में भी अनेक विचार आने और जाने लगे। कोई विचार उसके मन में स्थिर ही न रहने लगा। इस प्रकार जब वह इस विवेचना में पड़ी हुई थी कि, अब मुझे क्या करना चाहिए, और क्या नहीं करना चाहिए, राजा धनानन्द एकदम जग पड़ा, और मुरा को उसने पुकारा।

राजा धनानन्द आज बहुत देर से उठा—करीब पहर भर दिन चढ़ रहा होगा। उस समय जब उसने देखा कि, रात को इतना जागरण होने पर भी मुरा इतनी जल्दी उठ गई, तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। अतएव वह उससे बोला, "क्या तुझ को आज नींद इसी कारण नहीं आई कि, मैं आज जानेवाला हूँ ?

क्या तू सचमुच ही अब भी यही समझती है कि, मैं अब की बार जाकर लौटूंगा नहीं? सचमुच ही तू बड़ी पगली है। किन्तु मैं आज तुझे इसका विश्वास ही करा दूंगा।"

"नहीं महाराज, आप आज नहीं जाइये। कल चाहे चले जाइयेगा।"

"कल क्या विशेषता है? और आज क्या कमी है? सो कुछ नहीं। मैं अवश्य जाऊंगा। अब तू मेरे जाने को तैयारी में लग। राक्षस ने उधर सारी तैयारी कर ही रखी होगी। अब मुझे वे बुलाने आते ही होंगे।"

"किन्तु महाराज, मेरी दाईं आंख फड़क रही है; और मुझे बड़ा भय मालूम हो रहा है।"

"तेरा भय संध्या-काल को चला जायगा। मैं लौट कर आया कि गया तेरा भय!"

छब्बीसवां परिच्छेद

पति या पुत्र?

मुरादेवी ने बहुत प्रकार से राजा को समझाया कि, राजा आज राजसभा में जाने का विचार रहित कर दें; परन्तु महाराज धनानन्द ने उसकी एक भी नहीं सुनी। बार बार उन्होंने यही कहा कि, "तू यह समझ रही है कि, जहां मैं एक बार तेरे महल से गया कि, फिर मैं लौट कर तेरे यहां नहीं आऊंगा। तू समझती है कि, कोई न कोई मुझ को बहका देगा, अथवा स्वयं मेरा ही मन बदल जायगा। बस, इसी भय से तू मुझको जाने नहीं दे रही है; परन्तु मैं अब इस विषय में तेरी एक भी न सुनूंगा। क्षण भर—नहीं, पहर डेढ़ पहर तक—तुझ को कष्ट होगा; क्योंकि मेरे लौटने में इतनी देर अवश्य ही लग जायगी; परन्तु जब मैं एक बार लौट आऊंगा, तब फिर सदैव के लिए तेरा यह भय चला जायगा। बस, इसी उद्देश्य से मैं जाऊंगा। तेरी प्रार्थनाओं, तेरी विनतियों की ओर मैं ध्यान नहीं दूंगा। तेरी आज्ञा भंग करूंगा। अब इस विषय में तू मुझसे कुछ भी मत कह! जा! मेरे जाने की तैयारी कर। अन्यथा तू भी मेरे साथ ही चल। एक हाथी पर तू बैठ। चल। तू यदि चलेगी, तो अच्छा ही होगा—मुझे जब कोई बहकाने लगेगा, तब तू मुझको

सम्हालने के लिए पास मौजूद रहेगी । चलती है ? चल । तेरा भी प्रबन्ध चलने का कराऊं ?" राजा धनानन्द कुछ विनोद से, और कुछ हृदयपूर्वक, उपर्युक्त रीति से मुरादेवी से कह रहा था; पर मुरादेवी उसके इस सारे कथन का एक ही मतलव समझ सकी कि, राजा अब किसी प्रकार भी मेरी बात मान नहीं सकता । वह राजसभा में जाने का विचार किसी प्रकार भी रहित नहीं कर सकता । राजा अवश्य ही कुछ कुछ विनोद-पूर्वक कह रहा था; पर मुरादेवी के मन की वह दशा नहीं थी कि, वह भी राजा के उस विनोदपूर्ण वचनों पर आनन्दित होकर स्वयं भी कुछ विनोदयुक्त उत्तर-प्रत्युत्तर देती । उसका चित्त बहुत ही घबड़ा रहा था । वह सोच रही थी कि, यदि इस समय मैं चुप रहूँगी, तो मेरे लड़के को राज्य अवश्य मिलेगा और मेरी प्रतिज्ञा भी पूर्ण होगी; किन्तु पतिहत्या का महापातक मेरे सिर लगेगा, और चिरकाल तक रौरव नरक में पड़ना होगा । लड़का राजगद्दी पर बैठेगा, पर उसको राजगद्दी पर बैठा हुआ देख कर मुझको आनन्द नहीं होगा, क्योंकि प्रत्येक समय पति का स्वरूप ही मेरी आंखों के सामने झूलता रहेगा, और पतिहत्या का पातक रात-दिन मुझ को सताता रहेगा । इस लिए मुझ को ऐसा नहीं करना चाहिए । इस समय मेरा चुप रहना अच्छा नहीं । अब तक हमने जो कपटनाटक रचा है, जो षड्यंत्र हम लोगों ने किया है, सब पति के सामने प्रकट कर देना चाहिए । इससे जो आपत्ति हमारे ऊपर आवे, उसको सहन कर लेना चाहिए । महाराज और अधिक क्या करेंगे ? बहुत करेंगे, तो फिर कारागृह में डाल देंगे ! कारागृह में रहने की हमको आदत पड़ ही गई है, इस लिए कोई कष्ट नहीं होगा । अथवा, हमारा वध ही करवा डालेंगे—परन्तु नहीं, कारागृह में डालने अथवा वध कराने का प्रश्न नहीं है—प्रश्न तो हमारे

पुत्र को राज्य मिलने का है, कि जिसकी आज इतने दिन के बाद हमको आशा उत्पन्न हुई है! मैं तो समझती थी कि, लड़कपन में ही—नहीं, नहीं, जन्मते ही उसकी हत्या हो गई: और इसी लिए बदला लेने को मैं ने प्रतिज्ञा की; परन्तु वही पुत्र आज इतने दिनों के बाद मुझे देखने को मिला है, और अब उसको राज्य मिलने की भी आशा है—उसका अब क्या होगा? इतने दिन से हम लोग नाना प्रकार के षड्यंत्र कर रहे हैं, और अब यदि मैं उस षड्यंत्र को बाहर फोड़ दूंगी, तो आर्य चाणक्य भी बहुत ही क्रुध होगा, और वह सब बातें प्रकट कर देगा। उस दशा में फिर राजा चन्द्रगुप्त का भी वध करवा डालेगा। लोग उसको समझा देंगे कि, देखो, जिस लड़के के लिए हमने कहा था कि, यह आपका लड़का नहीं है, और जिसका वध करवाने के लिए हमने उसको जल्लादों के हाथ में दे दिया था, वह लड़का उस समय मारा नहीं गया, और फिर आपके पास ही आकर उपस्थित हो गया! कितना अभागी लड़का है, और इसी के कारण आपके प्राणों पर ऐसा संकट आनेवाला था—वही राज्य प्राप्त करने के लिए आपके प्राण लेना चाहता था! इस प्रकार की बातें बतला कर लोग राजा को अवश्य क्रुद्ध करेंगे, और राजा फिर चन्द्रगुप्त को अवश्य ही मरवा डालेगा—वह यह भी ख़याल न करेगा कि, यह हमारा ही लड़का है—इसको क्षमा करो। वह उसको खड़ा जलवा देगा! इसलिए अब हमको क्या करना चाहिए? क्या हमको स्वयं ही अपने लड़के का प्राणघात करना चाहिए? और उसको स्वयं वध होता हुआ देखना चाहिए? नहीं नहीं! यह विचार उसके मन में क्षण भर भी नहीं ठहरा। "पति या पुत्र? पति या पुत्र?"—यही प्रश्न बार बार उसके मन में उठने लगा। उसकी प्रबल इच्छा यही थी कि, दोनों ही बच जायँ। दोनों ही के प्राण

सुरक्षित रहें। उसने सोचा कि, अब हमको यह तो मालूम ही होगया कि, हमारा लड़का जीवित है, इस लिए आगे चल कर हम इस बात का प्रयत्न कर लेंगी कि, सुमाल्य को राजगद्दी न न मिलते हुए उसी को मिले। यदि पतिहत्या को आज हमने टाल लिया, और अपने लड़के के सुरक्षित रहने का भी यदि हमने प्रबन्ध कर लिया, तो आगे पीछे महाराज को भी समझा लेना कुछ कठिन नहीं होगा। उनको समझा-बुझा कर हम अपने पुत्र को राज्याभिषेक करा लेंगी। इसके लिए कोई आवश्यकता नहीं है कि, हम महाराज की प्राणहत्या करवा बैठें। आह! मैं बहुत बुरी तरह से उस सनकी ब्राह्मण के चक्कर में फँस गई! अपना दुष्ट कार्य करने के लिए उसने मुझको बड़ी बुरी तरह से फँसाया, और मैं भी उसी के कहने में आगई। अब यदि हम चुप नहीं बैठेंगी— यदि उसे मालूम होगया कि हम उसके सारे षड्यंत्र को खोल रही हैं—तो वह अपने प्राणों की भी परवा नहीं करेगा, और मेरे प्राण संकट में डालेगा—यही नहीं, बल्कि मेरा पुत्र, जो इतने दिनों के बाद मुझ को मिला है, उसकी भी हत्या कराने में वह नहीं चूकेगा।

वह ब्राह्मण है, इस लिए राजा कदाचित् उसकी हत्या नहीं करेगा; और मैं स्त्री हूँ, इस लिए शायद मुझ को भी छोड़ देगा; परन्तु जो पुत्र अपने पिता से राज्य छीनने के लिए उसकी हत्या कराने को तैयार होगा, उस पुत्र को कभी कोई भी क्षमा नहीं कर सकता। तो फिर क्या लड़के का शिरच्छेद होने दें? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। फिर करें क्या? इधर पति की हत्या हो रही है, इस बात को सोच सोच कर मेरा जी बहुत ही व्याकुल हो रहा है। अच्छा यदि पति की हत्या नहीं होने देती हैं, तो पुत्र की हत्या अवश्य ही होगी—परन्तु पुत्र की हत्या कैसे होने दें? यह नहीं हो सकता! फिर क्या करें? इन दोनों

हत्याओं को टालने के लिए किस उपाय की योजना करें ? कोई उपाय दिखाई ही नहीं देता ! तो क्या चुप बैठें ? किन्तु चुप बैठना ही तो पति की हत्या कराना है ! और उसी को टालने के लिए तो हमारा यह सारा प्रयत्न है ! और क्या ? इस प्रकार के विचार बराबर उसके मन में आरहे थे; और इन विचारों की अवस्था में ही वह महाराज की सेवा में लगी हुई थी। इस लिए जो सेवा-कार्य उस समय वह कर रही थी, वह बिलकुल भ्रान्तचित्त से ही कर रही थी। उसके चित्त की वह भ्रान्तता राजा के ध्यान में भी आगई; परन्तु उसने सोचा कि, इसके मना करने पर भी हम राजसभा को जा रहे हैं; इसी कारण इसके चित्त की ऐसी दशा हो रही है, और एक बार जाकर जब हम संध्या को फिर लौट आवेंगे, तब यह इसका भ्रम बिलकुल दूर हो जायगा; और फिर इसके चित्त में द्विगुणित उत्साह आ जायगा। इस लिए अब, जब तक हम लौट न आवें, इससे कुछ भी न कहना चाहिए। बस, यही सोच कर राजा ने फिर उस विषय में उस से कुछ भी नहीं कहा। वह बराबर अपनी तैयारी में लगा रहा। स्नान-सन्ध्यादिक भी हुए। उपाहार हुआ। इसी बीच में मुरादेवी के मन में फिर एक बार आया कि, एक बार फिर हम राजा से अन्तिम प्रार्थना कर के देख लें—शायद मान जायँ; और यदि न मानें, तो फिर सब बातें स्पष्ट तौर से बतला दें, जो कुछ होना होगा, सो देख लिया जायगा। परमेश्वर पर सारा भार डाल कर हम चुप रहेंगी। हां, यदि हो सकेगा, तो अपने को, अपने लड़के को और उस ब्राह्मण को भी क्षमा करने के लिए एक बार प्रार्थना करेंगी—महाराज यदि मान लेंगे, तब तो ठीक ही है; और यदि नहीं मानेंगे, तब भी कोई हानि नहीं—महाराज के प्राण तो बच जायँगे। यह निश्चय करके मुरादेवी ने आंखों में आंसू भर कर हाथ जोड़े; और बहुत ही दीन चेष्टा बना

कर महाराज से फिर एक बार अन्तिम प्रार्थना की, "आप आज नहीं जावें, तो अच्छा!" परन्तु राजा ने उससे स्पष्ट ही कह दिया कि, "इस विषय में अब मैं तुम्हारी एक भी न सुनूंगा।" यह कह कर वह अपने वस्त्रालंकारादि की तैयारी में लगा। अब मध्याह्न होने में लगभग तीन घड़ी का अवकाश रह गया। अतएव वह बहुत ही निराश हुई; और अपने दूसरे निश्चय के अनुसार अपने षड्यंत्र का सब हाल बतलाने के विचार से एकदम राजा के सामने इस प्रकार गिर पड़ी जैसे वायुवेग से कोई कदली का झाड़ एकदम गिर पड़े! इसके बाद वह बहुत ही आर्तस्वर से बोली:—"महाराज, आप मेरी बात नहीं मानते, तो फिर एक बार मुझे अब..."

किन्तु मुरादेवी का वह निश्चय सिद्ध होनेवाला नहीं था: और इसी लिए अभी उसके उपर्युक्त शब्द मुख से निकले ही थे कि, इतने में—"महाराज का जयजयकार हो!—ये दस मनुष्यों के एकदम उच्चारण किये शब्द उसके कानों में पड़े! वह बड़े आश्चर्य में पड़ी कि, यह इतने मनुष्यों का एकदम उच्चारण किया हुआ शब्द कहाँ से आया? ऊपर सिर उठा कर देखती है, तो एक से एक छोटे, क्रमशः नौ कुमार, और अमात्य राक्षस, ये दस व्यक्ति, उपर्युक्त रीति से महाराज का जयजयकार करते हुए. उसके सामने खड़े हैं! उन नौ कुमारों में एक सुमाल्य है; और उसके पास ही उसका लड़का चन्द्रगुप्त भी खड़ा है। चन्द्रगुप्त हमारा लड़का है, यह मालूम होने के बाद आज पहले ही पहल चन्द्रगुप्त से उसकी भेट हुई थी। इसलिए उसको देखते ही मुरादेवी के मन में फिर मोह का संचार हुआ। चन्द्रगुप्त इस समय एक सुन्दर तरुण राजकुमार दिखाई देता था। इसलिए उसके उस मनोहर स्वरूप को देखते ही पुत्रमोह से मुरा बिलकुल मोहित हो गई। आज उसके स्वरूप से अपने स्वरूप

की समता देखकर सचमुच मुरादेवी को मालूम हुआ कि, यह हमारा ही लड़का है। इसलिए जब उसने देखा कि, जिस अपने पुत्र को इतने दिन से मैं मृत समझ रही थी, आज वह प्रत्यक्ष हमारे सामने ही खड़ा है, तब उसने सोचा कि, यह हमारी एक बड़ी भारी मूर्खता है कि, जो मैं इस समय इसके राज्य मिलने में बाधक बनूं। साथ ही साथ सुमाल्य की ओर जब उसकी दृष्टि गई, तब उसके विषय में द्वेष के भाव भी उसके मन में तत्काल जागृत हो आये। इसलिए उसने सोचा कि, जिस प्रकार सुमाल्य का लालन-पालन किया गया, उसी प्रकार यदि हमारे लड़के का पालन-पोषण किया जाता—अमात्य राक्षस की मूर्खतापूर्ण बातों को सुन कर यदि राजा धनानन्द अपने लड़के को मृत्यु के मुख में देने को तैयार न हुआ होता— तो आज हमारे ऊपर ऐसा भयंकर अवसर ही न आया होता! परन्तु अब—जब कि ऐसा अवसर आ ही गया है, नहीं, नहीं—स्वयं परमेश्वर ही ने जब कि यह अवसर उपस्थित कर दिया है, तब उसकी यही इच्छा जान पड़ती है कि, राजा का नाश हो, और हमारे पुत्र—इस सुन्दर राजकुमार चन्द्रगुप्त—को राज्य मिले। इसलिए अब हमको उस ईश्वर की इच्छा में बाधक क्यों बनना चाहिए? जो कुछ होना हो, होने देना चाहिए बस। यह बात मुरादेवी के मन में जम गई। इसमें सन्देह नहीं कि, यदि राजकुमार सुमाल्य और अमात्य राक्षस इस समय एक क्षण भर भी विलम्ब से आये होते, तो उसने सब बातें महाराज के सामने प्रकट कर दी होतीं; परन्तु ज्यों ही उसने उन दोनों को देखा, त्यों ही उसके मन में उनके विषय में द्वेषभाव जागृत हो आया, और एकदम सब मामला ही बदल गया। अब उसको इसी बात का बड़ा भारी खेद हुआ कि, देखो—हम महाराज के सामने दण्डवत् करते हुए इनकी दृष्टि में पड़

गईं—हमारी ऐसी अवस्था में ही ये लोग आकर उपस्थित हो गये। इस लिए उनको देखते ही वह एकदम उठ कर अलग खड़ी हो गई। इसके बाद उसने यह शब्द कहे—"आर्यपुत्र, ये लोग आपको लेने के लिए आ गये हैं, इसलिए अब मैं जाती हूँ, आप सुरक्षित रूप से राजकाज करके लौट आवें।" बस, इतने शब्द कह कर वह वहाँ से चली गई। हाँ, चलते चलते उसने अपने पुत्र की ओर एक बार प्रेमदृष्टि से देखा।

इधर राजा की सब तैयारी ठीक थी। उसकी सवारी निकलने का सारा समारम्भ नीचे, राजप्रासाद के सामने, हो ही चुका था। राजा के बैठने का हाथी तैयार था। राजा महल के नीचे जाकर उस हाथी पर कसी हुई अम्बारी में बैठ गया। उसके आगे ढक्कापणहादि अनेक रणवाद्य और भेरीशृंङ्गादि समारम्भवाद्य एकदम बजने लगे। ध्वज फड़क रहे थे। राजा के हाथी की दाहनी ओर उसका युवराज एक हाथी पर आरूढ़ हुआ। बाईं ओर अमात्यराज एक हाथी पर आरूढ़ होकर चले। राजा के अन्य सात पुत्र घोड़ों पर सवार होकर चले। चन्द्रगुप्त अकेले उन वाद्यवालों के पीछे और राजा के हाथी के आगे चल रहा था। इस प्रकार वह सारा जलूस बड़े ठाटबाट के साथ चलने लगा। अमात्य राक्षस के आनन्द का उस समय ठिकाना नहीं था—वे बहुत ही प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। परन्तु इस उद्देश्य से, कि नगर के लोग बहुत भीड़ न करने पावें, सेना के कुछ लोग राजा और राजपुत्र के हाथी के आगे, तथा पीछे, घेरा डाले हुए, चल रहे थे; और इस प्रकार नगर के लोगों को वे लोग जलूस से बहुत अन्तर पर रख रहे थे।

मुरादेवी का मन्दिर मुख्य राजगृह से कुछ दूर था। वह बन्दी की दशा में इसी मन्दिर में रखी गई थी; और बन्धमुक्त होने के बाद भी वह अपने आग्रह से उसी महल में बनी रही थी।

अस्तु। उपर्युक्त रीति से वह समारम्भ बड़ी धूमधाम के साथ राजगृह की ओर आ रहा था। मार्ग में स्थान स्थान पर प्रजाजनों ने तोरण खड़े किये थे, और उन तोरणों के नीचे से ही राजा की सवारी जा रही थी। दोनों ओर के भवनों के गवाक्षों से राजा और राजपुत्रों पर बराबर पुष्पवृष्टि हो रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि, मानो आज कई वर्षबाद, अथवा यों कहिये कि बिलकुल नवीन ही रूप से, राजा की सवारी पाटलिपुत्र में निकली हो; और इसी कारण लोग ऐसा उत्सव कर रहे हों!

इस प्रकार से जब कि वह जलूस बड़ी धूमधाम के साथ चला जा रहा था, सामने से एक घुड़सवार बड़े वेग के साथ घोड़ा दौड़ाता हुआ आया। यह कौन है; और इतने वेग के साथ क्यों आ रहा है, इस बात की जांच लोग करने लगे; इतने में वह अश्वारोही एकदम राक्षस के हाथी के पास जाकर कुछ ठहरा; और अपने हाथ के भाले की नोक में एक पत्रिका टोंच कर उसे राक्षस की अम्बारी के पास कर दिया। अमात्य ने यह सोच कर कि, देखना चाहिए, यह क्या है; उस पत्रिका को ले लिया। पत्रिका पढ़ कर देखते उनको देर नहीं हुई कि, उनका चेहरा उतर गया। अच्छा हुआ जो महाराज का ध्यान उस समय उनकी ओर नहीं था—कम से कम राक्षस की चेष्टा से तो ऐसा ही मालूम हुआ कि राजा का ध्यान अपनी ओर न देख कर उनको एक प्रकार का सन्तोष ही हुआ। अस्तु, जो हो, राक्षस ने एक बार महाराज की ओर देखा। इस के बाद अपने हाथी को महाराज के हाथी के बिलकुल पास ले जा कर उन्होंने महाराजा से कहा, "महाराज, इतनी देर तो मैं श्रीमान् के साथ रहा, परन्तु अब मुझे दूसरे ही मार्ग से राजसभा में कुछ पहले पहुँचने की आज्ञा दीजिए। वहां आगे चलकर मैं आवश्यक प्रबन्ध किये रखता हूँ।"

इतना कहने के बाद फिर राक्षस ने राजा की अनुमति के मिलने की प्रतीक्षा भी नहीं की; और अपने हाथी को दूसरी ओर घुमा दिया। राजा ने भी उस समय उनकी ओर ध्यान नहीं दिया; अथवा यों कहिये कि, उसका ध्यान उस ओर गया ही नहीं। उसका सारा ध्यान अपने आसपास की उन युवतिजनों की ओर था कि, जो उस पर चारों ओर से पुष्पवृष्टि कर रही थीं; अस्तु। धीरे धीरे वह सारा जलूस राजगृह के पास उस जगह पर आया कि, जहां चाणक्य ने एक विशिष्ट स्थान के नीचे पोला करके सुरंग लगा रखी थी। चन्द्रगुप्त उस स्थान के इसी पार क्षणभर खड़ा रहा। उसने अपने घोड़े को, पूर्व-संकेतानुसार, एक ऐसी ओर से ज़रा सा घुमा लिया कि, जिस ओर से जाने में कोई ख़तरा नहीं था।

इधर मुरादेवी ने ज्यों ही देखा कि राजा की सवारी उसके मन्दिर से चली गई, त्यों ही फिर उसकी चित्तवृत्ति कुछ विचित्र सी हो गई—फिर "पति या पुत्र?" का प्रश्न उसके मन को सताने लगा। उसके मन में आया कि, हम पुत्र की राज्य प्राप्ति के लिए पति की हत्या होने दे रही हैं, यह एक बड़ी भारी नीचता है। हम अपना सौभाग्य नष्ट करके—स्वयं अपने हाथों से ही अपने सौभाग्य को नाश करके—पुत्र के मस्तक पर राजमुकुट देखने की इच्छा रखती है, यह एक अत्यन्त निन्दनीय बात है! इस आर्यावर्त में ऐसी दुष्टा स्त्री न तो कभी पैदा हुई; और न आगे पैदा होगी—इस प्रकार के विचार उसके मन में आने लगे; और उसने अपने मन में निश्चित किया कि, अब भी मैं शिविका में आरूढ़ होकर उस समारम्भ के पीछे पीछे जावें, और राजा को सचेत कर के उसके प्राण बचावें। यह सोचने के बाद उसके मन में आया कि, सुमतिका को बुला कर उससे शिविका तैयार कराने का सन्देशा भेजें; पर फिर उसने सोचा कि, शायद

सुमतिका इस समय हमारी बात न माने; इस लिए उसने तुरन्त ही वृन्दमाला को बुलाया: और अपने लिए एक शिविका तैयार करवा लाने को कहा। वृन्दमाला पहले यही नहीं समझ सकी कि, इस समय हमारी मालकिन कहां जायगी, और इस कारण कुछ क्षण तक वह उसी जगह स्तब्ध खड़ी रही। यह देख कर मुरादेवी बहुत नाराज़ हो कर उससे कहती है, "क्यों? क्या तुम सभी चाहती हो कि, मेरे हाथ से पतिहत्या हो—जाओ—एक क्षण का भी यदि विलम्ब लगाओगी, तो समझ लो कि, महाराज गये: और यह सारा नष्ट हुआ। इसलिए जल्दी जा।"

यह सुनते ही बेचारी वृन्दमाला बहुत ही घबड़ाई, और पागल की तरह दौड़ती ही हुई गई। इसके बाद, जितनी जल्दी उससे हो सका, वह एक शिविका तैयार करा कर ले आई, पर वह थोड़ा सा भी विलम्ब मुरादेवी को अत्यधिक जान पड़ा, और वह बहुत नाराज़ हुई, पर फिर कुछ शान्त होकर शिविका में बैठी, और वाहकों को आज्ञा दी कि, "महाराज की सवारी जहां गई है, वहीं हमको ले चलो।" वाहक गण अपनी ओर से बहुत जल्दी चल रहे थे, पर फिर भी मुरा भीतर से उनको उत्तेजना दे रही थी कि, "बहुत जल्दी चलो, जल्दी जल्दी पैर उठाओ।" परन्तु उसकी इस जल्दी का कुछ भी परिणाम न हुआ, और बहुत जल्द एक भयंकर हाहाकार का शब्द उसके कानों में आया।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

स्वयं अपना स्वाहाकार ।

वह हाहाकार उस समय मुरादेवी को कल्पान्त का ही हाहाकार जान पड़ा। उसको बड़ी आशा थी कि, हम समय पर ही जा पहुँचेंगी, और अपने पति के प्राण तथा अपने सौभाग्य की रक्षा कर लेंगी, परन्तु उस हाहाकार को सुनते ही उसकी वह आशा बिलकुल जाती रही। उसने सोचा कि, अपने हाथ से ही मैंने अपना कपाल फोड़ लिया। जिस समय सचमुच ही सब का संरक्षण हो सकता था, और जिस समय कि ऐसा करना पूरा पूरा हमारे हाथ में था, उस समय तो हमने कुछ भी नहीं किया—चुप बैठी रहीं—और अब ऐन मौका आ जाने पर वहां से दौड़ीं ! अब क्या होता है ? जो कुछ होने को था, सो होगया। अन्यथा यह इतना बड़ा हाहाकार कैसे मच सकता था ? यह सोच कर वह बिलकुल पागल के समान होगई। उसको यही न सूझने लगा कि, अब वह क्या करे—आगे जावे, या लौट जावे और अपने हाथ से अपने प्राण खतम कर दे ! इतने में उसकी शिविका और आगे बढ़ी, तथा ये शब्द उसके कानों में आए—"अमात्य राक्षस की जय हो !" "अमात्य राक्षस की जय हो !" ये शब्द सुनकर मुरादेवी को बहुत आश्चर्य हुआ; और वह विशेष ध्यान देकर सुनने लगी। इतने में फिर यही ध्वनि उसके

कानों में आई—"अमात्य राक्षस की जय हो!" यह शब्द सुन-कर पहले तो आश्चर्य मालूम हुआ था; पर अब उसमें कुछ आनन्द की छटा दिखाई देने लगी; और उसी आनन्द के आवेग में वह एकदम आपही आप बोल उठी, "अहा! ऐसा जान पड़ता है कि, उस दुष्ट चाणक्य की सब युक्तियां और व्यूह अमात्य राक्षस ने जान लिये; और अपना जयजयकार कराने योग्य सारा प्रबन्ध उन्होंने कर लिया! अवश्य ही उन्होंने महाराज के प्राण बचा लिये! धन्य अमात्य राक्षस! धन्य है! तुमको सच-मुच ही धन्य है! अरे, एक मैं हूँ कि, जिसने प्रत्यक्ष अपने पति ही से द्रोह किया—जिन्होंने हमारा पाणिग्रहण किया, उन्हीं से द्वेष किया—उन्हीं के प्राणों को लेने के लिए तैयार हुई! आह! आर्यावर्त में ऐसा कार्य किसी ने भी न किया होगा कि, जैसा मैंने किया: परन्तु अमात्य राक्षस, तुमको धन्य है—तुमने महाराज के प्राणों की रक्षा कर ली! चाणक्य का सारा षड्यंत्र विफल कर दिया! ठीक है—अब मैं स्वयं ही अपने इस दुष्कर्म का प्रायश्चित्त करूंगी। अब प्राणत्याग के अतिरिक्त मेरे लिए और कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है। अच्छा, तो फिर अब आगे मेरे जाने की क्या आवश्यकता? अब यहीं की यहीं मैं अपने प्राणों का विसर्जन किये देती हूँ, इससे मेरे सब पापों का आपही आप प्रायश्चित्त हो जायगा। राक्षस ने अवश्य ही महाराज के और अन्य सब लोगों के प्राणों की रक्षा कर ली होगी: और इसी लिए उनके नाम का यह जयजयकार मच रहा है। अन्यथा उनके नाम पर जयजयकार करने की इस समय क्या आवश्य-कता थी? उस दुष्ट चाणक्य का सारा कपटनाटक अब प्रकट हो गया होगा; और वह चांडाल अब अच्छा फँसा होगा—अब यदि महाराज उसको दण्ड देंगे—उसके प्राणों का हरण करेंगे, तो महाराज को ब्रह्महत्या का पातक नहीं लगेगा; किन्तु एक

अत्यन्त दुष्ट, ब्राह्मणरूपधारी, दैत्य के वध करने का पुण्य होगा। अवश्य ही वह मेरा नाम लेगा—लेवे! मुझको देहान्त प्रायश्चित्त की आवश्यकता ही है। उस दुष्ट की दृष्टि में जिस समय मैं पड़ी—जिस समय उसके मोहमय भाषण में फँस कर मैं अपने पति की हत्या कराने को तैयार हुई—उसी समय मैं महा पातकी बन गई और उसी समय मुझे देहान्त-प्रायश्चित्त मिलना चाहिए था; परन्तु मेरा पाप का घड़ा उस समय भरा नहीं था, अब भर गया। अब अवश्य मुझे एक वार उसका प्रायश्चित्त मिल जाना चाहिए, जिससे उसका कोई भी अंश फिर मुझ पर बाकी न रहे।" इस प्रकार के नाना-विध विचार बहुत ही थोड़े अवकाश में उसके मन में आये उन विचारों का वर्णन करने में तो यहां पर बहुत सा समय लग गया; पर उसके मन में उनके आने में इसका शतांश समय भी न लगा होगा। अब वह अपने शिविका-वाहकों को शीघ्रता-पूर्वक चलने के विषय में कुछ भी आग्रह नहीं कर रही थी; अतएव वे भी धीरे धीरे चल रहे थे। परन्तु वे कुछ ही दूर और आगे गये थे कि, उनको उपर्युक्त वह भयंकर कोलाहल और बीच बीच में अमात्य राक्षस का जयजयकार सुनाई दिया। इससे स्वाभाविक ही उनको यह जिज्ञासा हुई कि, पहले तो हमने हाहाकार सुना, और अब यह अमात्य राक्षस का जयजयकार सुनाई दे रहा है—यह बात क्या है? इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर वे फिर ज़रा तेज़ी से चलने लगे।

वे अभी थोड़ी ही दूर आगे गये होंगे कि, क्या देखते हैं कि, ज़ोर ज़ोर से हाहाकार मचाते हुए सामने से बहुत से लोग दौड़ते चले आते हैं। दौड़ते क्या चले आते थे, बल्कि यों कहना चाहिए कि, वे लोग उन शिविका-वाहकों के शरीर में ही आकर टकरा रहे थे। एक बार तो एक बहुत बड़ा झुंड उन वाहकों के शरीर पर आकर टकराया, कुशल हुई, नहीं तो उनके धक्के

में शिबिका ही उलट पड़ती—शिविका-वाहक बड़े जबरदस्त थे, इस कारण उन्होंने अपने वाहन को सम्हाल लिया। परन्तु हां, अब आगे बढ़ना बिलकुल ही असम्भव समझ कर उन्होंने शिविका को उसी जगह नीचे उतार दिया, और स्वयं उसकी रक्षा करते हुए खड़े हो गये। अस्तु। जनसंमर्द का उपर्युक्त धक्का जब शिविका में लगा, तब मानो मुरादेवी भी अपने उपर्युक्त विचार-भ्रमण से कुछ होश में आई, और शिविका-वाहकों से पूछने ही वाली थी कि, शिविका को नीचे क्यों रख दिया—इतने में एक शिविका-वाहक स्वयं ही उसके पास आकर उससे बोला.. "देवि, अब आगे शिबिका ले जाना बिलकुल असम्भव है—किसी महासागर की भाँति अत्यन्त प्रक्षुब्ध यह जनसंमर्द उसी महासागर की लहरों के सदृश आकर हमारे शरीर से टकराता है। पूछने पर कोई बतलाता नहीं कि, क्या बात है। कोई राक्षस को गालियाँ दे रहे हैं—कोई चिल्ला रहे हैं कि, "आह! कैसा भयंकर संहार हुआ है!" वास्तव में बात क्या है, सो कुछ समझ में नहीं आता। शिविका ले कर आगे कदम रखने की गुंजाइश नहीं है। अब आपकी क्या आज्ञा है? यदि आज्ञा हो, तो आगे जाकर देख आवें कि क्या बात है।" मुरादेवी ने उस शिविका-वाहक के मुख से दो वाक्य सुने—एक तो यह कि, "राक्षस को गालियाँ दे रहे हैं;" और दूसरा यह कि, "कैसा भयङ्कर संहार हुआ!" इन दोनों उद्गारों को सुनते ही उसका मन फिर चक्कर में पड़ गया। उसने सोचा कि, लोग यह क्यों कह रहे हैं कि, "कैसा भयंकर संहार हुआ!" इससे तो यही जान पड़ता है कि, चाणक्य का व्यूह सफल हो गया; और उसी से ऐसा भयंकर संहार हुआ। अच्छा तो फिर राक्षस का जयजयकार जो अभी हमने सुना, उसका क्या अर्थ? कुछ समझ में नहीं आता। क्या करें? "अच्छा, जा रे, जा, तू स्वयं देख आ कि

क्या हुआ, और क्या नहीं—फिर हम से आकर बतला । तब तक यह शिविका यहीं रहने दे । तेरे ये साथी मेरा संरक्षण करेंगे—तू जा ।" यह कह कर उसने उस शिविका-वाहक को वहां से भेजा, परन्तु उसका चित्त इस समय अत्यन्त अधीर हो रहा था, और इसी कारण, वह शिविका-वाहक अभी सौ पचास कदम भी मुशकिल से गया होगा कि, इतने में वह दूसरे वाहक से कहने लगी कि, "अरे तू ही जा । वह अभी तक नही आया, न जाने क्या बात है ! तू जाकर देख कि, वहाँ क्या हो रहा है ।" यह सुन कर वह दूसरा वाहक उसको उत्तर देता है, "देवि, वह बड़ा चपलगति है, अभी आता होगा, आप इतनी चिन्ता न करें ।" पर वह काहे को सुनने लगी ! वह फिर कहती है, "अरे, उसके आने की रास्ता मत देख—तू भी जा ।" इस प्रकार जब मुरादेवी ने स्पष्ट ही उसको आज्ञा दी, तब वह बेचारा भी अपने शेष दो साथियों से यह कह कर कि, "तुम अब दो ही रह गये हो, शिविका को अच्छी तरह सम्हालो." वहां से चला गया ।

मुरादेवी के मन की चंचलता और अधीरता अब इतने अतिरेक को पहुँच गई थी कि, अब उसे यही भान नहीं रह गया था कि, वह क्या करती है; और क्या कहती है । उन दोनों वाहकों को वहां से गये अभी बहुत ही थोड़ा समय हुआ था कि, इतने में वह शेष दो वाहकों से भी, जो उसके संरक्षणार्थ खड़े थे, कहती है, "अरे, आया कोई ? यदि नहीं आया होगा, तो अब मैं स्वयं ही जाऊंगी । तुम दोनों मेरे दोनों ओर से चलो; और मुझ को इस भीड़ से निकाल ले चलो । देखो, उन दो में से कोई आया; और यदि नहीं आया, तो चलो, मैं उतरती हूँ ।" यह कह कर सचमुच ही वह शिविका से उतर पड़ी; और उन दोनों संरक्षकों से आग्रह करने लगी कि, चलो, मुझे इस संमर्द से ले चलो ।

"आप इस झगड़े में न पड़ें। आप राजमन्दिरमें केवल मृदु पुष्पों के अस्तरण पर से इधर से उधर घूमने वाली हैं! और यहां यह भयंकर झंझावात से प्रक्षुब्ध होनेवाले महासागर की विकट लहरों के समान जनसंमर्द बड़े वेग से बढ़ता चला आ रहा है! आप इसके बीच से पैदल कैसे गुजर सकेंगी? कहां जायेंगी? मालूम तो होने दीजिए कि, वहां क्या घटना घटित हुई है।"

परन्तु नहीं, मुरादेवी कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थी। वह तुरन्त ही यह कहते हुए आगे बढ़ी—"मैं इससे भी भयंकर जन-संमर्द से जाऊंगी। तुम सिर्फ मेरे साथ भर रहो।" यह कह कर मुरादेवी वहां से आगे को चली। उस समय उसके मन में कैसे कैसे भयंकर विचार आरहे थे, उनका वर्णन करके बतलाना अब कुछ भी तात्पर्य नहीं रखता। सूर्यास्त के समय पाठकों ने देखा होगा कि, क्षितिज के पास जो अम्बर-डम्बर होते हैं, उन पर जब अस्तमान होनेवाले सूर्य के किरण पड़ते हैं, तब उस आकाशभाग के रंग क्षण क्षण पर पलटते रहते हैं। बस, ठीक इसी भाँति इस समय नानाविध विकारों से मुरादेवी के मन के रंग भी बदल रहे थे, और वास्तव में इस समय वह बड़ी ही उत्सुकता के साथ चली जा रही थी। उसके संरक्षक शिबिक-वाहक उसको सुरक्षित रूप से ले जाने में अपनी ओर से कोई भी कोरकसर नहीं कर रहे थे; परन्तु फिर भी जब कोई जनसंमर्द का भारी झुंड उसकी ओर आ जाता था, तब उसको कष्ट अवश्य ही होता था। दूसरे किसी समय यदि मुरादेवी इस प्रकार किसी नगर-वीथी से गुज़रती तो लोग अपनी तरफ से ही हट हट कर उसको मार्ग देते; पर आज उस समय वहां पर जो भयंकर दुर्घटना हुई थी उसके कारण मानो सारा जनसमूह एक प्रकार से अंध ही सा हो गया

था । किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था । सभी के मुख से दुःख उद्वेग और निराशा के अनेक उद्गार निकल रहे थे और सभी चाहते थे कि, उस भयङ्कर दृश्य के स्थान से हम जितनी जल्दी और जितनी दूर जा सकें, चले जावें, और इसी कारण मानो सारा लोकसमूह वहां से दूर दूर भग रहा था । ऐसे समय में कौन किसकी ओर ध्यान देता है ? इसके अतिरिक्त मुरादेवी इस समय कोई बड़े धूमधाम अथवा लवाजमे के साथ भी नहीं जा रही थी—फिर कैसे उसकी ओर किसी का ध्यान जाता ?

चलते चलते वह एक ऐसे स्थान पर आई कि, जहां बहुत भीड़ हो रही थी । उसकी दोनों परिचारिकाओं ने, जो उसके साथ थीं, उससे प्रार्थना की कि, "महाराज्ञि, अब आगे पैर रखने को भी जगह नहीं है, इस लिए आप लौट चलिये । आगे न बढ़िये ।" परन्तु उसने लोगों के मुंह से अभी तक जो उद्गार सुने थे, उनसे उसने इस बात का पूरा पूरा अनुमान कर लिया था कि. आगे क्या क्या भयङ्कर दुर्घटना घटित हुई है; और इसी लिए उसने यह भी निश्चय कर लिया था कि, यदि हमारे अनुमान के अनुसार ही सचमुच ऐसी दुर्घटना हुई होगी, तो हम भी उसी गर्ता में जाकर गिर पड़ेंगी; और इस प्रकार अपना प्राण त्याग कर देंगी । अपने इसी निश्चय के अनुसार अब वह अपने उन दोनों वाहकों से—उनको बड़ी बड़ी इनामें देने को कह कर—प्रार्थना करने लगी कि, "किसी न किसी प्रकार तुम मुझको इस जनसंमर्द से पार करके आगे ज़रूर ले चलो । जहां दुर्घटना हुई है, उस स्थान तक मैं अवश्य जाना चाहती हूँ । तुमको मैंने अभी जो इनामें देने को कहीं हैं, उनसे दसगुनी अधिक इनामें मैं तुमको दूंगी । तुम मेरी इस बात को ज़रूर मानो ।" इस प्रकार उसने उनसे ज़ोर देकर कहा; और उनको पारितोषिक का विलोभन भी दिखलाया । इसके सिवाय

स्वयं उन शिबिकावाहकों की जिज्ञासा भी उस स्थान को देखने के लिए बढ़ रही थी: इस कारण उन्होंने साहस करके मुरादेवी को वहां तक ले जाने की बात मन में ठानी। इसके बाद वे दोनों उसके दोनों ओर होकर चलने लगे; और भीड़ को अपनी कुहनियों की ठोकरों से हटाते गये। इस प्रकार अन्त में उन्होंने मुरादेवी को राजगृह के ठीक दरवाजे तक ले जाकर पहुँचा दिया। वहां पहुँच कर मुरादेवी ने जो दृश्य देखा, वह बहुत ही भयङ्कर था! वह क्या देखती है कि, एक बड़ी भारी गर्ता वहां खुली हुई है, जिसमें अनेक लाशें पड़ी हुई हैं—उन लाशों से रक्त का प्रवाह जारी है। गर्ता के आस-पास सेना के सैनिकों का पहरा है, जिनमें से अनेक सैनिक ज़ोर ज़ोर से चिल्लाकर लोगों की ओर दौड़ रहे हैं। और उनको वहां से दूर हटाने की कोशिश कर रहे हैं। मुरादेवी ने जब उस गर्ता में पड़ी हुई लाशों की ओर देखा, तब उसका हृदय बिलकुल विदीर्ण हो गया, और उसका सारा शरीर थर थर कांपने लगा। ऐसा मालूम होने लगा कि, वह अपनी जगह पर सीधी खड़ी भी नहीं रह सकती है—जैसे उसको एकदम चक्कर सा आने लगा। इतने में कोई उसके पास आया; और उसके कान में धीरे से ये शब्द सुनाई दिये:—"इस प्रकार के दृश्य देखने के लिए स्त्रियों को नहीं आना चाहिये। देवि, तू बहुत ही धृष्ट जान पड़ती है! इस प्रकार का संहार करने के लिए तूने जो व्यूह रचा, उसी से क्या तेरा समाधान नहीं हुआ? और इसी लिए क्या तू प्रत्यक्ष ही यह देखने आई है कि, हमारा रचा हुआ व्यूह ठीक सफल हुआ अथवा नहीं! देख ले,—कोई हानि नहीं! देख ले तेरी ही इच्छा के अनुसार सब बातें हुई हैं; और उसमें भी आनन्द की बात यह है कि, सब लोगों का ख़याल भी ऐसा ही हुआ है कि, यह सब अमात्य राक्षस ने ही

किया है । ऐसी युक्ति कर दी गई थी कि, जिससे ठीक गर्ता पर महाराज की सवारी आने के पहले ही अमात्य यहां से चले जावें; और वह युक्ति पूरा पूरा अपना काम कर गई । अब तू यहां क्षण भर भी मत खड़ी हो; और मैं भी जाता हूं ।"

देवी मुरा अवगुंठनयुक्त थीं; परन्तु चाणक्य ने फिर भी उसे पहचान लिया । उन्होंने अपनी स्वाभाविक चतुराई से पहले ही अनुमान कर लिया था कि, शायद वह अवश्य ही यहां आवेगी; और इसी अनुमान के कारण शायद उन्होंने उसे पहचान लिया । इस प्रकार पहचान कर ही वे उसके पास गये; परन्तु जाने के पहले उन्होंने पहरेदारों को इशारा कर दिया था कि, वहां आसपास जो लोग हों उनको तुम दूर हटा दो । तदनुसार जब सब लोग वहां से दूर हट गये, तभी वे उसके पास गये; और उपर्युक्त शब्द धीरे से उसके कान में कह दिये । चाणक्य ने यद्यपि वे शब्द अपनी तरफ से बहुत धीरे से ही कहे थे; परन्तु फिर भी मुरादेवी ने उनकी आवाज़ पहचान ली, और उसको एकदम बहुत ही क्रोध आया । क्रोधातिरेक के कारण वह बिलकुल लाल हो गई । वह अपने सन्ताप को किसी प्रकार रोक न सकी, और एकदम चाणक्य की ओर बढ़कर बोली, "दुष्ट, आज तक किसी आर्य स्त्री ने जिस पातक को मन में भी न लाया होगा वही पातक तूने मेरे हाथ से कराया । अब मुझको और मेरे पुत्र को चाहे जो कुछ हो जाय, किन्तु मैं सच्चा सच्चा हाल अभी सारे जगत् को चिल्ला कर बतलाये देती हूं, और मैं स्वयं भी इसी गर्ता में गिर कर अपने प्राण दिये देती हूँ । यही मेरा दण्ड है, और यही मेरा प्रायश्चित्त है , परन्तु सच्चा सच्चा हाल जब लोगों को मालूम हो जायगा, तब तुझको, और मेरे उस पुत्र को भी, कि जिसको तू ने अपने हाथ में लिया है, वे उचित दण्ड देंगे; और इस प्रकार जब उसको दण्ड मिल

जायगा, तब मेरे समान दुष्टा के पेट से उत्पन्न होने का पाप जो उसने किया है, उसका क्षालन होगा।"

इतना कहने के बाद एकदम उसने अपने मुख का अवगुंठन निकाल दिया। उस समय उसका रूप बिलकुल चण्डिका के समान दिखाई दिया; और वह एकदम तीव्र स्वर से बोली, "लोगो! सुन लो—जो मैं कहती हूँ! यह अत्यन्त—अत्यन्त—दुष्ट घटना जो अमात्य राक्षस की ओर से........"

वह अपने मुख से अभी इतना ही कहने पाई थी कि, आर्य चाणक्य ने इशारा किया—अथवा यह भी नहीं कह सकते कि, उन पहरेदारों को ही उसमें कोई भयंकर बात मालूम हुई हो—जो भी कुछ हो—किन्तु उनमें से एक पहरेदार उसको पीछे हटाने के लिए उसकी ओर दौड़ा; परन्तु वह पीछे हटने ही न लगी; और वह पहरेदार भी उसका बात न सुनने लगा। इतने में उसने क्या देखा कि, जैसे चाणक्य के इशारे से, उसी भीड़ में से, दो चार भिल्ल उसको ज़बरदस्ती उठा कर ले जाने के लिए उसकी ओर दौड़े चले आते हैं। यह देख कर उसने सोचा कि, अब यदि ये भिल्ल हमको यहां से उठा कर कहीं ले जायँगे, तो हम फिर उसी मोहजाल में फँस जायँगी—चाणक्य के सामने हमारी एक भी न चलने पावेगी, इससे तो यही अच्छा है कि, हम इस गर्ता में कूद कर प्राण दे दें; और अपने इस अत्यन्त निन्दनीय पातक का इस प्रकार क्षालन करें। यही हमारे लिए अच्छा प्रायश्चित्त है। बस, यह सोच करके वह एकदम उस गर्ता के किनारे पर गई; और यह कहती हुई उसमें कूद पड़ी कि, "दुष्ट चाणक्य, इस पातक के कारण तू जन्म जन्म में दैत्य होगा। मैं तो सती का व्रत रखते हुए ही इस गर्ता में कूद रही हूँ।"

गर्ता बहुत गहरी थी। इसके सिवाय चाणक्य ने उसके

भीतर कुछ भिल्ल भी नियत कर रखे थे कि, जो ऊपर से गिरने वालों को क़तल कर दें। फिर भी मुरादेवी को क़तल करने के लिए किसी की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। देहान्त-प्रायश्चित्त करने का उसका निश्चय देख कर परमेश्वर ने ही उसके उद्देश्य को सिद्ध किया।

उपर्युक्त हाहाकार होने के कुछ समय पहले अमात्य राक्षस वहां से चले गये थे; यह बात पाठकों को मालूम है। उनको किसी ने एक चिट्ठी लाकर दी थी; और उस चिट्ठी में सिर्फ इतना ही लिखा था कि, "आप तो इस समारम्भ में लगे हैं, और उधर पर्वतेश्वर ने आकर नगर को घेर रखा है; इसका क्या होगा?" उस पत्रिका को पढ़ते ही राक्षस ने सोचा कि, अचानक यह क्या बला आ गई, इसको पहले जाकर देखना चाहिए। महाराज की सवारी तो जा ही रही है, और अब इसके राजसभा में पहुँचने में कोई सन्देह है ही नहीं। यह सोच कर वे पर्वतेश्वर के विषय में जाँच करने के लिए चल दिये कि, देखें, वह किधर से और कैसे आया है—किस समय आकर उसने नगर को घेरा, इत्यादि। राक्षस को गये अभी चौथाई अथवा आधी घड़ी भी न हुई होगी कि, इतने में राजगृह के द्वार के पास जो तोरण खड़ा किया गया था, उसके नीचे, उस गर्ता के मुख पर सवारी आ दाखिल हुई कि, जो चन्दनदास के घर से खोदते खोदते वहां तक लाकर तैयार की गई थी। दोनों हाथियों के समेत सब नन्द उसी गर्ता के अन्दर गड़प हो गये। चाणक्य ने कुछ भिल्लों को पहले ही से उस गर्ता के अन्दर नियत कर रखा था। सो उन भिल्लों ने नवों नन्दों को अपने हाथों से कतल किया। और साथ ही, चाणक्य की शिक्षा के अनुसार, "अमात्य राक्षस की जय हो!" कह कर ज़ोर ज़ोर से आवाज़ दी। गर्ता के आसपास भी वैसे ही अनेक भिल्ल नियत कर रखे

गये थे। उन्होंने भी उपर्युक्त जयजयकार की प्रतिध्वनि की। अवश्य ही इससे लोगों ने यही समझा कि अमात्य राक्षस ने ही यह सब कृष्णव्यूह रचा; और यह दिखलाने के लिए कि हम इसमें शामिल नहीं हैं, वे घड़ी आधी घड़ी पहले ही दुर्घटनास्थल से चले गये। इसके सिवाय जिन लोगों को यह बात मालूम थी कि, स्वयं राक्षस ही राजा को मुरादेवी के महल से लाये; और उन्हीं के आग्रह से राजा बाहर निकला उनको तो यह और भी पक्का विश्वास हो गया कि, राज-हत्या और राजकुलहत्या का सारा पाप राक्षस ने ही किया, और इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए चाणक्य ने झूठी पत्रिका राक्षस के हाथ में पहुँचा कर उस समय उनको वहां से अलग हटवा दिया था; और गर्ता में गिरे हुए नन्दवंश को कतल करनेवाले भिल्लों को राक्षस का जयजयकार करने के लिए कह दिया था। परन्तु राक्षस पर केवल इतना वृथारोप लगाने से ही चाणक्य का कार्य सिद्ध नहीं होता था; किन्तु उनको जो मुख्य कार्य सिद्ध करना था, वह अभी आगे ही था और वह कार्य यह था कि, जिससे लोगों को यह मालूम हो जाय कि, वास्तव में राक्षस ने पर्वतेश्वर को पाटलिपुत्र का राज्य देने के लिए नन्दवंश की हत्या की; और पाटलिपुत्र पर पर्वतेश्वर के द्वारा धावा करवाया; परन्तु चन्द्रगुप्त ने इस अरिष्ट को टालने के लिए प्राणपण से परिश्रम किया। नन्दवंश के अन्य पुरुष—नव के नवो पुरुष—मृत्युमुख में गये; परन्तु फिर भी उसने उस वंश की लाज रख ली—उसने पर्वतेश्वर को पराजित किया, और पाटलिपुत्र की रक्षा की। यह बात जब लोगों को मालूम हो जाय, तब चाणक्य का पूरा पूरा कार्य सिद्ध हो; और इसी लिए उन्होंने अपने भिल्लों का एक दूसरा गिरोह भी शस्त्रास्त्र से सुसज्जित करके तैयार कर रखा था; और उससे यह कह रखा था कि,

जब तुम लोग यह देखना कि, गर्ता में गिरे हुए लोगों का संहार लगभग ख़तम होते आया, तभी तुम "कुमार चन्द्रगुप्त की जय हो !" इस प्रकार की गर्जना करते हुए उस गर्ता में कूद पड़ना; और भीतर के भिल्लों में से कुछ को थोड़ा थोड़ा घायल कर देना; और कुछ को वहां से भगा देना। ऐसा करने में चाणक्य का यह उद्देश्य था कि, जिससे लोगों को यह मालूम हो जाय कि, चन्द्रगुप्त ने ही इस समय रक्षा कर ली, अन्यथा राक्षस के इस गुप्त षड्यंत्र से सारे पाटलिपुत्र का ही संहार हो गया होता। अस्तु।

चाणक्य का यह उद्देश्य किस प्रकार सिद्ध हुआ, सो आगे मालूम होगा।

अट्ठाईसवां परिच्छेद

पर्वतेश्वर को कैद किया।

पर्वतेश्वर के पास राक्षस का—अर्थात् उनकी मुद्रा का—पहला पत्र पहुँचा; और वह अत्यन्त आनन्दित हुआ। ग्रीक यवनों के बादशाह सिकन्दर ने भारतवर्ष पर चढ़ाई करके जिन राजाओं को पादाक्रान्त किया था; और फिर उनको अपना मांडलिक बना कर उनका राज्य उनके सिपुर्द कर दिया था, उन राजाओं में पर्वतेश्वर एक प्रमुख राजा था। और इस कारण पाटलिपुत्र के नन्दराजा उससे बहुत द्वेष रखते थे। पर्वतेश्वर चूंकि म्लेच्छों का मांडलिक था, और उसने स्वयं अपनी सेना में भी म्लेच्छ, यवन, इत्यादि लोगों को भरती कर रखा था, इस कारण नन्द राजा पर्वतेश्वर को भी एक प्रकार से म्लेच्छ ही समझते थे। नन्दराजाओं का यह ख़याल था कि ये सब राजा म्लेच्छों के मांडलिक बन गये हैं; और हम अब भी स्वतंत्र हैं, तथा आर्यों के आर्यत्व—श्रेष्ठत्व—को स्थिर रखे हुए हैं, और इस बात का उन्हें पूरा पूरा गर्व भी था। इस गर्व का परिणाम यह हुआ कि, पर्वतेश्वर के समान राजा उनसे अत्यन्त द्वेष रखने लगे। उनके विषय में उनके मन में मत्सर उत्पन्न हुआ। फलतः उन राजाओं ने यह सोचा कि, जिस प्रकार से भी हो सके, कोई मौका पाकर नन्दों को नीचा दिखाना चाहिए;

उनको अपने आर्यत्व का जो अभिमान है, उस अभिमान को एक बार अवश्य चूर करना चाहिए। ऐसी दशा में जब राक्षस के समान अमात्य श्रेष्ठ आप ही आप नन्दों से फूट कर पर्वतेश्वर के पक्ष में आ रहा है, तब फिर और क्या चाहिए? पर्वतेश्वर के आनन्द का पारावार न रहा। उसने राक्षस को कुछ उत्तर भेजा, फिर राक्षस की ओर से पत्र गया। इस प्रकार दो एक बार पत्र आने जाने के बाद अन्त में फिर राक्षस की ओर से एक पत्र गया कि, जिसमें स्पष्ट लिखा था कि, "अमुक दिन अमुक समय के लगभग आप थोड़ी सी सेना लेकर पाटलिपुत्र पर धावा करें। बहुत सेना लाने की आवश्यकता ही नहीं है। आप मगध देश की सीमा के अन्दर जब आवेंगे, तब प्रजा कुछ घबड़ायगी; इसलिए आप यह प्रकट करते हुए चले आवें कि, महाराज धनानन्द के निमंत्रण से हम जा रहे हैं। आपके साथ यदि सेना थोड़ी रहेगी; और मगध की प्रजा को यदि उससे कोई कष्ट नहीं होगा, तो प्रजा भी निःशंक रहेगी—आपको भी कोई तकलीफ न होगी। इधर हमारी सेना सब तैयार रहेगी ही; सेनापति भागुरायण भी पूर्णतया आपके ही पक्ष में हैं। बात की बात में नगर के अन्दर प्रवेश प्राप्त कर के सिंहासन को हस्तगत कर सकेंगे। आपके अनुकूल ही सारा प्रबन्ध कर रखा गया है। नन्द का वंशवृक्ष समूल, सशाख, सांकुर उन्मूलन हो जायगा—नष्ट हो जायगा—एक क्षण में नष्ट हो जायगा—ऐसा सुन्दर प्रबन्ध हम लोगों ने कर रखा है। विशेष लिखने के लिए इस समय मौका नहीं है। यह समय बहुत ही अमूल्य है; यदि आप इसे खो देंगे, तो मेरा नाश होगा, और आपका लाभ जायगा। और यदि इस समय को आप साध लेंगे, तो आपके समान गुणग्राहक चक्रवर्ती राजा का साचिव्य करने को मैं तैयार ही हूँ। इसके सिवाय मगध-

देश की प्रजा को धनानन्द के अत्याचार से मुक्त करने का श्रेय भी आपको प्राप्त होगा; और आप चक्रवर्तित्व प्राप्त करेंगे—इति लेखन-मर्यादा !"

पर्वतेश्वर को और क्या चाहिए ? नन्दों की मानहानि कर के मगध का चक्रवर्तित्व प्राप्त करने की महत्वाकाँक्षा उसे पहले ही से थी; अतएव राक्षस के नाम का वह पत्र पाकर उसे अपूर्व आनन्द हुआ। पिछले पत्र को पाकर तो उसने पाटलिपुत्र पर चढ़ाई करने का अपना निश्चय बिलकुल स्थिर कर लिया। पत्र भी उसके पास ऐसे मौके पर पहुँचा था कि, अब उसको उस पर विशेष विचार करने का अवसर ही न था। इस समय उसे शीघ्रता ही अभीष्ट थी; क्योंकि शीघ्रता करने से राज्य-प्राप्ति होनेवाली थी—इतने वर्षों की महत्वाकांक्षा पूर्ण होनेवाली थी, और शीघ्रता न करने से मौका हाथ से जाता था—ऐसी दशा में बेचारा पर्वतेश्वर शीघ्रता न करता, तो करता क्या ? इधर राक्षस ने उसे लिख ही दिया था कि, मगध की सेना और सेनाधिपति भागुरायण पूर्णतया आपके पक्ष में हैं। इसलिए पर्वतेश्वर ने सोचा कि, अब हम को अपने साथ बहुत सी सेना ले जाने की भी आवश्यकता नहीं—सिर्फ इतनी ही सेना ले जाना काफी होगा कि, जिससे भीतर के लोगों में धाक बैठ जावे। भागुरायण की सहायता से हमारा काम सहज में हो जायगा—और प्रजा की कौन सी बात है—प्रजा तो गौ की तरह होती है—वह तभी तक फड़फड़ाती है कि जब तक एक मालिक के हाथ से छूट कर दूसरे मालिक के हाथ में बँध न जावे; और जब एक मालिक ने उसे छोड़ दिया; और दूसरे ने उसे बाँध लिया, तब उसकी सारी तड़फड़ बन्द हो जाती है। इस प्रकार का गहरा विचार करके पर्वतेश्वर ने अपने साथ कुछ बहुत सा फ़ौज़-फाटा नहीं लिया। पाटलिपु

की ओर आते समय उसे जितना मगध प्रान्त बीच में मिला उस प्रान्त के लोगों से उसने यही प्रकट किया कि, महाराज धनानन्द ने कुछ सख्य की चर्चा करने के लिए हमको बुलाया है, और इसी कारण हम साथ में थोड़ी सी सेना लेकर जा रहे हैं। इसके सिवाय मार्ग मे प्रजा को कोई कष्ट भी नहीं हुआ; इसलिए स्वाभाविक ही उसके विषय में किसी ने कोई आशंका भी नहीं की। पर्वतेश्वर शीघ्रतापूर्वक और निर्विघ्न रूप से पाटलिपुत्र आ पहुँचा।

यहाँ पर चतुर पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि, जिस पत्र के योग से मूढ़ पर्वतेश्वर इतनी शीघ्रतापूर्वक पाटलिपुत्र पर चढ़ आया, वह पत्र भी आर्य चाणक्य ने ही अमात्य राक्षस के ही नाम से तैयार करा कर भेजा था। पत्र पर पहले ही के समान राक्षस की मुद्रा इत्यादि सभी बातें थीं; और पर्वतेश्वर के हाथ में वह पहुँचा भी ऐसे समय पर था कि जब उसे उस पर व्यर्थ की शंकाएं इत्यादि निकालने का अवसर ही न था। या तो पत्र के अनुसार कार्य करता, अथवा अवसर हाथ से खोता; परन्तु बहुत दिनों की मनीषा तृप्त होने का अवसर आ गया था—ऐसे अवसर को हाथ से कौन जाने देगा? अस्तु! पर्वतेश्वर ने उपर्युक्त रीति से थोड़ी सी सेना लेकर पाटलिपुत्र को आ घेरा; और इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि, अब भागुरायण भीतर से हमारे पास सेना लेकर आवेंगे, और हमको पाटलिपुत्र में ले जायँगे, इसके बाद फिर राक्षस और भागुरायण दोनों मिल कर हमारा जय जयकार करते हुए हमको राजसिंहासन पर ले जाकर बैठायेंगे। बेचारा बड़ी आशा में था, परन्तु एकदम उसकी बड़ी निराशा हुई। पाटलिपुत्र के कोट पर से खूब ज़ोर की मार उसकी सेना पर शुरू हुई। उसने देखा कि, कहाँ हम अपनी सहायता के

लिए आनेवाली भागुरायण की सेना की प्रतीक्षा कर रहे थे. सो तो एक ओर रहा, और यह हम पर पाटलिपुत्र के बुर्जों पर से बाण, शतघ्नी, भुशुंडी, तथा अन्यान्य यंत्र-महायंत्रों से विमुक्त होनेवाली अश्मवृष्टि की भयानक बौछार शुरू हो गई ! बेचारा पर्वतेश्वर और उसके लोग बहुत ही घबड़ाये। क्या अमात्य राक्षस ने हमको विश्वास दिला कर फिर ऐसा घात किया ? हम उनके राजा से द्वेष रखते थे. और मगध का राज्य लेना चाहते थे, क्या इसी का उन्होंने इस प्रकार से बदला लिया ? यह सोच कर पर्वतेश्वर अपने भोलेपन पर बहुत पछताया। वास्तव में अमात्य राक्षस एक बहुत ही स्वामिभक्त पुरुष है; और उसने जब अपनी तरफ से ऐसा स्वामिद्रोह एकाएक प्रकट किया; और हमको इस प्रकार का आमंत्रण दिया, तभी हमको इसकी आशंका होनी चाहिए थी; और उस आशंका को दूर करने के लिए चाहे जो प्रयत्न हम कर सकते थे—अपने जासूस भेज कर सब सच्चा सच्चा हाल जान सकते थे, सो हमने कुछ नहीं किया—यह हमारा कितना बड़ा उल्लूपन हुआ ! सच पूछिये तो यह बात हम को पहले ही सोच लेनी चाहिए थी कि, क्या राक्षस के समान सच्चा स्वामिभक्त पुरुष ऐसे पत्र लिख सकता है ? और यदि लिख सकता है, तो क्या वे पत्र सच हैं ? इन बातों का हमको पूरा पूरा विश्वास कर लेना चाहिए था; किन्तु हमारे सामने कुछ भी शंका उपस्थित नहीं हुई—हां. जो थोड़ी बहुत उपस्थित भी हुई, उसको हमने अपनी मूर्खता समझ कर उसका त्याग कर दिया। देखो तो, हमने कितनी बेसमझी का काम किया; और अपने ऊपर अपने ही हाथ से यह संकट डाला। इस प्रकार के पश्चात्तापपूर्ण अनेक विचार पर्वतेश्वर के मन में आये, जिससे उसका मन बहुत ही खिन्न हुआ। इसके

सिवाय उसकी खिन्नता का सब से बड़ा कारण यह था कि, वह अपने साथ बहुत सी सेना भी नहीं लाया था; क्योंकि उसको आशा थी कि, स्वयं पाटलिपुत्र से ही हमको सहायता मिलेगी; और यह आशा इस समय उसकी पूरी नहीं हुई। सच तो यह है कि, यदि पर्वतेश्वर युद्ध की तैयारी से आया होता, यदि वह मगध सेना से भिड़ने के लिए आया होता, तो आज उसका कोई रंग ढंग निराला ही होता—वह भी काफ़ी जंगी तैयारी से आया होता। पर वास्तव में वह तो इस आशा पर आया था कि, हमको केवल पाटलिपुत्र पर चढ़ाई करने का ढोंग मात्र दिखलाना है—वास्तव में सारी सहायता तो हमको स्वयं वहीं से मिलेगी; और हमको पहुँचते देर नहीं होगी कि, सेनापति और अमात्य हमारा जयजयकार करते हुए हमको ले जाकर पटलिपुत्र के—मगधसाम्राज्य के—सिंहासन पर स्थापित कर देंगे; और इस प्रकार हम मगध-महाराजाधिराज हो जायँगे! परन्तु यह सब तो एक ओर रहा; और अब उपर्युक्त रीति से, बिलकुल अनपेक्षित रूप से, शस्त्रास्त्रों की बौछाड़ सहने,—नहीं, नहीं सहते हुए पलायन करने,—का अत्यन्त दुर्धर और लज्जाजनक प्रसंग उपस्थित हुआ! पहले पहल तो पर्वतेश्वर ने समझा कि, शायद यह कुछ भ्रान्ति ही होगी—शीघ्र ही यह बौछार बन्द हो जायगी—और यह समझ कर उसने अपनी सेना को धैर्य दिला कर मोर्चा रोपा; परन्तु इस प्रकार मोर्चा कब तक रोप सकता था? बहुत जल्द सेना ने पीठ दिखाई; और अपने प्राण बचाने का उद्योग प्रारम्भ किया। सैन्य-व्यवस्था का यह हाल होता है कि, जब तक किसी दल की सेना अपनी पीठ फिरा कर भगने नहीं लगती, तब तक तो कुछ उसकी आड़ रहती है; परन्तु जहां एक बार किसी ने अपने प्रतिपक्ष को पीठ दिखलाई कि, फिर एकदम भगदड़ मच,

जाती है—सैनिकों का साहस छूट जाता है; और उनके पैर नहीं अड़ते ! और जहां एक बार सेना भगी कि, फिर उसकी बहुत ही दुर्दशा होती है। ऐसी ही अवस्था पर्वतेश्वर की सेना की, और स्वयं उसकी भी हुई। पर्वतेश्वर की सेना पीठ फिरा कर अभी भगने ही लगी थी कि, पाटलिपुत्र के कोट के द्वार खड़ा खड़ खुल गये; और उनसे भागुरायण की सेना बाहर निकल कर पर्वतेश्वर की सेना का पीछा करने लगी। इस सेना के बिलकुल आगे, मोहरे पर, चन्द्रगुप्त था; और वह बड़े आवेश के साथ अपने सैनिकों को शत्रु का पीछा करने के लिए उत्तेजित कर रहा था। चन्द्रगुप्त की छवि इस समय देखने योग्य थी। उसके चेहरे पर वीरता का तेज झलक रहा था—सारा अंग, रोमरोमांच, वीरश्री से स्फुरित हो रहा था। उसकी दृष्टि इतनी चंचल हो रही थी कि, मानो वह सर्वव्यापी बनने का ही प्रयत्न कर रही थी। शत्रु-दल किस ओर से भग रहा है; और हमको उसके रोकने का किस ओर से प्रयत्न करना चाहिए—इसका मानो उसने क्षणार्ध में ही—एक बार अपने वे तेजस्वी और विशाल नेत्र सर्वत्र घुमा कर—निश्चय कर लिया; और तदनुसार अपनी सेना को हुक्म दिया। सारी सेना तुरन्त ही उसके आज्ञानुसार शत्रु का पीछा करने लगी। पीछा होते होते शत्रुदल एकदम हताश हो गया; और कुछ लोग कैद भी किये जाने लगे। थोड़े ही अवकाश में पर्वतेश्वर की सेना का बहुत सा भाग चन्द्रगुप्त और भागुरायण के कब्जे में आ गया; परन्तु स्वयं पर्वतेश्वर को कैद किये बिना चन्द्रगुप्त को सन्तोष नहीं हो सकता था। इस लिए उसने भागुरायण को तो यह इशारा दिया कि, आप बाकी सेना के पीछे लगें; और स्वयं चन्द्रगुप्त पर्वतेश्वर का पीछा करने लगा। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त से पहले ही कह दिया था कि, यदि तू इस राजा को पकड़

लावेगा, तो फिर पाटलिपुत्र के सिंहासन पर तेरी स्थापना होने में कोई सन्देह नहीं रह जायगा, और राजा पर्वतेश्वर को पकड़ कर ही तू मुझको मुंह दिखला, अन्यथा मेरे सामने आने का कोई काम नहीं। गुरु के इस आदेश के कारण अवश्य ही चन्द्रगुप्त के अन्दर विलक्षण साहस का संचार हो गया था।

चाणक्य ने यह विचार किया था कि, जब अकस्मात नन्द वंश का नाश हो जायगा, और लोग देखेंगे कि, नन्दों के वंश-वृक्ष का एक भी अंकुर नहीं रहा, तब वे अवश्य ही बिगड उठेंगे, और इसमें सन्देह नहीं कि, राक्षस पर संशय करके वे सन्तप्त ज़रूर होंगे, परन्तु इतने ही से चन्द्रगुप्त के समान एक दूसरे राजकुमार को एकदम सिंहासन पर अधिष्ठित नहीं होने देंगे। इस लिए इस अवसर पर चन्द्रगुप्त के हाथ से कोई न कोई अलौकिक कार्य करवा कर उसे नगर में लाना चाहिए, परन्तु वह अलौकिक कार्य कौन सा? वास्तव में पर्वतेश्वर मगधों का पूर्ण बैरी है, और यही मगध देश को पादाक्रान्त करने आया है, इस लिए इसी को चन्द्रगुप्त के द्वारा कैद करा कर नगर में लाना चाहिए। इससे अधिक अलौकिक कार्य और कौन सा हो सकता है? बस, यही सोच कर चाणक्य ने इतना बड़ा उद्योग—पर्वतेश्वर के पास राक्षस के नाम के झूंठे झूंठे पत्र भेजने इत्यादि का उद्योग—किया था, और इसी कारण आज उन्होंने चन्द्रगुप्त को खूब ताकीद के साथ उपर्युक्त आदेश भी दिया था। अस्तु। भागुरायण उसकी सहायता के लिए तैयार ही थे, और चन्द्रगुप्त की महत्वाकांक्षा भी आज पूर्ण तया उद्दीप्त हो रही थी, इस कारण उसने शत्रु का पीछा करने में खूब ही परिश्रम किया। अन्त में मगध देश और पर्वतेश्वर के राज की सीमा के कुछ ही इस पार चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर को जा घेरा। उस समय वहां पर दोनों

दलों में एक अच्छी घनघोर लड़ाई होगई। इस छोटे से युद्ध में चन्द्रगुप्त ने बहुत ही विलक्षण शूरता और चतुरता दिखला कर अपने शत्रु का पराभव किया; और उसको कैद कर लिया। पर्वतेश्वर ने बहुत सा कर देने की बात निकाली, सन्धि की चर्चा चलाई; पर सब व्यर्थ! चन्द्रगुप्त उसको किसी प्रकार छोड़ नहीं सकता था। वह तो पर्वतेश्वर को पकड़ कर, पहली गुरुदक्षिणा के तौर पर, अपने गुरु के सन्मुख उपस्थित करना चाहता था। इसके सिवाय मगध के लोगों को यह भी दिखलाना था कि, देखो—राक्षस को छोड़ कर जिसने सब नन्दों का संहार कराया, उसी म्लेच्छ राजा को मैं पकड़ लाया हूँ: और तुम्हारे सामने ही तुम्हारे नगर में घुमाता हूँ। अब, ऐसी दशा में कहिये, वह पर्वतेश्वर के कर अथवा सन्धि की बात कैसे मान सकता था? फलतः चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर की एक भी नहीं सुनी: और उसको अपने साथ पाटलिपुत्र की ओर ले चला।

पर्वतेश्वर लाचार होगया। चुपके से अपने शत्रु की सेना के कुछ सिपाहियों के पहरे में चलने लगा। इस समय कई प्रकार से उसके मन को बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। उसने सोचा कि हमने विश्वास से—विचार न करते हुए केवल अन्ध-विश्वास से—राक्षस के पत्र को सच्चा मान कर पाटलिपुत्र पर धावा किया। आश्चर्य की बात है कि, उस समय हमारे मन में यह भी नहीं आया कि, कहीं राक्षस ही तो हमको बहका कर हमारा विश्वासघात नहीं करना चाहता—वह भी तो इस प्रकार के पत्र लिख कर हमारे साथ धोकेबाज़ी कर सकता था। शत्रु के अमात्य का विश्वास ही कौन? अरे दुष्ट राक्षस, तुझ को मैं बहुत अच्छा समझता था, अपने मन में मैं तेरी बड़ी इज्ज़त रखता था: और तुझ पर बड़ा पूज्यभाव रखता था; और इसी कारण

में धोके में आ गया। पर उसके विषय में पूज्यभाव क्यों था ? इसी लिए तो कि वह बड़ा स्वामिभक्त है; पर स्वामिभक्त हो कर भी जिसने स्वामि-द्रोह के पत्र लिखे, उसके विषय में फिर भी हमारे मन में इतना आदरभाव बना रहा ! यह भी एक बड़ी भारी भूल हुई ! यह सब मेरी मूर्खता और लोभ के कारण से हुआ—और कुछ नहीं। मुझ में यदि यह अनावश्यक लोभ न होता, तो मैं आज इस विपत्ति में क्यों फँसता ? परन्तु अब इन बातों के सोचने से क्या लाभ ? इस प्रकार पर्वतेश्वर मन ही मन प्रश्न करता और उनके उत्तर देता हुआ चुपके चला जा रहा था। बीच में उसको ऐसी इच्छा हुई कि, चन्द्रगुप्त से एक बार प्रश्न करके राक्षस की इस धोखेबाजी का कारण पूछना चाहिए; और तदनुसार उसने पूछा भी; परन्तु चन्द्रगुप्त ने बड़ी चतुराई से उसको सिर्फ इतना ही उत्तर दिया कि, "राक्षस एक बहुत ही चतुर और स्वामिभक्त राजनीतिज्ञ है; उसके विचार हमें क्या मालूम ?" उसने यह उत्तर दिया; और इस ढंग से दिया कि, जिससे पर्वतेश्वर फिर उससे और कोई प्रश्न ही न करे। उसको कोई प्रश्न करने का उत्साह ही न रहे। चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर को ऐसा उत्तर क्यों दिया ? इसका कारण यही है कि, वास्तव में पर्वतेश्वर के प्रश्न का सच्चा उत्तर वह देना ही नहीं चाहता था; क्योंकि सच्चा उत्तर यदि वह देता, तो उसे यह कहना चाहिए था कि, "आपको यहाँ लाने में राक्षस का कोई भी भाग नहीं था; किसी दूसरे ही ने आपको धोका दिया है।" परन्तु चन्द्रगुप्त यह बात पर्वतेश्वर पर प्रकट नहीं होने देना चाहता था। इसके सिवाय, यह कह कर कि, यह सब राक्षस ही ने किया, वह उसको और धोखे में भी रखना नहीं चाहता था। उसको मालूम था कि, चाणक्य हमारे गुरु हैं; उन्होंने जनक-जननी की भांति हमारा पालन किया है; और ये सब कार्रवाइयां वे इसी उद्देश्य

से कर रहे हैं कि, जिससे हमारा कल्याण हो; और हमको राज्य-प्राप्ति हो। इतना होने पर भी चाणक्य की इन सब कार्यवाहियों का अत्यन्त कृष्णत्व उसे हृदय से अच्छा नहीं लगता था। फिर भी वह क्या करता? जैसे एक पिता कोई कार्य करे; और लड़के को वे बिलकुल अच्छे न लगें; परन्तु फिर भी वह अपने पिता के विरुद्ध 'चूं' करने का साहस नहीं करता, अथवा अपने पिता के विरुद्ध कुछ कहना उसे एक प्रकार से पितृद्रोह ही जान पड़ता है, उसी प्रकार इस समय चन्द्रगुप्त की अवस्था थी। भला क्या है; और बुरा क्या है—यह देखने का इस समय उसका काम नहीं था; किन्तु चाणक्य जो कुछ कहें, उसी के अनुसार करना उसका काम था। बस, इसी नीति से चाणक्य उसे चलाते थे; और वह भी इसी नीति से चलता था। चाणक्य ने उससे पहले ही कह रखा था कि,—देख, पर्वतेश्वर को जब तू पकड़ कर लावेगा, तब रास्ते में उससे कुछ भी न कहना; यदि वह कुछ प्रश्न भी करे, तो उड़ते हुए उत्तर दे देना! बस, चन्द्रगुप्त ने भी अपने गुरु के इसी आदेश के अनुसार कार्य किया।

अस्तु। अब, इधर चाणक्य का ध्यान इसी बात की ओर लगा हुआ था कि, देखें, चन्द्रगुप्त पर्वतेश्वर को कैद कर के लाता है या नहीं। इतने में उनके गुप्तचरों ने उक्त सुसमाचार ला कर उनको सुनाया, जिसे सुन कर चाणक्य के आनन्द का पारावार न रहा। उन्होंने अपने को धन्य समझा। इसके बाद एकदम वे उठे, और इस विचार में लगे कि अब चन्द्रगुप्त को भारी जयघोष के साथ पाटलिपुत्र में लाने और उसके नाम की डौंड़ी पिटवाने के लिए क्या क्या योजना करनी चाहिए।

उन्नीसवां परिच्छेद

राक्षस चकित हुए।

चाणक्य ने जब देखा कि, चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर को पकड़ लिया; और अब कैद करके वह उसको लिये आता है, तब उन्होंने समझा कि, अब, बस, हमारे सारे उद्देश्य उत्तम प्रकार से सिद्ध हो गये; और हम कृतकृत्य हुए। इसके बाद वे अपने अगले प्रबन्ध के विषय में विचार करने लगे। इस बात का तो उन्होंने पहले ही से निश्चय कर लिया था कि, जब चन्द्रगुप्त पर्वतेश्वर को पकड़ कर लावे, तब उसको बड़ी धूमधाम के साथ कुसुमपुर में लाया जाय; और उसके आगे आगे कैदी के रूप में पर्वतेश्वर को चलाया जाय। बस, अपने इसी निश्चय के अनुसार अब चाणक्य ने सारे नगर में चन्द्रगुप्त के नाम का जयजयकार कराया; और उद्घोषकों के द्वारा यह उद्घोषित कराया कि, "महाराज धनानन्द और उनके अन्य पुत्रों की किसी दुष्ट ने हत्या करा डाली; और इसी मौके को देख कर पर्वतेश्वर सेना लेकर आया; और पाटलिपुत्र को घेर कर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था, इतने में चन्द्रगुप्त ने अपने पिता और भाइयों की हत्या का बदला लेने की प्रतिज्ञा करके, सेनापति भागुरायण की सहायता के बिना ही, पर्वतेश्वर पर धावा बोल दिया; और चन्द्रगुप्त के धावे से पराजित होकर

जब पर्वतेश्वर अपने सैनिकों-सहित भगा जा रहा था, तब चन्द्रगुप्त ने उसका पीछा करके उसको पकड़ा, और अब उसको कैदी के रूप में यहाँ लाकर आज वह कुसुमपुर में आनेवाला है। सब लोग जानते ही हैं कि पर्वतेश्वर ग्रीक यवनों का मांडलिक है। वास्तव में पहले यह आर्य ही था; परन्तु फिर इसने यवनों का दासत्व स्वीकार कर लिया—यही नहीं, बल्कि इसने यह भी दुष्ट इच्छा की कि, जिस प्रकार हमने अपनी स्वतंत्रता खोकर म्लेच्छों का दासत्व स्वीकार किया है, उसी प्रकार नंद-वंश के राजा हमारा दासत्व स्वीकार करें—अर्थात् नन्द लोग म्लेच्छों के दासों के भी दास बनें; और इसी दुष्ट उद्देश्य से प्रेरित होकर इसने कुसुमपुर में फूट डाल कर नन्दों की एकदम हत्या करवाई; और इस हमारे दिव्य नगर पर आक्रमण करने का दुष्ट प्रयत्न किया। अब, इस दुष्ट प्रयत्न के लिए इसको जो कुछ दण्ड मिलना है, वह हमारे राजाधिराज चन्द्रगुप्त महाराज देंगे ही; परन्तु इसके पहले इस बात की जाँच होनी चाहिए कि, इस नगर में वह कौन बागी है कि, जो पर्वतेश्वर से मिल गया है। उस बागी का पता लगा कर उसको भी उचित—अर्थात् देहान्तदण्ड ही देने का महाराज ने निश्चय किया है। इस लिए हमारे जो राजकुमार—अब राजाधिराज—चन्द्रगुप्त इतनी शूरता दिखला कर, और नन्दों की अकाल मृत्यु का बदला लेकर, इस पवित्र नगरी में पधार रहे हैं, उनका, अब नागरिकों को, बड़े भारी जयघोष के साथ, स्वागत करना चाहिये।" उद्घोषकों के द्वारा तो यह उद्घोष कराया, और कारीगरों के द्वारा स्थान स्थान पर तोरण खड़े करवाये। इसके अतिरिक्त अनेक लोगों के द्वारा अन्य प्रकार की भी सजावट करवाने का प्रबन्ध किया। "गतानुगतिकोलोकः" के न्याय से स्वाभाविक ही सारे नगर में सजावट का कार्य होने लगा। परन्तु

इस समारम्भ की तैयारी और चन्द्रगुप्त के नगर-प्रवेश में अभी कुछ अवकाश है, तब तक हमको अमात्य राक्षस का भी कुछ समाचार लेना चाहिए।

यह तो पाठकों को याद ही होगा कि, अमात्य राक्षस राजा धनानन्द की सवारी के साथ जा रहे थे, इतने में रास्ते में ही किसी एक सवार ने आकर उनको एक चिट्ठी दी, और उस चिट्ठी को देखते ही वे वहां से एकदम चले गये। उनके मन में यही आया कि, पर्वतेश्वर ने एकदम आकर पाटलिपुत्र को घेर लिया, इसका अर्थ क्या है? इतनी धृष्टता एकदम उसने कैसे दिखलाई? हम तो अपना आनन्दपूर्वक महाराज की सवारी के साथ जा रहे थे, अभी बड़ी मुशकिल से हमने उनको मुरा के महल से निकाल पाया था, और इतने में यह भयंकर समाचार आया, इसका अर्थ क्या? हम लोग इस बात का बड़ा गर्व रखते हैं कि, हम सारे संसार के समाचार सहज में मँगा सकते हैं, परन्तु हमको अपने घर की ही ख़बर नहीं! पर्वतेश्वर के अचानक धावा होने का अभी तक हमको कुछ भी समाचार नहीं था! इस प्रकार आश्चर्यचकित होते हुए अमात्य राक्षस खूब तेजी के साथ चले जा रहे थे, और बीच बीच में पता भी लेते जाते थे। इतने में किसी ने आकर उनसे बतलाया कि, आपकी सारी सेना बिलकुल सज्ज है—जैसे पर्वतेश्वर पर धावा करने के लिए तैयार कर रखी गई हो। यह समाचार सुन कर अमात्य ने सोचा कि, यह तो बहुत ही अच्छा हुआ—हम तो ज़रूर गफलत में थे, किन्तु सेनापति भागुरायण ने यह बहुत ही उत्तम कार्य किया कि, जो उन्होंने अपनी सारी सेना तैयार कर रखी। यह सोच कर उन्होंने सेनापति भागुरायण से मिलने की इच्छा प्रकट कर के अपने एक आदमी को भेजा, पर भागुरायण उस समय अपने सैन्य-स्थल पर मौजूद नहीं थे, इस लिए अमात्य

ने उनके नीचेवाले सैन्याधिकारी को बुलवा भेजा, परन्तु उस अधिकारी ने अमात्य से यह कहला भेजा कि, हम अपना स्थान इस समय छोड़ नहीं सकते, क्योंकि न जाने भागुरायण की हमारे लिए किस समय क्या आज्ञा आ जाय। राक्षस यह सन्देशा सुन कर बहुत ही अचम्भित हुए। परन्तु उन्होंने यही ख़याल किया कि, शायद भ्रमवश यह सन्देशा आ गया होगा—शायद उस अधिकारी को ठीक ठीक यही न मालूम हुआ हो कि किसने बुलाया है, और इसी कारण उसने ऐसा कहला भेजा हो। यह सोच कर अमात्यराज ने फिर उसी अधिकारी को बुलवा भेजा, पर फिर भी उसी प्रकार का उत्तर आया। यह देख कर राक्षस बहुत ही सन्तप्त हुए। उनको स्वप्न में भी ऐसा ख़याल नहीं था कि, पाटलिपुत्र में हमको कोई इस प्रकार का उत्तर भेज सकता है—हमारी ऐसी अवज्ञा कर सकता है! परन्तु अब तो उनको प्रत्यक्ष अनुभव ही प्राप्त होगया, तब फिर क्या पूछना है? राक्षस स्वयं उस अधिकारी के स्थान पर पहुँचे, और उससे बोले, "तुम ने हमारी भारी अवज्ञा की है; परन्तु इस समय हम तुमसे कुछ भी नहीं कहेंगे। पाटलिपुत्र को पर्वतेश्वर ने आघेरा है, उसको मार भगाने के लिए अब तुम अपनी सेना के सहित बहुत जल्द निकल पड़ो।" राक्षस ने बड़ी डांट के साथ कहा, परन्तु उस अधिकारी ने बड़ी ही शान्ति के साथ उनको यह उत्तर दिया, "सेनाधिपति भागुरायण हैं, और उन्होंने हमको यह आज्ञा दे रखी है कि, तुम मेरे अतिरिक्त किसी की भी आज्ञा मत सुनना। इस लिए जब तक उनकी आज्ञा न आ जावे, हमारी सेना का एक भी सैनिक अपनी जगह से नहीं हट सकता। हां सेना अपने सब अस्त्र-शस्त्रों-सहित बिलकुल सुसज्जित तैयार है।" यह भाषण सुन कर राक्षस बड़े ही चकित हुए। उनके नेत्र आरक्त होगये! उनको क्रोध भी आया, और बड़ी डांट के साथ

उन्होंने पूछा, "परन्तु मैं भागुरायण से भी श्रेष्ठ अधिकारी मौजूद हूँ न ?"

इसके उत्तर में उस अधिकारी ने सिर्फ़ मन्द हास्य भर किया; और यह देख कर अमात्य का क्रोध और भी बढ़ा; और उसी क्रोध के आवेग में वे और भी कुछ कहने ही वाले थे कि, इतने में वहां से दूर कहीं पर एक बड़ा भारी कोलाहल उनके कानों में सुनाई दिया। राक्षस ने समझा कि, शायद अब पर्वतेश्वर की सेना नगर में घुस रही है; और उसी का यह कोलाहल हो रहा है, इस लिए वे फिर उस अधिकारी से कहते हैं; "क्यों जी ! पर्वतेश्वर नगर में घुसकर अब प्रजा को पीड़ा भी देने लगा; परन्तु फिर भी अपनी सेना लेकर यहां से नहीं टलते हो—यह क्या बात है ?" ये शब्द एकदम राक्षस ने उस अधिकारी से कहे; और फिर बहुत ही क्रोध से लाल नेत्र करके उसकी ओर देखने लगे। उनको अब मानो यही न सूझने लगा कि अब हम क्या करें; और क्या न करें। परन्तु इतने में वह अधिकारी बहुत ही शान्ति के साथ उनको उत्तर देता है, "सेनापति भागुरायण की जब तक आज्ञा न हो जाय, कोई अपने धनुष में मौर्वी नहीं लगावेगा; और न कोई अपने कोश से खड्ग निकालेगा। उनकी आज्ञा चाहिए।"

यह सुन कर एकदम राक्षस के मुख से ये वचन निकले:—

"इससे तो ऐसा जान पड़ता है कि, भागुरायण पर्वतेश्वर से मिल गये हैं; और इसी कारण उन्होंने ऐसी सब व्यवस्था कर रखी है। आह ! सेनापते भागुरायण, क्या तुम स्वयं ही राजघात—इस पाटलिपुत्र के नाश का कारण बन रहे हो ?"

वास्तव में अमात्य ने यह प्रश्न ज़ोर ज़ोर से, परन्तु अपने ही को सम्बोधन करके किया था; और उसके उत्तर की उनको कोई भी अपेक्षा नहीं थी; परन्तु इस सृष्टि में बहुत बार अनेक बातें

अनपेक्षित भी हो जाया करती हैं और इसी नियम के अनुसार इस समय भी हुआ।

"आह! सेनापते भागुरायण, क्या तुम स्वयं ही राजघात—इस पाटलिपुत्र के नाश का कारण बन रहे हो?"—यह प्रश्न राक्षस के मुख से अभी निकला ही था कि, इतने ही में उनको उसका यह उत्तर भी मिला—

"अमात्य—किन्तु अब तुम को अमात्य भी कैसे कहें?—राजघात और पाटलिपुत्र के नाश का कारण कौन है—सो तो अब सारे संसार को अच्छी तरह मालूम हो चुका है। तुम ने जो राजघात किया है, उसका प्रतीकार तो अब किसी प्रकार सम्भव नहीं है; परन्तु पाटलिपुत्र का नाश मैं कभी नहीं होने दूंगा। तुम ने जो कृष्ण कृत्य किये हैं, उनके लिए तुम्हारा पारिपत्य जिनको करना है, वे उचित समय पर अपना कर्त्तव्य बजावेंगे।" ये अत्यन्त धीरगम्भीर वाणी से उच्चारण किये हुए शब्द राक्षस के कानों में आये। यह कौन कह रहा है, उसको देखने के लिए राक्षस ने ऊपर की ओर निगाह की, तो भागुरायण उनको दिखाई दिये। परन्तु फिर भी उनको यह विश्वास नहीं हुआ कि, भागुरायण ने ही ये शब्द कहे होंगे। भागुरायण ने फिर कुछ भी नहीं कहा—उनकी ओर देखा भी नहीं, और अपने अधिकारी की ओर मुड़कर यह हुक्म दिया—"पर्वतेश्वर ने नगर को घेर रखा है, तुम कोट पर से उसकी सेना पर वार शुरू कर दो।" यह कहने के बाद वे इस प्रकार अपने कर्त्तव्य में संलग्न होगये कि, जैसे राक्षस वहां हैं ही नहीं।

राक्षस उन के इस कथन, और इस व्यवहार का कुछ अर्थ ही समझ न सके। इतने में एक ओर बड़ा कोलाहल उनके कानों में आया। इस लिए उन्होंने सोचा कि, अब बहुत देर यहीं रहने से कोई लाभ नहीं, अब यहां से चलना चाहिए। यह सोच कर

वे यह विचार करते हुए कि, यह सब क्या मामला है, वहां से चल दिये। इधर, राक्षस के जाने के बाद क्या दुर्घटना घटित हुई थी, इसका उन्हें स्वप्न में भी खयाल नहीं था। उन्हों ने सोचा कि, भागुरायण तो अब शत्रु से युद्ध करने के लिए जा ही रहे हैं; इस लिए अब इस विषय में इन से वादविवाद करने से कोई लाभ नहीं—आगे देख लिया जायगा। इस समय तो हमें महाराज के पास जाकर उनका सब प्रबन्ध करना चाहिए—वे अब शायद सभाभवन में पहुंच गये होंगे। पर्वतेश्वर की यह धृष्टता जब महाराज सुनेंगे, तब वे स्वयं भी युद्धस्थल में पहुंच कर उससे युद्ध करेंगे। इस लिए अब वहीं चलना चाहिए। इस प्रकार मन ही मन विचार करते हुए, परन्तु भागुरायण के भाषण और व्यवहार से अत्यन्त विषण्ण होते हुए, अमात्य राक्षस उस सेनास्थान से बाहर निकले। इतने में वे क्या देखते हैं कि, चारों ओर बड़ा हाहाकार मचा हुआ है, लोगों के समुदाय हाहाकार करते हुए इधर उधर भाग रहे हैं, उनके भाषणों की इधर उधर इतनी गड़बड़ी मची हुई है कि, कुछ समझ में ही नहीं आता कि, यह क्या गोलमाल मच रहा है। इसके सिवाय राक्षस ने उसी गोलमाल के बीच बीच में बहुत ही बारीकी के साथ अपना नाम भी सुना। इतने में उनके पीछे से आकर किसी ने उनके बाहु का स्पर्श किया। पीछे मुड़ कर उन्होंने देखा, त्यों उनका प्रतीहारी उनको दिखाई दिया। प्रतीहारी तुरन्त ही उनसे बोला, "अमात्यराज, इस समय आप कहीं छिप बैठें, तो बहुत अच्छा हो। महाराज का प्रयाण-समारम्भ देखने के लिए जो लोक-समूह एकत्रित हुआ था, वह इस घटना से अत्यन्त सन्तप्त हो उठा है; और आपका नाम ले ले कर अद्वातद्वा बकता हुआ घूम रहा है। आप अभी तक किसी को देख नहीं पड़े हैं, और इसी लिए आपके प्राणों के बचने की अब भी सम्भा-

चना है। अन्यथा यह क्षुभित जनसमूह क्या करेगा और क्या नहीं—इसका कोई ठिकाना नहीं। चलिये।"

परन्तु राक्षस प्रतीहारी के कहने का कुछ भी तात्पर्य न समझ कर उससे पूछते हैं—"सवारी कहाँ तक पहुँची है?" "सभा-मन्दिर तक पहुँची या नहीं"? राक्षस के ये प्रश्न सुन कर प्रतीहारी बिलकुल स्तब्ध रह गया। इस पर राक्षस ने फिर उससे वही प्रश्न किये, तब वह धीरे से ही बोला, "अमात्य, सवारी को तो आपने जहाँ पहुँचाने का प्रबन्ध किया था, वहाँ पुत्रों समेत पहुँच चुकी, और इसीलिए आप मुझ गरीब के......"

"प्रतीहारी, तू कहता क्या है, मेरी कुछ समझ में नहीं आता। क्या कहता है? जनसमूह मेरा नाम ले लेकर चिल्ला रहा है, सो किस लिए? और ऐसी कौन सी घटना घटी है, जिस पर जनसमूह मेरे ऊपर इतना प्रक्षुब्ध हुआ है?"

"महाराज का .....आप पर सब लोगों का क्रोध......"

"क्या? उस कपटी मुरा के मोह-पाश से महाराज को निकाल कर मैंने फिर राजकाज में प्रवृत्त किया, इसी से मेरे ऊपर क्रोध? अरे, तू कहता क्या है? इस समारम्भ के आनन्दोत्सव में तू ने अधिक मदिरा पान तो नहीं कर लिया? बतला, बतला, शीघ्र ही बतला, नहीं तो......"

"अमात्यराज, आप के कुशल के लिए मैं यह सब कह रहा हूँ। कृपा करके आप यहाँ से चलें। फिर मैं सब हाल आपको बतलाऊँ। आप ने चाहे जो किया हो, किन्तु फिर भी आप पर मेरी पूर्ण भक्ति है, और उसी को ख़याल में लाकर आप मेरी प्रार्थना मान कर, इस समय यहां से निकल चलें; और कहीं छिप कर बैठ जायँ। अन्य-

श्री महाराज के आकस्मिक घात से यह जन समुदाय जो प्रक्षुब्ध हो रहा है, वह न जाने क्या कर डालेगा!"

"क्या? महाराज का आकस्मिक घात! कैसा घात? किस का घात? यह क्या है? तू भ्रमिष्ट हो रहा है या मैं?"

"भ्रमिष्ट कोई भी हो; पर आप इस समय अपने महल में न जाकर मेरे साथ चलें; और कहीं छिप कर बैठें। फिर मैं आप को सब कुछ बतलाऊं।"

"क्या कहता है? मैं अपने मन्दिर में न जाकर कहीं छिप कर बैठूँ? क्या मैं कोई चोर हूँ? या तू मुझे पागल बनाना चाहता है? प्रतीहारी, तू मेरा बहुत पुराना सेवक है, इसी लिए मैं तुझको कुछ विशेष नहीं कह सकता। किन्तु इस समय मैं तुझ पर बहुत अप्रसन्न हो रहा हूँ।"

"अमात्यराज, अब ऐसे समय में मैं बीच रास्ते में आप से क्या बतलाऊं? यह क्षण, जो बीत रहा है, बड़े महत्व का है; इस ओर अभी कोई आ नहीं पाया है। अमात्यराज, जिस गर्ता में महाराज और उनके पुत्र गिरे हैं, वह गर्ता आप ही ने ख़ास तौर पर बनवाई थी; और आप ही ने महाराज की हत्या के लिए यह सब तैयारी की थी; और फिर आप ऐन मौके पर कोई बहाना निकाल कर वहां से चले भी आये, जिससे आप पर इसका अपराध न आवे; अथवा आप सुरक्षित बने रहें। यही सब लोगों का ख़याल है। इसके सिवाय......"

"अरे, कैसी गर्ता, और यह सब तू क्या कह रहा है? मुझे तेरे कथन का कुछ भी तात्पर्य समझ में नहीं आता। अच्छी तरह बतला।"

"इस जगह सब हाल ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता। आप मेरे साथ एकान्त में चलें, वहां सब बतलाऊंगा" राक्षस ने उसकी बातों से ताड़ लिया कि, कोई न कोई भयंकर

दुर्घटना होगई है; और उसके लिए लोग हम पर सन्देह कर रहे हैं। इसके सिवाय, भागुरायण ने भी अपने सैन्यस्थल पर उनसे ऐसा ही कुछ कहा था. उसकी भी अब उनको याद आई। और यह सारा मामला उनको बहुत ही विचित्र जान पड़ा; और वे बहुत ही आश्चर्य चकित हुए। उन्होंने सोचा कि, अब इस मामले का पूरा पूरा पता मिलना चाहिए, जब तक सब हाल ठीक ठीक मालूम न हो जाय, हमको चुप नहीं बैठना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने चुपके से प्रतीहारी के साथ जाना स्वीकार किया। प्रतीहारी उनको नगर के एक ओर अपने एक मित्र के घर ले गया; और वहां जाकर उनको सब हाल ठीक ठीक बतलाया। उसको सुन कर राक्षस बहुत ही दुखित हुए। जिनकी सेवा हम कायावाचामन से इतने दिनों से करते रहे, उन्हीं महाराज की हत्या करने का षडयंत्र किसी दुष्ट बुद्धि मनुष्य ने किया और हम यहीं बने रहे, फिर भी हमको उसका कुछ भी पता न चला? आज तक हम अपने चारचक्षुत्व के विषय में बहुत अभिमान किया करते थे। पर उससे क्या काम निकला? दूसरी छोटी छोटी बातों को तो जाने ही दो—स्वयं महाराज के प्राणों की हत्या हो गई; और हमको कुछ भी ख़बर नहीं! इतनी गफ़लत हमारे हाथ से कैसे हो गई? इसी बात पर राक्षस को अत्यन्त आश्चर्य, खेद और उद्वेग हुआ। फिर उसमें भी जब उनको यह मालूम हुआ कि, लोगों का ऐसा ख़याल हो रहा है कि, हमी ने यह सब किया, तब तो उनके खेद की सीमा न रही। हमारी सारी चतुरता, हमारी दूरदर्शिता, नीतिविशारदता, इत्यादि कहाँ चली गई? हमारी आंखें कहाँ गई? किसी न किसी बड़े भारी शत्रु ने ही यह सब व्यूह बड़ी चतुराई के साथ रचा होगा, यह स्पष्ट है। वह शत्रु कौन है? सेनापति भागुरायण ही तो वह शत्रु नहीं? उसी ने तो यह सारी भयंकर दुर्घटना घटित

नहीं की ? वही तो पर्वतेश्वर से नहीं मिल गया ? शायद उसी ने पर्वतेश्वर को यह लिखकर आमंत्रण दिया हो कि, अमुक दिन अमुक समय पर मैं महाराज और उनके सब पुत्रों का नाश करने वाला हूँ; तुम उसी दिन आकर पाटलिपुत्र पर धावा करो, मैं अपनी सेना से तुमको सहायता दूंगा; और राज तुमको सौंप दूंगा। इस प्रकार पर्वतेश्वर को खबर भेज कर उसी ने तो नहीं बुलवाया ? अवश्य ऐसा ही कुछ होना चाहिए, अन्यथा आज ही पर्वतेश्वर भी आकर नगर को कैसे घेर सकता था ? क्या ? सेनापति भागुरायण ने इतनी अधमता की होगी ? धिक्कार है. धिक्कार है, भागुरायण, तुमको सर्वथा धिक्कार है ! तुमने इस प्रकार का नीच षड़यन्त्र रचा ? तुम यदि महाराज के अमात्य ही बनना चाहते थे, तो हमसे कहते हम अमात्य-पद को छोड़ देते और तुम्हीं को वह पद दे देते, पर तुमने ऐसा किया ? खैर कोई हानि— इस संकट से भी पार होकर मैं नन्दवंश की सेवा करूंगा; परन्तु तुम्हारा अब क्या होता है, सो देखता हूँ ! यही मेरी प्रतिज्ञा है, यही मेरा निश्चय है, और यही अब मेरा व्रत है !

राक्षस का यह व्रत कहां तक चला, सो आगे मालूम होगा।

तीसवां परिच्छेद

चन्द्रगुप्त की सवारी।
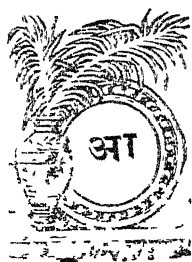
आर्य चाणक्य की बड़ी महत्वाकांक्षा यही थी कि, चन्द्रगुप्त को बड़ी धूमधाम के साथ नगर में लावेंगे; और उसके आगे आगे पर्वतेश्वर को कैदी के रूप में चलावेंगे। अपनी इसी महत्वाकांक्षा को तृप्त करने के लिये, जितनी तैयारी उनसे बन पड़ी, सब उन्होंने की; और फिर चन्द्रगुप्त को बड़े समारम्भ के साथ नगर में ले आये। लोगों का मन उस समय क्षुब्ध हो। गया था; इस लिए, उसको शान्त करने के उद्देश्य से, उन्होंने सारे नगर में यह खबर पहले ही से फैला दी कि, चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर को पराजित किया है, और वे अब उसको कैद कर के लिये आ रहे हैं; इसके साथ ही चन्द्रगुप्त के नाम का जय जयकार भी उन्होंने चारों ओर कराना शुरू किया; कि आज उन्होंने पर्वतेश्वर का दमन करके पुष्पपुरी को म्लेच्छों के अत्याचार से बचाया था। इसके सिवाय सेनापति भागुरायण के विषय में भी जगह जगह यह प्रकट कराया कि, वे भी एक बहुत ही वीर और रणधीर पुरुष हैं, क्योंकि उन्होंने यदि आज अपनी सेना न तैयार कर रखी होती, तो न जाने नगर पर कैसी आपत्ति आई होती, इस लिए उनकी चतुरता और राजभक्ति की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इस प्रकार के भाषण जगह जगह नगर

भर में होने लगे, इसका भी प्रबन्ध चाणक्य ने पहले ही कर रखा था। राजा धनानन्द और अन्य नन्दवंशीय अंकुरों के आकस्मिक नाश के कारण सारा राजकुल उस समय शोकाकुल हो रहा था, और ऐसी दशा में चन्द्रगुप्त के लिए विशेष समारम्भ करने की आवश्यकता नहीं थी, इस बात को चाणक्य ने अपने ध्यान में रखा था; और विशेष समारम्भ करने से उन्हें कोई लाभ भी न था। उनकी इच्छा केवल इतनी ही थी कि, चन्द्रगुप्त के विषय में लोगों के मन में भक्ति उत्पन्न हो जाय: और लोग यह न समझें कि, यह बीच ही में आकर कोई कूद पड़ा है, और गद्दी को छीनना चाहता है।

अस्तु। चाणक्य की की हुई योजना के अनुसार चन्द्रगुप्त ने समारम्भ के साथ नगर में प्रवेश किया। उसमें पर्वतेश्वर का प्रदर्शन ही मुख्य था। उसको हाथ जोड़ कर चन्द्रगुप्त के घोड़े के कुछ आगे, एक घोड़े पर चलने के लिए बाध्य किया गया था: और तदनुसार ही वह बेचारा चल रहा था। चन्द्रगुप्त अपनी लड़ाई की ही पोशाक में थे। आप जानते ही हैं कि, लोकप्रवृत्ति और दावाग्नि की दशा एक ही प्रकार की होती है। जहां एक बार जली कि, फिर फैलती ही जाती है। यही हाल उस समय पाटलिपुत्र में भी हुआ। चाणक्य का उद्देश्य पूरा पूरा सिद्ध हुआ। चारों ओर चन्द्रगुप्त और भागुरायण के नाम का जयजयकार मचने लगा। लोग मानो नन्दों की हत्या की दुर्घटना को बिलकुल भूल से गये।

इसके सिवाय लोकमत की क्षणभंगुरता को भी चाणक्य पूर्णतया जानते थे। इस लिए उन्होंने सोचा कि, जब तक चन्द्रगुप्त पूरे तौर पर जम न जावें, तब तक इसको बहुत देर तक लोगों की आंखों के सामने रखने में भी कोई लाभ नहीं है। सब नन्दों की हत्या अभी हो ही चुकी है, ऐसी दशा में सम्भव है, कोई कुछ

सन्देह कर बैठे, और व्यर्थ ही में कोई आपत्ति न आ जाय। इस लिए इसको एक दम राजमहल में ले जाकर राज्याभिषेक करवा देना चाहिए, और सिंहासन पर बैठा कर इसी के नाम का ढिंढोरा पिटवा देना चाहिए. उन्होंने सोचा कि, समय बड़ा विचित्र होता है, न जाने किस समय क्या बात आ पड़े, इस लिए इस मौके को हाथ से न जाने देना चाहिए, इसी में दूरदर्शिता और चतुराई है।

अतएव जितनी जल्दी हम यह समारम्भ कर सकें, उतना ही अच्छा। यह सोच कर चाणक्य ने, सवारी के राजमहल में पहुँ-चते ही, पर्वतेश्वर को तो नज़रकैद करवा दिया, और भागु-रायण तथा चन्द्रगुप्त को एक ओर ले जाकर आगे का विचार प्रारम्भ किया। उस समय पहले भागुरायण ने यही सूचित किया कि, अब राक्षस का भी पूरा पूरा पता रखना चाहिए कि, वे कहाँ जाते हैं. और क्या करते हैं। यह सुन कर चाणक्य हँस कर बोले, "सेनापति जी, ऐसे समय में क्या मैं क्षण भर के लिए भी उनसे अपनी दृष्टि अलग रख सकता हूँ? मैंने पहले ही से उनके पीछे अपने एक चोर को लगा रखा है। राक्षस जब से धनानन्द की सवारी छोड़ कर चले गये हैं, तभी से हमारा वह चार उनके पीछे नज़र रख रहा है। आप जानते हैं, राक्षस कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। वे बीती हुई घटनाओं से निराश हो कर बैठने वाले मनुष्य नहीं हैं। यही तो समय है कि जब हम लोगों को उनकी तरफ से बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। उनको पाटलिपुत्र के बाहर न जाने देना चाहिए। वे यदि एक बार हम लोगों के हाथ से निकल गये, तो फिर कहा नहीं जा सकता कि, वे क्या करेंगे, और क्या नहीं करेंगे। इसी लिए अब हमको अपनी सारी चतुराई इसी बात में खर्च करनी चाहिए कि, जिससे वे फिर अपना अमात्य का काम करने लगें। परन्तु

अमात्य नियत करने के पहले राजा को तो स्थिर कर लेना चाहिए। इस लिए यही काम पहले करो, और यह सब तुम्हारा ही काम है। अब समय को व्यर्थ न गवांना चाहिए। इसी घड़ी ढिंढोरा पिटवा दो। नियमानुसार चार श्रेष्ठी, चार महाजन, सब क्षत्रिय वीर; इत्यादि लोगों की परिषद् करो। उस परिषद में इस बात को प्रकट करो कि, इस भयंकर हत्या की जांच होना बहुत जल्द आवश्यक है, क्योंकि हत्यारों का पता लगा कर बहुत जल्द उनको दण्ड मिलना चाहिए। इसके सिवाय पर्वतेश्वर जो इस पाटलिपुत्र पर आक्रमण करके इस को जीतना चाहता था, और इस पर यावनी शासन जमाने की इच्छा रखता था, उसको भी उचित दण्ड मिलना चाहिए, पर यह प्रबन्ध कौन करे? इसका अधिकार किसी न किसी को मिलना चाहिए। यह प्रकट करने के बाद फिर चन्द्रगुप्त का सच्चा वृत्तान्त, जितना उन लोगों को बतलाना आवश्यक हो, उतना बतला कर अपना कार्य कर लो। रहे राक्षस, सो उनके विषय में जो कुछ आगे करना होगा, सो हम फिर यथावकाश बतलावेंगे।"

चाणक्य की उपर्युक्त सूचना के अनुसार ही भागुरायण ने सारा कार्य करने का निश्चय किया, और तुरन्त ही नगर के प्रभावशाली पुरुषों में से कुछ लोगों को बुलवाया। इसके बाद उन्होंने उन सब लोगों को सारी घटनाएं भली भांति समझाईं, और साथ ही साथ चन्द्रगुप्त के शौर्य वीर्य की बड़ी प्रशंसा की। इतने पर सब लोगों ने भागुरायण के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, एक दो आदमियों ने राक्षस का नाम लिया जिसको सुनकर चन्द्रगुप्त ने कहा कि, "अब इस समय राक्षस का नाम यदि पाटलिपुत्र में नहीं लिया, तो ही अच्छा, मेरे इस कथन के अनेक कारण हैं, जो आप लोगों को

शीघ्र ही मालूम होंगे।" इतना कहने के बाद वे अपने अगले कार्यक्रम के विषय में उन लोगों को सूचना देने लगे। इधर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को राज्य पर बैठाने की डौंडी पिटवाने का तो निश्चय कर ही लिया था; किन्तु इसके सिवाय उसी समय इस बात को भी सब लोगों पर प्रकट कर देने का निश्चय कर लिया था कि, नन्दों की हत्या के कुछ कारण हैं, और जो लोग इस हत्या में सम्मिलित हैं. उन सब का अनुसन्धान चन्द्रगुप्त बड़ी दक्षता के साथ कर रहे हैं. और बहुत जल्द सच्चे अपराधियों का पता चल जायगा। इस प्रकार सर्वत्र डौंडी पिट जाने पर बहुत जल्द शुभ मुहूर्त देख कर चन्द्रगुप्त को राज्याभिषेक करने का प्रस्ताव भी होगया।

इधर चन्द्रगुप्त ने—अर्थात् चाणक्य ने ही पर्वतेश्वर को अपने सामने बुलाया: और भागुरायण तथा चाणक्य के सामने उससे कुछ प्रश्न किये। परन्तु पर्वतेश्वर उन प्रश्नों का कुछ उत्तर ही न देने लगा। इस पर बहुत कुछ चर्चा हुई, तब अन्त में उसने इतना बतलाया कि, राक्षस के पत्र हमारे पास गये थे, और इसी कारण हमने पाटलिपुत्र पर हमला किया। परन्तु चाणक्य का समाधान इतने से थोड़े ही हो सकता था! इस लिए फिर पर्वतेश्वर से कहा गया कि, दिखलाओ वे राक्षस के पत्र कहां हैं? पहले तो पर्वतेश्वर कुछ टालमटोल करने लगा परन्तु फिर अन्त में वे पत्र भी निकाल कर दिखला दिये। उन पत्रों में यद्यपि यह बात नहीं लिखी थी कि, नन्दों का नाश करने के लिये हमने क्या युक्ति सोची है, परन्तु इतना स्पष्ट लिखा था कि, हमने कोई न कोई युक्ति सोच ली है। अस्तु। पर्वतेश्वर ने जो जो उत्तर दिये, सब उन्होंने मुहर्रिर के द्वारा विस्तार पूर्वक लिखावा लिये। इसके बाद चाणक्य की चेष्टा से ऐसा जान पड़ा कि जैसे उनको अपने सम्पूर्ण षड्यंत्र की सफलता पर

बहुत ही आनन्द हुआ हो। अस्तु॥ इसके बाद भागुरायण को एक ओर लेजाकर उन्होंने कहा, "सेनापते, अब एक काम करो। अमात्य राक्षस को हाथ से जाने न देना चाहिए, यह बिलकुल स्पष्ट है। इस लिए तुम बड़ी युक्ति के साथ एक बार जाकर उनसे मिलो और उनसे अपने पक्ष में मिलने की प्रार्थना करो। देखो, वे क्या कहते हैं, और जो कुछ वे कहें, वह मुझसे आकर बतलाओ। परन्तु उनको यह न मालूम होने पावे कि, पर्वतेश्वर ने क्या क्या कहा है, और उसने हमको क्या दिया है। इस बात का कुछ भी पता उनको न चलने दो। उनसे सिर्फ इतना ही कहो कि, जो बात हो गई, सो होगई, अब उसकी कोई चिन्ता नहीं; जो कोई अपराधी होगा, उसको हम सब मिलकर ढूंढ़ निकालेंगे; और उसको दण्ड देंगे। ऐसा कहकर तुम यही उपाय करो कि, जिससे किसी प्रकार वे हम लोगों के पक्ष में आ मिलें।" भागुरायण ने चाणक्य का यह सारा कथन सुन लिया, परन्तु उनको यह आशा नहीं थी कि, चाणक्य का बतलाया हुआ यह कार्य हमारे हाथ से सिद्ध होगा। इसके सिवाय चाणक्य का भी ऐसा ख़याल नहीं था कि, भागुरायण के द्वारा यह कार्य हो सकेगा, अथवा राक्षस उनका कथन स्वीकार कर लेंगे। परन्तु उनका उद्देश्य सिर्फ इतना ही था कि, जब तक हम अपना कोई दूसरा विचार निश्चित करते हैं, तब तक राक्षस के मन का हाल तो हमको मालूम हो जायगा—अर्थात् इस बात का पता हमको चल जायगा कि, इस समय उनके मन में कैसे कैसे विचार आ रहे हैं। इसके सिवाय चाणक्य को इस बात का भी पूरा पूरा पता था कि, राक्षस सेनास्थान में जाकर क्या क्या भाषण कर आये हैं, और भागुरायण के सम्बन्ध में उन्होंने क्या क्या उद्गार निकाले हैं। ये सब बातें अपने चारों के द्वारा उनको मालूम हो चुकी थीं। इस लिए वे भलीभाँति जानते थे कि, भागुरायण

जब राक्षस के पास जाकर इस प्रकार की बातें करेंगे, तब राक्षस अवश्य ही बहुत क्रोधित होंगे, और भागुरायण को दो चार कटु-वचन कह कर इस बात की भी बड़ाई जरूर मारेंगे कि, हम आगे क्या क्या करेंगे। इस लिये वे उनकी बड़ाई मारने की बातें जब हमको सब मालूम हो जायेंगी, तब हमको अपने अगले कार्यक्रम के सोचने में सुभीता होगा। बस, इसी विचार से चाणक्य ने भागुरायण को राक्षस के पास जाने के लिये कहा था।

भागुरायण को अभी इस बात का कुछ भी पता नहीं था कि, हमारे विषय में राक्षस के मन में क्या क्या विचार आ रहे हैं. और उन्होंने हमारे विषय में क्या उद्गार निकाले हैं, और यह बात यदि उन्हें मालूम होती, तो शायद वे राक्षस के पास जाना भी स्वीकार न करते। अस्तु, भागुरायण ने चाणक्य की उस बात को स्वीकार कर लिया, और राक्षस का पता लगाते हुए उनके पास चले।

इधर राक्षस इस विचार में निमग्न हो रहे थे कि, अब आगे हमको क्या करना चाहिए। उनको अब इसी बात का विश्वास नहीं रह गया था कि, वे अब अपना किसको समझें, क्योंकि यह बात उनको स्पष्ट दिखाई दी कि, राज्य में सभी प्रकार के लोगों को फोड़े बिना इतना भारी षड्यंत्र सफल हो ही नहीं सकता था। यद्यपि उनको अभी सम्पूर्ण षड्यंत्र का पूरा पूरा पता नहीं चला था, तथापि जितना कुछ अनुमान उन्होंने लगाया था, उसमें कपट उन्हें सब जगह दिखाई देता था। और इसी कारण उनका मन सब ओर से शंकित हो रहा था। इसके सिवाय जब उन्होंने यह सुना कि, लोग हमारे ही विषय में आशंका कर रहे हैं, तब तो उनको और भी विश्वास हो गया कि, यह सारा षड्यंत्र बहुत ही चातुर्य के साथ और एक

विचित्र प्रकार से रचा गया होगा । अन्यथा ऐसा मामला कैसे उपस्थित होता ? जो हो, अब हमको इसकी तह तक पहुँचना चाहिए, और जब तक हम ऐसा नहीं करेंगे, कोई काम न चलेगा, परन्तु इसकी तह तक पहुँचने का रास्ता कौन है ? सो कुछ उनकी समझ में नहीं आरहा था । प्रतीहारी ने उनको जो वृतान्त बतलाया था, उसमें कोई विशेष बात षड्यंत्र की तह तक पहुँचने के लिए नहीं थी—उस में तो सिर्फ़ वही बातें थीं, जो सब लोगों को बाहर बाहर दिखाई अथवा सुनाई दी थीं । भीतरी कारस्तानियों का उस बेचारे को क्या पता ? उसका तो यही ख़याल था कि, अमात्य का नाम इस विषय में लोग व्यर्थ ही लेते हैं । अमात्य अपने स्वामी की हत्या इस प्रकार कभी नहीं कर सकते । सच तो यह था कि, प्रतीहारी को अमात्य की स्वामिभक्ति के विषय में कभी आशंका नहीं हो सकती थी । इस लिए राक्षस को भी अब इस प्रतीहारी के अतिरिक्त और कोई भी आदमी विश्वासयोग्य दिखाई नहीं दे रहा था, और विश्वासपात्र मनुष्यों की तो इस समय उनको बड़ी आवश्यकता थी । इधर भागुरायण उनके पास पहुँचने के लिये उनका पता लगा ही रहे थे, और पता लगाते लगाते उनको वही चाणक्य का चार मिल गया कि, जिसको चाणक्य ने राक्षस के पीछे लगाया था । इस लिए उस चार की सहायता से भागुरायण राक्षस के पास तक पहुँच सके ।

आगे क्या हुआ, सो बहुत आनन्ददायक है । वह अगले परिच्छेद में मालूम होगा ।

इकतीसवां परिच्छेद

—※—

राक्षस की प्रतिज्ञा।
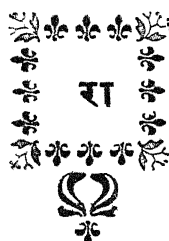
राक्षस बड़े गोलमाल में पड़ गये थे। उनको इस समय यही नहीं सूझ रहा था कि, अब आगे वे क्या करें, और क्या न करें। प्रतीहारी ने अपने एक मित्र के घर में ले जाकर उनको रखा था सही, परन्तु अब वे इस संकट में थे कि, उस घर के बाहर यदि हम निकलें, तो किस प्रकार निकलें। इस बात का एक प्रकार से मानों उनको भय सा लग रहा था। प्रतीहारी ने उनसे यह प्रकट कर दिया था कि, आम तौर पर लोगों का यही ख़याल है कि, आपने ही राज-वंश की हत्या कराई है। इस लिए अमात्य ने सोचा कि, यदि यही बात सच है, तो फिर लोकमत हमारे बहुत ही विरुद्ध हो गया होगा। प्रजा का मन हमारे विषय में अत्यन्त कलुषित हो गया होगा। ऐसी दशा में यदि हम बाहर निकलेंगे, और लोग हम को देखेंगे, तो न जाने क्या कर उठावें—सम्भव है, हमको राज-घातक समझ कर खड़ा जला दें—अथवा न जाने क्या करें! राक्षस कोई डरपोक व्यक्ति नहीं थे, अच्छे शूरवीर थे, परन्तु इस समय मौका ही उनके ऊपर ऐसा उपस्थित होगया था कि, जिसमें केवल शूरता से कोई काम नहीं निकल सकता था। दावाग्नि की तरह जहां उनके विरुद्ध लोकमत कलुषित होकर फैल रहा था, वहां अकेले उनके हाथ से उसका क्या सुधार हो सकता

था ? वे मन ही मन बहुत खिन्नहो रहे थे कि, आज तक हमने इतना राजभक्ति का व्यवहार किया, नन्दों के राज्य की दुंदुभि सम्पूर्ण पृथ्वी पर दुमदुमाने का प्रयत्न किया—क्या हमारे सब प्रयत्नों का यही फल मिला ? छोटे से लेकर बड़े तक सब अधिकारियों, और सब लोगों, को हम अपने हाथ में समझते थे, और सब पर पूरा पूरा विश्वास रखते थे—क्या उसी का यह फल है ? सम्पूर्ण भारतवर्ष में कहां पर क्या हो रहा है, किस राजा का क्या विचार है, सब का पता रखने में मैं बड़ा दक्ष था, परन्तु देखो तो—प्रत्यक्ष मेरी आंखों के सामने क्या हो रहा है, इसका भी हमको पता नहीं रहा ! इसी प्रकार के कुछ विचार मन ही मन करते हुए बेचारे राक्षस वहां चुपके बैठे थे। इतने में भागुरायण वहां जा पहुँचे। जिसके घर में अमात्य बैठे थे, वह पहले किसी प्रकार दरवाजा ही नहीं खोलता था। क्योंकि उसकी स्वाभाविक ही यह इच्छा थी कि, किसी को यह मालूम न होने पावे कि, अमात्य उसी के घर में बैठे हैं, और उसके मित्र प्रतीहारी ने इस विषय में उसको सावधान भी कर दिया था। परन्तु भागुरायण की ओर से ज़रा धमकी के साथ यह कहा गया कि, तुमको मालूम नहीं है, सेनापति भागुरायण आये हुए हैं, और उनको मालूम है कि, अमात्य राक्षस तुम्हारे घर में हैं, और अमात्य से उनको बहुत ज़रूरी मिलना है, इस लिए दरवाजा खोलो, और यदि नहीं खोलोगे, तो ज़बरदस्ती दरवाजा खोल कर प्रवेश किया जायगा। इस प्रकार जब कुछ धमकी के साथ उससे कहा गया, तब उसने अमात्य राक्षस के पास जाकर कहा कि, आप पर ऐसा संकट आया हुआ है। यह सुन कर राक्षस को बड़ा त्वेष आया, और वे उस घर के मालिक से बोले, "कोई परवा नहीं, तुम दरवाजा ज़रूर खोल दो, और उनको भीतर आने दो। जो नीच स्वयं

शत्रु से जाकर मिल गया है, और दूसरों पर मिथ्या आरोप लगा कर उनका घात करना चाहता है, ऐसे नीच को हम नहीं डरते। यह सब काम उस भागुरायण का ही है। नन्दवंश का साचिव्य प्राप्त हो, यही उसकी बड़ी महत्वाकांक्षा है, और इसी को तृप्त करने के लिए उस दुष्ट ने राजवंश की हत्या की है। उसको भीतर लाओ—अभी लाओ—फिर जो कुछ मुझको होना होगा, देख लूंगा।"

राक्षस का यह कथन सुनते ही उस मनुष्य ने जाकर अपना दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही सेनापति भागुरायण भीतर आ गये। इसके बाद उन्होंने घर के मालिक से सौम्यता पूर्वक, परन्तु ज़रा डांट के साथ कहा, "अमात्य राक्षस के पास मुझे ले चलो।" भागुरायण के कहने का ढंग ही ऐसा था कि फिर वह मनुष्य उनको भीतर जाने में आनाकानी नहीं कर सकता था, और इधर अमात्य राक्षस ने भी उनको भीतर लाने के लिए कह ही दिया था, अतएव उसको अब विशेष आनाकानी करने की आवश्यकता भी नहीं थी। फलतः बहुत जल्द उसने अमात्य के सामने ले जाकर उनको खड़ा कर दिया।

भागुरायण केवल सेनाधिपति थे। योद्धा की दृष्टि से उनकी योग्यता विशेष थी। परन्तु चातुर्य और कपट के भाषण उनसे नहीं हो सकते थे। अमात्य राक्षस के पास आने के पहले उन्होंने बहुत कुछ सोच रखा था कि, ऐसा कहेंगे, वैसा कहेंगे, इत्यादि। परन्तु जब वे उनके सामने जाकर खड़े हुए, तब जो कुछ सोचा था, उसमें से आधे से भी अधिक तो भूल ही गये।

इधर भागुरायण को देखते ही राक्षस नीचे से ऊपर तक बिलकुल जल उठे—उनके सन्ताप की सीमा न रही; और वे एकदम उनसे यही कहने वाले थे कि "राजवंश की हत्या

करके अब तुम हमको अपना यह काला मुँह दिखलाने के लिए आये हो? हमारे अन्धत्व के कारण, जनता की दृष्टि से चाहे तुम मगध देश के संरक्षक भले ही बन गये हो: किन्तु तुम्हारी आत्मा बतला रही है, और मैं भी भली भांति जानता हूँ कि, इस राजकुल के घातक तुम ही हो ! सो क्या तुम आज अपने दुष्कार्यों की बड़ाई मारने के लिए इस समय हमारे पास आये हो? नीच कहीं के! तू सब के नेत्रों में धूल डाल कर उनको अंधा बनाना चाहता है!" इस प्रकार के उद्गार निकालने की राक्षस को इच्छा हुई थी, परन्तु अपना यह सन्ताप क्षणमात्र के लिए रोक कर उन्होंने भागुरायण से इस प्रकार पूछा—"कहो, सेनापते, महाराज को कुशलपूर्वक पहुँचा दिया न?"

भागुरायण राक्षस के इस प्रश्न का भाव भली भांति समझ गये, परन्तु वे इस का समर्पक उत्तर शीघ्रतया नहीं दे सके। और कोई यदि होता, तो तत्काल ही उसने राक्षस को यह उत्तर दिया होता कि, "हां, अमात्यराज, आपकी जैसी इच्छा थी, उसी के अनुसार सब कार्यवाही होगई!" परन्तु भागुरायण को ऐसे उत्तर क्या मालूम? वे तो एक सीधे सादे योद्धा मात्र थे, अधरोत्तर देने में वे बिलकुल ही पटु नहीं थे, और यह बात हम ऊपर बतला भी चुके हैं। इस लिए कुछ क्षण तक तो वे बिलकुल चुप खड़े रहे। इसके बाद धीरे से बोले, "अमात्यराज, पर्वतेश्वर को मैं और चन्द्रगुप्त, दोनों मिल कर पराजित कर के पकड़ लाये हैं। अब आगे यही प्रश्न उपस्थित है कि, राज्यव्यवस्था का कैसा प्रबन्ध किया जावे। और यह बात आप से मिले बिना निश्चित नहीं हो सकती थी, इसी लिए आपको तलाश करते हुए मैं यहां आया। पर्वतेश्वर को जो हत्या करनी थी, सो उसने कर ली, दुर्भाग्य से हम लोग पहले से इतने बेख़बर रहे कि, कि कुछ

भेद ही न पा सके, और इसी कारण ऐसी आकस्मिक दुर्घटना हुई। अब जो हत्या हो चुकी है, उसके लिए कोई उपाय नहीं। हां, अगला प्रबन्ध देखना चाहिए। इस लिए आप कृपा करके चलिये। सेना को जो कुछ काम करना था, सो वह कर चुकी। अब आपका काम रह गया है। मुझे चाण—चन्द्रगुप्त महाराज ने खास तौर पर आपको ढूंढ़ने के लिए भेजा है।"

भागुरायण जिस समय यह भाषण कर रहे थे, राक्षस का क्रोध बढ़ रहा था। फिर जब उन्होंने चन्द्रगुप्त के साथ "महाराज" की पदवी लगाई, तब तो राक्षस के क्रोध का पारा इतना चढ़ गया कि, मानो वे आपे से बाहर होने लगे। इसके सिवाय, भागुरायण ने "चाण"-का शब्द अधूरा उच्चारण करके फिर तुरन्त ही जिह्वा दाब कर "चन्द्रगुप्त महाराज ने" ये शब्द कहे; परन्तु यह बात राक्षस के ध्यान में पूरी पूरी नहीं आ सकी। जो हो, भागुरायण का कथन समाप्त होते ही राक्षस ने, कुछ क्रोध, कुछ उद्वेग और कुछ कपट के भाव लाकर तुरन्त ही कहा, "चन्द्रगुप्त महाराज! चन्द्रगुप्त महाराज तो मैं ने कभी सुने नहीं! जान पड़ता है, उस वृषली के भतीजे को ही राज्य पर बैठाने के लिए तुमने यह सारी नीचता की है! अब मेरे ध्यान में सब बातें पूरी पूरी आ गईं! ठीक है। आखिर उस वृषली ने अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया; और राजा की हत्या करा कर अपने भतीजे को मगध के सिंहासन पर बैठाने की युक्ति सफल कर ली! शाबाश! शाबाश! कहा ही है कि, "अनृतं साहसं माया" इत्यादि गुणों से युक्त यह स्त्रीरूप यन्त्र संसार का नाश करने के लिए ही उत्पन्न हुआ है, सो सच है। आह! चांडालिनी, जिस समय तेरे उस कमबख्त लड़के का वध कराया गया, उसी समय यदि तेरा भी वध महाराज ने करा दिया होता, तो कोई अनुचित नहीं था—आज यह नौबत ही

न आती ! और सेनापते, तुम्हारे समान पुरुष उसके वाक्पाश में फँस कर महाराज का सर्वस्व नाश करे ! बड़े दुःख की बात है ! तुम को यदि आमात्य पदवी की लालसा थी, तो हम से कहते—हम ने बड़े आनन्द से तुम को वह पदवी दे दी होती, और स्वयं घर में बैठ रहते......परन्तु—परन्तु अब तुम से ये सब बातें कहने से क्या लाभ? तुमने सर्वस्वघात कर लिया: परन्तु भागुरायण, जिसने स्वामिहत्या की, उसका कभी भला नहीं होगा।" भागुरायण ने यह सब चुपके से सुन लिया, और फिर कुछ देर ठहर कर बोले, "सच है, जिसने स्वामिहत्या की होगी, उसका भला नहीं होगा ! कौन चाहेगा कि, उसका भला हो ? परन्तु मेरे ख़याल से तो स्वामिहत्या किसी ने नहीं की। हम लोगों ने समझ लिया था कि, मगध देश अब बिलकुल निर्भय होगया, और यही समझ कर हम लोग चुप बैठे थे। इतने ही में पर्वतेश्वर को मौका मिल गया, और उसी ने यह सारी बग़ावत और हत्याकांड करवा दिया। कुमार चन्द्रगुप्त ने उसका दमन करके उसको कैद किया है, और इसके लिए उनकी प्रशंसा ही करनी चाहिए, परन्तु प्रशंसा करना तो एक ओर रहा, आप उनकी निन्दा कर रहे हैं। मुझ को भी आप दोष दे रहे हैं ! अब हम क्या कहें ? आप इस अज्ञातवास में और कितने दिन रहेंगे ? जिस दिन से वह दुर्घटना हुई, आप यहीं छिपे हुए हैं। मैं आपको ढूंढ़ता ढूंढ़ता यहां आया हूँ। आपकी असावधानी से ही यह सब अनर्थ हुआ है—फिर भी आर्य चाण—नहीं, महाराज चन्द्रगुप्त की हार्दिक इच्छा है कि, आप की ही अनुमति से आगे की राज्यव्यवस्था हो।........"

"सेनापते," राक्षस एक दम ज़ोर से कहते हैं, "ओ हो ! यह तुम्हारा ही कपटनाटक है ! तुम्हारी दृष्टि से वह वृषली का भतीजा महाराज होगा, किन्तु मेरी दृष्टि से नहीं है। मेरे इस

शरीर में जब तक प्राण है, तब तक मैं तो उसे किसी प्रकार यहां रहने नहीं दूंगा—चाहे जिस तरह से होगा, मैं उसको मगध देश से अवश्य ही निकाल दूंगा। नन्दों के रक्त से सने हुए हाथों से तुम अपने पंजे में मुझे फँसाना चाहते हो? यह कभी नहीं होगा। भागुरायण, तुम बहुत भूल रहे हो। मैं नन्द-वंश का ऋणी हूँ। उसी की मैं सेवा करूंगा। तुम्हारे चन्द्रगुप्त के समान क्षुद्र छोकरे की सेवा से मैं अपने तन अथवा मन को अशुद्ध नहीं करूंगा—अपनी बुद्धि को भ्रष्ट नहीं करूंगा। जाओ। अब इस विषय में बातचीत करने के लिए तुम कभी हमारे पास मत आओ। मेरे शरीर में यदि कुछ भी कर्तव्यदक्षता होगी, तो मैं तुम को यह बात कर के दिखला दूंगा, अन्यथा मैं इस मगध देश से अपना मुहँ काला कर जाऊंगा। जाओ। अब मेरे साथ तुम्हारा सम्भाषण फिर कभी नहीं होगा। तुम ने अपना नवीन मार्ग और नवीन स्वामी ढूंढ़ निकाला है; परन्तु मैं अपना पुराना ही मार्ग रखूंगा। तुम्हारे कथन से ऐसा जान पड़ता है कि, तुम्हारे पीछे और भी कोई है। तुम्हारे भाषण में अभी आर्यचाण-क्य का नाम आया था, परन्तु उसको तुम ने बीच ही में दबा लिया, और फिर चन्द्रगुप्त का नाम ले दिया, यह मैंने ताड़ लिया है। इससे जान पड़ता है कि, उस ब्राह्मण ने तुम को अपने मोहजाल में पूरा पूरा फँसा कर तुम को बिलकुल अपने वश में कर लिया है। उस ब्राह्मण का ही तो यह सारा खेल नहीं है? वह चन्द्रगुप्त के साथ ही आया है, इससे जान पड़ता है कि, उसी का यह सारा कार्य है। सम्भव है, व्याधराज ने उसको इस निमित्त से मगध का राज्य लेने के लिये ही यहां भेजा हो मैं अत्यन्त मूर्ख निकला, जो आखें मूंद कर बैठा रहा। कुछ मालूम ही न हुआ कि, ऐसा भारी संकट का समय

रहना चाहिए कि, जैसे उनके राज्य पर सदैव ही परचक्र का संकट आ रहा हो! यह बिलकुल सच है। परन्तु अब मेरी इन लम्बी चौड़ी बातों से क्या तात्पर्य? भागुरायण, तुम तीनों चारों ने मिल कर जो कार्य किया है, वह बहुत ही अनुचित है। और तिस पर भी लोगों में तुम यह भ्रम फैला रहे हो कि, उस कार्य को मैं ने किया है! यह और भी अनुचित है! मैं इस पाप के लिए तुम को अवश्य ही प्रायश्चित्त कराऊंगा। तुम्हारा सारा कपट-नाटक अभी तक हम को मालूम नहीं हो सका है; और जब वह मालूम हो जायगा, तब हम तुम से भी बड़े बड़े हजारों कपट-नाटक कर सकेंगे; और तुम्हारा बिलकुल विध्वंस कर देंगे। जाओ। अब इस राक्षस से मिलने का कभी साहस मत करो। यह राक्षस नन्दों का सेवक है, और जब तक नन्द का नाम इस धरती पर रहेगा, यह कभी दूसरे की सेवा नहीं करेगा।"

यह कह कर राक्षस भागुरायण की ओर पीठ फिराकर बैठ गये। एक शब्द भी उनके मुख से न निकलने लगा। भागुरायण भी अब क्या कहें, सो उनको भी कुछ न सूझने लगा। इसके सिवाय उन्होंने यह भी सोचा कि अब अधिक समय तक यहीं बैठे रहने से कोई लाभ नहीं। इस लिए अन्त में फिर वे इतना ही कह कर कि, "आप समर्थ हैं, चाहे जो कर सकते हैं" वहाँ से चले गये। भागुरायण को यह प्रशस्त नहीं मालूम हुआ कि, इस सारे कपटव्यूह का सम्पूर्ण दोष वे राक्षस के ही सिर पर डालें–यहाँ तक उनका मन उस समय तैयार नहीं था। कैसा ही हो, इतने वर्ष से वे राक्षस के अधीनस्थ रहकर कार्य करते रहे थे। ऐसी दशा में यदि वे उस समय राक्षस के ही सिर पर सारा दोष मढ़ने को तैयार नही हुए तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं अस्तु। भागुरायण वहां से निकल कर चल दिये; और अब उनको

ऐसा मालूम हुआ कि, हम एक बड़े संकट से छूटे। वे एक योद्धा पुरुष थे। कपट भाषण कर के दूसरे का हृद्गत जान लेना उनके लिए असम्भव ही था। वहां से चल कर वे चाणक्य के पास गये; और उनसे जाकर सीधा सीधा सब वृत्तान्त बतलाया। चाणक्य यह भली भांति जानते थे कि, सीधे रास्ते से राक्षस हमारे पंजे में नहीं आवेंगे। इस समय भागुरायण को राक्षस के पास उन्होंने सिर्फ इसी उद्देश्य से भेजा था कि, शायद राक्षस ने हमारे विरुद्ध को व्यूहरचना की हो, तो इसका पता भागुरायण के जाने से चल जायगा। भागुरायण के जाने पर उन्होंने अपनी अगली सब योजनाएं स्थिर करलीं; और फिर जब वे राक्षस के पास से लौट आये, तब चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की ओर से राक्षस को एक पत्र इस आशय का लिखाया कि, पर्वतेश्वर के कैद होने का समाचार आपको सेनापति के द्वारा मालूम ही होगया होगा। इस लिए अब इस बात का विचार करना है कि, पर्वतेश्वर ने जो यह भयंकर अपराध किया है, उसके विषय में उससे उत्तर लेकर उसको क्या दण्ड दिया जाय— अथवा उसके पुत्र से कर लेकर ही उसको छोड़ दिया जाय। इन्हीं सब बातों का विचार करना है; और इन बातों का विचार करने केलिए एक अधिकर्णिक (विचारपति) की नियुक्ति भी करनी है। इधर आप नन्दवंश के बड़े पुराने सेवक हैं; और नन्दों की जो हत्या हुई है, उसके लिए अपराधी को दण्ड देने का अधिकार भी वास्तव में आपही को है। इस लिए आपही अधिकरणत्व को स्वीकार कर के न्याय करें। इससे लोगों का कलुषित चित्त भी सुप्रसन्न हो जायगा; और सच्चे अपराधी कौन हैं, किसने बग़ावत की, इत्यादि बातों की तहक़ीकात भी जब स्वयं आपही करेंगे, तब सब पता ल

ठीक चल जायगा। वास्तव में यह कार्य बड़े महत्व का है; इस लिए इसको आप अवश्य स्वीकार करें—बस, यही प्रार्थना है। इस प्रार्थना का अनादर होने से मानो स्वामि-कार्य का ही अनादर होगा।"

इस पत्रको बहुत शीघ्र राक्षस के हाथ तक पहुँचाने का भी प्रबन्ध होगया। पहले जब राक्षस को मालूम हुआ कि, यह पत्र चन्द्रगुप्त के पास से आया है, तब वे उसे बिना पढ़ेही फाड़ डालना चाहते थे। परन्तु पीछे से कुछ सोच कर जब उन्होंने उस पत्रको पढ़ कर देखा, तब बड़े आश्चर्य में आये। पत्र पढ़ने से उनको मालूम हुआ कि, पर्वतेश्वर का न्याय करने और सच्चे बागियों का पता लगा कर उनको दण्ड देने इत्यादि का अधिकरणत्व चन्द्रगुप्त हमी को दे रहा है; और उसको स्वीकार करने के लिए वह हम से आग्रहपूर्वक प्रार्थना कर रहा है। अतएव उस दशा में राक्षस को आश्चर्य होना एक स्वाभाविक बात थी। उनको न सिर्फ आश्चर्य ही हुआ; बल्कि एक प्रकार से वे बड़े चक्कर में पड़ गये। उनको यही न सूझने लगा कि, अब हम करें क्या! अब हम यह अधिकरणिक का अधिकार यदि स्वीकार करते हैं; तो इसका यह अर्थ होता है कि, हमने चन्द्रगुप्त की सेवा स्वीकार की; और उसको नन्दों के सिंहासन पर बिठलाने में अनुमति दिखलाई! अच्छा, यदि नहीं स्वीकार करते हैं, तो यह लोग सारे संसार में यह अवश्य ही प्रकट करेंगे कि, देखो, हम स्वयं इनको ही अधिकरणिक बनाते थे. और इन्होंने इस पद को स्वीकार नहीं किया, इससे जान पड़ता है कि इनका कुछ अंग इस मामले में अवश्य था, अन्यथा इन्होंने अधिकरणिक का पद क्यों स्वीकार नहीं किया! इस लिए यह अधिकार यदि हम स्वीकार कर लेंगे, तो पर्वतेश्वर से टेढ़े मेढ़े प्रश्न करके फिर हम यह भी जान सकेंगे कि, इस षड्-

यंत्र में इन तीनों का अंग कहां तक है, और फिर यह बात लोगों पर भी प्रकट हो जायगी। अतएव यह अधिकार हम को स्वीकार कर लेना चाहिए; और इसकी जांच करके इनको पकड़ में लाना चाहिए। इसके सिवाय इस अधिकार के देने में यदि इनका और भी कोई कुत्सित विचार होगा, तो वह भी प्रकट हो जायगा—फिर एक बात और भी तो है कि, स्वतंत्र रूप से अब हम इस विषय में कर ही क्या सकते हैं? एक भी तो आदमी अब हमको ऐसा नहीं दिखाई दे रहा है कि, जो हमारे पक्ष में रह गया हो। ऐसी दशा में हम किस पर विश्वास करें? मान लो कि, हमने किसी पर विश्वास करके कोई गुप्त काम बतलाया, और उसने जाकर वह हमारे शत्रु से बतला दिया, तो फिर इसमें रह ही क्या गया? इससे यही ठीक होगा कि, जो अधिकार इन्होंने हमको देने का विचार किया है, उसको हम स्वीकार कर लें, और उलटे जो अपराध ये हम पर लाना चाहते हैं, उसको इन्हीं के मत्थे लावें, जांच करने से इनकी कुटिलता आप ही आप खुल जायगी। इस प्रकार पूर्ण विचार करके राक्षस ने अपने प्रतीहारी के द्वारा इस प्रकार का उत्तर चन्द्रगुप्त के पास भेजाः—"व्याधपति प्रद्युम्नदेवात्मज कुमार चन्द्रगुप्त के प्रति अमात्य राक्षस के अनेक आशीर्वाद—आपका पत्र पाया। तदनुसार पर्वतेश्वर के कृष्ण कृत्यों की जांच करने का महत्कार्य करने को मैं तैयार हूँ। परन्तु हां, इतना प्रबन्ध अवश्य रखना चाहिए कि, उस जांच में जितने लोग अपराधी ठहरें, उनको मेरे कहने के अनुसार ही दण्ड मिले। इतना प्रबन्ध हो जाने पर फिर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। नन्दवंश की हत्या करने वालों को उचित दण्ड मिलना चाहिए, और यदि ऐसा हमने कर लिया, तो हम समझेंगे कि, नन्दवंश की यह अन्तिम सेवा हमने अच्छी तरह करली।" यह पत्र पढ़ते ही चाणक्य

को अत्यानन्द हुआ, और उनके, मन में आया कि, बस अब हमारी नीतिनिपुणता की चरम सीमा हो गई! फिर उन्हों ने अपने ही आप यह कह कर ताली बजाई कि, "अमात्य, अब तुम पक्के जाल में फँसे!"

बत्तीसवां परिच्छेद

न्याय क्या हुआ ?

चाणक्य ने राक्षस को अधिकरणिक नियुक्त करने की युक्ति क्यों की थी ? इसमें वास्तव में उनके मन का इतना ही उद्देश्य था कि, जिससे एक बार राक्षस अज्ञातवास से निकल कर बाहर मैदाने-जंग में आ जायँ। जहां एक बार वे बाहर निकल कर समराङ्गण में आगये कि, फिर उनको खूब हैरान करेंगे; और अन्त में फिर चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठालने में उन्हीं को अगुआ बनने के लिए बाध्य करेंगे। चाणक्य बड़े नीति चतुर थे, भारी कुटिल थे, अपने बैरी का पूर्णतया नाश करने में अत्यन्त दक्ष थे, महा कोपिष्ठ ब्राह्मण थे—ये सब बातें उनमें थीं; पर सब से बड़ा एक दुर्गुण उनमें बिलकुल नहीं था—वे लोभी यत्किंचित् भी नहीं थे। स्वार्थ कैसा होता है, सो उन्हें मालूम भी न था। उनको अधिकार की कोई परवा नहीं थी, धन का कोई लालच नहीं था। उनका अपमान हुआ था। वह अपमान उनको सहन नहीं हुआ और इसी लिए उन्होंने ऐसी घनघोर प्रतिज्ञा की। बस, वही प्रतिज्ञा उनको पूरी करनी थी; और उसीको पूर्ण करने के लिए, जो कुछ उनको करना था, सो सब उन्होंने किया। हिमाचल के व्याध इत्यादि लोगों के

उन्होंने अपने ओषधिज्ञान से लाभ पहुंचाया, और इस प्रकार उनकी कृपा सम्पादन की। धनुर्वेद के समान शास्त्र और उसके प्रयोगों में उन्होंने प्रवीणता प्राप्त की थी, और वही ज्ञान उन्होंने हिमालय के उपर्युक्त लोगों के लड़कों को सिखा कर उन सब नवयुवकों को अपने बश में कर लिया। सारांश यह कि, आर्य चाणक्य यद्यपि बिलकुल दरिद्री थे, द्रव्य के नाम पर उनके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी; परन्तु फिर भी अपने विद्याधन के ज़ोर पर उन्हों ने हिमालय के व्याध, भिल्ल, इत्यादि लोगों के राजाओं पर और गोपाल, इत्यादि अजपाल अन्य लोगों पर अपना प्रभाव जमा लिया। तात्पर्य यही कि, प्राचीन काल के ऋषियों की तरह अपने आचरण का प्रभाव डाल कर उन्होंने उक्त सब लोगों को अपना दास बना लिया, उनके लड़कों की तो चाणक्य पर ऐसी कुछ भक्ति हो गई कि, जिसका कुछ कहना ही नहीं! मनुष्य के अत्यन्त विद्वान् और पूर्ण निरपेक्ष होने पर फिर और उसके लिए क्या चाहिए—अपने इन्हीं गुणों के कारण, वह चाहे जहाँ जावे, उसका आदर होता ही है। चाणक्य के जो गुण उनके लिए हिमालय प्रान्त में उपयोगी सिद्ध हुए थे, वही गुण पाटलिपुत्र में भी उनके काम आये; और पाटलिपुत्र में आकर उन्होंने अपने उन गुणों की बहुत अच्छी उपयोजना कर ली। उनका मनोमोहक भाषण भागुरायण को बश करने में बहुत काम दे गया। इसके सिवाय अपने मंत्र, तंत्र और ओषधिज्ञान के कारण उन्होंने पाटलिपुत्र के अनेक श्रेष्ठियों पर अपना प्रभाव जमा लिया। हां, भिक्षु वसुभूति ने भी उनको आश्रय देकर उनकी बड़ी सहायता की; और उक्त श्रेष्ठियों ने उन्हीं ने पहले चाणक्य का परिचय कराया। आगे चलकर चन्दनदास के समान राक्षस के बड़े बड़े मित्र भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे। इतना सब होने पर भी यह ब्राह्मण

किसी की कुछ परवा नहीं रखता था, अपने को सब से अलग ही—निर्लिप्त—रखने का प्रयत्न करता था। कभी किसी से उसने एक कपर्दिका की भी याचना नहीं की। यदि अपनी इच्छा से किसी ने चाणक्य को कोई प्रतिग्रह दिया भी, तो उन्होंने यह कह कर तुरन्त ही वापस कर दिया कि, भाई, हम किसी से कुछ लेते नहीं, क्षमा कीजिए। इतना सब होने पर भी उन्होंने अपना सच्चा स्वरूप कभी भी किसी पर प्रकट नहीं होने दिया।

जिन वसुभूति के कारण पाटलिपुत्र में सब जगह उनका परिचय हुआ, उन वसुभूति को भी उन्होंने कभी त्याग नहीं किया। उनके साथ सदैव पहले का सा ही व्यवहार रखा। परन्तु हां, सिद्धार्थक को उन्हों ने पूर्णतया अपने हाथ में ले लिया। सिद्धार्थक भी एक बहुत ही चालाक मनुष्य था, उसने नाना प्रकार से चाणक्य को सहायता दी थी जो हो, यहां पर हमको सिर्फ इतना ही बतलाना है कि, एक निरपेक्ष, परन्तु अत्यन्त तेजस्वी और विद्वान् ब्राह्मण चाहे बिलकुल अकेला ही क्यों न हो, परन्तु अपने—चातुर्य के बल पर बड़े बड़े भारी षड्यंत्र रच कर न जाने कैसे कैसे क्रान्तिकारक कार्य कर सकता है। फिर उसमें भी चाणक्य के पास उनके शिष्यों ने यूनानियों से लूटा हुआ बहुत सा धन भी दे रखा था, इस लिए, द्रव्य—सम्बन्धी कठिनाई उनके सामने कभी भी उपस्थित नहीं हुई। इस प्रकार सब प्रबन्ध आप ही आप होता गया; और चाणक्य जो जो इच्छाएं करते गये, सब उनके मन के अनुकूल ही पूर्ण होती चली गई। और अब तो उनकी उन सब इच्छाओं में जो सर्व श्रेष्ठ मनोकामना थी, उसके भी पूर्ण होने का अवसर आने लगा। इधर राक्षस एक सरल राजनीतिज्ञ पुरुष थे। कुटिल नीति वे बेचारे

क्या जानें? इस लिए चाणक्य ने पहले ही समझ लिया था कि हमारी चालों को ये नहीं समझ सकेंगे। फिर आगे चल कर तो सचमुच ही चाणक्य ने देखा कि, हम इतनी गुप्त कारस्तानियां कर रहे हैं; और राक्षस में हमारे विषय में सन्देह भी नहीं आता—वे अभी यही समझे हुए हैं कि, हम व्याध राजा के पुत्र के साथ आये हुए एक दरिद्री बुभुक्षित ब्राह्मण मात्र हैं। इसके सिवाय इधर भागुरायण भी हमारी ही धुन में लगे हुए हैं; परन्तु राक्षस इनकी ओर भी ध्यान नहीं देता—वे समझते हैं कि, चलो, जाने दो, सेनापति भागुरायण यदि इस ब्राह्मण के पास आते जाते हैं, तो इसमें हमारी क्या हानि? हम यदि इसमें अब कुछ विशेष दखल देंगे, तो यह हमारे समान उच्च अधिकारी के लिए उचित नहीं दिखाई देगा। बस, यही सोच कर अमात्य भागुरायण की ओर से भी देखी-अनदेखी करते गये। जो हो; परन्तु चाणक्य के लिए राक्षस की यह सारी परिस्थिति बहुत ही श्रेयस्कार सिद्ध हुई। वे अलग ही अलग रह कर अपनी मनमानी कार्रवाइयां करते रहे। मतलब यह कि, सब बातें चाणक्य के अनुकूल ही प्राप्त होती गईं। इस लिए अब चाणक्य को सिर्फ इतना ही कर्त्तव्य शेष रह गया कि, एक बार राक्षस को अपने अनुकूल करके उन्हीं के द्वारा चन्द्रगुप्त को राज्य सिंहासन पर बिठला दिया जाय; और राक्षस को ही चन्द्रगुप्त का साचिव्य करने के लिए बाध्य किया जाय। इतना करने के बाद फिर एक बार उनके द्वारा ग्रीकयवनों का पूरा पराभव करा कर उनको पीछे हटाते हुए बिलकुल आर्यावर्त से बाहर निकलवा दिया। इन विदेशियों के राज्य की आर्यावर्त में क्या आवश्यकता? बस, इतना जहाँ हमने कर लिया, कि बस फिर हमारी सब इच्छाएँ पूर्ण हो गईं। फिर हमको कोई कामना नहीं रहेगी; और हम अपने हिमाचल के आश्रम में जाकर फिर

तपस्या करने लगेंगे—हमको इन राज्य की झंझटों से क्या मत-लब ? बस, यही चाणक्य का विचार—विचार ही नहीं; बल्कि निश्चय था। इधर राक्षस को अपने पक्ष में लाने के लिए यदि द्रव्य अधिकार का लोभ दिया जाता, तो इससे कुछ काम चल ही नहीं सकता था। राक्षस को ऐसी बातों की परवा कब थी ? वे तो अब यही चाहते थे कि, जिन अत्याचारियों ने हमारे स्वामिकुल का विध्वंस किया है, उनको एक बार पकड़ में ला कर उनके सारे षड्यंत्र और कपट कार्यवाहियां खोल दी जायँ: और लोगों में उनकी बेइज्जती करा कर उनको देहान्तदण्ड दिया जाय, और यह सब कार्य हमारे ही हाथ से हो, जिससे हम एक बार सब लोगों के सामने निष्कलंक सिद्ध हों। यही राक्षस का अभीष्ट था; और जब उनको इस बात का विश्वास होगा कि, यह कार्य हम अपने हाथ से कर सकेंगे; तभी वे आगे आवेंगे, अन्यथा आगे न आते हुए, भीतर ही भीतर, किसी परकीय राजा से जा मिलेंगे; और फिर उसकी सहायता लेकर चन्द्रगुप्त को हानि पहुँचाने की कोशिश करेंगे। इस लिए इनको अवश्य अपने पक्ष में कर लेना चाहिए। बस, यही सब सोच कर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के द्वारा राक्षस को उपर्युक्त पत्र लिखाया था; और जैसा कि चाणक्य ने अनुमान किया था. राक्षस ने अधिकरणिक का कर्त्तव्य स्वीकार भी कर लिया। यह बात राक्षस के स्वप्न में भी नहीं आई कि, हम अधिकरणिक बन कर न्याय करने तो जा रहे हैं, परन्तु उस न्याय में हम स्वयं ही अपराधी सिद्ध होंगे। अस्तु। राक्षस ने न्यायपति बन कर न्याय करने का कर्तव्य अपने हाथ में लिया, और दूसरे ही दिन न्यायासन के सामने न्याय होने की बात निश्चित हो गई। अमात्य राक्षस न्यायासन पर अधिष्ठित होने के लिए गये। चन्द्रगुप्त से ज्यों ही उनकी भेट हुई, त्यों ही चन्द्रगुप्त ने कहा,

"अमात्य, पहले न्याय का कार्य यदि गुप्तरूप से ही हो, तो अच्छा, क्योंकि यदि उन बागी लोगों को कहीं यह मालूम हो गया कि; जांच शुरू हो गई है, तो कदाचित् वे भग जायेंगे, और फिर हमको उन लोगों का पता लगा कर कैद करवाने में कठिनाई पड़ेगी। इसके सिवाय आस पास यवन लोग हमारे राज्य के ऐसे बागियों को छाती से लगाने से लिए सदैव ही तैयार रहते हैं। इस लिए सम्भव है कि, वे बागी उन यूनानियों में ही जा मिलें। इस लिए पहले हम पर्वतेश्वर को ही बुला कर उससे सब बातों की जाँच करें, फिर वह जिन जिन के नाम बतलावे; उनको एक दम पकड़वा मँगाया जाय, और फिर उनको जो आप कहें, वही दण्ड हम दें। फिर वह चाहे जो हो चाहे कोई महाविद्वान् श्रोत्रिय ब्राह्मण हो—अथवा कोई चांडाल हो!"

चन्द्रगुप्त का यह कथन राक्षस को सयुक्तिक जान पड़ा और उन्होंने चन्द्रगुप्त की बात स्वीकार कर ली। राक्षस को पूरा पूरा विश्वास था कि, चन्द्रगुप्त, चाणक्य और भागुरायण ने ही यह सारा षड्यन्त्र रचा है, पर्वतेश्वर भूल से ही बीच में पड़ गया; अथवा इन्होंने उसे धोखे में डाला। असली बात क्या है; और पर्वतेश्वर इस चक्कर में कैसे आया, इस बात का ठीक २ अनुमान होना बहुत कठिन था। फिर भी राक्षस को यह पूर्ण विश्वास था कि, चाहे जो हो, मैं इसको तह तक पहुँच कर असली अपराधियों को अवश्य ही ढूँढ़ निकालूँगा; और इन सबको खूब ही छकाऊँगा। इन्होंने मुझे चक्कर में डालकर जाल में फँसाने के लिये न्याय करने को बुलाया है; परन्तु मैं इनके सम्पूर्ण कपट कार्य्यों को खोल दूँगा; और इनकी धोखेबाज़ी इन्ही के ऊपर डालूँगा—पूरा २ विश्वास इनको करा दूँगा। यह सोचकर राक्षस न्यायासन के स्थान पर गये। उस समय वहां सिर्फ चन्द्रगुप्त और भागुरायण मौजूद थे। वे दोनों राक्षस के आते ही

उठे; और खड़े हो कर उनका पूरा पूरा आगतस्वागत किया; और उनको मध्यस्थान पर लेजाकर बैठाया । राक्षस ने सोचा कि, ये चन्द्रगुप्त और भागुरायण, दोनों ही पूरे पूरे धूर्त और कपटी हैं; परन्तु अब मैं इनकी धूर्तता का अच्छी तरह भंडा फोड़ करूंगा । यह विचार अभी उनके मन में आया ही था कि, तुरन्त ही फिर उनको ऐसा मालूम हुआ कि इन दोनों ने अधिकार तो सारा अपने ही हाथ में ले रखा है, और हम इन को दण्ड कैसे देंगे ? मान लो कि, यही सिद्ध होगया कि, इन्हीं ने पर्वतेश्वर के द्वारा नन्दवंश का नाश कराया, परन्तु इससे लाभ क्या होगा ? ये धूर्त स्वीकार थोड़े ही करेंगे ? कौन कह सकता है कि, ये फिर भी हमारे ही ऊपर सब अपराध डालने को तैयार न हो जायँगे ? परन्तु अब इन विचारों से क्या लाभ ! अधिकरणिक का कार्य हमने स्वीकार तो कर ही लिया है, इस लिये अब यह हो ही नहीं सकता कि, हम यहां से ऐसे ही चले जायँ, और कह दें कि, हम न्याय नहीं करेंगे। यदि हम ऐसा करेंगे, तो लोगों में सन्देह का एक और कारण उपस्थित हो जायगा । इस लिए अब हमको यही मुनासिब है कि, जिस कार्य के लिए हम आये हैं, उसको चुपके से कर लेवें । आगे जो कुछ होगा, देखा जायगा । ऐसा विचार करके, अपनी शंका प्रतिशंका दूर करके, राक्षस चन्द्रगुप्त से बोले, " किरात—राजकुमार, चन्द्रगुप्त, नन्दों का वंश तो नष्ट होगया, और अब तुम उनके बाद उनके सिंहासन की व्यवस्था—देखने को रहे हो ! आह ! कैसी भयंकर हत्या हुई ! इस हत्या-कांड का भी कुछ ठिकाना है ! जिन्होंने यह हत्या कराई, उन नीच पुरुषों का कलेजा भी कैसा होगा ! अस्तु । अब देखना चाहिए, तुम्हारे हाथ से क्या होता है ! न्याय करने को मैं तैयार हूँ । इस लिए पहले उस दुष्ट पर्वतेश्वर का ही कथन

सुन लेना चाहिए—देखें, वह क्या कहता है—जाओ, उसको ले आओ।"

राक्षस का यह भाषण सुन कर भागुरायण और चन्द्रगुप्त एक दूसरे की ओर देखने लगे।

कुछ ही देर बाद चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर को बुलाने के लिए एक सेवक भेजा। पर्वतेश्वर बेचारा उस समय कैदी की हालत में था—उसको क्या? कहीं भी बुलवाइये, जाने को बाध्य था। चन्द्रगुप्त का सन्देशा सुनते ही वह उठा; और उस सेवक के साथ चला आया। दरवाजे के भीतर अभी उसने पैर रखा ही था कि, एकदम उसकी दृष्टि राक्षस की ओर गई। राक्षस को देखते ही उसके क्रोध की सीमा न रही। उसको एकदम क्रोधोद्रेक हो आया। वास्तव में यदि इस समय वह स्वतंत्र होता, तो अपनी तलवार से उसने राक्षस का ख़ातमा ही कर दिया होता। ऐसा भारी क्रोध इस समय उसको आया था। राक्षस के सामने पहुँचते ही एक दम वह डौंक कर बोला, "अमात्य राक्षस, तू सिर्फ नाम का ही नहीं, बल्कि वास्तव में तू सचमुच ही राक्षस है! नीच, तू यदि अपने स्वामी का और उसके कुल का ही नाश करना चाहता था, तो फिर बीच में मुझको क्यों फँसाया? मैंने नीति के बहुत से नमूने देखे हैं, परन्तु ऐसी विश्वासघात की नीति आज तक कहीं किसी ने भी न देखी होगी! तेरी मुद्रा से अंकित पत्र यदि मेरे पास न आये होते, तो मैं कभी भी ऐसे पत्रों पर विश्वास न करता; परन्तु मेरा दुर्भाग्य ही आ गया था, इसके लिए मैं क्या करता? परन्तु हां, तू अत्यन्त ही अधम है, इसमें सन्देह नहीं। फिर इस इस समय तू ने मुझे अपने सामने बुलाया है, इसमें तेरा क्या हेतु है? तू मेरी विटम्बना ही तो करना चाहता है?……"

पर्वतेश्वर और भी बहुत कुछ कहना चाहता था; परन्तु

उसका क्रोध इतना बढ़ गया कि, फिर आगे उसके मुख से कोई शब्द ही न निकलने लगा।

इधर राक्षस तो उसका कथन सुन कर बहुत ही आश्चर्य चकित हुए। उन्होंने सोचा कि, पर्वतेश्वर जो यह कहता है कि, हमारी मुद्रा के अंकित पत्र इसके पास गये हैं; और इसी कारण वह आया है—इसका अर्थ क्या है? अब पर्वतेश्वर के कथन का हम क्या उत्तर दें ? राक्षस बड़े चक्कर में पड़ गये।

चन्द्रगुप्त ने राक्षस के मन की यह अवस्था ताड़ ली। अथवा यों कहिये कि, पहले से ही उन्होंने यह अनुमान कर लिया था कि, ऐसी बात अवश्य होगी। अतएव चन्द्रगुप्त बहुत ही शान्ति के साथ पर्वतेश्वर से बोले, "देखो—पर्वतेश्वर, यों ही किसी का नाम लेकर व्यर्थ की बकवाद करने से काम नहीं चलेगा। अमात्यराज राक्षस इस समय अधिकरणिक के स्थान पर बैठे हुए हैं। वास्तव में यह राजहत्या कैसे हुई है? क्यों हुई है? तुम मगध पर चढ़ाई करने के लिए यहां तक कैसे आये? इत्यादि सब बातों की जांच करने का काम इन्होंने स्वीकार किया है; और अपराधियों को यथोचित दण्ड देने का कार्य भी इन्हीं को सौंपा गया है। इसलिए ऐसे समय में तुम्हारे इस क्रोध के भाषण से क्या लाभ हो सकता है ? और ऐसी बातें इस समय तुम्हारी कौन सुनेगा ? तुम एक बड़े राजा हो। इस लिए उचित यही है कि, तुम से हम कर वसूल करके तुम को अपने राज्य में जाने दें; परन्तु इस समय क्या किया जाय ? तुम को कर लेकर वापस जाने दिया जाय, अथवा यहीं बन्दीखाने में रखा जाय ? इन सब बातों का निपटारा तुम्हारे ही ऊपर है। तुम यदि सब सच्चा सच्चा हाल बतला दोगे; और सच्चे सच्चे अपराधियों को पकड़वा दोगे—कम से कम उनका पता दे दोगे, तो हम थोड़े

से कर पर ही तुमको वापस जाने देंगे । अन्यथा ये अधिकरणिक अमात्य राक्षस······"

"वाहवा ! अमात्य राक्षस न्यायाधीश !" पर्वतेश्वर विकट हास्य करके कहता है, "तब तो यही कहना चाहिए कि, आपके इस मगध देश में अपराधी को ही न्यायाधीश नियुक्त किया करते हैं! अजी, इसी दुष्ट ने तो अपनी तरफ से हम को पत्र भेजे थे कि, अमुक दिन इस प्रकार से मैं राजकुल की हत्या करने वाला हूं । उसी समय के लगभग तुम थोड़ी सी सेना (अजी उस पत्र में यह लिखा था कि, अधिक सेना लेकर आओगे, मार्ग में विना कारण लोग सन्देह करेंगे !) ले कर चले आओ; और एकदम आकर पाटलिपुत्र को घेर लो । मैं पूर्णतया अनुकूल हूं । इसलिए आप किसी प्रकार की शंका मन में मत लावें । ऐसा इस ने मुझ को लिखा । इसके सिवाय, इससे यह भी सोचा होगा कि, शायद मैं अपना आदमी भेज कर कुछ जांच करूंगा; इस लिए इसने मुझ को लिख दिया था कि, 'मेरे पत्रों का उत्तर मेरे ही आदमी के हाथ भेजो । अपने आदमी के द्वारा मत भेजो । न जाने वे किसके हाथ में पड़ जायँ !' मैंने भी समझा कि अमात्य राक्षस बहुत ही सच्चा आदमी है—वह ऐसा विश्वास-घात—ऐसी नीचता कभी न करेगा । मुझ को इस बात की शंका भी नहीं हुई । यही मेरी मूर्खता है । शंका क्यों नहीं हुई—होनी चाहिए थी । पर मेरे दुर्भाग्य ने मेरी मति हर ली ! चन्द्रगुप्त, अब तुम राजा होने वाले हो; परन्तु सम्हले रहो ! यह दुष्ट तुम्हारी भी किसी दिन ऐसी ही हत्या करावेगा············"

भागुरायण और चन्द्रगुप्त इस प्रकार आश्चर्यचकित होकर राक्षस की ओर देखने लगे—मानो उनके लिए यह सारा वृत्तान्त बिलकुल ही नवीन हो; और वह बिलकुल अक्षरशः उन्हें झूट मालूम हो रहा हो ! चन्द्रगुप्त बिलकुल स्तब्ध बैठे थे । राक्षस

भी कुछ देर तक स्तब्ध ही थे। इतने में न जाने क्या सोच कर राक्षस एकदम खड़े होगये; और बोले, "पर्वतेश्वर, तू होश में भी है ? अथवा शत्रु के हाथ में पड़ कर बिलकुल भ्रमिष्ट हो गया है ? कहां हैं—दिखला वे पत्र।"

"यह ले ! अधम, नीच, तू समझता होगा कि, मैंने पत्र रक्खे ही न होंगे ! देखो जी, देखो, ये सारे पत्र—तुम भी देख लो। इन पर जो इस नीच की मुद्रा लगी है, उसको भी देख लो। और एक पत्र में स्वामिहत्या का सारा षड्यंत्र पूरा पूरा लिखा हुआ है, उसको भी पढ़ लो। उसके नीचे इसकी मुद्रा लगी है, सो देख लो। राक्षस, अब भी मिथ्या बोल कर तू इस न्यायासन को अपवित्र मत कर। नीचे उतर। अरे नीच, तुझ को न्यायासन पर बैठने का क्या अधिकार है ? अब यदि मुझ से कोई पूछेगा कि, इसको कौन सा अधिकार है, तो मैं तो यही कहूँगा कि, श्मशान के वधस्तम्भ का ही यह अधिकारी है—अथवा सूली पर चढ़ने का !"

राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध हुए। यह क्या गोलमाल है, वे कुछ न समझ सके।

तेंतीसवां परिच्छेद

न्यायाधीश या अपराधी?

पर्वतेश्वर जिस समय उपर्युक्त भाषण कर रहा था, राक्षस का शरीर क्रोध से जल रहा था, और वे बिलकुल रक्त नेत्रों से उसकी ओर देख रहे थे। क्रोध के मारे उनके मुंह से कोई शब्द नहीं निकल रहा था। इधर चन्द्रगुप्त और भागुरायण दोनों अर्थपूर्ण दृष्टि से एक दूसरे की ओर देख रहे थे। कुछ समय बाद अमात्य राक्षस की वाचा, जो इतनी देर क्रोध से बन्द थी, फूटी, और वे एक दम बोल उठे, "असत्य! असत्य!" परन्तु इतने ही में उन्होंने सोचा कि, ऐसे समय में अपने क्रोध को बाहर प्रकट होने देना चतुराई का काम नहीं होगा। इस समय तो हमको अपना क्रोध अन्दर ही अन्दर दाब लेना चाहिए, और शांन्ति के साथ बातचीत करके सच्चा सच्चा मामला बाहर प्रकट कर लेना चाहिए। यह सोच कर उन्होंने अपने क्रोध को बड़े कष्ट के साथ भीतर ही भीतर दाब लिया, और फिर बोले, "पर्वतेश्वर, ऐसे पत्र जब कि मैंने तुमको लिखे ही नहीं हैं, तब तुम मेरे ऊपर उनको क्यों फेंक रहे हो? इससे तुमको क्या लाभ होगा? पर्वतेश्वर, तुम अपनी निर्बलता के कारण शत्रु के हाथ में फँस गये हो, और इसी कारण, ऐसा जान पड़ता है कि, तुम्हारी बुद्धि कुछ भ्रान्त हो गई है, अथवा मेरे नाम से तुमको किसी ने

धोखा दिया है। मैं जानता हूँ कि, इस धोखेबाज़ी पर तुमको क्रोध आ रहा है, परन्तु इससे तुम मुझ पर क्यों बिना कारण क्रुद्ध हो रहे हो? जो नीच बाग़ी होकर तुम से मिल गये हों, उनके नाम बतला कर अपना छुटकारा कर लो। हम तुमको, कुछ कर लेकर ही छोड़ देंगे। फिर उन बाग़ियों का ही विचार हमारे हाथ में रह जायगा। और, जो तुम ऐसा नहीं करोगे, तो नन्दों के इस राज्य से कुशलपूर्वक छूट कर नहीं जा सकोगे। इसलिए जो बातें जिस प्रकार हुई हों, तुम प्रकट कर दो, और अपना छुटकारा कर लो।"

राक्षस का यह भाषण सुन कर तो पर्वतेश्वर और भी अधिक चिढ़ा। उसने सोचा कि, देखो—यह राक्षस इतना नीच है कि इसी ने तो हमको धोखा दिया, और यही आज हमारा न्याय करने के लिए न्यायासन पर आ बैठा है, और उलटे हमसे उपरोधिक भाषण कर रहा है। इसलिए अब इसके प्रश्नों का उत्तर देने की कोई आवश्यकता ही नहीं है—अब हमको एक बार चन्द्रगुप्त और भागुरायण से जो कुछ कहना हो, सो कह लेना चाहिए, और फिर बिलकुल चुप हो जाना चाहिए। ऐसा सोचकर पर्वतेश्वर उन दोनों की ओर मुड़ कर कहता है—"क्यों जी, क्या नन्दों के इस राज्य में यही चाल है कि, जो अपराधी हों, उन्हीं को न्यायासन पर बैठा कर उनको बड़प्पन दिया जाय; और जो लोग उनके कपट में आकर फँस जायँ, उनका इस प्रकार अपमान किया जाय, उन पर ऐसा अत्याचार किया जाय? आप तो समझते हैं कि, अमात्य राक्षस नन्दों का एक अत्यन्त स्वामिभक्त सेवक है, और सारे संसार में इसकी कीर्ति फैल रही है; ऐसी दशा में इस प्रकार की धोखेबाज़ी यह कैसे कर सकता है? परन्तु आप जानते नहीं हैं कि, ऐसे नीचों की यह एक चाल ही होती है कि, पहले एक बार इस प्रकार अपना

नाम कर लो; और फिर उसी नाम की ओट में चाहे जो करते रहो। देखिये न, कोई भी कारण न होते हुए इसने अपनी ही तरफ से मुझे पत्र भेज कर मगध पर चढ़ाई करने के लिए बुलाया। इसी ने हमको लिखा कि, "राजा धनानन्द अत्यन्त मूर्ख है। राज-काज में वह बिलकुल ध्यान नहीं देता। इसके सिवाय, आज-कल वह एक वृषली की धुन में पड़ा हुआ है। उसको यदि ऐसी ही धुन में रहने दिया जायगा, तो मगध देश सत्यानाश हो जायगा। इसलिए आप को यदि चढ़ाई करना हो, तो यही मौका बड़ा अच्छा है। मैंने भीतर ही भीतर ऐसा प्रबन्ध कर लिया है कि, जिससे अमुक दिन, अमुक समय पर, इसका बालबच्चों सहित सत्यानाश हो जायगा। इसलिए आप भी यदि उसी अवसर पर यहां आकर उपस्थित हो जायँगे, तो सारा काम बन जायगा। कुराजक की अपेक्षा अराजक रहना अच्छा, पर आप के समान उत्तम राजा जब पास मौजूद हैं, तब कुराजक रहने से क्या लाभ? और ऐसी दशा में अराजक भी क्यों बने रहें? आप आ जाइये।" इस प्रकार के पत्र इसने हमको, एक के बाद एक, लिखे। नन्दों की हत्या तो यह कर चुका, परन्तु अब नहीं जान पड़ता, इसके मन में क्या है! शायद मेरी भी हत्या करा कर राज्य अपने ही हाथ में लेना चाहता है! यही महत्वाकांक्षा अब इस अधम को रह गई है! परन्तु चन्द्रगुप्त, तुमने बड़ा पराक्रम दिखला कर हमको पकड़ा है, और अब सचमुच ही तुम इस राज्य के स्वामी बने हो, इस लिए यदि तुम चाहते हो कि, तुम्हारा यह स्वामित्व कायम रहे, तो पहले इस अधम को यमधाम भेज दो। अन्यथा, यह तुम अच्छी तरह समझ लो कि, तुम्हारी भी किसी न किसी दिन यह अवश्य हत्या करेगा। जिस नीच ने इतने दिन स्वामिभक्ति का विलक्षण ढोंग दिखला कर अन्त में अपने

उसी स्वामी को जड़मूल से उखाड़ फेकने का भयंकर प्रयत्न किया, वह नीच अब किस पर सच्ची भक्ति रख सकता है? ऐसे नीच का कौन ठिकाना? सच पूछिये, तो मैं अब इस समय तुम्हारे अधीन हूँ; इसलिए तुम स्वाभाविक ही मेरी इन बातों को उपेक्षा की दृष्टि से देखोगे—इनकी कुछ भी कदर न करोगे; परन्तु सच तो यह है कि, मैं तुमसे इसी कारण यह प्रार्थना कर रहा हूं कि, जिससे तुम आगे इससे सचेत रहो; और जिस प्रकार हमने इसके कारण धोखा खाया है, उसी प्रकार तुम भी इसके धोखे में न आओ। बस, इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहूँगा। न्याय करके मुझे बधस्तम्भ पर लेजाकर मेरा शिरच्छेद करो; मुझको सूली पर चढ़ाओ; अथवा और कोई क्रूरयुक्ति निकाल कर उससे मेरा बध करो; पर अब इस अधम के उपरोधिक भाषण मुझे मत सुनवाओ! अब आगे मैं एक अक्षर भी मुँह से नहीं निकालूँगा। जितना कुछ कह चुका, वही बहुत अधिक है। अब चाहे मेरा न्याय करो, चाहे अन्याय करो—जो तुम्हारी इच्छा हो, करो—जहां चोर, धूर्त, घातकी, पातकी न्यायाधीश बनकर बैठते हैं, वहां न्याय कैसे होगा? यह स्पष्ट है।"

इतना कहकर पर्वतेश्वर ने अपने पास के सब पत्र चन्द्रगुप्त और भागुरायण की ओर फेंक दिये। उनको उठाकर उन्होंने अत्यन्त आश्चर्यचकित चेष्टा से पूरा २ पढ़ा। इसके बाद मानो वे उपर्युक्त आश्चर्य्य से स्तब्ध होते हुए ही, बिलकुल शान्ति के साथ, पर्वतेश्वर और राक्षस की ओर, बारी २ से, देखते रहे। ऐसे अवसर पर मानो उनकी यही समझ में न आने लगा कि, अब वे क्या करें। वास्तव में तो, अब वे यह देखना चाहते थे कि, राक्षस क्या करते हैं; और इसी लिये उनका यह सारा प्रयत्न था। वे बीच में कुछ बोल नहीं सकते थे; क्योंकि वे जानते थे कि, यदि ऐसे समय में बीच में हम कुछ कहेंगे, तो बिना राक्षस

को सन्देह होगाः और उस सन्देह से चाहे उनको कोई लाभ न हो; किन्तु हमको जो कार्य अन्त में सिद्ध करना है, उसमें बाधा अवश्य उपस्थित हो सकती है ।

इधर राक्षस बड़े चक्कर में पड़े—उन्हें कुछ सूझने ही न लगा कि, अब वे क्या करें । पर्वतेश्वर इस षड्यंत्र का सारा दोष उन्हीं के ऊपर डाल रहा है, यह उन्हें स्पष्ट दिखाई दिया परंतु पत्रों के नीचे मुद्रा उन्हीं की थी, इस विषय में भी उनको कोई संदेह नहीं था । अच्छा, यदि यह कहें कि, पर्वतेश्वर ने ही यह झूठी कार्रवाई की, तो फिर प्रश्न यह है कि, उसको हमारी मुद्रा कहाँ से मिल गई । राक्षस कुछ भी स्थिर न कर सके । उनका मुद्राधारक पर्वतेश्वर से जा मिला हो; सो भी उनको सम्भव नहीं मालूम हुआ । राक्षस बड़े विचार में पड़े । उन्होंने सोचा कि, हम पर्वतेश्वर के राज्य में अपने जासूस और चार रखकर जिस प्रकार खबरें मंगवाते रहे, उसी प्रकार सम्भव है, पर्वतेश्वर भी मगधदेश में अपने चार रखकर यहां की खबरें मँगवाता रहा हो, और यदि ऐसा ही होता रहा है; तब तो यही कहना चाहिये कि, यह हमारी बड़ी भारी गफलत है । क्योंकि हम अपने को बड़ा भारी राजनीतिज्ञ समझते रहे हैं । सम्पूर्ण पुष्पपुरी में कहां क्या हो रहा है, सब समाचार हम को सदैव मालूम होते रहे हैं; ऐसा होने पर भी, प्रत्यक्ष हमारी आंखों देखते, हमारे स्वामी का और उसके बंश का नाश होगय और पर्वतेश्वर के समान शत्रु ने आकर हमारे नगर को घेर लिया ! हद हो गई ! हम इतने अंधे बन गये ? फिर, मामला यहीं पर समाप्त नहीं हुआ—वह शत्रु भी एक दूसरे ही के हाथ से पकड़ा गया; और उस पकड़ी हुई हालत में ही वह सारा दोष हमारे मत्थे मढ़ता है ; हमारी मुद्रा से अंकित पत्र, प्रमाण स्वरूप उपस्थित करता है, यह सारा इन्द्रजाल क्या है ? कुछ

समझ में नहीं आता! बिलकुल अंधेरा! राक्षस की आंखों के सामने बिलकुल अँधेरा दिखाई दिया! उनको कुछ भी नहीं सूझने लगा। उनकी मुद्रा से अंकित पत्र उनके सामने पड़े हैं, अब उनके विषय में यदि वे यह कहते हैं कि, ये हमारे पत्र नहीं हैं, हमको इन पत्रों के विषय में कुछ भी मालूम नहीं है, तो उनकी सुनता कौन है? मान लो कि, वे यही कहें कि, हम ने ये पत्र नहीं लिखे, तो इसका प्रमाण? राक्षस बड़े सोच में पड़े कि, अब हम इस चक्कर से कैसे छूटें? पर्वतेश्वर का कथन जब अन्य लोग सुनेंगे; तब वे हमारे विषय में क्या कहेंगे? हमारी आजतक की कीर्ति को कितना कलंक लगेगा? आज तक हम इतने स्वामिभक्त कहलाते रहे; पर आज हमारा वह नाम कहां गया? ऐसे एक दो नहीं—हजारों बिचार बेचारे राक्षस के मन में आने लगे। अन्त में उन सब विचारों को उन्होंने दूर हटाया, और उस विचित्र संकट में भी मन को शान्त कर के वे चन्द्रगुप्त और भागुरायण की ओर मुड़ कर बोले, "कुमार, जब कि यह पर्वतेश्वर मुझे ही इस मामले में फँसाता है, और यह सिद्ध करता है कि, मैंने ही इस को पुष्पपुरी पर चढ़ाई करने के लिए पत्र लिखे हैं, तब इसके साथ ही साथ मुझ को भी अपराधी मान कर तुमको मेरे ऊपर भी मामला चलाना चाहिए। पर्वतेश्वर इस समय जो कुछ कहता है, वही सच है। अब मेरा न्यायासन पर बैठना मानो सचमुच ही न्यायासन को अपवित्र करना है। तुमने इसके हाथ से पुष्पपुरी की रक्षा की है, इस लिए तुमको रक्षक मान कर लोग तुम्हारी प्रतिष्ठा करेंगे। कुमार, अब यदि तुम मगध के सिंहासन पर भी बैठ जाओगे, तो भी वे तुमको राजा मानने में आपत्ति नहीं करेंगे; यह सब ठीक है; परन्तु पर्वतेश्वर के साथ ही साथ अब तुमको मुझ पर भी मुकदमा अवश्य चलाना चाहिए। इसलिए अब तुम किसी

सुयोग्य और चतुर मनुष्य को न्यायाधीश नियत करके मुझ पर आरोप लगाओ। न्याय करो। उस न्याय के अनुसार जो कुछ दण्ड मुझको दिया जायगा, मैं उसको भोगने के लिए तैयार हूँ। आज तक मैंने हज़ारों लोगों के न्याय करके उनको देहान्त दण्ड तक दिये हैं। मुझ पर तुम तीन अपराध लगाओ—एक स्वामि-हत्या का; दूसरा स्वामिकुल की हत्या का; और तीसरा म्लेच्छों का आश्रय करके बड़प्पन प्राप्त करने वाले पर्वतेश्वर के हाथ में स्वराज्य देने का। ये तीन अपराध मेरे ऊपर लग सकते हैं, सो लगाओ—मेरा भाग्य अनुकूल होगा, तो इस कलंक से मेरा छुटकारा हो जायगा; अन्यथा यह समझ कर कि अब मेरे जीने की कोई अवश्यकता नहीं, मैं अपने शरीर से अपनी आत्मा को मुक्त करूंगा। चलो—मुझे इसी घड़ी में कारागृह में ले चलो।"

यह कह कर राक्षस न्यायासन से नीचे उतर पड़े, और पर्वतेश्वर से कुछ अन्तर पर जाकर खड़े होगये। अब तक भी उनकी क्षुब्धवृत्ति अब बिलकुल शान्त हो गई। अब वे मानो धैर्य की साक्षात् मूर्त्ति बन गए। चन्द्रगुप्त और भागुरायण यह समझते थे कि, पर्वतेश्वर ज्योंही उनका नाम लेगा, त्योंही वे बिलकुल घबड़ा जायँगे; और यह कह कर हमारी प्रार्थना करने लगेंगे कि, "अब हम को इससे मुक्त करो; पर्वतेश्वर जो कुछ कह रहा है, यह सब झूठ है।" अथवा ऐसा नहीं कहेंगे, तो रूठ कर अद्वातद्वा बकने लगेंगे। यही उन दोनों का ख़याल था। उनका यह ख़याल कभी नहीं था कि, राक्षस शान्ति के साथ यह कह कर खड़े हो जायँगे कि, "मुझ को भी न्यायासन के सामने खड़ा करके मेरा भी न्याय करो।" परन्तु अब उन्होंने देखा कि, राक्षस अत्यन्त धैर्य के साथ, इस प्रकार की चेष्टा बनाकर उनके सामने खड़े हो गये कि, लो—मैं खड़ा हूँ—चाहे जो तुम करो—मैं सहने को तैयार हूँ! इसमें सन्देह नहीं कि,

जिस समय नन्दों की हत्या हुई थी, उस समय जनता बिलकुल क्षुब्ध थी; और राक्षस के विरुद्ध भी बहुत कुछ हलचल मची हुई थी; पर अब वह हालत नहीं रही थी; अतएव चाणक्य ने भलीभांति समझ लिया था कि, अब राक्षस की मित्र-मंडली अवश्य ही उनके ऊपर के इस वृथारोप को दूर करने का प्रयत्न करेगी; और मौका मिलने पर हमारे पक्ष के विरुद्ध भी खड़ी हो जायगी। जनता के मत का कुछ ठिकाना नहीं रहता—न जाने किस समय कैसी लहर उठ पड़े! क्षुब्ध जनता और क्षुब्ध समुद्र, दोनों की गति समान ही है—शान्त स्थिति में ये जिसको अपने मत्थे पर लेंगे; क्षुब्धावस्था में उसी को रसातल में ले जायँगे, अथवा इसके विरुद्ध दशा में भी, जैसा चाहेंगे, वैसा करेंगे। ऐसी दशा में राक्षस के ऊपर प्रकट रूप से अपराध लगा कर मामला चलाना उनको अभीष्ट नहीं था। चाणक्य का अब सिर्फ एक ही उद्देश्य शेष रह गया था। और वह यह कि, किसी न किसी युक्ति से राक्षस को चन्द्रगुप्त का सचिव बना कर उनके द्वारा यूनानियों को पूरा पूरा भारतवर्ष से हटा दिया जाय। विष्णुशर्मा, उपनाम चाणक्य मुनि, जब अपनी जन्मभूमि तक्षशिला में थे, तब उनको इस बात का भलीभांति अनुभव हो चुका था कि, ग्रीक यवन आर्यों पर कैसा कैसा अत्याचार किया करते हैं। इसलिए उन लोगों पर वे बहुत ही असन्तुष्ट थे। इसके बाद जब वे पाटलिपुत्र में आये, तब राजा धनानन्द के द्वारा उनका बड़ा अपमान हुआ, और उसका बदला लेने के लिए उन्होंने अपनी घनघोर प्रतिज्ञा की। उस प्रतिज्ञा को अब उन्होंने—अमात्य राक्षस के समान धुरन्धर राजनीतिज्ञ को भी चकित करके—पूर्ण कर लिया था। परन्तु ये सब बातें कहां तक गुप्त रह सकती थीं? राक्षस के कथना-नुसार यदि उन पर प्रकट रूप में मामला चलाया जाता, तो

सम्भव था कि, सारे षड्यंत्र का भंडाफोड़ हो जाता। इसलिए ऐसा अवसर न आने देना ही चाणक्य और उनके पक्ष के लोगों को अभीष्ट था। लोगों का मन जब तक क्षुब्ध था, तब तक राक्षस को कोई न कोई दण्ड देकर मगध के बाहर निकाल देना सम्भव था, परन्तु चाणक्य को यह बात अभीष्ट नहीं थी। इसके दो कारण थे—एक तो यह कि, राक्षस यदि मगध देश के बाहर निकाल दिये जाते, तो वे किसी परकीय राजा से मिल कर चन्द्रगुप्त से बदला लेने का प्रयत्न करते—चन्द्रगुप्त के विरुद्ध किसी राजा को उभाड़ कर मगध देश पर चढ़ाई करवा देते। चाणक्य भलीभांति समझते थे कि, राक्षस नन्दवंश पर ही विशेष भक्ति रखते हैं, और वह नन्दवंश अब समूल नष्ट हो चुका है। ऐसी दशा में जिस चन्द्रगुप्त के कारण नन्दवंश का नाश हुआ है, उससे वे द्वेष अवश्य ही रखेंगे, और उसको नाश करने में ही अब अपनी इति कर्त्तव्यता समझेंगे, और इसी उद्देश्य के पूर्ण करने में अब वे अपनी सारी शक्ति और बुद्धिमत्ता खर्च करेंगे। ऐसी दशा में उनको देश-निकाला करने में कोई लाभ न था। बल्कि हानि अवश्य थी। यह एक कारण हुआ। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण यह था कि, चन्द्रगुप्त के लिए राक्षस के समान सचिव की अत्यन्त आवश्यकता थी। चाणक्य जानते थे कि, भागुरायण सचिव होने की योग्यता नहीं रखते—वे एक अच्छे योद्धा अवश्य हैं, परन्तु राजनीतिज्ञ नहीं। राक्षस पूरे राजनीतिज्ञ हैं—सचिव के कार्य का उनको बहुत अच्छा अनुभव है। इसलिए राक्षस को ही चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाना चाणक्य का उद्देश्य था। चाणक्य स्वयं अमात्य बन कर चन्द्रगुप्त को राजकाज चलाने में सहायता कर सकते थे; परन्तु यह बात उनको अभीष्ट नहीं थी। वे चाहते थे कि, हम फिर अपने आश्रम में जाकर तपस्या में लग जावें। परन्तु इतना वे

अवश्य चाहते थे कि, जैसे हमने चन्द्रगुप्त को अपने हाथ में लिया है, वैसे ही एक बार उसके राज्यकशंट को सुयंत्रित रूप से चला देवें; और उसके द्वारा यूनानियों को शीघ्र ही पूर्ण पराजित करा कर इस देश से इन विदेशियों को निकलवा दें। इसलिए उनकी इच्छा थी कि, राक्षस एक बार चन्द्रगुप्त को नन्दों की जगह स्वीकार कर लें; और सच्चाई के साथ उसकी सेवा करने लगें—कम से कम इस बात की प्रतिज्ञा करलें कि, अब मैं चन्द्रगुप्त को नन्दवंश के स्थान पर स्वीकार कर के इनकी सेवा करूंगा। इतना यदि हो जाय, तो फिर हमारा सारा कार्य हो जाय। चाणक्य ने यह सोचा कि, राक्षस अभी तक यह समझे हुए थे कि, नन्दों का कोई शत्रु ही नहीं रह गया है; और इसी ख़याल से वे बिलकुल निश्चिन्त बैठे थे; परन्तु इतने ही में हमने उनको धोखा देकर अपना कार्य साध लिया; यह एक बहुत बड़ा धक्का उनको लग गया। इसलिए अब आगे वे इस तरह निश्चिन्त भी नहीं रहेंगे—बड़ी दक्षतापूर्वक राज-काज करेंगे। इसलिए चन्द्रगुप्त के लिए राक्षस ही एक अच्छे अमात्य होंगे। परन्तु हां, एक बार उनको यह स्वीकार भर कर लेना चाहिए कि, चन्द्रगुप्त नन्दवंश का अंकुर है; और इसको मगध का राजा मान कर हम इसका साचिव्य करेंगे। इतना जहां उन्होंने एक बार स्वीकार कर लिया कि, बस फिर हमारा सारा कार्य हो गया। फिर चन्द्रगुप्त का राज्यशंकट सुयंत्रित रूप से चलने में कोई विघ्न नहीं रह जायगा। ऐसा चाणक्य का विचार था; परन्तु राक्षस को चन्द्रगुप्त के पक्ष में खींच लाना बहुत ही दुर्घट कार्य था। अब तक जो कार्य हुआ, वह तो इसके सामने कोई चीज़ ही नहीं था। राक्षस का शब्द बदलना मानो पृथ्वी की गति को विरुद्ध दिशा की ओर ले जाना है। यह कार्य जितना दुर्घट—बल्कि बिलकुल असम्भव है—उतना ही राक्षस को भी

चन्द्रगुप्त के पक्ष में लाना असम्भव था; पर चाणक्य का यह एक साधारण कथन था कि, हमारे लिए असम्भव कोई भी बात नहीं। बल्कि वे यह भी कहा करते थे कि, जिसको लोग असम्भव कहते हों, उस कार्य को जब हम सिद्ध करके दिखला देवें, तभी हमारी निति-निपुणता की कुछ कीमत समझो! और यही सब बातें सोच कर उन्होंने अपने मन में आगे के सारे कार्य-क्रम पर पूरा पूरा विचार कर लिया था। राक्षस पर कोई न कोई भारी संकट लाकर, उस संकट के कारण, अपना अभीष्ट कार्य करवा लेना सम्भव नहीं था; और यह बात चाणक्य अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने राक्षस पर यह अपराध अवश्य ही लगाया कि, पर्वतेश्वर से मिल कर इन्होंने नन्दों की हत्या कराई; और फिर उनको यह भी भासित कराया कि, अब इस अपराध से छूटने का तुम्हारे लिए कोई मार्ग नहीं है। इस प्रकार चाणक्य ने उन पर यह एक छोटा सा संकट डाला सही, परन्तु यह बात वे भली भांति जानते थे कि, ऐसे उपायों से हमारा काम नहीं चलेगा। राक्षस का मन जीतने के लिए कोई और ही उपाय करना चाहिए था; और उसी उपाय को सोचने में चाणक्य इस समय लगे हुए थे। उन्होंने राक्षस को न्यायासन पर बैठा कर उन पर आने वाले भावी संकट का भयंकर स्वरूप उनको दिखलाया; और चन्द्रगुप्त के द्वारा राक्षस के मन की बातें जानने का प्रयत्न किया। क्योंकि चन्द्रगुप्त को चाणक्य ने कुछ प्रश्न पहले ही सुझा दिये थे; और यह जतला दिया था कि, राक्षस तुम इस इस प्रकार से बातचीत करना। इसलिए राक्षस जब न्यायासन के नीचे उतर कर अपराध अपने ऊपर लेने को डँटकर खड़े हो गये, तब चन्द्रगुप्त ने उनसे कहा:—

"अमात्य राक्षस, पर्वतेश्वर क्या बड़बड़ कर रहा है; सो आपने सुन ही लिया; और हमने भी सुन लिया; परन्तु हमको

इस बात पर विश्वास नहीं हो सकता कि आपके समान स्वामि-भक्त और नन्दवंश पक्षपाती पुरुषश्रेष्ठ के विषय में इसका यह कथन सत्य हो सकता है। इसलिये यह चाहे जो कहे, आप इस पर ज़रा भी विचार न करें; और यह भी न समझें कि, हम इसका कथन सच मान रहे हैं। पर्वतेश्वर तो मगधदेश को निगलने के लिए पहले ही से घात लगाये बैठा था। इसलिए हम स्वप्न में भी ख़याल नहीं ला सकते कि, आप उससे जा मिलेंगे। सम्भव है, और किसी ने ही यह बग़ावत की हो; और आपके मुद्रा से अंकित जाली पत्र तैयार किये हों। इसलिए उसी व्यक्ति का अब हम को पता लगाना चाहिए।"

"कुमार, तुम्हारे मन में चाहे जो हो; किन्तु कम से कम बाहर से तो तुम ऐसा कह रहे हो कि, मेरे हाथ से ऐसा अधम कार्य नहीं होगा, और इसी को मैं एक बड़ी भारी बात समझता हूँ। परन्तु तुम्हारे समान लोगों का इस विषय में चाहे जैसा विश्वास हो, उससे हमें क्या लाभ? क्योंकि हमारी मुद्रा से अंकित पत्र तो इसके पास से बरामद हुए ही हैं, और लोकापवाद के लिए इतना ही काफी है। इस लिए यह लोकापवाद हमारे ऊपर से पूर्णतया दूर होना चाहिए। यह जब तक दूर नहीं होगा, तब तक तुम्हारे केवल विश्वास से मुझे क्या लाभ? और यह लोकापवाद एक ही तरीके से दूर हो सकता है, वह तरीका यह है कि, मुझ पर खुली अदालत में मुकद्मा चलाया जाय, और ऐसे प्रबन्ध जब तुम करदोगे, तभी मैं समझूंगा कि, तुम्हारा मुझ पर विश्वास है।"

इतने में भागुरायण बीच ही में बोल उठे, "अमात्य, इस विषय में यदि हम लोग खुली अदालत में मुकद्मा चलाने के झगड़े में पड़ेंगे, तो सारा मामला विकट हो जायगा। आप इस झगड़े में न पड़ें। इससे तो यही अच्छा है कि, इस मामले को

ऐसा ही दाब दिया जाय, और पर्वतेश्वर से कुछ कर वसूल करके इसको अपने राज्य में वापस भेज दिया जाय। इसके बाद, हम लोग कुमार चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठावें, और मगध का राज्य पूर्ववत् चलावें। आप सचिव और मैं सेनापति..."

"छिः छिः, छिः छिः" राक्षस एकदम उद्वेग के साथ कहते हैं, "भागुरायण, इस नन्दवंश-पक्षपाती राक्षस के सामने तुम ऐसी बात निकालो ही मत। नन्दों का घात करा कर उनका सिंहासन छीनने वाले वृषल साचिव्य करने के लिए मुझ से कहते हो! ऐसा कहते हुए तुम्हारी जिह्वा विदीर्ण क्यों नहीं हो जाती? नीचो, क्या तुम समझते हो कि, हमने तुम्हारे सारे कपटनाटक को जान नहीं लिया है? परन्तु हां, वह कपटनाटक हमको बहुत देर से मालूम हुआ, और इसी कारण तुमको ऐसे ऐसे भाषण करने का मौका मिल गया है। नहीं तो......परन्तु अब कहने से क्या लाभ?"

चौंतीसवां परिच्छेद

और एक युक्ति।
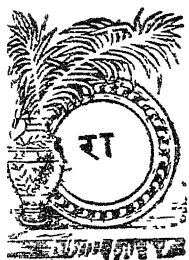
त्तस का उपर्युक्त कथन सुनकर भागुरायण कुछ देर चुप रहे। उनको यही नहीं सूझ पड़ा कि, अब वे क्या कहें। परन्तु फिर सोचा कि, यदि हम बिलकुल चुप रहेंगे, तो ये सारा अपराध हमी पर लाद देंगे; और यह बात अच्छी नहीं। इसलिए वे रात्तस से बोले, "क्यों? कहने से लाभ क्यों नहीं?—आप सब कह डालिये। जो कुछ आप के मन में आता हो, सब स्पष्ट स्पष्ट कह डालिए। मन में कुछ मत रखिये। मन में रखने से ही क्या लाभ?"

"भागुरायण, तुम नन्द की सेना के अधिपति हो; और जब तुम्हीं उनके विरुद्ध होकर उनका नाश कर चुके; और अब एक वृषल को गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न कर रहे हो, तब तुमसे अब हम क्या कहें? सच तो यह है कि हमी अंधे हो गये। हमने समझा कि, मगध देश का अब कोई बाहरी शत्रु ही नहीं रहा; अब केवल महाराज की चित्तवृत्ति ठिकाने पर लाना ही हमारा एक काम रह गया है; और यह समझ कर हम बिलकुल निश्चिन्त हो गये, इसलिए हमको जो यह दण्ड मिला, वह उचित ही है; और हम क्या कहें? तुम राजघातक, विश्वास घातक और न जाने कितने प्रकार के घातक हो! तुम्हारे सामने

खड़ा होना और तुम्हारा मुंह देखना भी हम पाप समझते हैं फिर तुमसे भाषण कौन करे ? अब तुममें यदि कुछ भी चतुराई हो, तो तुम सब लोगों के सामने हमारे ऊपर मुकद्दमा चलाओ; और उस मुकद्दमे में यदि हम अपराधी सिद्ध हो जायँ, और तुम न्यायकर्ता हो, इस लिए अपराधी हम अवश्य ही सिद्ध होंगे तो जो चाहो सो दण्ड हमको दो। और यदि तुम ऐसा नहीं करोगे, तो मैं ही अब चतुष्पथ—चौराहे—पर जाकर जनता के सामने, सब बातें खोल खोल कर, ज़ोर से उद्घोषित कर दूंगा ।"

"अमात्य," भागुरायण उनसे तुरन्त ही कहते हैं, "आप का न्याय करनेवाले हम कौन हैं ? आप ही सब का न्याय करते रहे हैं; परन्तु आप से हमारी इतनी ही प्रार्थना है कि, आप अब इस न्याय इत्यादि की झंझट में न पड़ें; क्योंकि जनता की लहर बड़ी विचित्र होती है—उसकी लहर किस समय किस दिशा की ओर घूम जायगी, इसका कुछ ठिकाना नहीं ।"

"भागुरायण, बार बार, वही चर्वित चर्वण करने से क्या लाभ ? जनता की लहर जैसी तुम समझते हो, वैसी ही मैं भी समझता हूँ। इस समय तुम अधिकारारूढ़ हो, जो चाहे सो कर लो; पर मुझे अपने निज के विषय में तो अपना निश्चय कायम रखने दो। मैं चाहता हूँ कि, मुझ पर खुली अदालत में मामला चलाया जाय; तुम इसमें विघ्न क्यों डालते हो ? मेरी इच्छा है कि; पर्वतेश्वर के आरोपित किये हुए अपराधों का हमारे ऊपर से निरसन हो जाय; और यदि उनका निरसन न हो; तथा मैं अपराधी सिद्ध हो जाऊं, मुझे दण्ड मिले। मैं दण्ड सह लूंगा। तुम्हारा उपकार हमको नहीं चाहिए। तुम हमारी प्रतिष्ठा रखने के लिए कोई बात छिपाने की झंझट में मत पड़ो। इससे अधिक अब मैं कुछ न कहूंगा। नन्दों का मैं कट्टर सेवक हूँ।

क्या मैं पर्वतेश्वर को लाकर कभी भी उसके हाथ में राज्य के सूत्र दे सकता हूँ ? ऐसा करना तो बिलकुल दूर रहा; बल्कि ऐसी बात की भावना भी मेरे मन में कभी नहीं आ सकती। और अधिक मैं क्या कहूँ ? परन्तु इतने पर भी यदि तुम्हारा यह सारा कुचक्र मेरे ऊपर आकर आरोपित भी हो जाय, तो इसके लिए जनता जो कुछ मुझे दण्ड देगी, उसको सहने के लिए मैं तैयार हूं; परन्तु यह कभी नहीं होगा कि, तुम यह मामला भीतर ही भीतर दाब दो; और फिर मुझको चन्द्रगुप्त का सचिव बनने के लिये बाध्य करो। ऐसी बात तुम लोग स्वप्न में भी मत लाओ। और मैं कितनी बार तुम से यही बात कहूँ ?"

राक्षस बड़े उद्वेग के साथ यह बातचीत कर रहे थे। भागुरायण और चन्द्रगुप्त चुपके से सुन रहे थे। इतने में एक दूत आकर भागुरायण के कान में कुछ गुनगुनाया। जिसे सुन कर भागुरायण एकदम उस दूत से बोले, "क्या कहता है ? वह आदमी मिल गया, जिसने राजगृह के मुख के पास गुप्त गर्त खोदने के लिए अपने घर से मार्ग देकर राजहत्या में सहायता दी ? वह कौन है ? चन्दनदास ? वाह ! चन्दनदास तो अमात्य का बहुत बड़ा मित्र है ? उसने ऐसे काम में सहायता दी ? पर मुझे तो सम्भव नहीं जान पड़ता ! चन्दनदास राज हत्या में सहायता कभी नहीं करेगा !"

"परन्तु उसने स्वयं ही सब स्वीकार कर लिया है; और उसमें उसने स्पष्ट कह दिया है कि, अमात्य के पत्र को पाकर हमने ऐसा ऐसा काम किया। अमात्य हमारे बड़े मित्र हैं इसलिए उनके काम को इन्कार कैसे करते ?" यह सम्भाषण अमात्य के सामने ही हुआ; और ज़ोर ज़ोर से हुआ। अमात्य ने सारा सुना; और सुन कर उनको बड़ा सन्ताप हुआ। क्योंकि

उनको पूरा पूरा विश्वास था कि, चन्दनदास हमारा बड़ा भारी मित्र है; और वह राज्य हत्या में कभी सहायता नहीं कर सकता। परन्तु अब उनके मन की ऐसी कुछ विचित्र दशा हो रही थी कि, चाहे जो आदमी चाहे जो आकर कहता, उनको वह सब सच ही मालूम होता। अतएव उन्होंने सोचा कि, सम्भव है, जिस प्रकार अनेक लोग इन नीचों के पक्ष में मिल गये, उसी प्रकार चन्दनदास भी मिल गया होगा—कौन कह सकता है कि, नहीं मिल गया होगा? परन्तु चन्दनदास जब इस मामले में उस कपटी ब्राह्मण के पक्ष में आगया, तब तो यही कहना चाहिए कि, सारा संसार उसके पक्ष में आगया; और ऐसी दशा में नन्दों का विनाशकाल अनिवार्य था। इस प्रकार के अनेक विचार राक्षस के मन में आने लगे; परन्तु प्रकट रूप से वे उस समय भागुरायण की बातों पर कुछ भी नहीं बोले। बिलकुल मौन ही धारण कर लिया। उन्होंने सोचा कि, इस समय अधिक कुछ कहना बिलकुल अनावश्यक है।

इधर उस गुप्तचर और भागुरायण का सम्भाषण हो ही रहा था।

बहुत समय हो गया। पर्वतेश्वर का न्याय वैसा ही रह गया। अन्त में यह निश्चय हुआ कि, पर्वतेश्वर को ले जाकर इसको अभी कैद में ही रखा जाय। और चन्द्रगुप्त ने अपने परिचारकों को ऐसी ही आज्ञा भी दे दी। वे लोग पर्वतेश्वर को न्यायासभा से ले गये। इसके बाद भागुरायण ने अमात्य से कहा, "अमात्यराज, आपकी चित्तवृत्ति इस समय बहुत ही प्रक्षुब्ध हो रही है, इस कारण मैं इस समय आप से विशेष कुछ नहीं कह सकता। जो असली बात थी, वह मैंने आप से बतला दी। अब आप, जहां आपकी इच्छा हो, जाइये। और इन बातों पर विचार कीजिए। मैंने आप से जो

निवेदन किया है, वह कुछ अनुचित नहीं है। परन्तु आपके विचार मे आजाय, तब !"

राक्षस ने भागुरायण का यह कथन सुन कर एक बार अत्यन्त तिरस्कार पूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखा। इसके सिवाय उस समय उन्होंने और कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने यही समझा कि, अब इस मनुष्य से बातचीत करना भी पाप ही है। हमारे अन्धत्व से लाभ उठा कर इन लोगों ने इतना भयंकर षड्यंत्र रचा और हम इनके जाल में बडी बुरी तरह से फंस गये ! यह सोच कर राक्षस अत्यन्त खिन्न हुए; पर बेचारे करते क्या ? चुपके से उस न्यायगृह से बाहर निकले; परन्तु अब उनको यही न सूझने लगा कि, कहां जावें। राक्षस जिस समय प्रतीहारी के उक्त मित्र के घर में थे, उन्होंने अपने अनिष्ट मित्र सेठ चन्दनदास के यहां कहला भेजा था कि, तुम हमारे घर के लोगों की खबरदारी रखो—और यदि हो सके, तो उनको अपने ही घर में लाकर रख लो। यह खबर पाकर चन्दनदास ने अमात्य को सन्देशा भेजा कि "अच्छा, आपकी आज्ञा के अनुसार ऐसा ही किया जायगा।" चन्दनदास ने यह उत्तर तो भेज दिया; पर स्वयं राक्षस से मिलने नहीं आये। राक्षस को उस समय उनके इस व्यवहार पर आश्चर्य भी हुआ था; पर अब उस आश्चर्य का निराकरण होगया। चन्दनदास ने यदि राजहत्या में सहायता की, तो फिर अब वे कौन मुहँ लेकर हम से मिलेंगे ? देखो, चन्दनदास के समान अहिंसा धर्म को माननेवाला महाशय ऐसी भयंकर हत्या—राजकुल की हत्या—करने पर उतारू होगया ! बड़े ही आश्चर्य और दुःख की बात है ! जो हो; पर अब हम जावें कहां ? राक्षस बड़े विचार में पड़े। चन्दनदास के समान राजघाती पुरुष का दर्शन करना भी उनको पातक जान पड़ा। इसलिए उन्होंने सोचा कि, अब चन्दनदास के घर से अपने

बालबच्चों को बुलवा लेना चाहिए; और पुष्पपुरी छोड़ कर कहीं दूसरी जगह हम को निकल जाना चाहिए। नन्दराजा सर्वार्थसिद्धि अभी तपोवन में तपस्या करता होगा, उससे मिलना चाहिए; और दूसरे राजाओं से उसको सहायता दिलवा कर फिर सेना सहित पुष्पपुरी में आना चाहिए। इस प्रकार चन्द्रगुप्त, और उसके सहायक चाणक्य तथा भागुरायण को नीचा दिखा कर फिर सर्वार्थसिद्धि को राज्य पर स्थापित करना चाहिए। यह बात तो अमात्य को मालूम ही हो चुकी थी कि, हम को पकड़ कर कारागृह में डालने अथवा खुली अदालत में हम पर मुकदमा चलाने का इन तीनों को साहस नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने सोचा कि, इन अधर्मों का अब यही उद्देश्य जान पड़ता है कि, हमारे विषय में लोगों का मन कलुषित करके ये हमारी दुष्कीर्ति फैलाना चाहते हैं; और लोगों की दृष्टि में हमको द्वेष का पात्र बनाना चाहते हैं। इसके सिवाय और इन दुष्टों का कोई भी उद्देश्य नहीं जान पड़ता; और अपने इसी उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए ये दुष्ट सब कुछ करेंगे, इसलिए अब हमारा यहां रहना ही ठीक नहीं है। परन्तु यहां से जाने के पहले हमको अपने बाल-बच्चों का क्या प्रबन्ध करना चाहिए ? चन्दनदास के समान नीच पुरुष के यहां उनको रखने में अब कोई लाभ नहीं है। वह बात की बात में उनको शत्रुओं के हाथ में दे देगा; और हमारे बाल-बच्चों को जहां उन लोगों ने एक बार अपने हाथ में कर पाया कि, फिर क्या कहना है ? हमको चाहे जैसा नाच नचावेंगे ! फिर तो हम एक प्रकार से उनको पंजे में ही आ जायँगे। ऐसी दशा में अब हमको क्या करना चाहिए ? यही सोचते हुए बेचारे राक्षस लोकसंचार के मार्गों से ज़रा दूर दूर एक रास्ते से चले जा रहे थे। थोड़ी ही देर में वे उस मार्ग से पुष्पपुरी के नदी के किनारे

के एक निर्जन अरण्य में प्रविष्ट हुए। क्योंकि प्रतीहारी के मित्र के घर को जाने के लिए उस अरण्य से भी एक मार्ग गया था; और उसी एकान्त के मार्ग से जाना इस समय उनको अभीष्ट था। अतएव वे थोड़ी ही दूर और आगे गये थे कि, वहीं एक बड़े भारी वटवृक्ष के नीचे से ये शब्द उनके कानों में आये— "हाय! मित्र चन्दनदास, राक्षस की आज्ञा का पालन करने के लिए तुमने ऐसा किया; परन्तु अन्त में वही बात तुम्हारे वध का कारण हुई न? और, तुझ को मालूम भी हो चुका था, तथा छूटने के लिए मार्ग भी था; परन्तु फिर भी तुमने उस मार्ग का स्वीकार नहीं किया: और प्राण देने को तैयार हो गये! शाबाश मित्र, अब इस समय तक तुम्हारा वध भी होगया होगा: और तुम्हारी स्त्री सती हो गई होगी, तो फिर मैं ही अब इस संसार में जीता क्यों रहूँ? तुम मेरे प्राणों से भी प्यारे मित्र थे; इसलिए अब तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है! मैं जी कर अब क्या करूंगा? लो—अब गले में यह फांसी लगा कर मैं भी तुम्हारे पीछे ही पीछे आता हूँ......" राक्षस के कान में ये शब्द पड़े; और वे वहीं ठिठक गये। उनके मन में यह विचार आया कि, चन्दनदास का यह ऐसा कौन सा मित्र है कि, जो इस समय इस निर्जन वन में आकर, चन्दनदास के वध पर शोक करता हुआ अपने प्राण त्याग रहा है? यह कहता है कि, चन्दनदास ने यह सब राक्षस की आज्ञा से किया; और इसी कारण उसका वध कराया जा रहा है, इसका अर्थ क्या है? क्या चन्दनदास को, मेरे नाम पर कोई सन्देशा दे कर, किसी ने धोखे में तो नहीं डाला? यह मामला क्या है? इसका भेद कैसे खुले? अच्छा, अब इस आत्म-हत्या करने वाले महाशय को अपने पास एक और बुलाना चाहिए; और उससे सब बातें पूछ कर इसके मन को शान्त करना चाहिए। इसके बाद, जो कुछ होगा, देखा

जायगा। यह सोच कर राक्षस उस महाशय के पास गये; और ज़ोर से बोले, "अरे भाई, तुम कौन हो, जो अपने मित्र के वध का समाचार सुनकर प्राण दे रहे हो?"

"महाराज, मुझ से आप यह कुछ न पूछें। आप शायद मुझे मना करना चाहते होंगे; परन्तु आप इस झगड़े में न पड़ें। मैं अपने मित्र के पश्चात् एक क्षण भर भी जीना नहीं चाहता हूँ इसलिए आप मुझे जाने दें।"

"हां, भैया, मैं तुम को रोकता नहीं; परन्तु तुम जिसका नाम ले रहे हो, वह मेरा भी मित्र है। यह सुन कर, कि उसका वध हो रहा है, मुझे भी बड़ा दुःख हो रहा है; पर तुम यदि मुझको यह बतलाओ कि, वह वध किसकी आज्ञा से और क्यों हो रहा है; तो मैं उसका कुछ प्रबन्ध करूंगा, अन्यथा तुम्हारे साथ मैं भी मित्र की भेट को चलूंगा।"

"क्या चन्दनदास तुम्हारा भी मित्र है? और यदि है, तो समझ लो कि, तुम उससे अब बिछुड़ ही गये! क्योंकि उन दुष्टों ने उसका वध कर दिया। राज-हत्या के कार्य में अमात्य राक्षस को जिन जिन लोगों ने सहायता दी है, उन सभी का वध होने वाला है। वह त्रिकूट—चाणक्य, चन्द्रगुप्त और भागुरायण—अब उस षड्यंत्र में फँसे हुए सभी लोगों को दण्ड देगा......"

"अहो महाशय, यह तो सब ठीक है; पर यह भी तो बतलाओ कि, चन्दनदास पर उन्होंने अपराध क्या लगाया है?"

"अपराध! अपराध और क्या! यही कि, राजा धनानन्द की सवारी राजगृह के द्वार पर तोरण के नीचे आते ही खन्दक में गिर जावे; ऐसी उसकी इच्छा थी; और इसी इच्छा की पूर्ति के लिए उसने राक्षस की आज्ञा से अपने घर से गुप्तरूप से सुरंग लगवाई; अथवा उसके लगवाने में सहायता दी। यही

उसका बड़ा भारी अपराध है। इसके सिवाय, इसमें भी सन्देह नहीं कि, राक्षस के पत्र से ही उसने यह सारा प्रबन्ध किया। राक्षस ने ही उसको लिख कर भेजा था कि, 'हमारे आदमी सुरंग खोदने के लिए तुम्हारे घर से प्रारम्भ करेंगे, इसलिए तुम उनको इस काम में सहायता दो।' राक्षस पर उस बेचारे की बड़ी भक्ति थी; और इसी कारण उसने इस कार्य को स्वीकार कर लिया। पर अब उसका वध हो रहा है!"

"अजी, तुम कहते क्या हो? राक्षस ने उसको पत्र लिखा था कि, तुम अपने घर से राजद्वार तक सुरंग खोदने दो? अरे, इन चांडालों ने ऐसे ऐसे पत्र—झूठे पत्र—लिख कर न जाने कितने बेचारों को फँसाया! अरे भाई चन्दनदास, तुम इस राक्षस से पूछने तो आये होते? इस प्रकार का षड्यंत्र करना होगा, तो क्या राक्षस पत्र लिख कर करेंगे? इस अंधेपन का भी कुछ ठिकाना है! विलक्षण अन्धेर! अभी मैंने चन्दनदास का नाम सुना था; उस समय मुझे उन पर क्रोध आया था पर अब मालूम होता है, उसको भी धोखा दिया गया; और इसलिए अब मुझे उस पर बड़ी दया आ रही है। अच्छा, बत लाओ, फिर?"

"फिर क्या? राजहत्या होने के बाद जब चारों ओर हाहाकार मच गया, तब चन्दनदास घबड़ाया। राक्षस को ढूँढने लगा; पर वे भी कहीं दिखाई नहीं दिये। दो तीन दिन बाद उसके पास राक्षस का सन्देशा आया कि, तुम मेरे बाल-बच्चों को अपने घर लेजाकर रखो। उसने ऐसा ही किया; पर चन्द्रगुप्त ने उसे बहुत तंग किया कि, तुम राक्षस के बालबच्चों को हमारे हाथ में दे दो, इससे हम तुम को छोड़ देंगे। तुम पर कोई अपराध नहीं आने देंगे। अन्यथा तुम्हारा वध करवा डालेंगे। परन्तु चन्दनदास ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया।

बल्कि इसके विरुद्ध उसने अमात्य की स्त्री और लड़कों को कहीं छिपा भी रखा। उसने चन्द्रगुप्त से साफ़ साफ़ कह दिया कि, तुम हमारा वध करवा डालो, हमें कोई परवा नहीं, पर अमात्य के बालबच्चों को हम तुम्हें नहीं बतायेंगे। इस पर उस दुष्ट चन्द्रगुप्त ने उसके लिए वध की आज्ञा निकाल दी, और अभी अभी उसे वधस्तम्भ की ओर ले गये हैं। अब शायद उसका वध हो भी गया होगा, अथवा होने ही वाला होगा। महाराज, अब आप मुझे अपने मित्र के पीछे पीछे जाने दें।" यह सुन कर राक्षस बिलकुल स्तब्ध होगये। परन्तु हां, उन्होंने उस आत्महत्या करने वाले मनुष्य का हाथ मज़बूती के साथ पकड़ रखा था। राक्षस को उस समय कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि, अब वे क्या करें, परन्तु हां, बीच में उन्होंने उस मनुष्य से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

उसने उत्तर दिया, "शकटदास।" यह सुन कर राक्षस फिर उससे बोले, "क्यों जी, शकटदास जी, आपको मालूम है कि, चन्दनदास ने राक्षस के बालबच्चों को कहां रखा है? आप उसके मित्र हैं, इसलिए आप से पूछते हैं।"

"नहीं। मैं उसका मित्र हूँ सही, पर उसने मुझे यह बात बतलाई ही नहीं, क्योंकि उसने सोचा कि, ऐसी गुप्त बात प्रकट करने से शायद धीरे धीरे वह चन्द्रगुप्त तक न पहुँच जाय, और इसी कारण उसने मुझे भी वह बात नहीं बतलाई। और सच कहता हूँ, वह यदि मुझे राक्षस के बालबच्चों का पता बता देता, तो अब तक कभी का मैं चन्द्रगुप्त को उनका पता दे देता, और चन्दनदास का छुटकारा करा लेता! राक्षस ने उस बेचारे को बड़े चक्कर में डाला, और आप न जाने कहां गायब होगये? जो मनुष्य अपना प्राण बचाने के लिए अपने मित्र का वध कराता है, उस मनुष्य की मित्रता कैसी? पर

नहीं, चन्दनदास बेचारा बड़ा सच्चा आदमी है, उसको ऐसी बातों का ख़याल नहीं।"

यह मर्मभेदी भाषण सुन कर राक्षस को बहुत ही खेद हुआ, और वे कुछ देर स्तब्ध रह कर फिर कहते हैं, "मित्र, तुम व्यर्थ में हत्या मत करवाओ। मुझ को वधस्थल की ओर ले चलो। मैं तुम्हारे मित्र को छुड़ाऊंगा। अमात्य राक्षस—जिसके दुर्भाग्यग्रस्त बालबच्चों के लिए चन्दनदास अपने प्राण दे रहा है, वह राक्षस मैं ही हूँ!"

यह सुनते ही शकटदास ने अत्यन्त आश्चर्य प्रकट किया।

पैंतीसवां परिच्छेद

—:❀:—

प्रतिज्ञा-भंग या मित्र-वध ?

कटदास ने न सिर्फ आश्चर्य ही, बल्कि अविश्वास भी दिखलाया। उसने कहा कि, "राक्षस तो अब पुष्पपुरी में रह ही नहीं सकते। क्योंकि महाराज और उनके वंश को विध्वंस करने का उनका प्रयत्न तो सिद्ध हो गया; परन्तु अब आगे बड़ी बड़ी आपत्तियां आ रही हैं! ऐसी दशा में राक्षस का यहां रहना बिलकुल सम्भव नहीं है। इसलिए मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता कि, आपहीं राक्षस हैं।" शकटदास ने जब ऐसा कहा, तब राक्षस और भी अधिक अचम्भे में आये; और अपने को राक्षस सिद्ध करने में उनको बहुत प्रयत्न करना पड़ा! शकटदास ने अन्त में उनसे इतना ही कहा कि, "अच्छा, आपही यदि राक्षस हैं, तो चलिये, मैं आपको चन्दनदास के पास लिये चलता हूँ। वे यदि अब तक जीवित होंगे, तब तो ठीक ही है—आप अपने को, तथा अपने बालबच्चों को चन्द्रगुप्त के हाथ में देकर उनको छुड़ा लीजिए। अन्यथा मैं तो अपने मित्र के पीछे पीछे निर्वाणपद की प्राप्ति अवश्य ही करूंगा। मैं अपने मित्र के बिना अब अधिक समय तक संसार में नहीं रह सकता। भगवान् अलिहन्ता मुझको और उनको अवश्य ही निर्वाणपद की प्राप्ति करावेंगे, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।"

यह कर शकटदास आगे आगे चल दिये; और राक्षस उनके पीछे पीछे। कुछ दूर चलने के बाद दोनों उस जगह आये, जहां गंगानदी के किनारे श्मशान में चन्दनदास को सब वध्य चिह्नों से युक्त करके खड़ा किया था। चन्दनदास को रक्तवस्त्र पहनाये गये थे, रक्तपुष्पों की मालाएँ उनके शरीर पर डाल दी गई थीं; और उनका सारा शरीर कुंकुमादि रक्त चूर्णों से लिप्त कर दिया गया था। उनकी धर्मपत्नी और उनका एक दस वर्ष का बालक भी उस समय वहां आया था। धर्मपत्नी उनके साथ सती होने को आई थी; और पुत्र अपनी माता के शरीर से चिपट कर उससे और अपने पिता से, अत्यन्त दीन वाणी से बार बार यह पूछ रहा था कि तुम कहां जाते हो—ऐसा रूप तुमने क्यों धारण किया है? बहुत प्रयत्न करने पर भी उस बालक का रोना बन्द नहीं होता था। उस दृश्य को देखकर राक्षस का हृदय भर आया। उन्होंने देखा कि, हमारा मित्र हमारे लिए बिलकुल प्राण देने को तैयार है, यही नहीं, बल्कि उसकी स्त्री भी सती हो रही है! चन्दनदास चाहें तो एक शब्द कहकर वह अपना छुटकारा करा सकते हैं; परन्तु नहीं—वे कुछ भी नहीं कह रहे हैं। यह देखकर राक्षस आगे बढ़कर चांडालों से कुछ कहने ही वाले थे कि, इतने में उन चांडालों में से एक चांडाल चन्दनदास से कहता है:—

"श्रेष्ठिन, आप व्यर्थ में क्यों अपने प्राण दे रहे हैं? राक्षस के बालबच्चों का पता क्यों नहीं बतला देते? महाराज चन्द्रगुप्त बहुत ही दयालु हैं। वे उन बालबच्चों का बाल भी नहीं बांका होने देंगे। सिर्फ राक्षस को अपने कब्जे में रखने के लिए ही वे उनके बालबच्चों को चाहते हैं।"

"चांडालो," चन्दनदास कहते हैं, "राक्षस ने अपना परिवार हमारे सिपुर्द कर दिया है। इसलिए जब तक मेरे शरीर में

प्राण हैं, हम उन लोगों को दूसरे के हाथ में नहीं देंगे। इतनी भी मित्रभक्ति और वचनभक्ति यदि नहीं है, तो फिर जीवित रहने से ही क्या लाभ? 'जैसी बहे बयारि पीठ तब तैसी दीजै' के न्याय से अपना पेट भरनेवाले पुरुष इस पृथ्वी की पीठ पर क्या कुछ कम हैं?"

राक्षस ने चन्दनदास का यह उत्तर सुना; और अत्यन्त व्याकुल हुए। उन्होंने सोचा कि, देखो, हमारे मित्र की हम पर इतनी भक्ति है: और आज हम बिना कारण ही उसके नाश का कारण बन रहे हैं। अच्छा हुआ कि, चन्दनदास का यह मित्र सहसा हमको मार्ग में मिल गया; और उसने चन्दनदास का यह सारा वृत्तान्त हमको बतला दिया। यह सोच कर उन्होंने एक लम्बी सांस छोड़ी; और एकदम आगे बढ़कर उन चांडालों से कहा, "अरे चांडालो, जिसके बालबच्चों के लिए तुम इस भोले श्रेष्ठी का वध कर रहे हो, वही राक्षस यह तुम्हारे सामने उपस्थित है। इस लिए अब तुम इसको छोड़कर यदि आवश्यकता हो, तो हमारा वध करो। उस दुष्ट चाणक्य और चन्द्रगुप्त के षड्यंत्र में जिस प्रकार सारा संसार फँस गया है, उसी प्रकार यह बेचारा श्रेष्ठी भी फँस गया है, इसलिए इसको छोड़ दो। इसका किसी बात में कोई अपराध नहीं।"

यह सुनकर चांडाल राक्षस की ओर देखने लगे। चन्दनदास की पत्नी भी आश्चर्यचकित, परन्तु आशा-भरे नेत्रों से, उनकी ओर देखने लगी। और चन्दनदास भी एकदम अचम्भे की चेष्टा बना कर उनकी ओर देखने लगे कि, ये एकाएक इस समय कहां से आ गये। उस आश्चर्यपूर्ण क्षण के व्यतीत होते ही चांडाल राक्षस से कहते हैं, "आर्यश्रेष्ठ, हम लोगों के लिए चन्द्रगुप्त महाराज की यह आज्ञा है कि, यह श्रेष्ठी अमात्य के कुटुम्ब का पता बतलाना स्वीकार कर के उनको चल

कर दिखला दे, तो यह छोड़ दिया जाय। इस लिए जब तक यह ऐसा न करेगा, तब तक हम इसको छोड़ नहीं सकेंगे । क्योंकि यह आज्ञा तो हमको है ही नहीं कि, अमात्य राक्षस आकर यदि अपने को तुम्हारे हाथ में दे देवें, तो तुम सेठ चन्दनदास को छोड़ दो। इस लिए हम लाचार हैं ! अहो श्रेष्ठिन, तुम यदि अपने प्राणों से यदि उकता गये हो, तब तो हम लाचार हैं; अन्यथा तुम अब भी आर्यश्रेष्ठ की पत्नी और बच्चों का पता बतला दो; और अपने कुटुम्ब में जाकर सुख से रहो—क्यों व्यर्थ में जान देते हो ?"

चन्दनदास ने उस चांडाल के कथन की ओर तो कुछ ध्यान दिया नहीं; परन्तु अमात्य राक्षस की ओर मुड़ कर बोले, "अमात्यराज, आप मेरे मित्र हैं; इस लिए यह समझ कर कि, आप जो कुछ कहेंगे, बुरा नहीं कहेंगे, मैं ने आपका पत्र पाते ही अपने घर से सुरंग खोदने का अनुमोदन दिया। आपके पास यह पूछने भी नहीं आया कि, आपने यह क्या विचार किया है। सच पूछिये तो पूछने के लिए अवश्य आना चाहिए था; परन्तु मैंने जो यह अन्धता दिखलाई, उसी का प्रायश्चित्त भोग रहा हूँ। इस लिए अब मुझे छुड़ाने के झगड़े में आप मत पड़ें। आप मेरे पास आइये—मैं आपके कान में बतला दूं कि, आपके बाल बच्चे कहां हैं, आप उनको लेकर चले जाइये। क्योंकि आप यदि यहां रहेंगे, तो न जाने आप पर भी क्या संकट आवे। आपका सर्वथा नाश करने के उद्देश्य से ही यह सारा मामला हुआ है। मैं आपके पास आकर पूछ लेता, तो अच्छा होता, आप सावधान हो जाते; और यह कुछ भी न हुआ होता; पर क्या बतलाऊं, मैं अंधा हो गया, बिलकुल मूढ़ बन गया; और अपने घर से उनको सुरंग लगाने की आज्ञा दे दी, तथा इस प्रकार उनके भयंकर जाल में फँस कर राज-हत्या में सहायता दी। अतएव अब इस अपराध पर मुझे

दण्ड, अवश्य मिलना चाहिए। इस लिए अमात्यराज, आप कृपा कर के मुझे यह देहान्त प्रायश्चित्त भोग लेने दें।"

चन्दनदास का यह कथन सुन कर अमात्य को बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु केवल आश्चर्य होने से ही क्या लाभ? वह केवल आश्चर्य करते रहने का ही समय नहीं था। किन्तु उस समय तो अपने मित्र चन्दनदास को बचाना बहुत आवश्यक था। इस लिए अमात्य चन्दनदास से बोले, "चन्दनदास, कुछ भी हो, परन्तु तुम अब अपने प्राणों पर उदार मत बनो। अब जैसा मैं तुमसे कहूँ, वैसा ही करो। तुम मेरी पत्नी का पता बतला दो। मैं तुमको इस दायित्व से छुड़वाता हूँ। मैं प्रत्यक्ष ही मौजूद हूं; परन्तु जब चन्द्रगुप्त मुझे ही कोई दण्ड देने को तैयार नहीं है, तब मेरी स्त्री और बच्चों को लेकर वह क्या करेगा? चाँडालो, छोड़ो, छोड़ो, इनको। मैं बतलाता हूँ कि, मेरे परिवार के लोग कहां हैं—अब तो तुमको कोई आपत्ति नहीं?"

"अमात्यराज," चांडाल उत्तर देते हैं; "हम लोगों को क्या—हम तो आज्ञा बजाने वाले हैं। चन्द्रगुप्त महाराज की आज्ञा चाहिए—उनकी आज्ञा यदि हमको मिल जायगी, तो हम तुरन्त इनको छोड़ देंगे, अन्यथा हम लाचार हैं।"

"चन्द्रगुप्त कहां है? मैं उससे विज्ञप्ति करता हूँ, और इनको छोड़ने की आज्ञा लाता हूँ। अब तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं?

"फिर हमको कौन आपत्ति अमात्यराज?"

"अरे कहां था अमात्यराज? मैं अपनी अन्धता के कारण तुमसे भी गया बीता होगया। कैलासनाथ! ऐसे संकट!"

राक्षस बड़े विचार में पड़े कि, अब आगे वे कहाँ जावें, और क्या करें? चारों ओर से उन्होंने अपने को घिरा हुआ पाया। आख़िर उन्होंने सोचा कि, जिस प्रकार से भी हो

सके, इस समय हमको अपने मित्र के प्राण बचाने चाहिए, और इसके लिए अब हमको चन्द्रगुप्त के पास जाकर यह प्रार्थना करनी चाहिए कि, चन्दनदास की जगह पर हम मौजूद हैं, हमको चाहे जो करो, परन्तु इनको छोड़ दो इसके सिवाय और कौन सा उपाय है ? यह सोच कर राक्षस ने फिर चाँडालों से कहा, "भले आदमियों, अब इतना तो करो कि, मैं और शकटदास, दोनों जब तक चन्द्रगुप्त के यहां से लौट न आवें तब तक तुम लोग इनको कोई कष्ट मत दो—मैं एक घड़ी के भीतर ही इनको छुड़ाने की आज्ञा लिये आता हूँ ।"

यह कह कर फिर वे शकटदास की ओर मुड़ कर बोले, "चलो, जैसा कि, हमने तुमसे वचन दिया था, अब अपने मित्र और उनकी पत्नी के प्राण बचाने के लिए हम लोग चन्द्रगुप्त के पास चलें ।"

"अमात्यराज, 'चन्द्रगुप्त महाराज के पास' ऐसा क्यों नहीं कहते ? उनको जब तक आप महाराज नहीं कहेंगे, तब तक क्या वे आपकी प्रार्थना का आदर करेंगे ?"

शकटदास का यह कथन सुनते ही राक्षस कुछ क्रुद्ध हुए; और वैसे ही नेत्रों से शकटदास की ओर देखते हुए कहा, क्या कहते हो—मैं चन्द्रगुप्त को, उस राजहत्यारे नरपशु को, 'महाराज' कहूं ?"

"अजी, आप यह कैसी अनर्गल बात कहते हैं ! वे राज्यारूढ़ हुए हैं, यह बात शायद आपको बुरी लगती होगी; पर इसको प्रकट करने से क्या लाभ ? ऐसा कहने से आपका कार्य बनेगा, अथवा बिगड़ेगा ?"

चाहे जो हो, मैं तो इस मुख से उस नीच को 'महाराज' कभी नहीं कहूंगा ।"

"इसका तो यही अर्थ है कि, आप चन्दनदास को सूली ही दिलवाना चाहते हैं ?"

"सो क्यों ? इसका ऐसा अर्थ क्यों है ? मैं जब स्वयं उसके सामने जाकर खड़ा हो जाऊँगा, तब चन्दनदास को वह सूली क्यों देगा ? अब क्या आगे ऐसा ही न्याय हुआ करेगा ?" यह कहते हुए राक्षस बहुत ही क्रुद्ध से दिखाई दिये।

यह देखकर शकटदास उनसे धीरे से ही बोले, अमात्यराज, आपका यह क्रोध बिलकुल बेमौके है। ऐसे क्रोध के साथ यदि आप चन्द्रगुप्त महाराज के पास जायँगे, तो कदाचित् आपकी और भी अधिक हानि होने की सम्भावना है। इस लिए आप चन्दनदास की परवा न करें—उसको जो कुछ होना हो, होने दें, और मैं भी अपने मित्र के पीछे पीछे जाऊँगा।"

चन्दनदास के वध की बात निकलते ही राक्षस का सारा क्रोध काफ़ूर हो जाता था; और जहां उनको यह बात याद आ जाती कि, चन्दनदास हमारे लिए मर रहे हैं, और बड़ी उत्सुकता से मर रहे हैं, वहीं उनका मन न जाने कैसा होने लगता था! इस प्रकार अपने मन की बड़ी विचित्र दशा में आख़िर उन्होंने यही निश्चित किया—कि, अब चाहे जो हो, एक बार चंद्रगुप्त के पास जाकर प्रार्थना करनी चाहिए, और यह निश्चय करके अब वे वहां से चलने ही वाले थे कि, अचानक उनके कान में चोपदारों की यह आवाज़ सुनाई दी— "चन्द्रगुप्त महाराज का जयजयकार हो!" और इस आवाज़ के साथ ही चन्द्रगुप्त महाराज उनके पास आकर खड़े हो गये। उनको देखते ही राक्षस के मस्तक में सिकुड़े पड़ गये; उन्होंने अपना मुंह चन्द्रगुप्त की ओर से फेर लिया। चन्द्रगुप्त ने भी उस समय ऐसा ही दिखलाया कि, जैसे राक्षस का यह कार्य उन्होंने देखा ही न हो। इसके

बाद फिर वे चांडालों की ओर देख कर बोले, "क्यों रे, अब तक तुमने इस राजहत्यारे को सूली नहीं दी? तुमको क्या कहा जाय? अब, अभी पहले हमारे सामने इस काम को कर डालो। ऐसे भयंकर अपराधी को ऐसा ही भारी दण्ड चाहिए।" चन्द्रगुप्त का भाषण अभी समाप्त ही हुआ था कि, इतने में एक चांडाल बोल उठा, "महाराज, हम अपना कर्त्तव्य करने के विचार में ही थे कि, इतने में ये अमात्यराज यहां आगये; और इन्होंने हमको यह आज्ञा दी कि, "चन्दनदास को छुड़ाने के लिए मैं महाराज की आज्ञा लेने जाता हूं—तब तक तुम इस का बध मत करो।"

"किस ने? अमात्य राक्षस ने? ठीक ठीक! क्या वे यहाँ हैं?

"हां, चन्द्रगुप्त, यह—मैं यहां मौजूद हूं," राक्षस एकदम आगे बढ़ कर बोले, "मेरी पत्नी और पुत्र को तुम अपने हाथ लेना चाहते हो, इस लिए मैं तुमको उन्हें देता हूं; और स्वयं अपने को भी तुम्हारे हाथ में देता हूं—और क्या चाहिए?"

"अमात्यराज, तो क्या आप यह चाहते हैं कि, इस मनुष्य को क्षमा कर दिया जाय कि, जो राजशत्रु से मिल कर राजहत्या का कारण बना है? यह व्यापार करने वाला वणिक् सदैव ही म्लेच्छों के यहां व्यापार के लिए जाया आया करता है; और इसी तरह से यह पर्वतेश्वर से जा मिला है, तथा उसकी सहायता के लिए ही इसने अपने घर से सुरंग खुदवा कर राजद्वार के आगे, तोरण के नीचे, खन्दक खुदवाया। इतना सब करके भी, फिर कहता क्या है कि, अमात्य राक्षस ने यह सब मुझ से करवाया है। पर्वतेश्वर जिस प्रकार आपका नाम लेता है, उसी प्रकार यह भी आपहा का नाम लेता है। इस से जान पड़ता है कि, पर्वतेश्वर ने इस को अच्छी तरह सिखा-पढ़ा कर तैयार कर रखा है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। इसके सिवाय, आप इस

षड्यंत्र में शामिल होंगे, इसका तो मुझे ज़रा भी विश्वास नहीं होता; और यह बात हम पहले भी प्रकट कर चुके हैं। ऐसी दशा में, अब इस सच्चे अपराधी को जीवित क्यों छोड़ना चाहिए? फिर एक शंका हमको और भी आती है, कि कहीं आपके कुटुम्ब को इसने इधर उधर न कर दिया हो। आपके घर के लोग इस के यहां पर थे ही, ऐसी दशा में यह भी सम्भव है कि, इसने उन लोगों को कहीं म्लेच्छाधिपति के हाथ में न दे दिया हो: क्योंकि इस बात को तो यह दिखलाना ही चाहता है कि, आप म्लेच्छों के अनुकूल होगये हैं। जो हो, इसीलिए हम इससे यह कहते हैं कि, तू अमात्य के बालबच्चों को मेरे यहाँ पहुंचा दे।"

"छिः छिः! चंद्रगुप्त, तुम यह क्या कहते हो? चंदनदास ऐसा आदमी नहीं है कि, जो ऐसे काम करे? इसलिए मैं इसकी जिम्मेवारी लेता हूँ। वास्तव में बात यह है कि, जिस प्रकार मेरी मुद्रा के पत्र लिखकर पर्वतेश्वर को किसी ने धोखा दिया है— उसी प्रकार बेचारे चंदनदास को भी किसी ने धोखा दिया है। आप इसे छोड़ दें, यही मेरी विज्ञप्ति है।"

"अमात्यराज, यह आपकी विज्ञप्ति नहीं; बल्कि मैं आज्ञप्ति ही समझूँगा, परंतु······" चंद्रगुप्त इतना ही कह कर ठहर गये, इसलिए भागुरायण आगे बोले:—

"परन्तु आप अपना पक्षाभिमान छोड़ दें, और अब इस राज्यशकट की धुरी पूर्ववत् अपने ऊपर लें।'

"भागुरायण, जो बात एकवार कह दी, उसे बार २ कहलाने से क्या लाभ? क्या तुमको अब भी यह विश्वास है कि, मैं तुम्हारे समान राजहत्यारों के पक्ष में आ मिलूँगा? मैंने क्या प्रतिज्ञा की है, सो क्या तुमको मालूम है? उसका भंग कभी नहीं होगा" भागुरायण यह सुनकर तुरंत ही कहते हैं:—

"तो फिर चंदनदास को मारने की आज्ञा का भंग कैसे होगा?"

"और फिर" शकटदास बीच में ही कहते हैं, "मेरे मित्र का प्राणघात कैसे कर सकेगा? उसकी पत्नी भी उसके शव के साथ सती होगी; और मैं फिर उस वटवृक्ष के नीचे जाकर फाँसी लगाकर मर जाऊँगा। फिर इतनी देर आप मुझको और इस चन्दनदास की साध्वी पत्नी को आशा में क्यों डाले रहे?"

यह भाषण सुनकर राक्षस एकदम स्तब्ध होगया। आगे अब वे क्या कहें, सो कुछ उन्हें सूझने ही न लगा।

छत्तीसवां परिच्छेद

—*—

राक्षस का निश्चय।
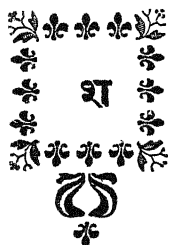
शकटदास का उक्त भाषण मानों राक्षस के मार्म में जा लगा। वे शकटदास को यह कह कर कि चन्दनदास को हम छुड़ा लेंगे, वध-स्थान में ले आये थे। उनका विचार था कि, हम चन्दनदास से यह कहेंगे कि, तुम हमारे बालबच्चों को बचाने के लिए अपने प्राण मत दो; और यह कह कर हम अपने बालबच्चों को शत्रु के हाथ दे देंगे, इससे वे लोग चन्दनदास को छोड़ देंगे; और ऐसा ही विचार करके वे शकटदास को अपने साथ ले आये थे। पर यहां आने पर उन्होंने देखा कि, हमारे उपर्युक्त विचार से कोई भी लाभ नहीं हुआ। चन्दनदास हमारी बात ही नहीं सुनता, और भागुरायण आदि दूसरी ही बात पर तुले हुए हैं। इस लिए अब ऐसी दशा में हम क्या करें, राक्षस कुछ भी स्थिर नहीं कर सके। उन्होंने सोचा कि, इस समय यदि हम चंद्रगुप्त को सिंहासन पर बैठा कर, उसको महाराज कह कर, उसका साचिव्य स्वीकार करेंगे, तभी ये चन्दनदास को छोड़ेंगे, अन्यथा यह हमारा एकनिष्ठ मित्र—हमारा बड़ा भारी भक्त—सूली पर चढ़ जायगा, और यह जब सूली पर चढ़ जायगा, तब इसके पीछे इसकी पत्नी भी सती

हो जायगी, और यह सब वधकार्य किसके लिए होगा? हमारे ही बाल-बच्चों को बचाने के लिए—और यह बात जब लोगों में फैलेगी, तब लोग हमारी और भी निन्दा करेंगे! इस लिए अब हम इसके लिए क्या करें? क्या यह भयंकर वध होने दें? परन्तु यह बात राक्षस के मन में प्रशस्त नहीं जान पड़ती थी; और सच ही है कि, यह बात उनको कैसे अच्छी लगती? परन्तु इस वध को टालने के लिए उपाय क्या है? यही कि, भागुरायण और चन्द्रगुप्त के कथनानुसार उनकी सेवा स्वीकार की जाय! पर यह बात भी राक्षस को मान्य नहीं थी। वे अपनी प्रतिज्ञा कैसे छोड़ते? राक्षस फिर विचार में पड़ गये। उन्होंने सोचा कि, क्या हम अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर इन नन्दवंश घातकों की सेवा स्वीकार करें? क्योंकि ऐसा किये बिना इन लोगों को शान्ति नहीं होगी। हम कहते हैं कि, भाई, तुम हमारे मित्र का वध मत करो, उसका ही यदि वध करना है, तो उसके बदले तुम हमारा और हमारे सारे परिवार का वध कर डालो; पर इससे भी इनकी आत्मा शान्त नहीं होती। तब क्या ये लोग हमको अपना सेवक बनाने पर ही तुले हुए हैं? परन्तु इससे इनको लाभ ही क्या होगा? मैं बिलकुल अन्धा हूँ—मेरे देखते देखते इतना बड़ा षड्यंत्र रचा गया, और वह सफल भी होगया! मैं एक जन्मान्ध मनुष्य की भांति केवल अन्धकार में ही बना रहा। इसलिए अब, ऐसी दशा में, मुझे सचिव बना कर ही ये क्या लाभ उठा सकेंगे? इसके सिवाय, लोगों में ही अब मेरी क्या प्रतिष्ठा रह गई है? सब यही समझ रहे हैं कि, मेरे ही हाथ से इस सम्पूर्ण नन्दवंश का समूल और सशाख उत्खात हुआ है। लोग समझ रहे हैं कि, राजवंश के उच्छेद का यह सारा व्यूह राक्षस ने ही रचा, और अपने ऊपर किसी को शंका न हो, अथवा जब यह नरयज्ञ होने

लगेगा, तब हम उसको देख नहीं सकेंगे—इसी विचार से आप स्वयं ऐन मौके पर वहां से सटक गया—सब लोग यही समझ रहे हैं। इसलिए अब इससे अधिक अपकीर्ति हमारी क्या होगी ? हमारे नाम को जो कलंक लगने वाला था, वह लग चुका। अब तो यही बात रह गई कि, अपना जीव बचाने के लिए जो कुछ करना हो, करें। अपने मित्र का वध टालने के लिए इन नीचों की सेवा स्वीकार करें और नन्दवंश पक्षपात छोड़ें ! पर यह बात क्या हम से त्रिकाल में हो सकेगी ? नन्द-वंश की हत्या तो इन्होंने कर ही डाली—जैसे कोई कसाई चर्र चर्र बकरियों को काट डाले, वैसे ही सब नन्दों को इन्होंने मार डाला ! इस लिए अब इन निर्दय लोगों को चन्दनदास पर दया कैसे आवेगी ? ये उसको मारे बिना कभी नहीं रहेंगे। परन्तु उसका वध टालने के लिए अब और कोई उपाय भी नहीं रह गया है। इसलिए भागुरायण आदि के कथनानुसार हम इन की सेवा स्वीकार करें, तभी यह संकट टल सकता है, अन्यथा नहीं। परन्तु हमने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि, नन्दवंश की हत्या करनेवाले इन अधमों की सेवा हम कभी स्वीकार नहीं करेंगे—सो यह प्रतिज्ञा क्या हम चन्दनदास के वध का निवारण करने के लिए तोड़ दें ? एक ओर मित्रवध हो रहा है, और दूसरी ओर हमारी प्रतिज्ञा भंग हो रही है—अब, इन दो बातों में से हम किसका स्वीकार करें ? प्रतिज्ञा भंग करके क्या हम इन नन्दवंशघातक चांडालों से सख्य करें ? इससे तो मित्र-वध होने दें, तो इसमें क्या हानि ? यही होने दो, परन्तु इन चांडालों से सख्य न करो ! इस प्रकार नाना तरह से विचार करते २ राक्षस ने यही निश्चय किया कि, अपना व्रत रखने के लिए चन्दनदास और उसकी पत्नी की मृत्यु हो जाय, तो भी कोई हानि नहीं, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा का भंग न होने

दिया जाय। प्रतिज्ञा भंग करने से यह संकट अवश्य टल जायगा; परन्तु इस प्रकार अपने व्रत को छोड़ना ठीक नहीं। ऐसा निश्चय करके राक्षस चन्दनदास की ओर मुड़ कर बोले, "भाई चन्दनदास, तुम्हारी मृत्यु टालने के लिए हमने सब कुछ उपाय किया—स्वयं अपने ऊपर भी तुम्हारा संकट लेने के लिए तैयार हुए, परन्तु अब ऐसा जान पड़ता है कि, राजद्रोही और राजघातक पुरुषों की संगति स्वीकार किये बिना तुम्हारे ऊपर का यह संकट नहीं टलता—अब हम क्या करें? लाचारी है। इसलिए अब भगवान् कैलासनाथ का चिन्तन करके तुम मृत्यु को ही स्वीकार करो। और अब हम तुमसे क्या कहें? मेरा कोई उपाय नहीं। अनजान-पन से ही क्यों न हो, किन्तु तुम इन राज-घातक लोगों के जाल में अवश्य फँस गये हो, और अपने घर से सुरंग खोदने की अनुमति तुमने दी है, और इसी का तुमको यह प्रायश्चित मिल रहा है!"

राक्षस का यह कथन सुन कर चन्द्रगुप्त और भागुरायण दोनों अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए। क्योंकि अभी तक उनका ऐसा विश्वास था कि, राक्षस जब यह देखेंगे कि, हमारे बाल-बच्चों के लिए हमारे एक घनिष्ट मित्र की जान जा रही है, तब वे ज़रूर हमारा कहना मान लेंगे, परन्तु अब उनके इस विश्वास पर पूर्णतया हरताल फिर गया! और उनको स्पष्ट ही मालूम हो गया कि, अब किसी उपाय से भी राक्षस का हमारे पक्ष में आना बिलकुल असम्भव है। आर्य चाणक्य ने अब तक राक्षस को अपने पक्ष में खींचने के लिए अनेक प्रयत्न किये, पर उनमें से एक भी सफल नहीं हुआ। अब यदि ये हमसे आकर नहीं मिलेंगे, तो कहीं बाह्य देश में चले जायँगे, और फिर हमारे विरुद्ध अनेक कार्यवाहियाँ करेंगे, इससे तो अब एक यही मार्ग रह गया है कि, इनको पुष्पपुरी में ही कैद कर रखा जाय।

क्योंकि राक्षस यदि कहीं बाहर चले जायँगे, तो मगध देश के शत्रुओं से मिल कर फिर ये अवश्य ही हमारे ऊपर चढ़ाई करेंगे। इसलिए इस अनर्थ को यदि टालना है, तो जहां तक हो सके, राक्षस को पुष्पपुरी से बाहर जाने देना उचित नहीं है। सम्पूर्ण जनता में यह खबर फैला देना तो सहज था कि, पर्व-तेश्वर से मिल कर राक्षस ने ही नन्दवंश की हत्या का सारा षड्यंत्र किया, परन्तु अब लोगों के सामने उन पर मुकदमा चला कर उनको दण्ड देना उतना सहज नहीं है। अधिकरणिक के सामने न जाने कौन कौन सी बातें बाहर प्रकट हों—कुछ कहा नहीं जा सकता। ये सब बातें चन्द्रगुप्त इत्यादि लोगों को पूर्ण-तया अवगत थीं। इसके सिवाय चाणक्य तो राक्षस की योग्यता को और भी अच्छी तरह से जानते थे। उनको विश्वास था कि, जहां एक बार राक्षस पिछली सब बातों को भूल कर चन्द्र-गुप्त को मगधेश्वर मानना स्वीकार कर लेंगे कि, फिर कभी वे अपनी बात को नहीं बदलेंगे, और आगे फिर वे कभी इस प्रकार गाफिल भी नहीं रहेंगे, क्योंकि इस समय उनको यह एक अच्छा धक्का लग चुका है। इधर स्वयं चाणक्य को अब आगे मगध में रहने की बिलकुल इच्छा नहीं थी। उनको इस बात की कुछ भी महत्वाकांक्षा नहीं थी कि, हम चन्द्रगुप्त को सिंहा-सन पर बैठा कर उसका साचिव्य करें। वास्तव में उनको दो ही बातों की इच्छा थी—एक तो यह कि पाटलिपुत्र में आने के पहले, जब कि वे तक्षशिला नगरी में थे, आर्यों पर यवनों का अत्याचार उनसे देखा नहीं जाता था। वह बराबर उनके हृदय में सल रहा था। इसलिए वे इसी विचार से मगध में आये थे कि, यवनों का यह अत्याचार नन्दराजाओं के द्वारा दूर कराया जाय, और आर्यों का राज्य तक्षशिला तक पहुँचा दिया जाय। परन्तु नन्दराजा ने जब उनका अपमान किया, तब नन्द

वंश से बदला लेने की उनको एक और इच्छा हो गई। इस इच्छा को उन्होंने पूर्णतया सिद्ध कर लिया। इसलिए अब दूसरी मुख्य इच्छा, जो उनको यवनों को पराजित कराने की थी, वही बाकी रह गई। इस इच्छा के लिए उन्होंने सोचा कि, अमात्य राक्षस यदि चाहे, तो हमारा यह इच्छा सहज में ही पूर्ण हो सकती है। क्योंकि सचिव के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सब गुण राक्षस में पूर्णतया मौजूद हैं। और इसी लिए चाणक्य चाहते थे कि, राक्षस चंद्रगुप्त के पक्ष में आजायँ। चाणक्य अपने निश्चय के कितने दृढ़ थे, सो अब पाठकों को बतलाने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने राक्षस को अपने पक्ष में लाने के लिए, दूर २ रह कर ही, अनेक उपाय प्रारम्भ किये। भागुरायण को एक बार सिर्फ उनका हृद्गत जानने के लिए भेजा था; फिर उन्होंने चंदनदास का वध दिखलाकर इस निमित्त से राक्षस को लाचार करना चाहा, परंतु यह उपाय भी कामयाब नहीं हुआ।

अस्तु। चंद्रगुप्त और भागुरायण ने जब यह देखा कि, राक्षस; चंदनदास का बध कराने को भी तैयार हैं; परंतु अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने को तैयार नहीं है, तब उनको बड़ा ही अचम्भा हुआ। अब क्या किया जाय? इसी आशय की चेष्टा करके वे दोनों एक दूसरे की ओर देखने लगे। राक्षस उनकी इस चेष्टा का कुछ भी आशय समझ न सके। इस प्रकार कुछ क्षण बीतने के बाद चंद्रगुप्त ने चाँडालों को ठहर जाने का इशारा करके बोले, "चांडालो" तुम अपना नृशंस कार्य अब मत करो। प्रत्यक्ष अमात्यराज यहाँ मौजूद ही हैं, ऐसी दशा में उनके बाल-बच्चों के लिये इस वेचारी श्रेष्ठी के प्राण लेना हमको भी उचित नहीं मालूम होता। कम से कम इसको इस

समय कारागृह में ही रखो, अथवा छोड़ भी दो, कोई हानि नहीं।" इतना उन चांडालों से कह कर चंद्रगुप्त चंदनदास की ओर मुड़े; और बोले, "देखो चंदनदास, तुम अब खुशी से जाओ। लेकिन पाटिलपुत्र छोड़कर और कहीं मत जाओ, न जाने किस समय तुम्हारी आवश्यकता पड़ जाय। जिस समय हम बुलावें, तुरंत आओ।"

इतना कह कर चंद्रगुप्त, राक्षस की ओर बिलकुल न देखते हुए, भागुरायण को लेकर वहां से चल दिये। राक्षस पर नज़र रखनेवाले अन्य लोग मौजूद ही थे। चंद्रगुप्त के चले जाने पर चांडालों ने चंदनदास को छोड़ दिया। चदनदास वहां से छूटकर एकदम राक्षस के पास आये; और उनके चरण पकड़ कर बोले, "आप यहाँ आगये, इसी से हमारा छुटकारा हुआ। अन्यथा मैं आज अवश्य ही निर्वाणपद को पहुँच जाता। मैं क्या जानूँ कि, आगे ऐसा हाहाकार होने वाला है! मुझको इतनी भी बुद्धि न आई कि, मैं आपके पास आकर पूछता कि, आपने मेरे घर से सुरंग खुद्वाने का प्रबन्ध क्यों किया है; और मुझको स्वयम् बुलाकर आज्ञा देने के बदले लिखित पत्र क्यों भेजा? कुछ भी मैंने विचार नहीं किया—बिलकुल अन्धा बन गया। अस्तु। अब आप मेरे घर चलें। अमात्य-पत्नी आपकी बड़ी चिन्ता में हैं। उनको भी वहीं लिए आता हूँ।" राक्षस ने चंदनदास की ये बातें सुनीं; और उनके मन में एक दूसरा ही भाव आया—उनको ऐसा मालूम हुआ कि, जैसे चँदनदास की इन बातों में भी कुछ धूर्तता भरी हो! परन्तु चन्दनदास उनके बड़े भारी मित्र थे, अतएव उनको विश्वास नहीं हो रहा था कि, चँदनदास भी चाणक्य के षड्यँत्र में सम्मिलित होकर हमको धोखा देंगे। इसलिए उन्होंने सोचा कि, इस समय हमको चँदनदास से कुछ भी न पूछना चाहिए; क्योंकि इस

समय यदि हम इस विषय में कुछ चर्चा करेंगे, तो ये सजग हो जायँगे, अतएव इस समय तो इनके साथ हमको इनके घर ही जाना चाहिए; और फिर धीरे २ इनसे सब हाल जान लेंगे। यह सोच कर अमात्य चंदनदास के साथ चल दिये।

राक्षस को अब पूरे तौर पर विश्वास होगया कि, ये दुष्ट जनता में हमारी चाहे जितनी बदनामी उड़ाते रहें; परँतु हमको कारागृह में डालने अथवा खुले न्यायालय में हम पर मामला चलाकर हमको दण्ड देने का इनको साहस नहीं हो सकता। इसलिये अब हमको यहीं रहकर सब सच्ची २ बातें जानने का प्रयत्न करना चाहिये; और इस बात का पता लगाना चाहिए कि, किसको किसको मिलाकर इन्होंने अपना यह षड्यन्त्र सिद्ध किया। लोगों के मन में इस समय हमारे विषय में बहुत बुरे भाव फैल रहे हैं, इसलिए उनके अन्दर विशेष रूप से आना-जाना हमारे लिए उचित न होगा। यह बात राक्षस भली भांति जानते थे। इसके सिवाय यह बात भी उनको मालूम थी कि, हमारे सब कार्य्यों पर चाणक्य की निगाह भी रहेगी। लेकिन उनको इस बात के जानने की बड़ी उत्सुकता थी कि, यह सारा षड्यंत्र सफल कैसे हुआ—हमको अँधा बनाकर इन लोगोंने किन २ आदमियों से षड्यंत्र में सहायता ली। उन्होंने सोचा कि, अब चँदनदास के घर में रहकर हम इन सब बातों का पूरा २ पता लगा सकेंगे, और तदनुसार चन्दनदास के घर में पहुँचते ही इस कार्य का उपक्रम करने का उन्होंने निश्चय किया।

पहले पहल उन्होंने इस प्रश्न पर विचार करना शुरू किया कि, यह इतना बड़ा षड्यंत्र—हमको कुछ भी न मालूम होते हुए सफल कैसे हुआ? अच्छा, यदि यही मान लिया जाय कि, यह सारा षड्यंत्र अन्य लोगों को फोड़ कर ही सिद्ध किया गया,

तो फिर यह सोचना चाहिए कि, इसमें हमारे कौन कौन लोग फूट गये ? पर्वतेश्वर ने जो पत्र दिखलाये, उन पर हमारी मुद्रा तो अवश्य लगी है, इसमें कोई शंका नहीं। ऐसी दशा में हमारा मुद्राधर हिरण्यगुप्त—कि जिसको हम अपना अत्यन्त विश्वास-पात्र समझते थे—अवश्य ही फूट गया होगा। अन्यथा हमारी मुद्रा किसी दूसरे के हाथ में जा ही नहीं सकती। शायद हिरण्यगुप्त न फूटा हो, तो उसने गफलत में आकर हमारी मुद्रा कहीं डाल दी होगी; और इससे वह दूसरे के हाथ लग गई होगी; परन्तु नहीं; ऐसा नहीं हो सकता—षड्यंत्र रचने वाले ने हमारी मुद्रा पाने के लिए प्रयत्न ज़रूर किया होगा। क्योंकि मुद्रा को प्राप्त करना जाली पत्र तैयार करने के लिए एक मुख्य साधन था। और उन जाली पत्रों के बल पर ही ये दुष्ट, पर्वतेश्वर को यहां तक ला सके हैं। इसलिए ऐसा नहीं हो सकता कि, हिरण्यगुप्त की असावधानी से मुद्रा कहीं गिर पड़ी हो; और तब उसको पाकर उसका उपयोग किया गया हो। सच तो यह है कि, जिस समय षड्यंत्र कर्त्ताओं ने जाली पत्र बनाने का विचार किया होगा, उसी समय उन्होंने मुद्रा प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया होगा। और इस प्रयत्न के लिए उन्होंने हिरण्यगुप्त को फोड़ा होगा; अथवा उसके पास से मुद्रा किसी के द्वारा हरण करवा ली होगी। परन्तु नहीं, मुद्रा हरण नहीं करवाई गई, क्योंकि जब जब हमको उसकी आवश्यकता पड़ती रही, हिरण्यगुप्त से हम को बराबर मिलती रही है। हां, यह हो सकता है कि, उन दुष्टों का जब काम पड़ता होगा, तब वे उसके पास से मुद्रा हरण करवा लेते होंगे। परन्तु इस बात की भी सम्भावना कम ही दिखलाई देती है। वास्तव में ठीक तो यही जँचता है कि, उन्होंने हिरण्यगुप्त को ही फोड़ कर अपनी आवश्यकता के अनुसार मुद्रा का उपयोग कर लिया

होगा। इस प्रकार हिरण्यगुप्त को फोड़ लिया हो, तो भी कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु हिरण्यगुप्त को फोड़ लिया, इसका मतलब यह है कि, हमारा एक चक्षु ही फोड़ लिया! और ऐसी दशा में यदि हम अंधे हो गये, तो इसमें भी क्या आश्चर्य? परन्तु हिरण्यगुप्त को फोड़ने के लिए तरकीब? क्या द्रव्य की लालसा से हिरण्यगुप्त फूटा? नहीं, यह सम्भव नहीं मालूम होता—फिर किस तरकीब से फोड़ा गया? दूसरे कौन से मोह में वह फँसा होगा? स्त्रीमोह में तो नहीं फँस गया? परन्तु स्त्रीमोह कहां से आया?

इस प्रश्न के आते ही राक्षस कुछ स्तब्ध होगये। फिर कुछ देर बाद एकदम ताली बजा कर और एक दीर्घ श्वास छोड़ कर बोले, "शाबाश! शत्रुओ, शाबाश! ऐसा मालूम होता है कि, जिसको मैंने उस दुष्ट मुरा के महल में अपना जासूस बना कर अपने सन्निध किया था, उसी के द्वारा तुमने हिरण्यगुप्त को फोड़ा होगा! और यदि यह बात सच है, तब तो यही कहना चाहिए कि, तुमने मेरी ही शस्त्र को उठा कर मेरे ही हृदय में भोंक दिया! अच्छा, यह तो पत्रों के विषय में हुआ, परन्तु राजहत्या कैसे हुई?"

अच्छा, राक्षस को तो अब हम यहीं अपना विचार करने के लिए छोड़ दें, और आगे हम अब चाणक्य की ओर ध्यान दें।

सैंतीसवां परिच्छेद

चाणक्य का विचार।

चाणक्य को आशा थी कि, कम से कम मित्र-वध टालने के लिए ही राक्षस हमारा कथन स्वीकार करेंगे, और चंद्रगुप्त को मगध का राजा मान कर उसका साचिव्य करने लगेंगे, परन्तु यह आशा भी अब चाणक्य की समूल नष्ट होगई। उनको स्पष्ट मालूम होगया कि, राक्षस की सत्यनिष्ठा और नन्दभक्ति के आगे हमारी नीति-निपुणता अथवा कपट-कुशलता की कुछ भी नहीं चल रही है। अतएव अब वे इस विचार में पड़े कि, अब आगे हमको क्या करना चाहिए। उन्होंने सोचा कि, राक्षस को अब खुला रखना ठीक नहीं। उनको यदि खुला रखा जायगा, तो वे किसी न किसी परकीय राजा से जा मिलेंगे; और फिर उसकी सहायता से चन्द्रगुप्त को हटाये बिना नहीं मानेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि, हमने नौ नन्दों को मार डाला है, पर इसका यह मतलब नहीं कि, पृथ्वी बिलकुल निर्नन्द हो गई। क्योंकि राक्षस यदि चंद्रगुप्त का उच्चाटन करके मगध पर फिर से नन्दों का अधिष्ठान कराना चाहेंगे, तो कोई न कोई नन्द नामधारी कुमार अथवा वृद्ध अवश्य ही उनको मिल जायगा। और राक्षस चूंकि इतने दिनों के पराजय से बिलकुल चिढ़े हुए हैं, इसलिए वे सब कुछ कर

उठावेंगे। इसलिए अब कौन सा उपाय किया जाय कि, जिससे राक्षस फिर अपने पूर्वपद को स्वीकार कर लें। अबतक जितने कुछ उपाय किये गये, सब व्यर्थ गये। उनको यह धमकी तक दी गई कि, "देखो—पर्वतेश्वर तुम्हारे पत्र दिखला रहा है, और अब तक जितनी घटनाएं हुई हैं, उन सब से लोगों का यही विश्वास हुआ है कि, नन्दों का यह भयंकर उत्खात तुमने ही किया है। परन्तु लोगों का यह ख़याल भी दूर किया जा सकता है। वास्तव में पर्वतेश्वर को झूठा साबित किया जाय. और लोगों में यह प्रकट कर दिया जाय कि, पर्वतेश्वर ने ही अपने जासूसों के द्वारा यह सारी व्यवस्था कराई, और अब सच्चे बागियों के नाम छिपा कर राक्षस के समान पापभीरु और नन्दभक्त अमात्य का नाम लेता है। इसमें तथ्यांश बिलकुल ही नहीं। तहकीकात के बाद सच्चे सच्चे बाग़ियों का पता लग गया है, और अब उनको यथान्याय शीघ्र ही दण्ड दिया जायगा। इस प्रकार की एक उद्घोषणा यदि नागरिकों में करवा दी जायगी, तो तुम्हारा सारा लोकापवाद तुरन्त मिट जायगा। परन्तु यह सब तभी किया जायगा, जब तुम हमारे पक्ष में आ जाओगे। अन्यथा हम ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि, जिससे लोकापवाद और भी बढ़ता ही जायगा—तुम्हारे विषय में लोकविद्वेष और भी अधिकाधिक बढ़ता जायगा।" इस प्रकार की धमकी राक्षस को दी गई; पर इसकी भी उन्होंने कुछ परवा नहीं की। वे अपना ही हठ पकड़े बैठे हैं। उनके सामने यह भी प्रकट किया गया कि, तुम्हारे प्राणों पर यद्यपि कोई प्रत्यक्ष संकट नहीं आया है, किन्तु तुम्हारे मित्र के प्राणों पर ज़रूर संकट आया है; और तुम यदि अपने मित्र के प्राण बचाना चाहते हो, तो इसके लिए एक ही उपाय है कि, तुम चन्द्रगुप्त का साचिव्य स्वीकार करो। परन्तु इसकी भी

उन्होंने कोई परवा नहीं की। बराबर वे यही कहते रहे कि मित्रवध होजाय, तो भी कोई हानि नहीं; किन्तु नन्दों के राजवंश की हत्या करनेवाले नीच की सेवा हम कभी नहीं करेंगे; और न उसको मगध देश का राजा मानेंगे। शाबाश ! राक्षस, शाबाश ! निस्सन्देह तुम कोई बड़े नीतिनिपुण पुरुष नहीं हो; परन्तु सत्यनिष्ठा और सन्निष्ठा तुम में पूर्णतया दिखाई देती है। तुम्हारे देखते तुम्हारा मित्र तुम्हारे लिए मरनेवाला है; और उसकी पत्नी भी सती होनेवाली है; किन्तु तुम फिर भी अपनी स्वामिभक्ति छोड़ नहीं रहे हो ! स्वामिहत्या करनेवाले की सेवा नहीं स्वीकार कर रहे हो ! और कोई होता, तो अब तक कभी का, स्वपक्ष छोड़ कर, अन्य पक्ष की ओर चला गया होता; परन्तु तुम्हारा यह व्रत नहीं है। और यही जान कर मैंने तुमको चन्द्रगुप्त का सचिव बनाने की प्रतिज्ञा की है। भागुरायण को तुम्हारे विरुद्ध फोड़ने के लिए उनकी महत्वाकांक्षा जागृत की। वारम्वार उनसे यह कहा कि, "तुम और वे, दोनों समान पदवी के हो, फिर भी राजा नन्द राक्षस को अत्यन्त श्रेष्ठ मानता है; और तुमको वैसा नहीं मानता, यह क्यों ?" और ऐसा कह कर उनके मन में यह बात बैठा दी कि सेनापति का महत्व क्या है। इससे भागुरायण के मन में मत्सर उत्पन्न हो गया; और वे फूट भी गये। इसलिए ऐसे मनुष्य को सचिव बनाने से क्या लाभ ? ऐसे आदमी की कीमत भी वैसी ही होनी चाहिए। वास्तव में सचिव तो राक्षस को ही बनाना चाहिए; पर यह हो कैसे ? अब तक की सारी युक्तियां विफल हुईं। राक्षस का निश्चय अटल दिखाई देता है। चन्द्रगुप्त उनकी समझ से एक हीन कुल का व्यक्ति है। और फिर उसमें भी नन्द की हत्या करके सिंहासन पर बैठा हुआ है—ऐसी दशा में राक्षस भला उसकी सेवा कैसे स्वीकार करेंगे ? उसको अपना स्वामी कैसे मानेंगे ?

अच्छा, यदि हम कहें कि, राक्षस को ऐसा ही छोड़ दिया जाय, जो मन में आवे, वही करने दिया जाय, तो कैसा होगा? वे क्या करेंगे? क्या चुप बैठेंगे? कभी नहीं बैठेंगे। वे मलयकेतु से जा मिलेंगे। किन्तु मलयकेतु अकेला मगध पर धावा नहीं कर सकता। उसको किसी न किसी बड़े राजा की सहायता लेनी पड़ेगी, और इस प्रकार की सहायता देनेवाला आज एक ही व्यक्ति दिखाई देता है; और वह व्यक्ति है—यवनों का क्षत्रप सलूक्षस निकत्तर। परन्तु सलूक्षस निकत्तर और मलयकेतु का सगम होजाने पर भी हमको डरने का कोई कारण नहीं। हां, राक्षस के समान हमारा मंत्री यदि उनसे जा मिलेगा, तो सम्भव है कि, कुछ प्रजाजन उनमें जा मिलें। परन्तु ऐसा भी हमको क्यों होने देना चाहिए? हमारे मगध में तो किसी प्रकार का अन्तर्कलह उपस्थित ही न होना चाहिए। इस बात को हमें इस समय बहुत बचाना चाहिए। इसके सिवाय, जब तक हम यहां मौजूद हैं, तब तक चाहे जिस पक्ष से लड़ कर विजय भी प्राप्त कर लेंगे, परन्तु हमेशा तो हम रहेंगे नहीं! इसलिए चन्द्रगुप्त का सारा राज्यप्रबन्ध ठीक ठीक चलते रहने के लिए अमात्य राक्षस ही चाहिए। पर युक्तियों से वे फँसते नहीं। चन्द्रगुप्त को मगध-राज स्वीकृत कराने के लिए उनके समाने हमने कई युक्तियां कीं—सब से बड़ी युक्ति यह की कि, उनके परम मित्र चन्दनदास को मृत्यु के मुख में भी डालने को तैयार हुए; और उनके सामने प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया कि, यदि तुम अपने मित्र को जीवित छुड़ाना चाहते हो, तो इसके लिए एक ही उपाय है कि, तुम हमारे पक्ष में आजाओ. पर फिर भी वे कब्जे में नहीं आये—यहां तक कहने को तैयार हुए कि, "कोई परवा नहीं, तुम हमको भी सूली पर चढ़ा दो, हमारे बाल-बच्चों को सूली पर चढा दो, पर हम तुम्हारी सेवा स्वीकार नहीं करेंगे।"

अब बतलाइये, जो व्यक्ति यहां तक कहने को तैयार है, वह एक मित्र को छुड़ाने के लिए अपनी प्रतिज्ञा को कैसे भंग करेगा? हमारी एक भी नहीं चली। अब ऐसी कारस्तानियों से काम नहीं चलेगा। इसलिए अब हमको स्वयं ही एक बार उनसे एकान्त में मिलना चाहिए, और सारी परिस्थिति का खुलासा करके, यदि सम्भव हो, तो उनको अपने पक्ष में लाने की कोशिश करनी चाहिए। अब आगे अन्य युक्तियां भिड़ाने अथवा व्यर्थ में समय गवाने से कोई लाभ नहीं होगा। उनके आदमियों को फोड़ लेना सहज था। किसी के अन्दर महत्वाकांक्षा और मत्सर जागृत करके उसको फोड़ लिया, किसी को द्रव्य-लोभ से फोड़ दिया, किसी को स्त्रीमोह मे डाल कर फोड़ लिया. किसी के भोलेपन से लाभ उठा कर फोड़ लिया। सारांश यह कि, जिस मनुष्य की जैसी योग्यता देखी, जिसका जैसा स्वभाव देखा, उस पर वैसा ही औषधि-प्रयोग किया, उसके मानसिक व्यंगों को पहचान कर उसके लिए वैसी ही युक्ति भी भिड़ाई, और इस प्रकार अपना काम निकाल लिया। परन्तु अब अत्यक्ष राक्षस से ही भेड़ा पड़ गया है। इस मनुष्य में कोई ऐसा मानसिक व्यंग भी दिखाई नहीं देता। राक्षस के आदमियों को फोड़ लेना दूसरी बात थी, अनावश्यक आत्मविश्वास में अत्यन्त निमग्न रह कर अन्ध बन जानेवाले राक्षस को धोखा दे लेना दूसरी बात थी, पर अब वही राक्षस पूर्णरूप से सावधान हो गये है—उनको मालूम होगया है कि, अपने अन्धत्व के कारण हम इस प्रकार धोखे में आ गये, और इसी कारण इतना हाहाकार मचा; और यह विचित्र राज्यक्रान्ति घटित हो गई। अतएव अब वही राक्षस भली भांति जागृत हो गये हैं, और अपनी आंखें खोल कर सब मामले को समझ रहे हैं—ऐसी दशा में उनको अपने पक्ष में मिलाना अब उस प्रकार सम्भव नहीं है। साम,

दाम, दण्ड, भेद—चार उपाय हैं। इनमें से दाम, दण्ड और भेद का प्रयोग उन पर कुछ भी काम नहीं कर सकता। हां, सामप्रयोग से सम्भव है कि, वे हमारे पक्ष में आ जायँ। परन्तु यह प्रयोग हमारे अतिरिक्त और किसी से ठीक ठीक सध भी नहीं सकेगा। इस लिए यह प्रयोग करने के लिए हमको स्वयं ही आगे आना चाहिए। उनकी सत्यनिष्ठा के आगे हमारी वक्र नीति निपट निरुपयोगी है। उनकी सरलता के सामने हमारी कुटिलता बिलकुल निर्बल है—क्यों भला—हमारी कुटिलता क्यों निर्बल है? जहां कौटिल्य से काम निकले, वहां कौटिल्य; और जहां सारल्य से काम चले, वहां सारल्य का उपयोग करना चाहिए—हमको साध्य की ओर दृष्टि रख कर चलना है—साधनों की ओर नहीं। आज एक साधन काम देता है, तो कल दूसरा देता है, और परसों तीसरा ही देता है। जो साधन जिस समय उपयोगी जँचे, उस साधन का उसी समय उपयोग करके हमको अपना काम निकालना चाहिए। बस, यही तो हमारी नीति है—फिर इस समय इस नीति का उपयोग क्यों न करें? राक्षस से हम खुद मिलेंगे, और उनके सामने सरलता का पूरा ढोंग दिखलावेंगे। नन्दवंश का अभिमान जो उनके हृदय में है, उसको हम और भी अधिक जागृत करेंगे, और उसी के योग से अपना काम निकाल लेंगे, उनसे कहेंगे कि, मगध देश पर शत्रुओं की चढ़ाई का संकट आ रहा है, और उसका यदि इस समय निवारण नहीं करेंगे, तो मगध देश रसातल को चला जायगा, यवन उसको पादाक्रान्त कर लेंगे, छोड़ेंगे नहीं। यह बात उनके मन में बैठा कर उनमें देशभक्ति उद्दीप्त करेंगे, और फिर अपना काम निकाल लेंगे—कभी छोड़ेंगे नहीं। चाणक्य जो प्रतिज्ञा करेगा, कभी सिद्ध किये बिना नहीं छोड़ेगा। चाणक्य की दृष्टि साध्य पर है: साधनों पर नहीं। राक्षस के सामने

भिक्षा मांगने की—उनके सामने अपने उत्तरीय का पल्लव फैलाने की—नौबत भी आजाय, तो भी कोई हानि नहीं। हम को अपने कार्य की ओर देखना है। चन्द्रगुप्त को यदि मगध के सिंहासन पर सुप्रतिष्ठित करना है, तो राक्षस का साहाय्य, राक्षस का आनुकूल्य चाहिए। एक बार उनका आनुकूल्य हो गया, एक बार उन्होंने साचिव्य स्वीकार कर लिया, कि बस कार्य हो गया—फिर वे बदल नहीं सकते……"

चाणक्य के मन के विचार जब कि उपर्युक्त परिस्थिति तक आ रहे थे, सहसा उनके मन में एक नवीन विचार आया; और उस विचार के आते ही पहले पहल उनकी चेष्टा पर एक प्रकार का सन्तोष सा झलकने लगा। ऐसा जान पड़ा कि कोई बहुत ही अच्छा विचार उनके मन में आया। वह विचार इस प्रकार था:—अच्छा, यदि हम स्वयं राक्षस के पास न जावें; चन्द्रगुप्त को ही उनके पास भेजें; और उसी के द्वारा उनसे प्रार्थना करावें, तो कैसा होगा? एक काम करें कि, हम चन्द्रगुप्त के साथ झगड़ा कर लें, ऐसा झगड़ा करलें कि, जो खूब जोर-शोर का हो। फिर वह नाटकी झगड़ा राक्षस के कानों में जावेगा ही; वह झगड़ा जब राक्षस के कानों तक पहुँच जाय, तब फिर चन्द्रगुप्त हमारे विषय में तिरस्कार प्रकट करके राक्षस को अपने पक्ष में लाने की कोशिश करे। वह राक्षस से कहे कि, देखो—नन्दों के मारने की तरकीब हमारी नहीं है, और न भागुरायण की है—यह सब चाणक्य ने किया, और अन्त तक हम से छिपाये रखा। हम लोगों का तो यही विचार था कि, धनानन्द को सिर्फ बन्धन में रखा जाय, परन्तु चाणक्य ने बीच में ही यह गड़बड़ कर दिया—हम को कुछ पता ही न लगने दिया, और इस प्रकार भयंकर राज-हत्या करा डाली। इसलिए आप इस विषय में हम से असन्तुष्ट मत हों,

और जो बातें हो गईं, उनको भूल जाँय। चन्द्रगुप्त राक्षस से ऐसा कहेगा सही, पर क्या राक्षस उसकी बातों में आजायँगे? शायद आ जायँ, और शायद न भी आवें, इसका क्या ठीक? सम्भव है, वे चन्द्रगुप्त से यही कहें कि, "तुम को यदि इतना पश्चात्ताप हो रहा है, राजहत्या की तुम को ख़बर तक न थी, तो अब राज्यलोभ—राजहत्या के कारण, भयङ्कर राज्यहत्या के कारण, ख़ाली होनेवाले इस सिंहासन का लोभ—छोड़ दो, हम किसी न किसी नन्द को लावेंगे—नन्दराजा सर्वार्थसिद्धि को ही ले आवेंगे, वह वन में अभी तपस्या करता होगा, उसको लाकर राज्य पर बैठावेंगे, और इस प्रकार नन्दवंश को जागृत रक्खेंगे—तुम क्यों इस लालच में पड़े हो?" इस प्रकार राक्षस स्पष्ट ही चन्द्रगुप्त से कह देंगे, फिर उस समय चन्द्रगुप्त क्या उत्तर देगा? इस प्रकार काम नहीं चल सकता। राक्षस अब कौटिल्य से कब्जे में नहीं आ सकते। उनके हृदय का व्यङ्ग है स्वामिनिष्ठा और देशभक्ति—बस, इन्हीं दो व्यङ्गों से लाभ उठा कर हमको जो कुछ करना हो, करना चाहिए। परन्तु यह कैसे करें? अब जाली पत्र बना कर अथवा झूठी ख़बरें मँगाकर उनको राक्षस के पास तक पहुँचाने की युक्ति काम नहीं कर सकती। इसलिए हम को अब कोई निराली ही युक्ति निकालनी पड़ेगी। चाणक्य सोचने लगे।

परन्तु चाणक्य को बहुत देर तक सोचने की आवश्यकता ही नहीं रही। जिस बात के होने की उनको सम्भावना मालूम हो रही थी, वह आगे ही आ गई। पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु को जब यह ख़बर मिली कि, हमारे पिता को कैद करके कारागृह में डाल दिया है, तब उसको बड़ा क्रोध आया। और उसने सोचा कि, मगध पर चढ़ाई करके अपने पिता को कैद से छुड़ाना चाहिए, परन्तु उसको यह शंका उपस्थित हुई कि,

यदि हम अकेले ही मगध पर चढ़ाई करेंगे, तो शायद हमको सफलता प्राप्त न हो; क्योंकि मगध की सेना और उसकी व्यवस्था बहुत ज़बरदस्त है। इसलिए उसने सोचा कि, इस समय हमको अपने साम्राज्याधिपति ग्रीक यवनों से सहायता लेनी चाहिए, क्योंकि उन्हीं की मांडलिकता में हमारा राज्य है। यह सोच कर उसने अलिक्सुन्दर बादशाह के प्रतिनिधि सलूक्स निकत्तर को पत्र भेज कर यह प्रार्थना की कि, हमारे पिता को मगधवालों ने धोखेसे बुला कर कैद कर रखा है, और नन्दों की हत्या का झूठा आरोप उन पर लगाया है, ऐसी दशा में आप सेना सहित आकर हमको सहायता दें। हम लोगों के लिए यह अच्छा अवसर है कि, मगध पर धावा करके उन राजहत्यारों को पराजित करें।

सलूक्स निकत्तर तो ऐसे अवसरों के टोह में ही रहता था। क्योंकि उसकी यह बड़ी इच्छा थी कि, यवनों का राज्य जहाँ तक बढ़ाते बने, बढ़ाया जाय। परन्तु अभी तक उसका यही ख़याल था कि मगध देश में राक्षस जब तक अमात्य बने हुए हैं, तब तक हमारी दाल नहीं गलेगी, और इसी कारण अभी तक वह चुप बैठा था।

जिस प्रकार अलिक्सुन्दर की यह महत्वाकांक्षा थी कि सम्पूर्ण ज्ञात जगत् को हम पादाक्रान्त करेंगे, उसी प्रकार उसके प्रतिनिधि सलूक्स निकत्तर को यह महत्वाकांक्षा थी कि सम्पूर्ण आर्यावर्त, विशेषतः गंगानदी के उस पार मगध आदि देशों के सम्पूर्ण राज्यों को जीत कर हम सर्वत्र ग्रीक यवनों का ही शासन प्रचलित करेंगे। उसकी अभिलाषा थी कि सम्पूर्ण आर्य लोगों को अपना सामन्त बना लेना चाहिए। अलिक्सुन्दर ने जिन जिन देशों को झुकाया था, उन उन देशों पर सलूक्स ने भी अपने शासन का जूं रखने की कोशिश की थी, और

इसमें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त कर ली थी। परन्तु नन्दों के राज्य पर आक्रमण करने का उसको साहस नहीं हो रहा था। अलिक्सुंद्र ने मगध पर भी धावा करने का प्रयत्न किया था; परन्तु अनेक कारणों से उसे उस समय सफलता नहीं प्राप्त हो सकी थी। सलूक्स निकत्तर इस विषय में अपने बादशाह से भी आगे बढ़ जाना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि हम मगधराज्य को भी विजय कर लेंगे, और पाटलिपुत्र में यूनानियों की राजधानी स्थापित करेंगे। इसलिए उसने सोचा कि अपनी इस महत्वाकांक्षा को पूर्ण कर लेने के लिए यह बड़ा अच्छा अवसर है। पर्वतेश्वर के कैद होने के कारण मलयकेतु कुपित हो उठा है, और वह हमको अपनी सारी सेना से सहायता करने को तैयार है, ऐसी दशा में हम को क्यों चूकना चाहिए? हम भी अपने ग्रीक, गांधार, काम्बोज, पंजाब, इत्यादि देशों की सेना और हस्तिदल लेकर उससे जा मिलें, तथा इस प्रकार मगधेश्वर को पूर्ण पराजित करके उसके राज्य को जीत लें। बस, ऐसा विचार करके उसने भी अपनी कमर कसी। पहले मलयकेतु से मिलकर उसने खूब मंत्रणा की, उस मंत्रणा में यह विचार उनके सामने उपस्थित हुआ कि हम लोग एकदम ही युद्ध प्रारम्भ कर दें, या पहले एक बार चन्द्रगुप्त को यह सूचना दे दें कि तुम भलमनसाहत के साथ पर्वतेश्वर को छोड दो, अन्यथा हम तुम्हारे ऊपर धावा कर के तुम्हारे राज्य को नष्ट कर देंगे। सलूक्स निकत्तर की यह सम्मति थी कि, एकदम ही मगध पर धावा कर दिया जाय, क्योंकि इस समय वहां बड़ी गड़बड़ी मच रही है, लोगों में असन्तोष फैल रहा है, इसलिए ऐसे अवसर पर विजय मिलने की बहुत सम्भावना है। इधर मलयकेतु का यह कथन था कि यदि हम एकदम धावा कर देंगे, तो मगधवाले बहुत क्रुद्ध हो जायँगे, और

सम्भव है, कहीं हमारे पिता की हत्या ही न कर डालें । इसलिए इस ख़तरे का भी विचार कर लेना चाहिए ।

निकत्तर ने कहा, " मलयकेतु, तुम्हारा कथन तो सच है, पर हमारी राय है कि, यह मौका हाथ से न जाने देना चाहिए । हम यदि पहले सूचना इत्यादि भेजने की झंझट में पड़ेंगे, तो वे लोग सजग हो जायँगे; और फिर सब मिल कर हम से भिड़ने को आ जायँगे । "

" यह सच है," मलयकेतु उत्तर देता है, " परन्तु यदि हम लोग एकदम ही धावा कर देंगे, तो शायद वे हमारे प्रिय पिता की हत्या कर डालेंगे, और फिर हमारे धावा करने से लाभ ही क्या होगा? सामोपचार से यदि वे हमारे पिता को वापस भेज देंगे, तो फिर भी उनसे विश्वासघात करके, हम मगधदेश पर धावा करने के लिए स्वतंत्र ही हैं । अपना काम निकालने के लिए सभी कुछ करना पड़ता है ।"

इस प्रकार निकत्तर और मलयकेतु का संवाद होने के बाद अन्त में यह निश्चित हुआ कि, मलयकेतु अपनी तरफ से एक राजदूत मगधेश्वर के पास भेजे । राजदूत वहां जाकर पर्वतेश्वर को छोड़ देने के लिए चर्चा करे, और यदि उसकी बात न सुनी जाय, तो एकदम मगधदेश पर धावा कर दिया जाय । यह निश्चय हो जाने के बाद मलयकेतु ने कुछ यवनवीरों के साथ शाकलायन नामक एक ब्राह्मण को अपना राजदूत बना कर मगध देश को भेजा । शाकलायन से यह भी कह दिया गया था कि तुम मगधराज की सभा में दौत्यकर्म तो करोगे ही, इसके सिवाय, तुम्हारा यह भी काम होगा कि, तुम मगध देश के लोगों की मनोदशा की भी जांच करो, और इस बात का पता लगाओ कि, वहां ऐसे भी कुछ लोग मिलेंगे या नहीं, कि जो हमारे पक्ष में मिल सकें ।

शाकलायन सागलपुर से चल कर, कहीं भी अनावश्यक रूप से न ठहरते हुए, पुष्पपुरी के फाटक तक आ पहुँचा । परन्तु यहां आकर उसको एकदम भीतर प्रवेश नहीं होने दिया गया। क्योंकि इस बात के लिए सख्त हुक्म दे रखा गया था कि, कोई भी नवीन आदमी जब पुष्पपुरी में आने लगे, अथवा यहां से बाहर जाने लगे, तब उसको फाटक के पास रोक दिया जाय, और वह किस उद्देश्य से आया है, अथवा जा रहा है, इसकी सूचना पहले चन्द्रगुप्त महाराज के पास पहुँचाई जाय, फिर जब वहां से इजाज़त मिल जाय, तब उसको भीतर आने दिया जाय, अथवा बाहर जाने दिया जाय । परन्तु शाकलायन को तो स्वयं मगधराज से ही काम था । इसलिए उसे अपना उद्देश्य बतलाने में कोई आपत्ति नहीं थी । उसने बतला दिया कि, हम अमुक राजा के पास से अमुक काम के लिए आये हैं । उसका समाचार मगधराज को दिया गया, और शाकलायन को अन्दर आने की आज्ञा भी मिल गई ।

शाकलयन ने भीतर जा कर अपना दौत्यकर्म किस प्रकार किया, और उसके कारण अन्य क्या क्या घटनाएं हुईं, इत्यादि वृत्तान्त पाठकों को अगले परिच्छेद में मालूम होगा ।

अड़तीसवां परिच्छेद

संवाहक।
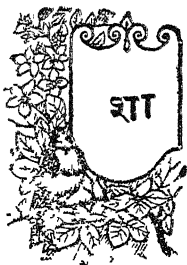
शाकलायन कुछ कम चतुर ब्राह्मण न था। वह सलूक्स और मलयकेतु की ओर से दौत्यकर्म करने तो आया ही था; किन्तु इतना ही काम कर के लौट जाने का उसका बिचार न था। उसने सोचा था कि जिस चन्द्रगुप्त ने धनानन्द के समान राजा और उसके सारे कुटुम्ब को एकदम नष्ट करके स्वयं सिंहासन प्राप्त किया है, उसके विषय में भी लोकमत की जांच करनी चाहिए। लोग उसके विषय में क्या क्या कह रहे हैं, सो अवश्य जानना चाहिए। परन्तु इसके लिए समय चाहिए। अतएव, न हो तो, अपने दौत्यकर्म को थोड़े दिन के लिए स्थगित कर दें—पहले इसी काम को कर लें, क्योंकि केवल दौत्यकर्म करके ही यदि हम चले जायँगे, तो हमको वस्तुस्थिति जानने के लिए कोई मौका ही न मिलेगा। चन्द्रगुप्त हमसे क्या कहेगा? वह यही कहेगा कि, जाओ, जो कुछ तुम को करना हो, करो; और इसी सन्देशे को लेकर फिर हमको लौट जाना होगा। जिस व्यक्ति ने इतना बड़ा षड्यंत्र रच कर उसको बिलकुल अचूक तौर से सफल कर लिया, वह एकदम मलयकेतु के शरण नहीं जायगा, और न दीनतापूर्ण उत्तर ही देगा। इस लिए पहले यदि हम दौत्यकर्म को ही करेंगे, तो तुरन्त ही चन्द्रगुप्त का उत्तर पाकर हमको लौट जाना पड़ेगा—फिर हमको अन्य कार्यों के लिए मौका कैसे

मिलेगा ? परन्तु यह बात शाकलायन को अभीष्ट नहीं थी। उसको तो सभी काम साधने थे। इसलिए ज्यों ही राज-पुरुषों ने चन्द्रगुप्त की आज्ञा के अनुसार शाकलायन को, उसके साथियों सहित, पाटलिपुत्र के अन्दर लेकर, उस स्थान में उतारा कि, जहां ऐसे राजाभ्यागतों के रहने की व्यवस्था थी, त्योंही शाकलायन ने, कुछ ही देर बाद, चन्द्रगुप्त के पास यह सन्देश भेजा कि, "मुझ को मार्गश्रम के कारण इतनी थकावट आ गई है कि, मैं चार छै दिन अपने बैठने-उठने की कोठरी के बाहर भी नहीं निकल सकूंगा। इस कारण अभी मैं तुरन्त राजसभा में उपस्थित होकर महाराज के सन्मुख कोई भी कार्य कथन न कर सकूंगा। इसके लिए क्षमा किया जाऊं। तबीयत ठीक होते ही मैं सेवा में उपस्थित होऊंगा; और अपने स्वामी का सन्देशा निवेदन करूंगा।"

यह सन्देशा आते ही चाणक्य उसका सच्चा अभिप्राय समझ गये; और उन्होंने अपने गुप्तचरों को सख्त हुक्म दिया कि, शाकलायन और उसके साथ आये हुए सब लोगों पर पूरी पूरी निगरानी रखी जावे। उन्होंने ताकीद कर दी कि, ये लोग सुबह से शाम तक जहां जहां जावें, जिससे जिससे बात करें; और जो जो कुछ करें, सब की रिपोर्ट पहर पहर पर हमको मिलती रहनी चाहिए। साथ ही इस बात का भी ध्यान रहे कि इन लोगों को यह न मालूम होने पावे कि, हमारे ऊपर किसी की नज़र है।

इधर शाकलायन ने पहला दिन, खास तौर पर, यों ही व्यतीत किया। उस दिन उसने कोई काम नहीं किया; और न किसी आदमी से कुछ बातचीत की। यहां तक कि, सचमुच ही वह अपने कमरे से भी बाहर नहीं निकला। चाणक्य ने उसका कपट समझ लिया; और एक युक्ति भिड़ाई। उन्होंने एक

संवाहक शाकलायन के पास भेजकर, साथ ही यह सन्देशा भी भेजा कि, " यह हमारा संवाहक अपने कार्य में बहुत कुशल है। आपको अध्वश्रम के कारण जो थकावट आई होगी, उसको यह अपने कौशल से बिलकुल खींच लेगा। हमने सुना कि, आप मार्गश्रम की थकावट के कारण आज दिन भर अपने कमरे से बाहर ही नहीं निकले; और इसी कारण हमने आपकी सेवा में यह अपना आदमी भेजा है। इससे अवश्य सेवा ली जाय।'

संवाहक ज्यों ही शाकलायन के सामने पहुँचा, त्यों ही शाकलायन ने एक बार उसको नीचे से ऊपर तक देखा; और फिर मन में सोचा कि; संवाहक लोग बहुत चतुर होते हैं, इस लिए इसको यदि हम अपने पास रखेंगे, तो ऐसा न हो कि, यह हमारी सब बातें जाकर राजा से बतला दिया करे; इसलिए ऐसे आदमी को पास रखना ठीक नहीं होगा। क्षण भर के लिए ऐसा विचार उसके मन में आया; परन्तु फिर तुरन्त ही उसने सोचा कि, इन लोगों के समान वाचाल और गप्पी भी कोई नहीं होता, इसलिए इसको यदि हम अपने पास रख लेंगे, तो इससे गपशप कर के धीरे धीरे यहाँ का सब भेद भी जान सकेंगे, इसको क्या? जहाँ ज़रा सी तारीफ़ कर देंगे यह आप ही आप सब बातें बतलाता जायगा। इसलिए इसको रख कर अवश्य इसका उपयोग कर लेना चाहिए।

ऐसा विचार करके शाकलायन ने उस संवाहक को अपने पास रख लिया—यही नहीं, बल्कि तुरन्त ही यह सोचकर कि, इससे अपना शरीर अच्छी तरह से मलवाना चाहिए; उसने संवाहक को अपना संवाहन कर्म करने की भी आज्ञा दी। उद्देश्य यह था कि, संवाहक एक ओर तो हमारी देह दाबे; और दूसरी ओर इससे बातचीत करते हुए हम यहाँ का भेद भी लेते जायँ। इधर संवाहक ने भी इस बात पर बहुत ही आनन्द प्रदर्शित

किया कि, हमारे आते ही श्रीमान् ने सेवाकार्य भी लेना शुरू कर दिया। उसने कहाः—"महाराज, अब आप मुझसे सेवा लेने वाले हैं, यह देख कर मुझ को अत्यन्त आनन्द हो रहा है। और आप अब यह भी समझ लीजिये, कि आप की थकावट अब बिलकुल ही दूर भग गई। मुझसे धनानन्द महाराज, स्वयं, सेवा लिया करते थे। मैं जब उनका शरीर दाबने को बैठता, तब वे कभी कभी मुरादेवी को भी यह कह कर चिढ़ा दिया करते थे कि, देखो तुम्हारे हाथों से भी इस संमर्दक के हाथ कितने मुलायम हैं; और ऐसा जब महाराज कह देते, तब मुरादेवी इतनी नाराज़ हो जातीं कि, कुछ पूछिये मत! महाराज फिर खूब हँसते। सो, देखो, उसी मुरादेवी ने आज हम सब का सत्यानाश कर दिया। क्या कहें अब? देखिये, उसी के पीछे महाराज की हत्या हुई। ऐसी दुष्ट स्त्री थी कि, कुछ पूछिये ही मत! उसका सारा हाल यदि बतलाने लगें, तो एक दिन भी पूरा नहीं होगा। परन्तु अब बतलाने से भी क्या लाभ? सब का सत्यानाश होगया, और अन्त में आप भी मर गई! अब यह नवीन राज्य आया है।" इतना कह कर सवाहक ने एक लम्बी सांस छोड़ी; और शाकलायन के पैर दाबते दाबते एकदम स्तब्ध सा हो गया—जैसे उसको बहुत बड़ा शोक हो रहा हो, ऐसा जान पड़ा कि, मानों उसको अपने पिछले सब सुखों का स्मरण आकर अब एक प्रकार का दुःख सा हो रहा है! उसकी यह दशा देखकर शाकलायन ने सोचा कि, यह बड़ा अच्छा मौका है, अब इस समय इससे नाना प्रकार के प्रश्न करके यहाँ की वास्तविक दशा जान लेनी चाहिए। इस समय इससे सहज ही में मालूम हो जायगा कि, यहां के लोगों के मन की दशा आजकल किस प्रकार की है; और वर्तमान राजा के विरुद्ध कौन-कौन से लोग हैं। ऐसा विचार करके वह ब्राह्मण

एकदम उस संवाहक से पूछता है, "क्यों भाई, तुम्हारा नाम क्या है, संवाहक ?"

"महाराज मुझे संमर्दक कह कर पुकारते हैं। बाप-दादे से हमारे यहां यही व्यवसाय चला आता है।"

"ठीक। ठीक। और इसी कारण तो तुम्हारे हाथ में इतना मार्दव है। देखो, अभी तुम्हारे संवाहन-कार्य को पूरी पूरी चौथाई घड़ी भी नहीं हुई; और हमको इतना आराम मालूम हो रहा है, कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। वाह! राजाओं के यहां ऐसे ही गुणी जन होने चाहिएं। तो धनानन्द महाराज की तुम्हारे ऊपर बड़ी कृपा थी? तब तो सचमुच ही कहना चाहिये कि, वे बड़े गुणज्ञ और मर्मज्ञ थे!"

"आप कहते हैं, 'कहना चाहिए'— कहना क्या चाहिए—वे ऐसे ही गुणज्ञ थे! उनके समान गुण का गौरव करनेवाला आज हमको दूसरा कोई दिखाई ही नहीं देता।"

"अच्छा तो संमर्दक, इतना गुणग्राही राजा इस प्रकार कैसे मार डाला गया? लोग क्या उस समय सो रहे थे? तुम्हारे यहाँ क्या बात है, सो तो हम जानते नहीं; पर बाहर लोग यही कहते हैं कि, धनानन्द महाराज पर लोग ही बहुत क्रुद्ध थे, और इसी कारण स्वार्थी लोगों की अच्छी बन आई—इसके सिवाय और क्या हो सकता है?"

"महाराज, आप बहुत भूलते हैं—लोग तो अब तक राज-हत्या के विषय में बहुत ही परितप्त हो रहे हैं। प्रत्येक मनुष्य यही कह रहा है कि, अब जो कोई शासक उत्पन्न हो, उसको चाहिए कि, इन लोगों को पूरा पूरा दण्ड दे। लोग बहुत क्रुद्ध हो रहे हैं, पर करें क्या बेचारे! जिसके हाथ में सत्ता है, वही समझता है कि, हमारा सब कुछ है! "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाला मसला है! भगवान्, तू ही मालिक है।"

"मतलब यह कि, इस समय लोग बहुत विरुद्ध हो रहे हैं?"

"विरुद्ध क्या महाराज, बिलकुल ही बिरुद्ध! इतने विरुद्ध कि, आप सुन कर आश्चर्य करेंगे! परन्तु सेनानायक भागुरायण बिलकुल चन्द्रगुप्त के हाथ में हैं, इसलिए लोगों के विरुद्ध होने से भी कोई लाभ नहीं।"

"लाभ उठा लेना तो लोगों के हाथ में है। लोग यदि मन में लावें तो क्या दूसरे की सेनाएं तुम लोगों की सहायता को नही आ सकतीं?"

"दूसरे कौन लोग हैं, जिनकी सेनाएं आवेंगी? और जो आवेंगी भी, वे राज्यलोभ ही से तो आवेंगी? बिलकुल निरपेक्ष भाव से कौन सहायता कर सकता है?"

"भैया, बिलकुल निरपेक्ष भाव से चाहे कोई न आवें, पर ऐसा अवश्य किया जा सकता है कि, हमको जितनी सहायता की आवश्यकता हो, उतनी लेकर फिर उसको धता बताया जाय।"

"हाँ, यह एक उपाय अवश्य है; पर आता कौन है; और कौन मदद करता है?"

"सो ठीक है; पर क्यों जी संवाहक, कहते हैं कि, तुम्हारी जाति बड़ी चतुर होती है—"पक्षियों में काक, और मनुष्यों में संवाहक" की कहावत मशहूर ही है; और इसी लिए मैं तुमसे पूछता हूँ कि, मान लो, कोई मगध देश के लोगों के बुलाने से नहीं, किन्तु आपही आप तुमको इन नन्दवंशघातकों के पंजे से छुड़ाने के लिए आवे, तो तुम क्या उसको मदद दोगे?"

"स्वामी, हम गरीब लोग क्या मदद देंगे? परन्तु हाँ, यदि आप किसी ऐसे मनुष्य को फाँस लेंगे, कि जो हम लोगों को

झुका सके, तो लोग भी झुक जायेंगे। लोगों का क्या कहना, वे तो सदैव गड्डरिका-न्याय से चला करते हैं।"

"संवाहक, तुम तो बहुत ही चतुर दिखाई देते हो। न सिर्फ़ अपने इस संवाहनकार्य में ही, प्रत्युत राजनीति में भी तुम बड़े कुशल दिखाई देते हो।"

"महाराज, आप भी खूब लाये चतुर! अजी, मैं यदि चतुर होता, तो धनानन्द महाराज और उनके सारे वंश की इस प्रकार हत्या कैसे होने दी होती? मैं चतुर-वतुर कुछ भी नहीं हूं। हां, हम लोगों की जात वाचाल विशेष होती है, और इसी कारण आप को ऐसा मालूम होता है!"

"अहाहा! तुम्हारे इस सुन्दर संवाहन से तो मेरा शरीर बिलकुल ही हलका हो गया। बिलकुल नस नस हलकी होगई। शाबाश। तुम अपना यह इनाम लो!"

यह कह कर शाकलायन ने उसे एक सिंहमुखी सुवर्णवलय प्रदान किया।

यह देखते ही संवाहक के नेत्र विस्तृत हुए। उसको बड़ा आनन्द हुआ। और सिर्फ़ मुँह से ही "नहीं, नहीं" कहते हुए उसने वह कड़ा हाथ में पहन लिया। शाकलायन ने जब यह देखा कि, हमारे इनाम से इस मनुष्य को आनन्द हुआ, तब उसको भी मानो बहुत सन्तोष सा होता हुआ दिखाई दिया।

इसके बाद वह फिर संवाहक से बोला, "क्यों जी संवाहक, क्या यहां के लोगों में ऐसा कोई आदमी है कि, जो बाहर के किसी ऐसे राजा को, जो तुम लोगों का पक्ष लेकर यहां आवे, पूरी पूरी सहायता दे सके? संकोच मत करो। तुम स्पष्ट स्पष्ट मुझसे बतला दो। मैं यह बात किसी को नहीं मालूम होने दूँगा कि, तुमने मुझसे ऐसा ऐसा कहा है। मैं सिर्फ़ यही जानना

चाहता हूँ कि, आज तुम्हारे मगध के लोगों के मन की हालत क्या है ?"

"महाराज, कृपा कीजिए। समय बड़ा कठिन वर्तमान हो रहा है। इस समय दीवाल के भी कान हैं! यही नहीं बतलाया जा सकता कि, कौन किसका जासूस है। मेरा तो ऐसा ख़याल है कि, पुष्पपुरी का प्रत्येक मनुष्य इस समय जासूस ही बन रहा है; और वह उस दुष्ट चाणक्य को पल पल का सब वृत्तान्त देता रहता है। इसलिए आप कृपा करके मुझसे ऐसी कोई भी बात न पूछिये और न मैं आपको बतलाऊँगा। हां, जो सेवा मेरे लायक है, वह आप मुझे बतलाइये, मैं करने को तैयार हूँ। और रात दिन करता रहूँगा।"

"वाह! संवाहक, तुम्हारी यह सावधानी देख कर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। लो, इसके लिए, मैं तुमको इसी की जोड़ी का दूसरा कड़ा इनाम देता हूँ। यह न समझो कि, मैं यह तुमको कोई प्रलोभन दिखला रहा हूँ। मेरा सिर्फ इतना ही मतलब है कि, यह मेरी याद तुम्हारे पास बनी रहे। और देखो, यहां पर तुम्हारे और मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। फिर व्यर्थ में क्यों आपत्ति करते हो? आस-पास भी कोई नहीं होगा, इसका तुम विश्वास रखो। और विशेष क्या कहें?"

"क्या बतलाऊँ स्वामी, पर आप कहते हैं कि बतलाओ ही, इसलिए बतलाता हूँ। परन्तु इस बात का ख़याल रहे कि, यदि किसी को यह मालूम हो जायगा कि, मैंने ऐसा कहा है, तो मेरे प्राणों पर ही आ बनेगी।"

"अजी, नहीं; ऐसा नहीं होगा। मैं इस विषय में पूरी पूरी सावधानी रखूंगा। अब तो कोई आपत्ति नहीं?"

"अच्छा तो स्वामी, बतलाता हूँ, सुनिये। सच तो यह है कि, इस समय अमात्य राक्षस ही यदि आपको मिल जायँगे,

तो बहुत लाभ हो सकता है। और उसमें कारण यह है कि, अमात्य एक बहुत ही सरल पुरुष हैं; और इसी लिए उनकी आंखों में धूल झोंक कर चाणक्य, भागुरायण और चन्द्रगुप्त ने जाली पत्र भिजवा कर आपके राजा को यहां बुलाया। पत्र सब राक्षस के नाम के थे; पर थे सब झूठे! राक्षस को इस विषय में कुछ भी पता नहीं। पर्वतेश्वर महाराज को इस प्रकार धोखे से ले आये; और उनका यहां ऐसा अपमान किया! इधर लोगों में भी यही शोर मचवा दिया कि, यह सारा षड्-यंत्र राक्षस का है। परिणाम यह हुआ कि, पर्वतेश्वर की दृष्टि में और इधर लोगों की दृष्टि में भी, राक्षस ही की बदनामी हुई। अब आप यदि चतुराई दिखलावें, तो राक्षस को अपने पक्ष में मिला लें। लोगों के मन में पहले पहल यद्यपि राक्षस के विषय में द्वेष उत्पन्न हो गया था; पर अब ज्यों ज्यों दिन व्यतीत हो रहे हैं, त्यों त्यों चाणक्य इत्यादि की कारस्तानियां बाहर प्रकट हो रही हैं। और इस कारण बहुत से लोगों को यह भी विश्वास होने लगा है कि, इन्हीं लोगों ने यह सारा भयंकर षड्यंत्र रचकर राक्षस को व्यर्थ में फँसाया था। ज्यों ज्यों यह विश्वास लोगों में बढ़ता जाता है, त्यों त्यों लोग भी राक्षस के अनुकूल हो रहे हैं। उनको आप अपनी तरफ मिलावें, तो कदाचित् आपको सफलता प्राप्त होगी......"

संवाहक का अत्यन्त राजनीतिज्ञतापूर्ण भाषण सुनकर शाक-लायन कुछ अचम्भित सा हुआ। उसने सोचा कि, शायद ऐसा न हो कि, कहीं चाणक्य ने संवाहक के रूप में अपना कोई चतुर जासूस हमारा भेद लेने के लिए भेज दिया हो। अस्तु। जो कुछ हो; अब हमको एक युक्ति करनी चाहिए कि, इस आदमी को अपनी दृष्टि से ओट होने ही न देना चाहिए—इसके सब कामों पर अपने आदमियों के द्वारा पूरी पूरी निगरानी रखवाना

चाहिए । इस प्रकार सोचकर शाकलायन उससे बोला, "संवाहक, तुम्हारा कथन तो हमको बहुत ही ठीक मालूम होता है, परन्तु राक्षस से मिला कैसे जाय, उनसे कहां बातचीत की जाय ?"

"अजी इसमें क्या मुशकिल है? राक्षस अभी पुष्पपुरी में ही मौजूद हैं, और यह उनको मालूम है कि, चाणक्य की उन पर पूरी पूरी नज़र है, परन्तु तो भी वे होशियारी के साथ सब जगह आते जाते रहते हैं। इसलिए आप उनसे मिलें, सब काम ठीक हो जायगा। यदि आपको कठिनाई मालूम होती हो, तो भेट करवा देने का प्रबन्ध मैं कर सकता हूँ।"

शाकलायन कुछ देर स्तब्ध रहा, फिर बोला, "ठीक। ठीक॥ तुम मुझे उनकी भेट करवा दो। फिर मैं देखता हूँ, क्या होता है, क्या नहीं होता।"

इस पर संवाहक ने कहा, "अच्छी बात है। मैं उनसे आप की भेट करवा दूंगा, इसकी जिम्मेवारी मुझ पर रही।"

यह बात शाकलायन को स्पष्ट दिख रही थी कि, हम जो दौत्य करने आये है, उसमें हमको सफलता कभी नहीं मिल सकती, ये लोग पर्वतेश्वर को सीधी तरह से कभी नहीं छोड़ेंगे—कुछ न कुछ भारी कर मांगेगे। और इसी निमित्त को लेकर सलूक्स निकत्तर मलयकेतु के साथ मगध पर चढाई करेगा। इसलिए ऐसी दशा में यदि हम इनके अन्दर कुछ भेद डाल कर आन्तर्कलह भड़का सकेंगे, तभी हमारे पक्ष को सिद्धि मिलने की सम्भावना है—अन्यथा निष्फलता होने का ही विशेष भय है। अतएव हमको राक्षस के सम्बन्ध में अवश्य ही इस बात की जांच कर लेनी चाहिए कि, यह क्या बात है, और यदि सम्भव हो, तो उससे भेट भी कर लेनी चाहिए। ऐसा शाकलायन ने विचार किया। अस्तु। प्राचीन काल में संवाहक लोग बड़े

कार्यपटु होते थे, और चूंकि उनका प्रवेश भी सब जगह हो सकता था, इसलिए सब जगह की ख़बरें भी मिलने की उनको विशेष सम्भावना रहती थी ।

उपर्युक्त रीति से संवाहक और शाकलायन का सम्भाषण होने के बाद शाकलायन ने और भी कितनी ही बातों के सम्बन्ध में उससे चर्चा निकाली। संवाहक बड़ा ही वाक्पटु था । उसने सभी बातों में अपनी ही छाप बैठाई। इसके सिवाय शाकलायन से इतनी और जमा दी—"हमको तो भाई इन चाणक्य और चन्द्रगुप्त इत्यादि के कार्य बिलकुल ही पसन्द नहीं आते। हमारी प्रवृत्ति तो विशेष कर भगवान् बुद्ध के अहिंसा धर्म की ओर है। और यदि हमको ऐसा दिखाई दिया कि, अब फिर से नन्दवंश के सिंहासन पर आने की कोई आशा नहीं, तो मैं तो भाई बुद्ध-भिक्षु हो जाऊंगा। मुरादेवी की दासी वृन्दमाला तो कभी की बौद्ध संघ में शामिल भी हो गई । उसने अभी हाल ही में जोग ले लिया । उसी का अनुकरण करने की मेरी भी इच्छा है ।" इतना संवाहक ने शाकलायन से आप ही आप कहा।

शाकलायन ने संवाहक को बिदा किया। परन्तु हां, उससे यह कहा कि, तुम अब हमारे इस भवन से बाहर और कहीं न जाओ। मुझ को तुम्हारी बहुत आवश्यकता है, और यदि तुम्हारी सहायता से हमको सफलता प्राप्त हो जायगी, तो तुम्हारा बड़ा कल्याण होगा, इत्यादि बातें उससे कह कर शाकलायन ने अपने ही यहां उसके रहने का प्रबन्ध कर दिया ।

इसके बाद फिर शाकलायन इस बात का विचार करने लगा कि, अब राक्षस से भेंट किस प्रकार की जाय। अपने यहां राक्षस को लाना सर्वथा अनिष्ट है। अच्छा, यदि हमी उनके यहां जावें, तो यह भी अनिष्ट ही है। ऐसी दशा में किया क्या जाय ? शाकलायन बड़े विचार में पड़ा। साथ ही उसने यह भी

सोचा कि, उधर मलयकेतु और राक्षस ने तो हमको बहुत शीघ्रतापूर्वक काम समाप्त करके बुलाया है, ऐसी दशा में ढील-ढाल करके अधिक दिन लगाना भी अनुचित ही होगा। इसके सिवाय हमारा यह बहाना भी बहुत दिन नहीं चल सकता कि, हम मार्ग की थकावट के कारण इतने बीमार पड़ गये; और इतनी देर लग गई। अस्तु। अब जो कुछ करना-धरना हो, हम को शीघ्र ही कर डालना चाहिए। संवाहक की सहायता से हम भेष बदल कर—उसी छद्म भेष में—राक्षस से मिलने जावें; और जो कुछ बातचीत करना हो, कर आवें।

ऐसा विचार करके शाकलायन ने फिर संवाहक को बुलाया; और अपना विचार उससे बतलाया। संवाहक को वह विचार बहुत पसन्द आया। और उसने शाकलायन से कहा कि, आप संवाहक का ही भेष धर कर चलें, तो बहुत ठीक होगा। परन्तु शाकलायन को उक्त भेष धारण करने में पहले कुछ हिचकिचाहट मालूम हुई; उसने सोचा कि, हम जाति के बिलकुल कट्टर ब्राह्मण हैं; ऐसी दशा में संवाहक के भेष से हमारा कहीं जाना बहुत ही अनुचित है; परन्तु फिर तुरन्त ही उसने सोचा कि, इस समय हम राजनैतिक मामले में लगे हुए हैं, ऐसे समय में सब प्रकार के बन्ध-निर्बन्ध और सब प्रकार के संकोच हमको दूर ही हटा देने चाहिएँ। बस, यही सोच कर शाकलायन ने संवाहक की सलाह स्वीकार कर ली; और तुरन्त ही वेष बदलने की भी तैयारी की। संवाहक, इस विचार से कि, अन्य किसी के मन में कोई शंका उत्पन्न न हो, अपने एक और साथी संवाहक को वहां बुला लाया; और उसको शाकलायन के घर में रख दिया। उसके कपड़े शाकलायन ने पहन लिये; और फिर दो के दोनों संवाहक उस घर से बाहर निकले। वहां से चल कर वे दोनों संवाहक उस स्थान पर आये कि जहां राक्षस रहते थे।

संवाहक रूप से गये हुए शाकलायन और राक्षस की भेंट हुई, तथा उन दोनों में जो बातचीत हुई, वह बहुत ही मज़ेदार थी।

राक्षस की सच्ची योग्यता उसीसे मालूम हुई।

उन्तालीसवां परिच्छेद

राक्षस और शाकलायन ।
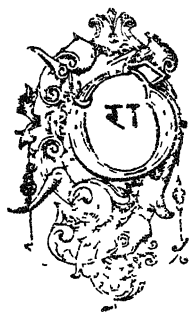
राक्षस ने अभी तक पाटलिपुत्र को नहीं छोड़ा था। यही नहीं, बल्कि अत्यन्त धैर्य के साथ अब वे फिर अपने बालबच्चों को लेकर अपने असली घर में ही जाकर रहने लगे थे। चन्दनदास को जब चन्द्रगुप्त ने छोड़ दिया, तभी राक्षस को पूर्णतया विश्वास होगया कि, अब हम को खुल्लमखुल्ला किसी प्रकार का दण्ड देने का इन को साहस नहीं हो सकता; और न अन्य ही किसी प्रकार से तंग करने का इनका इरादा जान पड़ता है। इस के सिवाय ऐसा करना इनके लिए सम्भव भी नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि, हमारे विषय में इन्होंने लोकमत कलुषित कर दिया है; परन्तु लोकमत लक्ष्मी की तरह, अथवा अस्तकालीन सूर्य से रंजित मेघों के समान क्षणिक है। अब यदि ऐसे ही धैर्य के साथ अड़े रहेंगे, तो सम्भव है, लोकमत भी ठीक हो जाय। आशा तो ऐसी ही है कि, लोग एक वार फिर हमारे ही पक्ष में आवेंगे, और अन्त में हम फिर नन्दवंश की प्रतिष्ठा कर सकेंगे। यह तो जो कुछ हो; परन्तु इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं है कि, यदि हम यहां से भग जायँगे, तो हमारे विषय में यह सन्देह, जो इन्होंने लोगों के मन में भर दिया है, और भी अधिक स्थायी हो जायगा।

इस प्रकार का सारा विचार करके अमात्य राक्षस फिर अपने असली घर में ही आकर रहने लगे थे। परन्तु हां, इतनी अब उन्होंने सावधानी रखी थी कि, अपने आसपास के लोगों को भली भांति जांच कर तब उनसे वे यथोचित व्यवहार किया करते थे। हिरण्यगुप्त अब उनके परिवार में नहीं था। राक्षस की बहुत इच्छा थी कि, हिरण्यगुप्त एक बार मिल जाय, तो उससे सब सच्चा सच्चा वृत्तान्त मालूम किया जाय; पर उसका कहीं पता ही नहीं था— वह न जाने कहां निकल गया था, अथवा जान-बूझ कर भेज दिया गया था। राक्षस के मन में बार बार यही आता कि, देखो, हम यहाँ मौजूद ही रहे; और हमारे नाम से ऐसे कपट-कर्म होते रहें; हमारे विश्वासपात्र अनेक मनुष्य हमारे विरुद्ध खड़े होगये, और उन्होंने राजवंशका विध्वंश कर दिया; और हमको कुछ भी मालूम न होने पाया—इससे अधिक लज्जा की और कौन सी बात हो सकती है ? बारम्बार यही विचार राक्षस के मन में आता, और वे मन ही मन बहुत खिन्न होते, पर अब केवल खिन्न होने से ही क्या लाभ ? कोई न कोई प्रबन्ध होना चाहिए। इस लिए उन्होंने यह विचार किया कि, अब हम घर में ही रह कर सब काम-काज देखें। अस्तु। राक्षस का घर जब नज़दीक आगया, तब संमर्दक शाकलायन से कहता है, "महाराज, आप से एक महत्वपूर्ण प्रार्थना करनी है। अर्थात् आप राक्षस से यह न प्रकट होने दें कि, मुझको चाणक्य अथवा चन्द्रगुप्त ने आप के पास भेजा है। क्योंकि यदि आप यह बात वहाँ प्रकट कर देंगे, तो सारा मामला बिगड़ जायगा। जहां राक्षस को यह मालूम हो गया कि, मैं चाणक्य का आदमी हूँ, कि, तुरन्त ही फिर उनको यह आशंका हो जायगी कि, मैं आप को किसी कपट के कारण उनके पास ले आया हूँ। इस लिए यदि आप ऐसी

कोई बात वहां प्रकट नहीं करेंगे, तो सारा मामला ठीक हो जायगा।"

संवाहक और संवाहकरूपी शाकलायन जब राक्षस के यहाँ पहुँचे, तब पहले स्वाभाविक ही उनको राक्षस के पास तक अपनी खबर पहुँचाने में भी बड़ी कठिनाई पड़ी। क्योंकि राक्षस ने अब अपने आदमियों को इस बात की सख्त ताकीद कर दी थी कि, कोई भी नवीन आदमी आवे, जब तक पहले उसकी अच्छी तरह जांच न कर लो, उसको हमारे पास तक मत ले आओ। परन्तु आज जब राक्षस के पास यह खबर आई कि, "आप के दर्शन के लिये दो संवाहक आये हैं; और प्रार्थना करते हैं कि, बहुत महत्व का कार्य है, इस लिए दर्शन हो; तब राक्षस ने क्षण मात्र विचार किया; और फिर किंचित् हँस कर अपने प्रतीहारी से कहा कि, "अच्छा, उनको ले आओ"

प्रतीहारी तुरन्त ही उनको भीतर ले आया। उनके सामने आते ही राक्षस ने एकबार उनकी ओर ध्यान से देखा, और फिर इस प्रकार गर्दन हिलाई कि, जैसे किसी को अपनी किसी पूर्व-शंका के विषय में यह मालूम हो कि, हाँ, हमारी वह शंका ठीक थी, और फिर वह उस पर गर्दन हिलावे, उसी प्रकार राक्षस ने उन दोनों व्यक्तियों को देख कर गर्दन हिलाई, और फिर उनसे बोले, "आप लोग यदि सचमुच ही संवाहक होते. तो आप के लिए कदाचित् ऐसा कह कर कि, "आइये, बैठिये," सम्मान देना शायद अनुचित दिखाई देता, परन्तु वास्तव में आप वैसे नहीं है। किन्तु यह केवल वेषान्तर करके आप मेरे यहाँ किसी खास उद्देश्य से आये हैं, और यह बात मैं जान गया हूँ। इसी लिए मैं आप से आदरपूर्वक कहता हूँ कि, आइये—बैठिये। बैठिये; और जो कुछ कार्य हो, कहिये। मेरे हाथ से अब कोई

कार्य होने योग्य रह ही नहीं गया है, परन्तु फिर भी आप आये हैं, इस लिए आपकी सुन तो अवश्य ही लेनी चाहिए ।"

राक्षस का यह कथन सुनकर दोनों संवाहक एक दूसरे की ओर देखने लगे। शाकलायन को बड़ा आश्चर्य हुआ कि, इन्होंने हमारा छद्म वेष पहचान लिया; परन्तु फिर भी इस विषय में कोई विशेष कथन न करते हुए वह राक्षस से बोला, "आप का पहचान लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि प्रत्येक का छद्म पहचान लेना और उस पर कोई युक्ति करना आप का व्रत ही है। अस्तु; मैं भी अब इस विषय में कुछ विशेष नहीं कहूँगा। प्रकट रूप से आपके पास आना ज़रा ख़तरे की बात मालूम हुई, और इसी कारण हम अपने इस संवाहक की सहायता से इस प्रकार आपके दर्शन को आये। अब मैं आपको यह बतलाऊंगा कि, मैं कौन हूँ, परन्तु पहले यह आश्वासन मिलना चाहिए कि, इस स्थान में बातचीत करने में कोई हानि तो नहीं ?"

इस पर राक्षस ने कहा, "बिलकुल विस्रब्धरूप से कहिये। आपका किस देश से आना हुआ ? और क्यों ? आप संवाहक नहीं, कोई राजपुरुष हैं।"

"अमात्यश्रेष्ठ, हां—मैं राजपुरुष हूँ, और स्वामिकार्य के लिए आया हूँ।"

"वह कौन सा कार्य है ? और आप का स्वामी कौन है ? आप बिलकुल विश्वस्तरूप से कहिये।"

"हां, अब मैं विश्वस्तरूप से ही कहूँगा। मैं पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु, और—नहीं, उसी के यहां से आया हूँ।"

राक्षस ने ताड़ लिया कि, यह हम से कुछ छिपा रहा है; परन्तु प्रकटरूप से कुछ भी न दिखलाते हुए वे बोले, "उसके यहां से आप मेरे पास आये हैं ? अवश्य, मेरे चारों ने आकर

बतलाया था कि, शाकलायन नाम के कोई मंत्रिवर उनके यहां से आये हैं। ठीक है। तो क्या मलयकेतु इस बात पर क्रुद्ध तो नहीं हुआ है कि, मैंने ही उसके पिता को धोखे से यहां बुलवा कर कैद में डलवा दिया? अथवा मुझ को पकड़ लाने के लिए ही उसने आपको यहां भेजा है?"

"नहीं; नहीं, अमात्यराज, आप ऐसा कभी न कहिये। मलयकेतु आप पर क्रोधित है सही, और उसका क्रोधित होना स्वाभाविक है, परन्तु यहां आकर मैं ने जो वृत्तान्त सुना है, उससे मुझे मालूम होगया कि, पर्वतेश्वर महाराज को पकड़ने और उनको यहां बुलाने में आप का बिलकुल ही सम्बन्ध नहीं है, और इसी कारण मैं इस समय आपके पास आया हूं।"

"अच्छा, यह आपको कैसे मालूम हुआ, क्योंकि सम्पूर्ण पाटलिपुत्र में तो यही ख़याल फैला हुआ है कि, राजवंश की हत्या मैंने ही कराई है, और म्लेच्छाधिपति को मगध को राज्य देने के लिए मैंने ही यहां बुलाया था, परन्तु चाणक्य और चन्द्रगुप्त की सावधानी के कारण यह सब मामला उलट गया, और पर्वतेश्वर को कैद में आना पड़ा। आम तौर पर यही बात मशहूर है, परन्तु आपको इससे भिन्न वृत्तान्त बतलाने वाला ऐसा कौन मिल गया?"

"अमात्यराज, ऐसा बतलानेवाला एक नहीं है, अनेक हैं। आज भी पाटलिपुत्र में ऐसा विचार रखनेवाले अनेकों आदमी हैं कि, जो समझते हैं कि, आपके हाथ से ऐसा कार्य कदापि नहीं हो सकता। उन लोगों की अब तक आप में दृढ़ श्रद्धा है।"

"वाह! इससे तो ऐसा जान पड़ता है कि अब भी कुछ विचारशील मनुष्य मगध में हैं! अस्तु। और कहिये?"

"इन लोगों ने बिना कारण, आपका कुछ भी सम्बन्ध न होते हुए, आपके विषय में इतना अपवाद उत्पन्न कर रखा है, अतएव

आप इस विषय में इन पर रुष्ट अवश्य होंगे, और उस अपवाद को दूर करने के लिए भी आप उद्योग करने को उत्सुक होंगे, तथा इन्हीं सब बातों को जानकर मैं इस समय आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ ?

"ठीक है। परन्तु आप जानते ही हैं किसी कार्य के लिए उत्सुक होना और उस कार्य को कर दिखलाना, इन दोनों बातों में कितना अन्तर है।"

"यह तो साधारण लोगों की बात हुई, परन्तु आपके सामान असाधारण लोगों के लिए क्या असम्भव है ?"

"मैं कहां का असाधारण ? मैं तो साधारण से भी साधारण हूँ। और इस बात का प्रमाण यही दुर्घटना है, जो अभी हो चुकी। अस्तु। आप यहां कैसे आये ? अभी कुछ मालूम नहीं हुआ। कोई आपत्ति न हो, तो सुनने की मेरी इच्छा है।"

"मैं मलयकेतु की ओर से चन्द्रगुप्त के पास सन्देश लेकर आया हूँ। वह सन्देश यही है कि, या तो हमारे पिता को बहुत जल्द छोड़ कर एक कोटि 'होन' (स्वर्णमुद्रा) कर दो, अथवा युद्ध के लिए तैयार हो।"

"अच्छा ! यह सन्देशा मलयकेतु ने चन्द्रगुप्त को भेजा है ?"

"हां, उसी ने भेजा है, और उसको चन्द्रगुप्त तक पहुँचाने के लिए मुझे दूत बना कर भेजा है। परन्तु आप को इस पर आश्चर्य क्यों हुआ ?"

"शलभ यदि दीप-ज्योति पर आकर आपही आप गिरे, तो आश्चर्य किसको नहीं होगा ?"

"आप मलयकेतु को शलभ की उपमा देते हैं; पर वह ऐसा अविचारवान् नहीं है।"

"वह यदि अविचारवान् न होता, तो अकेले अपने ही बल पर चन्द्रगुप्त के पास ऐसा संदेशा कभी न भेजता। हां, उसको

यदि किसी अन्य बलवान् की सहायता मिल जाय, तो सम्भव है कि, कुछ कर सके।"

"हां, ऐसी सहायता की आवश्यकता है; और इसी लिए मैं आपकी सेवा में आया हूँ। आपकी सहायता यदि मिल जायगी, तो सारा कार्य यथोचित रूप से पूरा हो जायगा।"

"मैं ऐसी कौन सी सहायता कर सकता हूँ?" राक्षस ने उससे पूछा।

"आप सब कुछ सहायता कर सकते हैं? यद्यपि इतना लोकापवाद आपके विरुद्ध उठ रहा है, तथापि, अब भी आप जो कुछ कर सकते हैं, वह अन्य कोई नहीं कर सकता।"

"अच्छा, यह तो जान लिया। पर यह तो बतलाइये, मलयकेतु की ओट में और कौन है?"

"और कौन हो सकता है?" शाकलायन आश्चर्य से राक्षस की ओर देखते हुए बोला।

"देखिये महाराज, आप कहते हैं कि, आप विश्वस्तरूप से मेरे पास वार्तालाप करने को आये है, इस लिए सचमुच ही यदि आप इसी उद्देश्य से आये हैं, तो सत्य सत्य कहिये। मलयकेतु को जब तक किसी दूसरे राजा ने सहायता देने का वचन न दिया होगा, तब तक वह मगध पर सवारी करने का विचार ही मन में नहीं ला सकता था; और सच बतलाइये, उसको सहायता देने का वचन यदि कोई दे सकता है, तो वह म्लेच्छ क्षत्रप सलूक्षस ही है। कहिये, उसी ने तो सहायता देने का वचन दिया है?"

शाकलायन ने समझा कि, अब इस विषय में विशेष हां-नाहीं करने से कोई लाभ नहीं है, इस लिए उसने कहा, "हां, आप कहते हैं, यह बात ठीक है। सलूक्षस ने उसको सहायता देने का वचन दिया है। जिस प्रकार सलूक्षस ने उसको बाहर

से सहायता देने का वचन दिया है, उसी प्रकार भीतर से यदि आप की सहायता मिल जाय, तो बहुत अच्छा हो। इसमें सन्देह नहीं कि, आज दिन बहुत से लोग आपके पक्ष में नहीं हैं, परन्तु लोकमत की आज जो दशा है, उससे साफ मालूम होता है कि, बहुत जल्द सब लोग आपके पक्ष में आजायँगे। देखिये, यदि आप सहायता देंगे, तो आपका भी कार्य होगा—आप चाणक्य और चन्द्रगुप्त से अपना बदला ले सकेंगे। इसके सिवाय उनका पराभव होने से मलयकेतु को भी अपने पिता के वैरपरिशोध करने का सन्तोष होगा?......"

"और यवन क्षत्रप सलूक्षस निकत्तर को क्या लाभ होगा?" राक्षस ने मस्तक पर सिकुड़े डाल कर, सिर मल कर, शाकलायन की ओर विचित्र दृष्टि से देखते हुए पूछा। इस प्रश्न के करते समय उनकी आवाज भी कुछ विचित्र सी होगई थी। शाकलायन ने तुरन्त जान लिया कि, राक्षस का यह भाषण व्याजभाषण है; और इस कारण वह कुछ देर तक चुप ही रहा।

यह देखकर राक्षस फिर उससे कहते हैं, "क्यों जी, आप बिलकुल ही कुछ नहीं बोल रहे है—सलूक्षस निकत्तर मलयकेतु को सहायता दे रहा है सही; पर इसमें उसका कोई न कोई उद्देश्य होना चाहिए या नहीं? इससे उसको क्या लाभ?"

"उसको क्या लाभ? कुछ भी नहीं। केवल मित्रता के तौर पर वह सहायता देगा।"

यह सुन कर राक्षस हँसे; और शाकलायन की ओर देख कर बोले, "आपको मलयकेतु और सलूक्षस दोनों ही ने नियुक्त करके दैत्यकर्म के लिए यहां भेजा है; ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि, आप उनके मंत्रिवर हैं; फिर आप कैसे यह समझते हैं कि, सलूक्षस का इसमें कुछ भी उद्देश्य नहीं है? आपको सच्ची दशा

सब मालूम होनी चाहिए। इसलिए आपका यह कहना बिलकुल व्यर्थ है। सलूक्षस बड़ा महत्वाकांक्षी है। वह बहुत दिन से मगधदेश को जीतने की अभिलाषा रखता है। ऐसी दशा में यदि वह आपको सहायता देने को तैयार हुआ है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।"

"अच्छा, वैसा ही सही, तो इससे क्या हुआ!?" शाकलायन एकदम बोला।

"क्या हुआ? बहुत कुछ हुआ। ऐसा कहिए कि, क्या नहीं हुआ?" राक्षस ने उसे कठोरता के साथ उत्तर दिया; और फिर वे उसकी ओर कठोर दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद वे फिर उससे बोले, "अजी, आपको क्या मालूम नहीं है कि, ये यवन लोग सारा आर्यावर्त और आर्यों के सारे राज्य अपने अधिकार में लेने की इच्छा कर रहे हैं? तभी तो उन्होंने पर्वतेश्वर को जीत कर अपना मांडलिक बना लिया है? और तभी तो उन्होंने पर्वतेश्वर के यहां अपने यवन और म्लेच्छ सैनिक रखे हैं? उन लोगों का सामन्तत्व स्वीकार करने में पर्वतेश्वर को क्या लाभ है, सो वही जाने; पर मेरी दृष्टि से तो यह बात बिलकुल अभीष्ट नहीं है।"

"क्यों भला, अभीष्ट क्यों नहीं है? अपने हाथ से यदि व्यवस्था......"

"शान्तम् पापम्!—अजी आप यह क्या कहते हैं? अपने हाथ से यदि व्यवस्था न हो सकती हो, तो अपनी समानता के सजातियों की सहायता लेनी चाहिए; परन्तु विदेशियों को—अलिकसुन्दर के रखे हुए क्षत्रपों को—सहायता के लिए बुला कर अपने शत्रुओं को दबाना कहां की बुद्धिमत्ता है?"

"पर इसके सिवाय दूसरा उपाय कौन सा है?" शाकलायन ने पूछा।

"दूसरा उपाय यही कि, चुप बैठो ! दूसरा उपाय और कौन सा ?"

"तो फ़िर आप से सहायता मिलने की हमको आशा नहीं ?"

"बिलकुल नहीं ! उन दुष्टों ने राजवंश की हत्या कर के मेरे नाम को कलंक लगाया है सही, और उसका बदला लेने की मुझको उत्कट इच्छा भी है; पर उसको तृप्त करने के लिए मैं सलूक्स निकत्तर के समान विदेशियों की सहायता कभी नहीं लूंगा । शिव ! शिव ! ऐसी इच्छा होना ही मानों सत्यानाश का द्वारा है ।"

किन्तु क्षत्रप के मन में कोई भी बुरा भाव नहीं है । उसका उद्देश्य सिर्फ इतना ही है कि, मलयकेतु के पिता के अपमान का बदला लेने के लिए उसको सहायता दी जाय, इसके सिवाय उसको और किसी बात का लालच नहीं है ।"

"मन्त्रिवर, यह कहना तो बिलकुल धृष्टता ही होगी कि, आप को राजनैतिक मामलों में उतना ज्ञान नहीं है, इस लिए ऐसा कहने का साहस तो मैं कभी नहीं कर सकता । क्योंकि मैं समझता हूँ कि, आप सब जानते हैं; परन्तु आप उनके सेवक हैं, इस लिए आप को इसमें कोई विशेषता नहीं जान पड़ती, यही क्यों ? सारा आर्यावर्त भी चाहे सलूक्स अपने अधिकार में लेले, तथापि आप को कुछ नहीं मालूम होगा । किन्तु मेरे मन की अभी वह अवस्था नहीं हुई । मैं यह कभी नहीं चाहता कि मगधदेश पर यवनों का राज्य हो जाय, अथवा यवनों के सामन्तत्व में आनन्द माननेवाले पर्वतेश्वर का राज्य हो जाय । और ऐसा होने के लिए मैं कदापि सहायता नहीं दे सकता । मलयकेतु के पिता और सलूक्स, दोनों ही की मगधदेश पर बहुत दिनों से नज़र है,

और यह बात मुझे मालूम है। ऐसी दशा में मगध देश के जीतने में मैं उनको सहायता कैसे दे सकता हूँ?"

"तब फिर क्या आप को यही पसन्द है कि, मगधराज्य इन राजहत्यारों के ही हाथ में रहे?"

"यह पसन्द कैसे होगा? परन्तु हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि, यवनों, अथवा यवनों की गुलामी स्वीकार करने-वालों के हाथ में जाने की अपेक्षा यही अच्छा है।"

"अमात्यराज, मुझे इस बात की कल्पना भी न थी कि, आप ऐसा कहेंगे। मैं समझता था कि, आपके सामने बात निकालने भर की देरी होगी कि, आप हमारी सहायता के लिए तैयार हो जायँगे; परन्तु आपकी बातों से मालूम होता है कि, आपके विचार बिलकुल ही भिन्न हैं।"

"आप ऐसा क्यों कहते हैं कि, हमारे विचार बिलकुल भिन्न हैं? वास्तव में बात तो यह है कि मेरे ही विचारों के समान आपके विचार भी होने चाहिएँ; पर आपने यवन सेवा स्वीकार की है, इसलिए लाचारी है। परन्तु सच तो यह है कि, यह इच्छा आप की भी न होनी चाहिए कि, यह आर्यावर्त और यह मगध-देश यवनों के हाथ में चला जाय।"

"हां; परंतु नन्दवंश के एक कट्टर सेवक की यही इच्छा क्यों होनी चाहिए कि, इस तरह से नन्दवंश का उच्छेद करने वालों के हाथ में यह देश रहे?"

"राक्षस जिस प्रकार नन्दवंश का सेवक है, उसी प्रकार यह मगधदेश का भी सेवक है; अतएव यह नहीं चाहता कि, जैसे नन्दवंश का उच्छेद होगया है, वैसे ही मगधदेश का भी उच्छेद होजावे।"

"मलयकेतु यदि मगधदेश को जीत लेगा, तो इससे मगध

देश का उच्छेद कैसे हो जायगा? मलयकेतु भी तो आर्य ही है?"

"आर्य अवश्य है; पर वह यवनों की सेवा में आनन्द मानने वाला आर्य है; और इसके सिवाय वह यवनों के क्षत्रप की सहायता लेकर मगधदेश जीतने को चला है!"

"तो क्या आप समझते हैं कि, मगधदेश यवनों के अधिकार में चला जायगा?"

"इसमें क्या संदेह? जो शिकार में सहायता देगा, वह क्या कभी उसका हिस्सा लिये बिना मानेगा? कोई आश्चर्य नहीं कि, सारे शिकार पर ही अधिकार जतलावे! और सलूक्षस तो सारा शिकार माँगे बिना कदापि नहीं रहेगा। अलिक्सुन्दर के समय से ही मगध पर उसकी नज़र है। मगधदेश लेने भर के लिए ही वह मलयकेतु को अपने समीप लेगा; परन्तु कार्य हो जाने पर वह उसको फ़िर दूर फेंक देगा! विदेशियों की यह नीति ही है! शाकलायन, अलिक्सुन्दर को तो इस देश में रहना नहीं था, और इसी कारण उसने पर्वतेश्वर का पराजय करके, उसको अपना मांडलिक बनाकर, फिर से उसका राज्य लौटा दिया; पर सलूक्षस का यह हाल नहीं है—वह यहीं रहेगा। उसको स्वयं चक्रवर्ती बनने की अभिलाषा है। उसकी महत्वाकांक्षा बहुत बड़ी है। राजा धनानन्द यदि इतना विलासी न होता, तो अब तक कभी का मैंने सलूक्षस को पंजाब से बाहर निकाल कर काशमीर के भी उस पार भगा दिया होता, और आज चारों ओर मगध का ही साम्राज्य दिखाई देता।"

इस पर शाकलायन ने कहा, "तो क्या आज वैसा करना सम्भव नहीं है? मलयकेतु सलूक्षस की सहायता से मगधदेश का राज्य ले लेवे, और फिर उसी पर उलट कर उसको इस देश से निकाल दे।"

यह सुनकर राक्षस ज़ोर से हँसे और बोले, "जान पड़ता है कि आप परीक्षा लेने के लिए ही मुझसे ऐसे प्रश्न कर रहे हैं? अजी जो सलूक्षस इतनी दृढ़ता के साथ सम्पूर्ण बातों को करना चाहता है, वह फिर क्या पर्वतेश्वर और मलयकेतु के प्रपितामह की भी सुनेगा? वह तो फिर इन दोनों को ही राज्य से उच्चाटन करना चाहेगा। उस दशा में फिर वह स्वयं ही चक्रवर्ती बनना चाहेगा।"

मैं समझता हूँ कि, अब हम लोगों के इस वादविवाद से कोई लाभ नहीं। इसलिए अब इसको यहीं छोड़ दें। आप इस समय मुझसे इतना ही बतलाइये कि, यदि मलयकेतु सलूक्षस समेत यहां आवे, तो क्या आप इतनी सहायता देंगे कि, पुष्पपुरी के लोग, चाणक्य और चन्द्रगुप्त के विरुद्ध उमड़ कर, उनका उच्छेद करने को तैयार हों?"

"मैं ऐसी मदद कभी नहीं दूँगा! यह राक्षस चाणक्य, चन्द्रगुप्त और भागुरायण का चाहे जितना विद्वेष करता हो, पर म्लेच्छों के हाथ में मगधदेश के चले जाने में यह कभी सहायता नहीं करेगा। दो के, परस्पर के, झगड़े में एक तीसरा चोर घुस आवे, और वह उन दोनो को लूट ले, यह सर्वथा अनिष्ट है। मैं यदि कुछ करूँगा; तो उसके बिलकुल विरुद्ध करूँगा। मुझसे यदि हो सकेगा, तो मैं उन्हें सहायता ही दूँगा अन्यथा चुप बैठूँगा, पर म्लेच्छाधिपति पर्वतेश्वर अथवा यवन क्षत्रप सलूक्षस निकत्तर के हाथ में मगधदेश कदापि नहीं जाने दूँगा। अब, आप फिर मुझसे इस आर्य जिह्वा के द्वारा, यह मत पूछे कि, क्या तुम अपने देश से विरोध करने को तैयार हो? अतएव, अब, आप जिस स्थान से आये हैं, उसी स्थान को जाइये। इन यवनों की इस कुल्हाड़ी को मगधवृक्ष के तने में एक बाल भर भी घुसने देना ठीक न होगा। उसको यदि घुसने देंगे, तो

फिर वह समूल वृक्ष को ही काट डालेगी। इसलिए आप जाइये।"

यह सुनकर शाकलायन बहुत ही आश्चर्य चकित हुआ, और फिर आगे कुछ कहने के लिए उसको साहस ही न हुआ। इसलिए बहुत जल्द फिर वह अपने साथी को साथ लेकर वहां से चला आया।

चालीसवां परिच्छेद
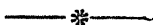
चाणक्य ने हार मानी !

चाणक्य अपनी पर्णकुटिका में बैठे हुए सिद्धार्थक से बातचीत कर रहे थे। सिद्धार्थक ने अभी हाल ही में आकर कोई विशेष समाचार बतलाया था; जिसे सुन कर चाणक्य को मानो कुछ आश्चर्य सा हुआ था; और यह बात उनकी चेष्टा से स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वे बहुत देर तक चुप बैठे रहे। इसके बाद फिर एकदम बोलेः—

"सिद्धार्थक, क्या तुम को इस बात का विश्वास है कि, तुम संवाहक के वेष से गये; और राक्षस ने तुमको नहीं पहचाना ?"

"हां, पूर्ण विश्वास है ! मैं ने शाकलायन से पहले ही कह दिया था कि, अमात्य के पास हम लोग चल तो रहे हैं; पर आप उनके सामने यह न प्रकट कीजिएगा कि, यह चन्द्रगुप्त का भेजा हुआ संवाहक है। अतएव शाकलायन ने अमात्य के सामने मेरे विषय में कोई चर्चा ही नहीं चलाई—मैं अपना चुप बैठा हुआ उन दोनों की बातचीत सुनता रहा। मन में सोचा कि यदि मैं इस समय कुछ, एक आध शब्द बोल भी दूंगा, तो कदाचित् राक्षस पहचान जायँगे; और फिर सारा मामला ही बिगड़ जायगा ! मुझे क्षण क्षण पर शंका भी हो रही थी कि, कहीं अमात्य हमको पहचान न लें; और इसी लिए, मैं जितनी

देर वहां रहा, यही देखता रहा कि, राक्षस मेरी ओर संशययुक्त दृष्टि से तो नहीं देख रहे हैं ? मैंने अपनी आंखों की नोकों से बराबर उन्हीं की ओर ध्यान रखा था; और इस कारण मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि, राक्षस मेरे सच्चे स्वरूप को पहचान नहीं सके। उन्होंने शायद् यही समझा कि, मैं कोई शाकलायन का ही सेवक हूँ; और उसके साथ छद्मवेष से आया हूं। बस, यही शायद् उनका ख़याल रहा होगा; और इसी कारण वे मेरे सच्चे स्वरूप को नहीं पहचान सके ! पहचान कैसे सकते ? राक्षस कुछ आप के समान कुटिलनीति-विशारद् तो हैं ही नहीं। उनको आपके सब प्रकार के कौटिल्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है; और इसी कारण वे केवल शाकलायन से सम्भाषण करने में ही भूले रहे !"

सिद्धार्थक ने चाणक्य के प्रश्न के उत्तर में इतनी बातें कहीं; पर चाणक्य ने शायद् उसकी पहले की एक ही दो बात की ओर ध्यान दिया होगा; फिर वे अन्य बातों की ओर ध्यान न देते हुए अपने विचार में निमग्न होगये। जहां उनको यह मालूम होगया कि, शाकलायन की राक्षस से जो बातचीत हुई, वह हमारे विषय में किसी प्रकार का संशय न आते हुए ही हुई, वहीं फिर वे अपने दूसरे विचारों में लग गये, और फिर सिद्धार्थक की बातों की ओर उनका चित्त नहीं रहा। उपर्युक्त विचार करते करते उनको ऐसा आवेग आया कि, वे एकदम उठ कर खड़े होगये—और इस प्रकार बोल उठे कि जैसे स्वयं राक्षस उनके सामने ही खड़े हों—"शाबाश, राक्षस ! शाबाश ! तुम्हारे समान पुरुष के आगे हमारे कौटिल्य की कुछ भी नहीं चल सकती, यह बिलकुल सच है। तुम्हारी स्थिति में यदि मैं होता, जिस स्थिति में तुमको मैं ने ला रखा है। उसी स्थिति में यदि तुमने मुझको ला दिया होता, तो मैं अवश्य ही मलयकेतु से

जा मिलता, और मगध का राज्य यवनों के हाथ में देने में भी कोई कसर न करता। चाहे जो करता, किन्तु जब तक अपने ऊपर अत्याचार करनेवालों से बदला न ले लेता, मुझे चैन ही न पड़ता। देखो न, मेरा मुख्य उद्देश्य तो यह था कि, इन यवनों का पूर्ण नाश हो; किसी न किसी तरह इनको आर्यावर्त से—पंजाब से—बाहर हटा दिया जाय, और इसी उद्देश्य को लेकर मैं मगध में आया था, परन्तु यहां आने पर धनानन्द ने मेरा अपमान कर दिया, और मैं उसी के पीछे पड़ गया—पहले उसीके वंशवृक्ष को समूल और सशाख उखाड़ फेंकने की प्रतिज्ञा कर दी; और फिर उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए कोई बात उठा नहीं रखी; ब्राह्मण होते हुए भी अत्यन्त नृशंस कर्म करके मैंने उस प्रतिज्ञा को पूर्ण किया। बस, इसी प्रकार, मैं यदि तुम्हारी स्थिति में होता, तो अन्त में लाचारी से यवनों की भी सहायता लेकर मैंने तुम्हारा नाश किया होता। कम से कम उस समय तो मैं इस बात को मन में नहीं लाता कि, मगध यवनों के अधिकार में जा रहा है: फिर पीछे से जो कुछ होता, सो देख लिया जाता। परन्तु राक्षस, नन्दों के प्रति और मगध के प्रति तुम्हारी सच्ची भक्ति है; और उस भक्ति से ही तुमने मुझको जीत लिया। कोई परवा नहीं, कुटिल युक्ति से यदि तुम वश में नहीं होते, तो अब सरलता के साथ ही मैं तुम्हारे पास आऊंगा; और तुम से प्रार्थना करके तुमको चन्द्रगुप्त के सचिव बनाने का प्रयत्न करूंगा। उसको सचिव तुम्हारे ही समान एकनिष्ठ चाहिए—भागुरायण के समान सचिव किस काम का कि, जिसका क्षण में मन बदल जाय?"

चाणक्य जिस समय यह सब कह रहे थे, मानो यह बात बिलकुल भूल गये थे कि, उनके पास सिद्धार्थक भी बैठा हुआ है। उनको यदि इस बात की याद होती; तो शायद वे इस प्रकार

ज़ोर से न बोलते। चाणक्य का कथन सुनकर क्षपणक कुछ देर स्तब्ध बैठा रहा; परन्तु जो बात उसके मन में आई थी, उसको कहे बिना उससे रहा नहीं जाता था। इस कारण अन्त में वह चाणक्य से बोला, "आर्य, राक्षस को ही चन्द्रगुप्त का सचिव बनाने में आपका ऐसा कौन सा उद्देश्य है? सच पूछिये तो उसके समान अंधा और कोई सचिव ही नहीं है। आपने इतना बड़ा षड्यंत्र उसकी आंखों के सामने ही रचा; पर उसको कुछ भी पता नहीं लगा। ऐसी दशा में यह साचिव्य कैसे करेगा? आप जब स्वयं इतने नीतिनिपुण यहां मौजूद ही हैं, तब फिर चन्द्रगुप्त के लिए आप अन्य सचिव की तलाश क्यों कर रहे हैं? मेरी दृष्टि से तो राक्षस के समान साचिव्य के लिए अयोग्य अन्य कोई मनुष्य ही नहीं है।"

सिद्धार्थक का यह प्रश्न सुन कर चाणक्य कुछ हँसे; और फिर उससे बोले, "सिद्धार्थक, अरे तुम अब तक नहीं समझ सके! वास्तव में मैंने नन्दवंश का नाश करने और चन्द्रगुप्त को राज्य प्राप्त करा देने की प्रतिज्ञा की थी; और यह प्रतिज्ञा अब पूर्ण हो चुकी। अब, जब तक यह राज्य चिरस्थायी न हो जायगा, तब तक क्या मैं यहां बैठा थोड़े ही रहूँगा? छिः छिः! इसी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए मुझ को ऐसे अनेक नृशंस कार्य करने पड़े कि, जो ब्राह्मण के लिए सर्वथैव अनुचित थे—अब इन पापों का क्षालन करने के लिए हिमालय की कन्दराओं में बैठ कर जब घनघोर तपस्या करूंगा, तभी कुछ इनके क्षालन होने की आशा है; अन्यथा फिर इसी भवपाश में फँस कर जन्म जन्मान्तर ऐसे ही नृशंस कार्य करता रहूँगा। छिः! छिः! इतना ही बस हुआ। सिद्धार्थक, तुम्हीं देख लो; मेरे हाथ से कौन से पातक होने को बचे हैं? राज हत्या हुई, बाल हत्या हुई, स्त्री-हत्या हुई; असत्य आचरण, असत्य भाषण तो न जाने कितना

हुआ—इसका कुछ ठिकाना ही नहीं! यह सब ऐसा ही करते हुए अब चन्द्रगुप्त का साचिव्य करने की मुझ को बिलकुल इच्छा नहीं। इसके सिवाय एक बात और भी है। अपने बनाये हुए राजा से, राज्य प्राप्त करा देने तक, जो सन्मान मिलता है, वह फिर आगे नहीं रहता। वह यह भी सोचता है कि, जिन नृशंस कार्यों के द्वारा इसने हमारा हित किया है; और हमारे पूर्व के राजा का वध किया है; सम्भव है, उन्हीं नृशंस कार्यों से यह हमारी और हमारे वंश की भी हत्या कर डाले! ऐसा विचार जब उसके मन में आवेगा, तब वह हम से भी द्वेष रखने लगेगा; इस लिए ऐसी दशा आने ही न पावे; और मैं यहाँ से निकल जाऊं—यही अच्छा होगा। सिद्धार्थक, मैं सचमुच ही बिलकुल निरिच्छ हूँ। मुझे तो एक कपर्दिका की भी अपेक्षा नहीं। अपने अपमान का परिमार्जन कर लेने भर के लिए मैंने प्रतिज्ञा की थी, सो मैंने पूर्ण कर ली, अब मुझे सिर्फ इतनी ही इच्छा शेष रह गई है कि, मेरी आँखों के सामने इन यवनों का पारिपत्य हो जावे; और इसके होने का अवसर भी अनायास ही आ गया है। बस, राक्षस के हाथ में सारी बात है—उन्होंने फूट नहीं डाली, तो यवनों का पराजय हुआ ही समझो। परन्तु राक्षस की ओर से फूट पड़ने की अब कोई सम्भावना दिखाई नहीं पड़ती—उन्होंने अपना निश्चय प्रकट ही कर दिया है—अब और क्या चाहिए? सिद्धार्थक, मगध देश और नन्दराजाओं पर राक्षस की सच्ची भक्ति है; और यही भक्ति अब चन्द्रगुप्त के प्रति रखने की बात जिस दिन राक्षस ने अपनी जिह्वा से स्वीकार कर ली, उसी दिन बस मैं मुक्त हो जाऊंगा। राक्षस यवनों को कदापि आगे बढ़ने नहीं देंगे……"

इतने में सिद्धार्थक चाणक्य से बीच ही में कहता है, "आप को यदि इतना पश्चात्ताप हो रहा है, तो आप भगवान् बुद्ध का

ही मार्ग स्वीकार क्यों नहीं करते ? भगवान् वसुभूति आपको बड़े आनन्द से दीक्षा देकर अपने बिहार में रखेंगे । वृन्दमाला ने उनसे दीक्षा ले ली है ; और अब वह सुमतिका के पीछे लगी है कि, "मेरी तरह तू भी जोग ले ले । ऐसा किये बिना तू इन पातकों से छूट नहीं सकती ।" आप भी यदि ऐसा ही करें तो हम सभी, जो राजकुल हत्या में शामिल थे, निर्वाण प्राप्ति कर सकेंगे । भगवान् वसुभूति भी आपको ऐसा ही उपदेश देने का विचार कर रहे हैं ।" सिद्धार्थक के ये वचन सुन कर चाणक्य सिर्फ हंस भर दिये ।

उपर्युक्त वृत्तान्त से पाठकों को मालूम ही हो गया होगा कि, शाकलायन के पास जाकर और उसको संवाहक का भेष देकर राक्षस के पास ले जानेवाला संवाहक कौन था। वास्तव में चाणक्य ने जिस समय यह बात सुनी कि, शाकलायन मलयकेतु के यहाँ से "घर्षणपत्रिका" लेकर आया है, उसी समय उन्होंने समझ लिया था कि, यह अवश्य ही भीतर ही भीतर किसी अन्तःकलह से लाभ उठाकर हमारे अन्दर फूट डालने का प्रयत्न करेगा । और इसीलिए चाणक्य ने यह विचार किया कि, इसको भीतर ही भीतर ऐसा धोखा देना चाहिए कि जैसा यह हमको धोखा देना चाहता है । इसके सिवाय चाणक्य को यह भी देखना था कि, कोई बाहरी शत्रु यदि मगध पर चढ़ाई कर दे; पर्वतेश्वर को छुड़ावे और उसके अपमान का परिमार्जन करने के लिए, यवनों की सहायता से, यदि मलयकेतु ही मगध पर धावा कर दे, तो क्या राक्षस हम से और चन्द्रगुप्त से बदला लेने के लिए, उससे मिल कर मगध-देश के जीतने में उसको सहायता देगा ? बस, इन्हीं सब बातों को सोच कर चाणक्य ने अपना यह व्यूह रचा था । इसलिए ज्यों ही शाकलायन का यह सन्देशा आया कि, अध्वश्रम के कारण दो दिन विश्रान्ति लेकर, तब मलयकेतु का सन्देशा

उपस्थित करूंगा, त्योंही चाणक्य ने उपर्युक्त सब बातों को सोच कर सिद्धार्थक को संवाहक के भेष से शाकलायन के पास भेजा; और उसको यह भी समझा दिया कि, तुम शाकलायन को यह जतलाओ कि, राक्षस के विषय में अय लोगों का मत बदल रहा है; और इसलिए आप उनके पास जाकर उनसे सहायता माँगे। सिद्धार्थक ने ऐसा ही किया। शाकलायन उसके साथ राक्षस के पास गया; और राक्षस से शाकलायन को जो बातचीत हुई, उसे सिद्धार्थक ने सुना; और फिर चाणक्य के पास आकर उसने वहां का सब वृत्तान्त बतलाया। चाणक्य ने जब सिद्धार्थक के द्वारा राक्षस और शाकलायन के वार्तालाप का वृत्तान्त सुना, तब उनको बहुत ही सन्तोष हुआ। क्योंकि उनको अभी तक इस बात की पूरी पूरी कल्पना नहीं थी कि, राक्षस की देशभक्ति और स्वामिभक्ति यहां तक विलक्षण रूप से बढ़ी हुई है। परन्तु अब उनको इस बात की प्रतीति हो गई: और उन्होंने यह निश्चय किया कि "चाहे जो उपाय करेंगे: कुटिलता से नहीं हो सकेगा, तो सरलता से ही अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध करेंगे, परन्तु सिद्ध अवश्य करेंगे, और इसके बाद फिर हिमालय की कन्दराओं में जाकर आनन्दपूर्वक तपस्या करने लगेंगे।" अब सरलता के अतिरिक्त और मार्ग हो नहीं था।

सिद्धार्थक और चाणक्य का सम्भाषण हो जाने के बाद बहुत जल्द चाणक्य ने सिद्धार्थक को बिदा किया, और अपना सन्तप्त मस्तक शान्त करने के लिए आप हिरण्वती नदी के तट पर चले गये। जब तक मनुष्य किसी कार्य के विषय में ऐसा सोचता रहता है कि, "यह कार्य करना है, इसको शीघ्र ही करना है, यह जितनी ही जल्दी हो जा जाय, उतनी ही जल्दी इसको पूर्ण करना है," तब तक तो उसको बड़ा उत्साह रहता है, परन्तु

जब एक बार वह कार्य उसके प्रयत्नों से पूर्ण हो जाता है, और यदि उसमें कोई बात ऐसी होती है, कि जो हम को अच्छी नहीं जान पड़ती अथवा जो हमारे मन को टोंचने योग्य होती है— तो उसके कारण हमारे मन को सदैव दुःख होता रहता है। हमारा मन स्वयं हम से ही कहने लगता है कि, यह काम जो हमने किया, ठीक नहीं किया। किसी कारणवश चाहे ऐसा अवश्य मालूम हो कि, हमने जो कुछ किया, वही उस समय करना ठीक था, तथापि उससे होने वाले सन्तोष का अनुभव करने को जी नहीं चाहता। ऐसा मन में आता है कि, हम इस सन्तोष—इस आनन्द—का अनुभव न करें, तो अच्छा। यह नहीं कह सकते कि, साधारण लोगों के ही मन की ऐसा दशा होती है—मनस्वी लोगों के मन की नहीं होती—नहीं, मनस्वी लोगों के मन की भी ऐसी ही दशा होती है, परन्तु वे उसको बाहर प्रकट नहीं होने देते। वे सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि, हमारा यह पश्चाताप संसार की नज़रों में न आने पावे। और उनका यह प्रयत्न दूसरों के विषय में चाहे सिद्ध हो जावे, अर्थात् दूसरे लोगों से चाहे वे अपने मन की वास्तविक दशा को छिपाये रक्खें, तथापि उनको जो पश्चात्ताप हो रहा है, उसको वे स्वयं अपने ही मन से कैसे छिपा सकते हैं? ऐसे मनस्वी मनुष्य जब तक दूसरों की सगति में रहते हैं, तब तक वे अपने उस पश्चात्ताप को दूर रख सकते हैं; परन्तु सदा सर्वदा वे उसको दूर कैसे रख सकते हैं? कभी कभी उनको भी ऐसा मौका आ जाता है कि, जब उनका वह पश्चात्ताप, मन की वह अनुतप्त दशा, एकदम बाहर निकल पड़ती है; और दूसरे किसी मनुष्य को भी दिखलाई पड़ जाती है। ऐसी ही दशा आज भी हुई। चाणक्य को इधर कुछ दिनों से अपने कृतकर्मों पर बहुत पश्चात्ताप हुआ करता था। उनके मन में प्रायः यह

विचार आता रहता था कि, हमने जो कार्य किये, अथवा दूसरों से कराये, वे अच्छे नहीं थे। देखो, अपने अपमान को हम सहन नहीं कर सके; और उसी पर क्रुद्ध होकर हमने नन्दवंश का समूल नाश कर दिया। उसमें राजहत्या हुई, बाल-हत्या हुई; और अन्त में स्त्रीहत्या तक हुई। यह बात उस ब्रह्मनिष्ठ तपोनिष्ठ ब्राह्मण के मन को बहुत ही बुरी तरह से सताने लगी। उन्होंने सोचा कि, चन्द्रगुप्त को हमने एक ग्वाले के घर से लाकर राज्यपद पर स्थापित किया सही; और अब उसके हाथ से दिग्विजय करा कर सम्पूर्ण भारतवर्ष की विजय कराना हमारा उद्देश्य है, परन्तु अब, जब जक यह कार्य सफल न हो जाय, तब तक क्या हम यहीं बैठे रह कर तमाशा देखते रहें? यह बात चाणक्य को अच्छी नहीं लग रही थी। उनका यह विचार था कि, जहां हमने इतना भारी नरमेधयज्ञ रचा; वहीं अब हमारा अधिक दिन तक रहना उचित नहीं होगा; और यही कारण था कि, जिससे उन्होंने सोचा था कि, अब राक्षस के गले में यह साचिव्य बांध कर हम अपना अलग हो जायँ! आज सिद्धार्थक और चाणक्य का जिस समय भाषण हुआ, उसी समय चाणक्य का उक्त पश्चात्ताप पहले पहल बाहर प्रकट हुआ। इसके पहले वह किसी के सामने प्रकट नहीं हुआ था। परन्तु उपर्युक्त भाषण के अवसर पर वह अकस्मात् बाहर निकल पड़ा; और सिद्धार्थक को मालूम भी हो गया। सच ही है कि, जब मनुष्य के मन में विचारों का अतिरेक हो जाता है; और वे भीतर ही बड़ा गड़बड़ मचाने लगते हैं, तब अनपचे अन्न की भांति उनका भी बाहर वमन होने लगता है। तदनुसार आज चाणक्य को भी यह भान नहीं रहा कि, हमारे पास कोई दूसरा बैठा है; और उन्होंने अपने सब विचार बाहर वमन कर दिये। उनको वमन कर चुकने के बाद फिर उनके

मन में आया कि, देखो, हम कितने क्षीणबुद्धि हो चले हैं; और इस बात पर फिर उनको बड़ा खेद हुआ। मनुष्य का मन मानो एक विचित्र प्रकार के गोरखधंधे का यंत्र है; और उसके कौन से चक्र किस समय घूमने लगेंगे; और क्या क्या गोलमाल मचा देंगे; इसका कुछ ठिकाना ही नहीं। इस प्रकार के विचार चाणक्य के मन में आये, और उन्होंने सोचा कि, अब बहुत दिन यहाँ रहना किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

हिरण्यवती के तट पर इसी प्रकार के विचार करते हुए चाणक्य बहुत देर तक बैठे रहे। उन्होंने सोचा कि, राक्षस के पास जाकर अब हमको उनसे स्पष्टतया यही कहना चाहिये कि, अब तुम चन्द्रगुप्त के सचिव बनो, तभी नन्दों का राज्य और मगधदेश स्वतंत्र रह सकेगा; अन्यथा कौन सा संकट किस समय उपस्थित हो जायगा, इसका कुछ भी ठीक नहीं। इसके सिवाय उनसे यह भी प्रकट कर दिया जाय कि, अब हम यहां नहीं रहेंगे, किन्तु मगध को छोड़ कर हिमालय की गुफाओं में तपस्या करने चले जायँगे। इधर राक्षस ने शाकलायन को यह उत्तर दे ही दिया था कि, "तुम्हारे समान परकीय लोगों को हम किसी प्रकार की भी सहायता नहीं दे सकते—मगधदेश में यवनों का प्रवेश हम कभी नहीं होने देंगे।" राक्षस का दिया हुआ यह उत्तर जब चाणक्य ने सुना, तब उनके मन में राक्षस के विषय में बहुत ही आदरभाव उत्पन्न हुआ। सच ही है, परकीओं को एक बार भीतर ले लेने पर फिर उनको बाहर निकालना बहुत ही कठिन हो जाता है। कठिन क्या, बल्कि यों कहिये कि, लगभग असम्भव होजाता है। हां, कौटिल्य से कदाचित् यह कार्य सम्भव भी हो जाय; पर कौटिल्य एक तो सब से बन नहीं पड़ता; और दूसरे प्रत्येक समय में इससे काम भी नहीं लिया जा सकता। राक्षस ने इतने ज़ोर के साथ शाक-

शांकलायन के सामने इन्कार कर दिया कि, जिससे उनकी सच्ची सच्ची योग्यता आज हम पर प्रकट होगई—उनका गौरव आज हमको मालूम हुआ। सच तो यह यह है कि, कुटिल नीति उनको मालूम नहीं है। उनकी नीति बिलकुल सरल है; और इसी कारण हमारी कुटिल नीति से उनको ऐसे संकट में पड़ना पड़ा। वे विश्वास में आकर मारे गये। राजसचिव को रातदिन जिस सावधानी की आवश्यकता होती है वह सावधानी इन दिनों वे नहीं रख सके। अपने आसपास के और अधीनस्थ लोगों से जिस सौम्यता का बर्ताव करना चाहिए, उस सौम्यता का बर्ताव वे नही कर सके, यही उनका दोष है; परन्तु ये दोष इस नवीन अनुभव से चले जायँगे। मुख्य गुण चाहिए परमनिष्ठा—स्वामी और स्वदेश के प्रति परमनिष्ठा—और यह निष्ठा उनमें पूर्णतया मौजूद है। भागुरायण में यह गुण नहीं। जिस प्रकार भागुरायण हमारी कुटिलनीति के भाषणों से बदल गये, उस प्रकार राक्षस नहीं बदल सकते। इस लिए राक्षस को ही सचिव बनाने का हमको प्रयत्न करना चाहिए। अब हम उनके पास जायँगे; उनको नानाप्रकार से मनावेंगे; और अन्त में उनके मुख से "हां" कहला ही लेंगे, तभी वहां से उठेंगे; और इतना साहस हममें है। जहाँ वे हमारे वश मे होगये; और भागुरायण ने तथा उन्होंने मिलकर राजरथ का धुरा अपने कंधों पर ले लिया, कि बस फिर सारा कार्य व्यवस्थित होगया। चन्द्रगुप्त भी काफ़ी चतुर है। जहां एक बार सुयन्त्रित रूप से राज्यरथ चलने लगा कि, फिर वह अवश्य दिग्विजय कर लेगा। उधर हम तपस्या के लिए बैठेंगे और इधर इसका दिग्विजय सम्बन्धी जय जयकार सुनाई देगा। बस, हमारा कार्य हो जायगा। हमारा अवतार कृत्य ही समाप्त हो जायगा।

इस प्रकार अनेक भांति से विचार करते हुए आर्य चाणक्य

अपनी पर्णकुटिका में गये। इसके बाद फिर वे वहां से चन्द्रगुप्त के प्रासाद में गये। वहाँ दोनों में बहुत देर तक बात चीत होती रही; और फिर चाणक्य वहां से एक शिष्य को साथ लेकर राक्षस के मन्दिर की ओर गये।

इकतालीसवां परिच्छेद

राक्षस और चाणक्य।
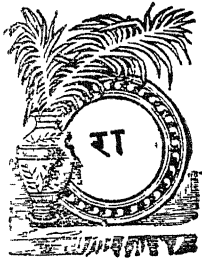
क्षस अपने महल में सचिन्त बैठे हुए थे। सदैव की तरह आज भी वे इसी सोच विचार में पड़े थे कि, देखो—हमारी इतनी दुर्दशा होगई; और हम कुछ भी समझ न सके! हम इतने अंधे कैसे बन गये? पाटलिपुत्र में हमारे मौजूद रहते समय एकाएक इतना भयंकर प्राणनाश हो गया—राजकुल की ऐसी भयंकर हत्या होगई, और उसका षड्यंत्र भी, हमको न मालूम होते हुए, हमारे ही आदमियों को फोड़ कर, रचा गया! बड़े आश्चर्य की बात है। ऐसा विचित्र षड्यंत्र रचनेवाले की खोपड़ी भी कैसी होगी! और उसको देखते हुए हम उसके सामने कितने दुर्बल हैं! बस, इसी प्रकार के विचार थोड़ी थोड़ी देर में राक्षस के मन में आ रहे थे। सच तो यह था कि, जिस दिन राजा धनानन्द मुरादेवी के मन्दिर में गया, उसी दिन नन्दकुल का विनाश आ चुका था। सब से बड़ी भूल तो यही हुई कि, कुमार सुमाल्य के यौवराज्याभिषेक के दिन अन्य कैदियों के साथ उस दुष्ट मुरा को भी बन्धमुक्त कर दिया गया; परन्तु राक्षस के हाथ में थोड़े ही था कि, जो वे उस भूल को टाल सकते!? क्योंकि यह बात तो किसी के स्वप्न में भी

नहीं थी कि, मुरा ऐसा भयंकर अवसर लाने के लिए तैयार होगी। अस्तु, हो गया, सो होगया; पर अब आगे क्या ? आज इतने वर्षों से जिन यवनों और म्लेच्छों को दूर रखा; जिनका ज़रा भी प्रवेश मगधदेश में नहीं होने दिया, उन्हीं को क्या अब आप ही आप, अनायास, अवसर मिलेगा ? पर्वतेश्वर को झूठे बनावटी पत्र लिख कर, थोड़ी सेना के साथ यहां बुला कर, कैद कर लेना दूसरी बात है; पर अब मलयकेतु इस तरह थोड़े ही आयेगा ! उसके पिता के साथ वास्तव में विश्वासघात किया गया है, और उस विश्वासघात का बदला लेने के लिए अब वह, सलूक्स निकत्तर के साथ, बड़े ज़ोरशोर से मगध पर सवारी करेगा। ऐसी दशा में उससे भिड़ कर उसको मार भगाना कुछ अर्थ रखता है ! यह हम नहीं कहते कि, आज मगध में सेना नहीं है—सेना बहुत पर्याप्त है, परन्तु शंका तो इसी बात की है कि अकेले भागुरायण से ऐसी विचित्र अवस्था में ठीक ठीक व्यवस्था हो सकेगी, अथवा नहीं। राक्षस के हाथ में तो अब सत्ता भी नहीं। जैसे घास उखाड़ कर फेंक दी जाय, अथवा शैवाल बीच से चीर दिया जाय, उसी प्रकार चाणक्य ने उनको राज्य-व्यवस्था से दूर हटा दिया था। परन्तु ज्यों ही अब उनके सामने यह विचार आकर उपस्थित हुआ कि, अब मगध पर संकट आने वाला है, त्यों ही उनका हृदय अत्यन्त व्याकुल होने लगा। अब वे क्या करें, सो कुछ उनको सूझने न लगा। चन्द्रगुप्त को मगध का राजा स्वीकार करके उसी को सहायता देवें, यह बात भी उनके मन में न आने लगी। अच्छा यदि यवनों की सहायता से मगधदेश को जीतने की इच्छा रखने वाले मलयकेतु को ही सहायता दी जाय; तो यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा करना मानो जानबूझ कर मगधदेश को यवनों के ही जबड़े में डालना है ! यह बात त्रिकाल में भी नहीं हो सकती। फ़िर क्या

किया जाय ? क्या चुप बैठें ? बस, यही एक बात, उस अवस्था में राक्षस के हाथ में थी ।

नाना प्रकार के विचार उनके मन में आ और जा रहे थे, परन्तु केवल चुप बैठना उनके समान पुरुष को कैसे रुच सकता था ? इस लिए राक्षस उस समय अत्यन्त अशान्तचित्त होकर बैठे हुए थे। इतने में उनके प्रतीहारी ने यह ख़बर दी कि, कोई आप से मिलने के लिए आये हुए हैं । कौन है ? पूछा, तो मालूम हुआ कि, कोई ब्राह्मण देवता आये हुए हैं, और उनके साथ एक ब्रह्मचारी भी है । राक्षस ने क्षणमात्र विचार किया, पर कुछ भी अनुमान न कर सके कि, यह ब्राह्मण कौन है । अन्त में यह सोच कर, कि कोई अतिथि अभ्यागत आया होगा, उन्होंने उसको भीतर लाने की आज्ञा दी। प्रतीहारी ने ब्राह्मण को भीतर लाकर पहुंचा दिया । राक्षस ने उत्थापन दे कर ब्राह्मण को एक उच्चासन दिखलाया, उस पर उस ब्राह्मण के शिष्य ने उसका हरिणाजिन बिछा दिया । ब्राह्मण बैठ गया । उसने शिष्य को बाहर की ओर खड़े रहने का इशारा किया । शिष्य चला गया । ब्राह्मण अत्यन्त तेजस्वी दिखाई दिया । चाणक्य का स्वरूपवर्णन राक्षस ने सुना था, अतएव क्षणमात्र के लिए उनके मन में यह प्रश्न भी आया कि, ये चाणक्य ही तो नहीं हैं ? परन्तु फिर सोचा कि, चाणक्य हमारे पास कैसे आ सकते हैं ! और वह विचार तुरन्त ही मन से निकाल दिया । अस्तु । राक्षस ने ज्यों ही यह देखा कि, ब्राह्मण आसन पर बैठ गया, त्यों ही फिर एकबार अभिवन्दन कर के उन्होंने नम्रतापूर्वक पूछा, "विप्रवर, कहिये, मैं आपकी कौनसी सेवा करूं कि, जिससे आप को सन्तोष हो ? किस कार्य के लिए इस राक्षस के घर पधारने की कृपा की ?"

यह सुन कर ब्राह्मण एकदम कहता है, "अमात्यश्रेष्ठ,..."

परन्तु राक्षस ने उसको बीच में ही रोक कर कहा, "ब्रह्मन्,

में अब अमात्य नहीं। इस पुष्पपुरी में विगत कुछ दिनों के बीच कैसा २ हाहाकार मचा, वह आपके कानों में आया ही होगा। इसलिए अब आप मुझे अमात्य क्यों कहते हैं ?"

अच्छा उस हाहाकार के होने से आपके अमात्यत्व में क्या बाधा आई ? आप पुष्पपुरी के सिंहासन के अमात्य हैं; और अमात्य की पदवी के लिए जिस योग्यता की आवश्यकता होती है, वह योग्यता जब आपके अन्दर मौजूद है, तब फिर आप अमात्य क्यों नहीं हैं ? कम से कम मेरे लिए तो आप अमात्य ही हैं। और मैं आपको अमात्य ही कहूंगा।"

इतना कह कर ब्राह्मण कुछ ठहर गया। ब्राह्मण की वह वाणी बिलकुल अस्खलित थी; और ऐसी जान पड़ती थी कि, जैसे आज्ञा देने में ही नित्यप्रति इसका उपयोग होता रहा हो ! अतएव उस वाणी के कान में पड़ते ही राक्षस कुछ स्तब्ध होगये। ब्राह्मण आगे बोलाः—

"अमात्यवर, मैं 'कुटिल' करके विख्यात हूँ—और अब तो मैंने यह भी सुना है कि, लोगों ने मेरा नाम 'कौटिल्य' ही रख दिया है। जो कुटिलता से ही सिद्ध हो, वह कुटिलता से सिद्ध किया जाय; और जो सरलता से सिद्ध हो, वह सरलता से सिद्ध किया जाय—यही मेरी नीति है। परन्तु अब मैं देखता हूँ कि, आपको अपने पक्ष में लाने के लिए सरलता के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं। यह मगध का राज्य आपके बिना चल नहीं सकता। इसकी धुरा में आपके समान ही पुरुषपुंगव चाहिए। और यही सब सोचकर आज मैं आपके पास सरलतापूर्वक बातचीत करने आया हूँ।"

बोलने वाला मनुष्य कौन है, इस विषय में अब राक्षस के मन में शंका नहीं रही। और ज्यों ही उनको यह विश्वास हुआ कि, यह अमुक मनुष्य है, त्यों ही पहला विचार उनके मन में

यही आया कि, हम एकदम उठकर खड़े हो जावें; और इसको यहां से भगा दें; राजकुल का और हमारा सर्वथा नाश करने-वाला मनुष्य यह हमारे सामने आ गया है; अब इससे एक शब्द भी न बोलना चाहिए; और इसको ऐसा ही लौटा देना चाहिए— यह विचार उनके मन में आया; परन्तु उसी क्षण उनके दाक्षिण्य-पूर्ण हृदय में यह भी भाव आया कि, यह अभ्यागत हमारे पास आया हुआ है, इसके साथ ऐसा व्यवहार करना उचित न होगा; और बस यही सोचकर राक्षस फिर कुछ नहीं बोले; और उस ब्राह्मण की ओर देखते भर रहे।

ब्राह्मण ने देखा कि, हमारे प्रथम भाषण का परिणाम तो कुछ बुरा नहीं हुआ; अतएव वह फिर आगे बोला, "अमात्य श्रेष्ठ," आपके पास सरलता है; इसलिए मैं भी आपके पास बिलकुल सरलता से ही बात चीत करने आया हूँ। नन्दों ने मेरा अपमान किया था, इसलिए मैंने उनका समूल उत्खात किया। उनके प्रति आपकी परम निष्ठा है; परन्तु वह निष्ठा अब आप चन्द्रगुप्त को अर्पण करें, तो चन्द्रगुप्त सचमुच ही उसकी बड़ी कदर करेगा······"

ब्राह्मण का यह भाषण सुनकर राक्षस ने मस्तक में सिकुड़े डाले। यह ब्राह्मण कौन है—अब इस विषय में उनको शंका थी ही नहीं; अतएव वे एकदम उससे बोले, "क्या राजवंश की हत्या करके व्याध पुत्रको राज्य पर बैठाने वाला चाणक्य कहीं है? उसके बिना मेरे घर में आकर इतने उद्धतपन से बातचीत करने की धृष्टता और कौन कर सकता है? सदैव कुटिलता से बर्ताव करनेवाला मनुष्य यदि मौका पड़ने पर सरलता का ढोंग दिख-लावे, तो यह भी उसकी एक कुटिलनीति ही समझना चाहिए। मेरी सरलता की इतनी प्रशंसा क्यों कर रहा है? मेरी अन्धता के फल मुझे मिल चुके; और अब क्या तू इसी बात को मेरे मुँह

पर प्रकट करने के लिये मेरे मन्दिर में आया है? ठीक ठीक; परन्तु अब मुझे अपनी अंधता का पूरा २ अनुभव हो चुका है, इसलिए अब मैं इतना अंधा नहीं रह गया हूं कि जो मैं यह समझ लूँगा कि तू सचमुच ही मुझे हृदयपूर्वक अमात्यत्व देने के लिए आया है। तू क्यों आया है, यह मैं समझता हूं। तू ने किस किस प्रकार मेरी आंखों में धूल झोंक कर मुझ को अन्धा बनाया, इसका अपने मुँह से वर्णन करके तू मुझे लज्जित करने के लिए ही आया है। ठीक है। मैंने खुद ही जब अपना धिक्कार करा लिया है, तब तू फिर मेरे मुह पर उसका वर्णन करके मुझे क्यों न लजावेगा? किन्तु चाणक्य, तुझ को, अपने मुहँ से मेरी अन्धता का वर्णन करके, मुझे लजाने में जो आनन्द होगा, उससे अधिक आनन्द तुझ को इसी में होगा कि, खुद ही अपनी अन्धता का वर्णन करके तुझ को सुनाऊं। अच्छा, सुन, मुरादेवी के महल में जिसको मैं ने अपनी गुप्तचरी बनाकर रखा था, उसी को तूने मेरे मन्दिर में अपनी गुप्तचरी बनाया, और उसी के द्वारा मेरे हिरण्यगुप्त—नहीं, मेरे एक नेत्र को ही फोड़ा; और उसी के द्वारा······"

राक्षस और भी इसी प्रकार कुछ कहनेवाले थे कि, चाणक्य ने उनको बीच में ही रोक कर कहा, "अमात्य, आप इन सब बातों का उच्चारण करके व्यर्थ के लिए अपने मन को उद्विग्न क्यों कर रहे हैं? मैं वास्तव में इसके लिए नहीं आया हूं।"

"तब फिर किस लिए आपने इतना कष्ट किया?"

"इस लिए कि, जिससे आप चन्द्रगुप्त के अमात्य बनकर राज्यशकट को फिर अपने हाथ में लेवें; और पहले ही की भांति-किँबहुना उससे भी अधिक—मगधदेश की सुव्यवस्था करें!"

"तब तो कहना चाहिए कि, जो बात त्रिकाल में भी नहीं हो सकती, उसी को करने के लिए आप आये हैं!"

"क्यों भला ? त्रिकाल में भी यह बात क्यों नहीं हो सकती?"

"राक्षस के हिरण्यगुप्त को फोड़ना और स्वयं राक्षस को फोड़ना—ये दोनों बातें बिलकुल भिन्न भिन्न हैं।"

"यह मैं जानता हूं; परन्तु आपका यह विचार है कि, मगध का राज्य यवनों के हाथ में न जावे; और यवन तो इधर चढ़ाई करने के लिए तैयार हो रहे हैं।"

"इस समय जिनके हाथ में वह है, वे उसकी रक्षा करने को भली भांति समर्थ हैं।"

"वे समर्थ हैं, अथवा नहीं हैं, यह बात अलग है, पर आपकी सहायता की उनको अपेक्षा है; और इसीलिए मैं आपके पास आया हूं।"

"परन्तु मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं नन्दों के अतिरिक्त और किसी की सेवा नहीं करूंगा।"

"मगधदेश की—पाटलिपुत्र की भी सेवा नहीं करेंगे ?"

"कदाचित् नहीं करूंगा ! यवनों से मिलजाऊँगा ! इसका क्या ठिकाना ?"

"परन्तु मुझे विश्वास हो चुका है कि यह बात आप के हाथ से त्रिकाल में भी न होगी। इसलिए आपकी ऐसी बातों में कौन आ सकता है !"

"ऐसा विश्वास आपको कैसे हुआ ? कोई बड़ा ही कारण होना चाहिए।"

"कारण ? स्वयं आपका भाषण ही कारण है, उससे बड़ा और कौन कारण चाहिए ?"

"स्वयं मेरा ही भाषण ? मैं किससे और कब ऐसा कहने

आपको बतला दिया? आपके पास आकर क्या उसने आपको वह बात चीत भी बतला दी, जो मुझमें और उसमें हुई?

"उसको बतलाने के लिए उसी की क्या आवश्यकता?"

"तब फिर यही कहना चाहिए कि, आपके गुप्तचर मेरे अन्तरंग तक हैं! अब विश्वास ही किसका किया जाय? क्या मेरे आसपास के सभी बाग़ी होगये? आँ? वाह चाणक्य, वाह! निस्सन्देह तुम्हारा यह हथकंडा खूब ही है!"

"आपके घर का कोई नहीं है। आप व्यर्थ के लिए आशंका न करें। शाकलायन के साथ जो संवाहक आया था, वह मेरे ही आदमियों में से था। उसी ने मुझ से सब हाल बतलाया। अब आगे जो कुछ आप को करना हो, कीजिए।"

यह सुनते ही राक्षस अत्यन्त चमत्कृत हुए। वाह! शाकलायन के साथ जो संवाहक आया, वह चाणक्य का ही गुप्तचर था, और यह बात शाकलायन को मालूम तक नहीं हो सकी! वाहवा! वाहवा! इस चाणक्य ने तो गुप्तचर भेजने में कमाल कर दिया! इस प्रकार के उद्गार राक्षस ने अपने मन ही मन में निकाले। इसके बाद फिर प्रकट रूप से चाणक्य से बोलेः—

"परन्तु यही कैसे कहा जा सकता है कि, शाकलायन को भी धोखा देने के लिए मैंने वैसा न कहा होगा?"

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आपके इस प्रश्न का दूसरा उत्तर ही नहीं हो सकता। जो कुछ भी हो; किन्तु अमात्यवर, बीती हुई बातों को अब आप भूल जावें, और चन्द्रगुप्त का साचिव्य स्वीकार करें। नन्दों के समय में आपका जो अधिकार था, वही अधिकार आपका अब भी रहेगा—उसमें रंच भी फर्क नहीं पड़ेगा। कुटिलनीति सर्वदा ही उपयोगी नहीं हुआ करती। आपके विषय में लोकमत जो कलुषित हो रहा है, वह बात की बात में ठीक हो जायगा। उसको ठीक करने में बिल-

कुछ समय नहीं लगेगा । आपको मालूम ही है कि, लेकमत और गड्डुरिकान्याय दोनों समान ही है। आपके विषय में किसी को भी वैषम्य नहीं । मेरा क्रोध नन्दों पर था । अपने अपमान का परिमार्जन करने के लिए मुझे उनके वंश का उत्खात करना था, सो मैंने किया । अब मुझे इस राज्य से कोई कर्त्तव्य नहीं । जहां आपने यह कह दिया कि, 'मैंने अब इसे अपने हाथ में लिया,' कि, बस मैं तुरन्त ही हिमालय की कन्दराओं में चला जाऊंगा । हां, मेरी एक और इच्छा है; और वह यह कि, आप इन यवनों को गान्धार के उस पार भगा दें । चन्द्रगुप्त अच्छा शूरवीर पुरुष है। उसको जहां आपकी सहायता मिल गई कि, बस फिर यह कार्य होते देर न लगेगी । आप तक्षशिला में इनके शासन में कभी नहीं थे, अन्यथा आपको यह मालूम हो जाता कि दीन हीन लोगों पर ये कैसा अत्याचार करते हैं......"

चाणक्य अख़ीर अख़ीर में उनसे इतने प्रेम, और ढिठाई के साथ, बोलने लगे कि, जैसे राक्षस ने चन्द्रगुप्त का साचिव्य स्वीकार ही कर लिया हो । परन्तु राक्षस बीच में हीं उनसे बोले, "चाणक्य, वास्तव में ऐसे मनुष्य से मुझे एक बात भी नहीं करनी चाहिए कि, जिसने हमारे स्वामी के वंश की हत्या की हो; परन्तु फिर भी मैं इतनी देर से तुम से बातचीत कर रहा हूं; और इस बात का मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है । जब तक तुम यवनों से मगध की रक्षा कर रहे हो; तब तक मैं तुम्हारे काम में बाधा नहीं डालूंगा । इस बात का तुम विश्वास रखो । और, तुम मुझको सचिव भी इसी एक कारण से बनाना चाहते हो; और इसीलिए मैं तुमको यह वचन दे रहा हूँ । मैं यवनों से मिल कर तुम को नीचा नहीं दिखाऊंगा; और न घर का भेदियापन स्वीकार करूंगा । यों तो अब मेरे हाथ में कोई बात रह हीं नहीं गई है । ऐसी दशा में मेरे इस आश्वासन का भी कोई अर्थ

नहीं है; परन्तु आप बार बार कहते हैं, इस लिए मैं ऐसा आश्वासन दे रहा हूँ, नहीं तो अब मेरी कीमत ही कौन सी रह गई है ?"

"अमात्य, आप ऐसा मत कहें । मैंने आपको धोखा दिया, और आप अपने अधिक विश्वस्तपन के कारण धोखे में आ गये; परन्तु इससे ऐसा मत समझिये कि, हम आपकी कीमत नहीं जानते । आपकी सच्ची योग्यता मैं भलीभांति जानता हूँ; और इसी कारण पहले एक बार मैंने भागुरायण से प्रार्थना करवाई; फिर चन्दनदास को बनावटी तौर पर सूली दिलवाने का ढोंग रचा; और यह सोचा कि, शायद आप मित्रस्नेह के कारण, उसके प्राणों को बचाने के लिए ही, हमारे पक्ष में आजायँ; और इसी कारण वैसा यत्न किया । परन्तु जब यह देखा कि, उससे भी कोई लाभ नहीं हुआ, तब इस बात को जांच करने के लिए, कि आपका विचार शत्रु में मिलने का तो नहीं है, मैंने सिद्धार्थक को संवाहक का रूप देकर शाकलायन के पास इस हेतु से भेजा कि, वह उसको धोखा देकर आपके पास ले जावे; तदनुसार सिद्धार्थक शाकलायन को आपके पास ले आया । शाकलायन से आपकी जो बातचीत हुई, उससे मुझे पूर्ण विश्वास होगया कि, मगध के विषय में प्रेम और यवनों के विषय में द्वेष आपके हृदय में पूर्णतया मौजूद है । इसके बाद अब मैं स्वयं आपसे प्रार्थना करने को आया हूँ । इन सब बातों से आप जान सकते हैं कि, आप की सहायता की योग्यता वास्तव में हम कैसी समझते हैं । अच्छा, अब कहिये, मेरी प्रार्थना के अनुसार आप चन्द्रगुप्त का साचिव्य स्वीकार करते हैं ?"

"चाणक्य, मैंने एक बार कह दिया कि, यह राक्षस नन्दों के अतिरिक्त और किसी की सेवा स्वीकार नहीं कर सकता । फिर

आप क्यों मुझ से आग्रह कर रहे हैं? अपनी प्रतिज्ञा से अधिक प्रिय वस्तु मुझे और कोई नहीं है।"

"अच्छा, यह प्रतिज्ञा तो आपकी दृढ़ है न कोई नन्द यदि सिंहासन पर बैठे, तब तो आप उसका साचिव्य स्वीकार करेंगे?"

"हां, यह प्रतिज्ञा हमारी बिलकुल दृढ़ है। कोई नन्द यदि मिल जावे, तो उसकी सेवा मैं करूँगा। चाणक्य, आप कुटिल-नीति में निपुण हैं, पर मैं आपके कौटिल्य का ज़रा भी भय न करते हुए स्पष्ट कहता हूँ कि, मुझे नन्दवंश का एक छोटा सा अंकुर भी यदि कहीं दिखाई दे जाय, तो मैं कायावाचामन से उसकी रक्षा करूँगा। उसके लिए सब प्रकार का प्रयत्न करूँगा, और आपके चन्द्रगुप्त का उच्छेद करके इस सिंहासन पर उसी को बैठाऊँगा, और फिर उसका साचिव्य करूंगा।"

राक्षस का यह भाषण सुन कर चाणक्य हँसे। यह देख कर राक्षस को कुछ बुरा लगा, और वे एकदम चाणक्य से बोले, "चाणक्य, आप खुशी से हँसा करें। मेरी बातों को असम्भव समझ कर आप हँस रहे हैं........"

"नहीं, नहीं," चाणक्य राक्षस से कहते हैं, "आपकी ये बातें सर्वथैव सम्भव है; और इसी कारण मैं हँस रहा हूँ—इनको असम्भव समझ कर नहीं हँस रहा हूँ।"

"आपका यह भाषण भी मेरा परिहास ही है; क्योंकि आज इस घड़ी में तो मेरी बातें उतनी ही असम्भव हैं कि; जैसे कोई कहे कि, केवल शशशृंग का धनुष धारण करने वाला और आकाश पुष्प का हार पहन कर घूमनेवाला वन्ध्यापुत्र हमको मिला था! और सचमुच ही स्वयं भी मैं अपने उक्त बातों को वैसा ही समझता हूँ, फिर आप भी यदि वैसा ही समझते हो, तो इसमें आश्चर्य क्या?"

"नहीं, परन्तु हम इसको ऐसा नहीं समझते। कहिये, तो सिद्ध करके दिखला दें।"

यह सुन कर राक्षस बिलकुल खिन्न वदन होकर चाणक्य की ओर सिर्फ देखते भर रहे। अतएव चाणक्य फिर उनसे बोले, "अमात्य, अब सिर्फ एक ही बात मैं आप से पूछूंगा। नन्दवंश वृक्ष का अंकुर यदि आपको दिखाई दे जाय, तब तो आप फिर उसका पक्ष ग्रहण करेंगे, और उसके सिंहासन पर बैठा उसका साचिव्य करेंगे? फिर इस प्रतिज्ञा में तो कुछ अन्तर नहीं पड़ेगा?"

"नहीं, नहीं, नहीं,—त्रिवार 'नहीं' कहता हूँ। अब आगे?

"अब आगे क्या? नन्दों का अँकुर लाकर आप के सामने खड़ा करूँगा, और यही कहूंगा कि, चन्द्रगुप्त स्वीकार नहीं करते हो, तो इसी का करो। और क्या? किन्तु इसके पहले यह देखो; यह क्या है? रक्षाबन्धन ही तो है?"

राक्षस उस रक्षाबंधन को देख कर एकदम चौंक पड़े, और बोले, "हाँ, यह रक्षाबन्धन नन्दों के ही घर का है। सिंहासनस्थ राजा के पहला पुत्र होते ही, उस पुत्र के मणिबन्ध पर इसको बाँधने की चाल है। अच्छा, इस रक्षाबन्धन से क्या तात्पर्य?"

चाणक्य बोले, "अच्छा, बतलाता हूँ—शारद्वत, भीतर आ तो!" चाणक्य का शिष्य शारद्वत, जो बाहर खड़ा था, भीतर आया, उसको चाणक्य ने राक्षस के सामने खड़ा किया, और दाहना हाथ फैलाने के लिए कह कर बोले, "राक्षस, देखो, इस लड़के के हाथ के चिन्ह देखो। आप सामुद्रिक अच्छी तरह जानते है, इसीलिए दिखलाता हूँ। ये सब चिन्ह चक्रवर्तित्व के ही तो हैं?"

"हां हैं !" इतना कह कर राक्षस बहुत ही चकराये। उनको यही न समझ पड़ने लगा कि, आगे अब क्या होगा।"

"राक्षस, अब आपही विचार करें कि, जो सच्चा राजबीज नहीं होगा, उसके हाथ में ऐसे लक्षण कहां से आ सकते हैं? नहीं आ सकते!"

राक्षस कुछ नहीं बोले।

तब चाणक्य आगे कहते हैं, "राक्षस, अब क्यों प्रतिज्ञा के अनुसार नहीं करते? यह लड़का, जो आपके सामने खड़ा है, नन्दवंश का अंकुर है। इसके जन्मकाल में इसके मणिबन्ध पर यह रक्षाबन्धन बँधा हुआ था। इसके ग्रह बहुत ही उत्कृष्ट थे; परन्तु एक अनिष्ट ग्रह की दशा के कारण इसको अपने जीवन के प्रथम बारह वर्ष दरिद्रता में काटने पड़े। इसकी माता व्याध-राजा की कन्या है। भागुरायण ने व्याधराजा को जीत कर राजा धनानन्द को उसे अर्पण किया। धनानन्द ने उसके साथ गान्धर्व विवाह किया। उसी से यह पुत्र हुआ। ग्रहदशा के कारण आपने इसके जन्म के विषय में सन्देह किया; और इसको जंगल में लेजाकर मार डालने के लिए आज्ञा दी। परन्तु उसके चक्रवर्तित्व दिलानेवाले ग्रह बलवान् थे, इस कारण जल्लादों के हृदय में दया का सञ्चार हुआ, और इसके प्राण बच गये। उन्होंने इसे हिमालय के एक जङ्गल में ले जाकर छोड़ दिया। वहां, कर्म-धर्म-संयोग से यह बालक एक ग्वाले के हाथ लग गया है। ग्वाले ने बारह तेरह वर्ष तक इसका पालन-पोषण किया, फिर यह मेरी दृष्टि में पड़ा, मैंने इसके राजचिन्ह देखे, और इसको क्षत्रियोचित शिक्षा देने की इच्छा से इसको मैंने उस ग्वाले से मांग लिया। तब से यह मेरे ही पास रहता है। इस लिए अब आप इसको तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वीकार करें।"

राक्षस ये सब बातें सुन कर बड़े गोलमाल में पड़े। यह सब

क्या मामला है, कुछ उनकी समझ में न आया। इसलिए कुछ देर तक वे बिलकुल स्तब्ध बैठे रहे। यह देख कर चाणक्य फिर उनसे बोले, "अमात्य, अब क्यों नहीं बोलते? क्या मेरा यह सारा कथन आपको मिथ्या जान पड़ता है? अथवा इसको सत्य समझ कर भी आप अपनी प्रतिज्ञा को ही वापस लेना चाहते हैं?"

"चाणक्य, इस लड़के के चिह्न तो सारे राजचिह्न ही दिखाई देते हैं। इसके सिवाय इसकी रेखाएँ भी बिलकुल चक्रवर्ती की हैं, जिनसे मालूम होता है कि, यह चक्रवर्ती अवश्य होगा। यह रक्षाबन्धन भी नन्दों का ही है; परन्तु······"

"अब 'परन्तु' क्या रह गया?"

"परन्तु यह विश्वास कैसे हो कि, यह धनानन्द का ही लड़का है? जिस लड़के को बन में मारने के लिए भेजा था, वही यह लड़का है—यह कैसे मालूम हो?"

"जिस ग्वाले ने बारह वर्ष तक इसका पालन किया है, वह अभी मौजूद है; और इस समय पाटलिपुत्र में ही मौजूद है। यदि आवश्यकता हो, तो बुलवा लूं? पर प्रतिज्ञा के अनुसार अब इसका स्वीकार करने में आगा पीछा न करें। अपने वचन का पालन करें।"

राक्षस ने कुछ देर विचार किया। फिर बोले: "चाणक्य, जिस मुरा ने स्वयं अपने पति की ही हत्या की, उसके पुत्र का स्वीकार करना मुझको अच्छा नहीं लग रहा; पर क्या किया जाय; इसको छोड कर अब कहीं नन्दों का अंकुर है ही नहीं, इस लिए मैं इसको स्वीकार करता हूँ, पर मैं इस समय एक बलहीन मनुष्य हूँ; अतएव इसका स्वीकार करके भी मैं क्या कर सकता हूँ?"

"मगध के राज्य पर बैठा सकते हो।"

"सो कैसे ?" राक्षस खेद में हँस कर पूछते हैं। उनके मानो यह सब एक प्रकार से हँसी ही मालूम हो रही थी !

"किसी न किसी की सहायता से।" चाणक्य ने प्रत्युत्तर दिया।

"इस समय मुझे सहायता कौन दे सकता है ? यह आगे की बात है।"

"आगे की बात क्यों ? आज की बात है। मैं इसके लिए अपनी पूर्ण सहायता देता हूँ।"

"क्यों ? चन्द्रगुप्त से क्या आपका झगड़ा हो गया ? क्या उसको अब आप छोड़ देंगे ?"

"नहीं, नहीं—ऐसा नहीं, इसको और उसको दोनों को पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठावेंगे; अब तो आपको कोई आपत्ति नहीं !"

"इसका क्या अर्थ ?"

"इसका यह अर्थ—कि यह चन्द्रगुप्त ही है !"

उपसंहार

चाणक्य चन्द्रगुप्त को ख़ास तौर पर शिष्य का वेष देकर अपने साथ ले आये थे; और अपने जिस शिष्य का वृत्तान्त इस समय उन्होंने राक्षस से बतलाया, वह वृत्तान्त चन्द्रगुप्त का ही था; और यह बात उन्होंने राक्षस से भी प्रकट कर दी। राक्षस अत्यन्त ही आश्चर्य चकित हुए, और अन्त में अपने वचन के अनुसार चन्द्रगुप्त को "नन्दाँकुर" मान कर, उन्होंने उसका साचिव्य स्वीकार किया। राक्षस को फिर से सचिव नियुक्त करने के कारण भागुरायण कुछ असन्तुष्ट हुए; परन्तु चाकक्य ने शीघ्र ही उनका समाधान कर दिया। राक्षस और चाणक्य के एक हो जाने पर फिर क्या कहना है! सलूक्षस और मलयकेतु, दोनों, अपनी सेना लेकर अभी आने नहीं पाये थे कि, इतने में मगध के इन राजनीतिज्ञों ने अपनी एक बड़ी भारी सेना तैयार करली, जिसमें ६,००,००० पैदल, ३०,००० घुड़सवार और ६,००० हाथी थे। ऐसी भारी सेना, और चन्द्रगुप्त के समान तरुण महत्वाकाँक्षी वीर उसका मुखिया! फिर क्या कहना है? पहले ही धावे में उन्होंने सलूक्षस और मलयकेतु की सेना के छक्के छुड़ा दिये, और लगभग वर्ष डेढ़ वर्ष के भीतर ही उन्होंने सलूक्षस को काश्मीर के उस पार भगा दिया। अन्त में सलूक्षस ने चन्द्रगुप्त से सन्धि कर ली, सिन्धुनद के पश्चिम ओर का सारा मुल्क छोड़ दिया, उसमें गांधार देश भी छोड़ा, और अपनी एक लड़की चन्द्रगुप्त को ब्याह दी। इसके सिवाय

मेगस्थनीज़ नामक एक अपना राजदूत भी चन्द्रगुप्त के यहां रखा। पर्वतेश्वर छोड़ दिया गया। वह चन्द्रगुप्त का मांडलिक बन गया। इधर राक्षस ने जब साचिव्य स्वीकार करके सलूक्स को एक दो बार पराजित कर दिया, तब चाणक्य शीघ्र ही अपने हिमाचलाश्रम में चले गये, और वहीं रह कर तपस्या करने लगे। चद्रन्गुप्त ने उस आश्रम के अपने सब साथियों को पाटलिपुत्र में बुलाकर उनको सेना में अच्छे अच्छे अधिकार दिए। राजकुल के सम्पूर्ण गोधन पर अपने गोपजनक को नियुक्त किया। सापत्नमाताओं के साथ चन्द्रगुप्त ने बड़े आदर सत्कार का व्यवहार किया! यह सोच कर कि, हमारी माता ने हमारे लिए इतने विचित्र साहस के कार्य किये, चन्द्रगुप्त अपने को "मौर्य" (मुरापुत्र) कहलाने लगे। नन्द नाम को उन्होंने छोड़ दिया। पर राक्षस उनको नन्द ही समझते रहे। वृन्दमाला, और उसकी धुन में आकर सुमतिका भी, बौद्ध जोगिनी बन गई। वसुभूति के बाद सिद्धार्थक विहाराधिपति हुआ, और उसने अपने विहार का विस्तार भी खूब बढ़ाया, जिससे बौद्धमत की प्रबलता दिन पर दिन बढ़ने लगी।